प्रकाशक :
मालचन्द मोतीलाल कोठारी
गुवाहाटी (आसाम)

मूल्य तीस रुपए

प्रथम सस्करण . १९८७

मुद्रक :
चन्द्र प्रिन्टर्स,
दिल्ली-५३

भूमिका

मनुष्य ने पारिवारिक जीवन प्रारभ किया, तभी से कहानियो का सिलसिला भी प्रारभ हुआ। दादियो और नानियो ने इस क्रम को बनाये रखने मे शायद सबसे अधिक योगदान किया। मनुष्य ने अपने जीवन-क्रम मे जो-जो परिवर्तन किये वे सब कहानियो मे भी उभरे। क्वचित् परिवर्तनो की पहल कहानी मे हुई और क्वचित् मनुष्य मे। कहानी ने मनुष्य को बदला और मनुष्य ने कहानी को।

कहानी-जगत् व्यवहार-जगत् से क्वचित् भिन्न भी होता है। व्यवहार-जगत् मे पशु-पक्षी न बाते करते है और न नीति आदि के सबध मे कोई ज्ञान ही रखते है, परन्तु कहानी-जगत् मे यह सब होता है। बाल-कहानियो मे तो बहुधा ऐसा होता ही है। इसलिए कहा जा सकता है कि कहानी की सत्यता-असत्यता—घटना की दृष्टि से नही, किन्तु उसमे प्रतिपादित तथ्य की दृष्टि से ही आकी जाती है। वस्तुत कहानी का तथ्य ही उसका सत्य एव शाश्वत तत्त्व होता है।

कहानी बालको को ही नही, युवको और वृद्धो को भी उतनी ही प्रिय होती है। हर कोई उससे प्रेरणा प्राप्त करता है। उसके विभिन्न पात्र, विभिन्न प्रकृति के व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। इसीलिए हर प्रकार का व्यक्ति उसके किसी-न-किसी पात्र को अपनी मनोदशा या आदर्श के अनुरूप पा लेता है। मनुष्य सहज रूप मे उच्चता या आदर्श को पसद करता है। अत रामायण के श्रोता या पाठक के मन मे अनायास ही यह प्रेरणा जागती हे कि उसे राम जैसा बनना चाहिए, रावण जैसा नही। जो कहानी अपने श्रोता या पाठक के मन मे ऐसी सत् प्रेरणा जगाने मे सफल होती है, वही वस्तुत सफल कहानी कही जा सकती है। कहानी की सफलता ही उस लेखक की सफलता होती है।

मुनि कन्हैयालालजी कर्मशील व्यक्ति है और साथ ही अपनी धुन के पक्के भी। वे अभी आसाम (पूर्वाचल) मे विहरण करते हुए धर्मसघ की अच्छी प्रभावना कर रहे है। उन्होने प्रस्तुत पुस्तक 'बाल-कहानिया' मे कुछ लोक-प्रचलित कहानियो को सरल शब्द-परिधान मे प्रस्तुत किया है। एतद् विषयक उनका प्रयास और उत्साह प्रशसनीय हे। इससे मनोरजन के साथ-साथ बालक-बालिकाओ का मन आदर्श की ओर उन्मुख होगा। भले-बुरे की पहचान मे उनकी बुद्धि पटुतर बनेगी एव उदात्त सस्कारो के बीज उनके हृदय की उर्वरा मे अकुरित होगे। मैं आशा करता हू कि बाल-जनो की सरल बुद्धि के लिए ये कहानिया प्रेरक सिद्ध होगी।

—मुनि बुद्धमल

मन की बात

जन-मानस की सुप्त चेतना को जागृत करने के लिए कथा-साहित्य एक बहुत बडा माध्यम है। नीरस विषय मे भी सरसता सचारित करने वाला है। जटिल एवं गहनतम विषयो को सरल करने के लिए एक प्रशस्त मार्ग है। जीवन का पाथेय है। समूर्च्छित उपवन के लिए सलिल की धारा है। वक्ताओ का शृगार है।

आधुनिक जगत् मे कथा-साहित्य का वैशिष्ट्य अपने आप मे अद्वितीय है। अनेक चिन्तको व प्रतिभाशाली मनीषियो की लेखनी इस ओर अग्रसर हुई है और समय-समय पर होती रहती है। जनता जनार्दन ने इसका सर्वत्र स्वागत किया है। जन-साधारण के लिए तो बहुत ही उपभोग्य सिद्ध हुआ है। अन्यान्य साहित्य की अपेक्षा कथा-साहित्य पढने मे हर व्यक्ति की अभिरुचि बनी रहती है। आध्यात्मिक व शिक्षात्मक कहानियो से लोग अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाने का उत्कट प्रयत्न करते है।

बच्चे स्वभावत ही कहानियो के प्रेमी होते है। कहानियो से उनकी स्मरण-शक्ति व विचार-शक्ति की वृद्धि होती है। आध्यात्मिक सस्कारो का सचार होता है। बालक-बालिकाओ का जितना आकर्षण कथा-साहित्य के प्रति रहता है, उतना अन्यत्र नही। जब उन्हे कहानी सुनाई जाती है, तब वे बडे ध्यान से सुनते है और उसके लिए लालायित रहते है। खेलकूद, खानपान, स्नान, अध्ययन आदि समग्र क्रियाओ को भी वे गौण समझते है, तब, जबकि उन्हे कहानियो की खुराक मिलती हो। सुनाने वाले थक सकते है पर वे सुनते-सुनते नही थकते और न उनका मनोयोग ही अन्यत्र जाता है।

कथाओ के माध्यम से बालको मे अच्छे-अच्छे सस्कार जागृत किये जा सकते है। बच्चे अगर आध्यात्मिक व नैतिक विचारो को महत्त्व देने लग जायेगे तो आने वाली पीढी सदाचार, ईमान एव प्रामाणिकता से ओतप्रोत हो जायेगी और भारतीय सस्कृति मे निखार आ जाएगा। हाथो से खोयी हुई निधि को पुन बटोरने मे सबकी चेतना जागृत हो उठेगी। मनीषियो की दृष्टि मे शिक्षात्मक कथाए सर्वोत्तम विद्यालय है। सुलभता से जो तत्त्व वहा उपलब्ध हो सकेगा, वह अन्यत्र असम्भव है।

श्रद्धास्पद आचार्य श्री तुलसी के निर्देश से मेरे जीवन का बहुत बडा भाग मुनिश्री गणेशमलजी के सान्निध्य मे बीता है। इसे मैं आचार्यप्रवर का आशीर्वाद मानता हू। आचार्यदेव का स्नेहभरा वात्सल्य ही मेरे जीवन-निर्माण मे जहा साधक बना, वहा मुनिश्री का ४१ वर्षीय सतत सान्निध्य भी कथा-साहित्य, सगीत

साहित्य, दोहा साहित्य आदि विविध क्षेत्रो मे वढने का निमित्त वना है। मुनिश्री का सहवास हर दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत कृति उसी का प्रतिफल मानना चाहिए।

'वाल कहानिया' भाग-१ मे ६ तक का यह सर्वांधित एव सशोधित सयुक्त सस्करण है। इसमे वालोपयोगी, आध्यात्मिक, शिक्षात्मक एव नैतिक लघु कथाए है। प्रत्येक कथा के उपसहार मे दोहा दिया गया है। सरल व सीधी भाषा मे लिखी गयी ये कथाए मानव-समाज को नयी दिशा मे गतिशील वनाने मे सहायक सिद्ध होगी और विद्यार्थियो के तिमिर-सव्याप्त मानस मे प्रदीप का कार्य करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मुनि कन्हैयालाल

शुभकामना

युगप्रधान तुलसी-गणी, जिन शासन सिरमौर।
जिनके वर नेतृत्व मे, उन्नति चारो ओर॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्र है, वृद्धिगत दिन-रात।
साध्वी-साधु समाज है, चरित-धनी साक्षात्॥

वक्ता लेखक शास्त्रविद्, संगीतज्ञ महान्।
उपदेशक अवधान-कर, नैयायिक विद्वान॥

शिक्षाप्रद साहित्य के, स्रष्टा सत अनेक।
जिनका विद्वज्जगत् मे, है प्रभाव अतिरेक॥

रुचिकर श्रेष्ठ कहानिया, होती है अविवाद।
बच्चे भी पढकर उन्हे, रख लेते हैं याद॥

मुनि कन्हैयालाल का, है इस ओर प्रयास।
जनता को शिक्षा मिले, जिससे चरित-विकास।,

हैं ये बाल कहानिया, सरस-सरल शिशु-गम्य।
जिनके माध्यम से मिले, अन्तर-ज्ञान सुरम्य॥

शिक्षाप्रद साहित्य का, है यह क्षेत्र विशाल।
आगे बढते ही रहो, मत कन्हैयालाल॥

— मुनि गणेश

स्वर्गीय महालचन्दजी कोठारी

जन्म—वि० स० १९६० वैशाख कृष्णा १ शनिवार (छापर)
स्वर्गवास—वि० स० २०२० फाल्गुन कृष्णा १५ (लाडनूं)

निष्ठावान श्रावक श्री महालचन्दजी कोठारी

जीवन-परिचय

सही जो आनन्द खोना वही तो महाभाग ।
मरा भी वह अमर, सोया भी रहा है जाग।
सौभाग्यशाली को ही शुभ सयोग मिलता है।

श्री महालचन्दजी कोठारी लाडणू अपने सयमी पुत्र 'मुनिश्री कन्हैयालालजी' के दर्शनार्थ गए हुए थे। उस समय वे अपने अग्रणी मुनिश्री गणेशमलजी के साथ वहा विराजते थे। 'काल' ने अपना घेरा डालना प्रारम्भ किया। श्री महालचन्द जी को आभास होने लगा कि अब काया और प्राण का साथ छूटेगा।

'आप शीघ्र दर्शन देने पहुचे', यो मुनिश्री को निवेदन कर विश्राम के लिए अपने सुपुत्र श्री मोतीलालजी के ससुराल गये। पहुचने के तुरन्त बाद ही 'दर्शन कराओ' 'दर्शन कराओ' के अन्तिम शुभ उद्गारो के साथ ही आपने महाप्रयाण किया। जिनका अभिन्न साथी आनन्द है वही अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे ऐसा सजग रहता है।

जो पुत्र आगे का जीवन बनाने मे सहायक हो सकते है उन्ही के पास जीवन की अन्तिम घडिया बीती।

अन्तिम दिनो मे जीवन के अनुभवो की अमूल्य परतें खुलती है। उन्हे अपने हृदय के खास स्थान पर वही सौभाग्यशाली सजा पाता है, जो उस समय पास होता है।

आचार्य श्री तुलसी के उद्गार

आचार्य प्रवर उस समय चूरु विराजते थे। श्री महालचन्दजी के आकस्मिक निधन-समाचार श्रवण पर उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त किये—'महालचन्दजी बडे सेवाभावी थे, उनको सेवा का शौक था।' जब आचार्यश्री को यह बतलाया गया कि मृत्यु के समय वे अपने परिवार वालो से दूर लाडणू गए हुए थे। तब उन्होंने कहा—'इसमें अवसाद की क्या बात है? सयमी पुत्र 'मुनि कन्हैयालाल' की सेवा मे रहते-रहते जाना क्या कम गौरव की बात है? जाना तो पडता है लेकिन ऐसा सुन्दर अवसर कैसे मिलता?'

स्वर्गीय श्री महालचन्दजी कोठारी के स्वर्गीय पिताश्री श्री पनेचन्दजी कोठारी जैसे भक्ति की दृष्टि से व ससार पक्षीय दृष्टि से भी कालूगणी के निकटतम

सम्बन्धी व कृपापात्र रहे हैं, वैसे ही महालचन्दजी भी। अपने सुपुत्र श्री कन्हैयालालजी व सुपुत्री श्री लिछमाजी की बहुमूल्य भेंट दे, आप इस शासन मे फिर और नये भागीदार बने। दीक्षा के सुअवसर पर ही उनकी सेवा साल मे कम-से-कम एक बार करने के लिए वचनबद्ध हुए थे। उसका पालन आजीवन अबाध गति से चलता रहा। साथ-साथ आचार्यश्री की सेवा भी समय-समय पर होती रहती थी। आज भी उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कोठारी उसी क्रम को ज्यों-की-त्यों निभा रही हैं। बड़ी रुचि से आचार्यश्री, मुनिश्री व साध्वीजी की सेवा मे अपने जीवन के अधिक से अधिक समय को सार्थक बनाती हुई रह रही है। आपकी तपस्या व स्वाध्याय का संक्षिप्त वर्णन भी यहा देना अनुचित नही होगा —

तपस्या

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१६
१३०२	४५	२५	२१	१५	८	३	३	१	१	१	१	१

२० बार श्रावण मे एकान्तर ४ बार २५० पचखाण किये।

अनुक्रम

गुरु और शिष्य

वर्षा ऋतु का समय था। चारों तरफ बादल उमड़ रहे थे। [illegible] जा रहे थे। स्थान-स्थान पर गड्ढों में पानी भर रहा था। [illegible] थे। कहीं-कहीं पानी में से निकलकर छोटे-छोटे मेंढक कूद-फाँद रहे थे। इस समय किसी कार्य से गुरु और शिष्य कहीं जा रहे थे। अचानक असावधानी से गुरु के पैरों तले मेंढक आ गया और वह मर गया। शिष्य ने हाथ जोड़कर गुरु से निवेदन किया और प्रायश्चित्त लेने के लिए प्रार्थना की। गुरु ने सुना-अनसुना कर दिया। कुछ भी बोले नहीं। दोनों अपने स्थान पर पहुँच गए। शिष्य [illegible]। [illegible] कर बोला—गुरुदेव! उसका प्रायश्चित्त करना है। यह सुनते ही गुरु [illegible] लाल हो गये, रोषपूर्ण वक्र-दृष्टि से शिष्य को देखने लगे। शिष्य ने सोचा—अभी कहना उपयुक्त नहीं था क्योंकि गुरुजी क्रोध में भरे हैं। [illegible] के समय याद दिलाना उपयुक्त होगा। वह उठा और अपने स्थान पर चला गया।

सूर्य अस्त हुआ। प्रतिक्रमण करने के लिए सभी संत उपस्थित हुए। आलोचना लेने के लिए गुरु के समक्ष वह शिष्य आया। दिवस सम्बन्धी सभी दोष-पापों की आलोचना करके बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर वह बोला—गुरुदेव! आज मार्ग में आपके पैरों से मेंढक की हत्या हो गयी थी। उसकी आप भी आलोचना कर लें। गुरुजी अब अपने कर्तव्य को भूल गये। गुस्से में विवेकहीन बन गये और अपना डण्डा लेकर शिष्य के पीछे झपटे। उसे पकड़ने के लिए दौड़े और बोले—जरा इधर आ, तुझे बताऊं मेंढक की हत्या कैसे हुई और कैसे होती है। शिष्य आगे और गुरु पीछे-पीछे उपाश्रय में दौड़ने लगे। गुरु को इस तरह आवेश में देखकर शिष्य कहीं छिप गया। उपाश्रय में गहरा अंधेरा था। खम्भे भी बहुत थे। अचानक एक खम्भे से गुरुजी टकरा गये और गिरते ही उनका देहान्त हो गया। उनकी वह आत्मा शरीर को छोड़कर चण्डकौशिक सर्प के रूप में उत्पन्न हुई।

क्रोध के कारण उनकी संयम-साधना सफल न हो सकी और उनको तिर्यञ्च-गति में जन्म धारण करना पड़ा। अतः किसी भी स्थिति में क्रोध करना श्रेयस्कर नहीं है।

क्रोध भयंकर आग से, होते तप-जप नष्ट।
गुरु के इस आख्यान से, दीख रहा है स्पष्ट॥

चण्डकौशिक

[illegible] महावीर जब श्वेताम्बिका नगरी की ओर प्रस्थान कर रहे थे तब मार्गस्थ लोगों ने कहा—भगवन् ! आप इधर न पधारें। मार्ग में एक भयंकर जहरीला [illegible] सर्प रहता है। जो भी व्यक्ति उस मार्ग से गुजरता है, उसे वह डस [illegible] है। [illegible] बन गये। अब उस मार्ग से कोई भी व्यक्ति [illegible] है। [illegible] आप भी उस पथ से न पधारें। किन्तु भगवान [illegible] विचलित होने वाले थे। भय और [illegible] पराजित [illegible]

एकता का महत्त्व

एक करोडपति सेठ था। उसके परिवार मे छोटे-बडे सब पचासो व्यक्ति थे। एक साथ ही खाना बनता था और एक साथ ही निवास एव व्यवसाय था। अपने कुटुम्बीजनो मे सेठ का वत्सलतापूर्वक व्यवहार था। घर के सदस्यो की भी सेठ के प्रति अटूट श्रद्धा थी। एक दिन ऐसा आया कि सेठ का व्यापार चौपट हो गया। आय के साधन बन्द हो गये। उदरपूर्ति भी एक समस्या बन गई। सेठ ने अपने सभी सदस्यो को एकत्रित किया और कहा—अब सबको श्रम करना पडेगा अन्यथा जीवन-निर्वाह होना बहुत मुश्किल है। सभी सदस्यो ने कहा—आप जैसा आदेश देगे उसी के अनुसार कार्य करने को तैयार है। सूर्योदय होते ही सभी छोटे-बडे तैयार हो गये। सेठ के आदेशानुसार कसी, कुदाल आदि सामान कधो पर उठाये उसके साथ ही चल पडे। स्त्री, पुरुष व बच्चे सभी एक-दूसरे से आगे-आगे बढने लगे। जगल मे पहुचे। एक सघन वटवृक्ष को देखकर सेठ ने कहा—आज का पडाव यहा डाला जाये। सब रुक गये। सबका ऐक्य व सगठन देखकर सेठ बहुत खुश हुआ। सबको अलग-अलग काम सौपा गया। कई सरकण्डे काटते है, कई उनके छिलके उतारते है, कई पीटने का काम करते है। एक ओर कटाई-छटाई होने लगी तो दूसरी ओर मूज बनने लगी, चरखे चलने लगे, धडाधड रस्सिया तैयार होने लगी।

इतना बडा जमघट देखकर वटवासी यक्ष घबराया और उनको ललकारते हुए कहा—चले जाइये यहा से, यह मेरा निवासस्थान है। महिलाओ ने, युवको ने, बच्चो ने एक ही उत्तर दिया—हमको कहने से कुछ नही होगा। सेठ से कहिए। यक्ष सेठ के पास गया और बोला—सेठ! इन रस्सियो का क्या करोगे? सेठ ने ओज भरे शब्दो मे उत्तर दिया—मैं इससे तुझे बाँधूगा। यक्ष उन सबके सगठन को जानता था। घबराकर बोला—सेठ! यहा यह खटपट मत करो, मै इससे बहुत परेशान हू। सेठ ने कहा—यह तो हमारे जीवन-निर्वाह का साधन है, कल भी आयेंगे और परसो भी आने का विचार है। यक्ष बोला—इसकी अगर मैं दूसरी व्यवस्था कर दू तो यहा के दरख्तो को नही काटोगे?

सेठ—फिर हमे यहा आने की आवश्यकता ही नही रहेगी।

यक्ष ने अपना धन-भण्डार खोल दिया। सेठ के आदेशानुसार सभी परिवार वालो ने धन के गट्ठर बाध लिये। लाखो रुपयो की सम्पत्ति लेकर सेठ अपने परिजनो सहित घर चले गये।

सेठ के पडोस मे एक दूसरा सेठ रहता था। उसने उसकी अचानक समृद्धि को देखकर पूछा—रे मित्र सेठ! एक साथ इतना धन किस व्यापार से मिला?

[illegible] । आखिर महिलाए महिलाओ मे मिली । सारा [illegible] । [illegible] की भावना मे वह भी उस सेठ की भाति अपने सब [illegible] जबरन उस वटवृक्ष के नीचे ले गया । [illegible] हुआ । यक्ष आया और बोला [illegible] उस [illegible] ने कहा—सेठ को खायेगे । यक्ष ने फिर [illegible] जान मे छोडकर सब भाग गये । यक्ष [illegible] इतना ही अन्तर है कि उन सब मे [illegible] । सेठ हताश हो गया और उसे खाली हाथो लौटना

आशीर्वाद लेकर आया हू। जिन्होंने माता-पिता को आराध्य कर लिया है, उन्होंने सारे ससार को आराध्य कर लिया है। यह सुनकर विष्णुजी बहुत प्रसन्न हुए। थोडी देर बाद एक-एक करके देवता वहा पहुचने लगे। विष्णुजी ने सब देवताओ के सामने अपना निष्पक्ष न्याय सुनाते हुए कहा कि गणेशजी सबसे श्रेष्ठ व प्रथम पूजनीय है। यह सुनते ही सबके चेहरे उतर गये। सबने पूछा, 'यह कैसे ?' वे बोले—'ससार मे माता-पिता एक अमूल्य निधि हैं। जो बच्चा माता-पिता को आदेशानुसार चलता है वह सारे ससार को पा लेता है। सबसे पहले मेरे पास गणेश पहुचा। उसने माता-पिता को परिक्रमा दी, सारे ससार की परिक्रमा हो गई। यह सुनकर देवताओ ने गणेशजी को प्रथम पूज्य माना।

ससार मे माता-पिता का स्थान बहुत ऊचा माना जाता है। उनके कथनानुसार चलने वाला पुत्र ही अपने जीवन का विकास कर सकता है और वह जन-जन के लिए श्रद्धा का पात्र बनता है।

मात-पिता के कथन मे, चलता है जो पुत्र।
उसका जीवन रह सके, नैतिक निष्ठ पवित्र ॥

श्रीकृष्ण और पाण्डव

पाण्डवो ने श्रीकृष्ण से कहा कि अब हम तीर्थस्नान करने के लिए जाना चाहते है, कृपया आज्ञा प्रदान कीजिए, क्योकि युद्ध के भयकर पाप से हमारी आत्मा मलिन हो रही है, तीर्थस्नान से मलिनता दूर हो जायेगी। श्रीकृष्ण ने उनको अनुमति देते हुए कहा कि साथ मे यह मेरी एक तुम्बी भी ले जाओ, जहा तुम एक बार स्नान करो वहा मेरी तुम्बी को दो बार स्नान कराना। पाण्डव बडी खुशी से चले। क्रमश उन्होंने सभी तीर्थो मे स्नान किया और साथ-साथ तुम्बी को भी दो-दो बार स्नान करवाया। अन्त मे श्रीकृष्ण के दरबार मे वे आ पहुचे। कुशल सवाद के अनन्तर उन्होंने वह तुम्बी श्रीकृष्ण को भेट की। श्रीकृष्ण ने पूछा—तुम्बी को दो-दो बार स्नान करवाया ? उन्होंने कहा—हा, महाराज। जिस नदी मे हमने एक बार स्नान किया इसे हमने दो-दो बार करवाया। श्रीकृष्ण ने तुम्बी के छोटे-छोटे पाच टुकडे किये और प्रत्येक पाण्डव के हाथ मे देते हुए कहा—तीर्थस्नान के इस प्रसाद को जरा देखो तो ? पाण्डवो ने उसे मुह मे डाला तो सारा मुह खारा हो गया। श्रीकृष्ण ने पूछा—क्यो, स्वाद कैसा है ? पाण्डवो ने कहा—बिलकुल खारा।

श्रीकृष्ण ने आक्षेप की भाषा मे कहा—यह कैसे हो सकता है ? इतने तीर्थो

दू ? व्याघ्र वोला—मनुष्य वडा मतलवी होता है, समय आने पर यह तुझे भी धोखा देगा। वन्दर वोला—मैं तेरे माया-जाल मे फसने वाला नही हू। मैं मनुष्य को ससार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता हू। व्याघ्र निराश हो गया। वन्दर को नीद आ गई। व्याघ्र ने मनुष्य से कहा कि मुझे तो अपना पेट भरना है। तू इस वन्दर को नीचे ढकेल दे। फिर तू अपने घर चले जाना। मनुष्य वोला—छी ! छी ! इसने मुझे शरण दी और मैं इसे नीचे ढकेलू, ऐसी कृतघ्नता मैं नही कर सकता। व्याघ्र वोला—जव तक मुझे भक्ष्य नही मिलेगा, तव तक मैं यहा से जाऊगा नही। नुकसान तेरा है, तेरे परिवार वालो की क्या गति होगी ? दुकान का क्या हाल होगा ? तू कितने दिन तक वृक्ष पर वैठा रहेगा ?

स्वार्थभरी वातो से मनुष्य का मन पलट गया। उसने वन्दर को नीचे ढकेल दिया। वन्दर की नीद टूटी। गिरते-गिरते उसने नीचे की शाखा पकड ली। व्याघ्र ने सोचा, मेरा प्रयास सफल नही हुआ। अव फिर वह वन्दर को कहने लगा—वन्दर ! देख मनुष्य ने तेरे साथ कैसा व्यवहार किया ? अव भी मौका है, यदि वदला लेना हो तो मनुष्य को नीचे ढकेल दे। वन्दर वोला—इतना अधम व निकृष्ट कार्य मनुष्य ही कर सकता है, पशु नही। मैं इसे नीचे नही ढकेलूगा। किन्तु अव मैं शीघ्र ही गोष्ठी वुलाऊगा और कौवे को धन्यवाद दूगा कि तेरी वाणी अक्षरश सत्य है।

मनुष्य स्वार्थ-सिद्धि के लिए नीच से नीच कार्य भी करने के लिए तैयार हो जाता है। उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नही रहता है। किन्तु महामानव वही है जो अपने कर्तव्य पर अटल रहता है।

जो मानव निज-स्वार्थ हित, करता दुष्कृत काम।
नही कभी वह वन सके, महापुरुष अभिराम ॥

शिक्षा का पात्र कौन ?

सर्दी का समय था। आकाश मे वादल मडरा रहे थे। झिरमिर-झिरमिर वूदे गिर रही थी। विजलिया चमक रही थी। हवा का वेग वढ रहा था। ऐसे खराव मौसम मे कोई भी मनुष्य घर से वाहर निकलना नही चाहता था। पशु भी अपने-अपने स्थान पर सिकुडे हुए वैठे हुए थे। एक वैया अपने घोसले मे वैठा था। उस समय एक वन्दर सर्दी से ठिठुरता हुआ इधर-उधर दौड रहा था। किसी शरण की खोज मे था। वैया ने सर्दी से पीडित वन्दर को देखा और मुसकराता हुआ वोला—

मे स्नान कर लेने के बाद तो तुम्बी खारी नही रहनी चाहिए। तुमने इसको अच्छी तरह स्नान नही करवाया? पाण्डव बोले—राजन्! तीर्थस्नान कर लेने मात्र से क्या तुम्बी का खारापन दूर हो सकता है? तब श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—तो फिर तुम्हारी आत्मा के पापकल्मष इस बाहरी स्नान से कैसे दूर हो सकते हैं? पाण्डवो के दिल मे श्रीकृष्ण की बात जच गई। उन्होने कहा—महाराज! आप हमे पहले ही इस तत्त्व से सावधान कर देते तो हम इतना भ्रमण क्यो करते? श्रीकृष्ण बोले—उस समय यदि समझाता तो यह बात हृदयगम नही हो सकती थी। यदि तुमको आत्मस्थ पापो से दूर करना है तो—

आत्मा नदी सयम-तोयपूर्णा, सत्यावहा शीलदया तटोर्मी।
तत्राभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

—आत्मा नदी सयम जल से पूर्ण हो, सत्य का उसमे प्रवाह व दया तथा शील के दोनो तट हो, ऐसे स्थान पर हे पाण्डुपुत्रो! तुम स्नान करो। तुम्हारी आत्मा पवित्र होगी। बाह्य स्नान मे अन्तरात्मा की शुद्धि नही होने वाली है।

बाह्य स्नान से ना कभी, आतमा होती शुद्ध।
आभ्यन्तर तप स्नान से, बने अनेको बुद्ध॥

मनुष्य का व्यवहार

बन्दर, मोर, कबूतर, तोता, मैना, कौआ आदि पक्षी एक ही बड़े वृक्ष पर बैठा करते थे। एक दिन सबकी गोष्ठी हुई। सब मे श्रेष्ठ कौन? इसका उत्तर देते हुए बन्दर ने कहा—साथियो! समस्त जीव योनि मे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। सभी पक्षियो ने बन्दर के प्रस्ताव को पास करते हुए एक स्वर मे कहा कि मनुष्य जैसा बुद्धिमान इस दुनिया मे दूसरा कोई नही है। कौवे को मौन देखकर बन्दर ने कहा—मित्र! अपना मत प्रकट करने का सबको अधिकार है। कौआ बोला—मेरी ऐसी मान्यता है कि मनुष्य ससार मे सबसे अधम प्राणी है। यह सुनकर सभी पक्षी बौखलाये, बोले—तुम अधम हो, इसलिए तुमको मनुष्य भी अधम प्रतीत होता है।

कुछ ही दिनो बाद एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आ रहा है। उसके पीछे एक व्याघ्र लगा हुआ है। बन्दर के आह्वान पर वह वृक्ष पर उसके समीप जा बैठा। व्याघ्र ने बन्दर से कहा—भाई बन्दर! हम दोनो जगल के प्राणी है, यह नगर का प्राणी है, इससे क्या सरोकार है? कृपया तू इसे नीचे ढकेल दे, मुझे भूख लग रही है। बन्दर बोला—जो मनुष्य मेरी शरण मे आया है, उसे कैसे नीचे ढकेल

दू ? व्याघ्र बोला—मनुष्य बडा मतलबी होता है, समय आने पर यह तुझे भी धोखा देगा। बन्दर बोला—मैं तेरे माया-जाल मे फसने वाला नही हू। मैं मनुष्य को ससार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता हू। व्याघ्र निराश हो गया। बन्दर को नीद आ गई। व्याघ्र ने मनुष्य से कहा कि मुझे तो अपना पेट भरना है। तू इस बन्दर को नीचे ढकेल दे। फिर तू अपने घर चले जाना। मनुष्य बोला—छी! छी! इसने मुझे शरण दी और मैं इसे नीचे ढकेलू, ऐसी कृतघ्नता मैं नही कर सकता। व्याघ्र बोला—जब तक मुझे भक्ष्य नही मिलेगा, तब तक मैं यहा से जाऊगा नही। नुकसान तेरा है, तेरे परिवार वालो की क्या गति होगी? दुकान का क्या हाल होगा? तू कितने दिन तक वृक्ष पर बैठा रहेगा?

स्वार्थभरी बातो से मनुष्य का मन पलट गया। उसने बन्दर को नीचे ढकेल दिया। बन्दर की नीद टूटी। गिरते-गिरते उसने नीचे की शाखा पकड ली। व्याघ्र ने सोचा, मेरा प्रयास सफल नही हुआ। अब फिर वह बन्दर को कहने लगा—बन्दर! देख मनुष्य ने तेरे साथ कैसा व्यवहार किया? अब भी मौका है, यदि बदला लेना हो तो मनुष्य को नीचे ढकेल दे। बन्दर बोला—इतना अधम व निकृष्ट कार्य मनुष्य ही कर सकता है, पशु नही। मैं इसे नीचे नही ढकेलूगा। किन्तु अब मैं शीघ्र ही गोष्ठी बुलाऊगा और कौवे को धन्यवाद दूगा कि तेरी वाणी अक्षरश सत्य है।

मनुष्य स्वार्थ-सिद्धि के लिए नीच से नीच कार्य भी करने के लिए तैयार हो जाता है। उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नही रहता है। किन्तु महामानव वही है जो अपने कर्तव्य पर अटल रहता है।

जो मानव निज-स्वार्थ हित, करता दुष्कृत काम।
नही कभी वह बन सके, महापुरुष अभिराम॥

शिक्षा का पात्र कौन ?

सर्दी का समय था। आकाश मे बादल मडरा रहे थे। झिरमिर-झिरमिर बूदे गिर रही थी। बिजलिया चमक रही थी। हवा का वेग बढ रहा था। ऐसे खराब मौसम मे कोई भी मनुष्य घर से बाहर निकलना नही चाहता था। पशु भी अपने-अपने स्थान पर सिकुडे हुए बैठे हुए थे। एक बैया अपने घोसले मे बैठा था। उस समय एक बन्दर सर्दी से ठिठुरता हुआ इधर-उधर दौड रहा था। किसी शरण की खोज मे था। बैया ने सर्दी से पीडित बन्दर को देखा और मुसकराता हुआ बोला—

तव कला विपुला प्रतिवर्तने, तव वपुश्च जनेन सम कपे !
मनसि चित्रमशेषमिहास्ति मे, किमु न यत् कुरुषे निजमन्दिरम् ॥

—हे बन्दर ! मनुष्य के समान तेरी आकृति है। तू बडा होशियार भी है। तथापि तू अपने रहने के लिए कोई सुरक्षित स्थान क्यो नही बना रहा है, इस बात का मुझे बडा आश्चर्य है। मै एक छोटा-सा अज्ञानी प्राणी हू, फिर भी थोडा-सा ज्ञान तो अवश्य ही रखता हू। मै अपना घर बनाकर बडे आनन्द से बैठा हू। यदि तू भी घर बना लेता तो आज इस कडकडाती सर्दी मे क्यो इधर-उधर भटकना पडता, क्यो शरीर ठिठुरता।

बैया की यह हित-शिक्षा बन्दर को रुचिकर नही लगी। मन ही मन कुडकुडाने लगा—हाय ! यह छोटा तुच्छ प्राणी मुझे उपदेश दे रहा है। शिक्षा सुना रहा है। इसने मेरा अपमान किया है। इस अपमान को मै सह नही सकता। बैया के घोसले को देखा और वह उछला। एक क्षण मे बैया के घर को तोडकर वृक्ष पर जा बैठा। अभिमानपूर्वक वह बोला—बैया ! तूने मेरी करतूत देखी ! मै कितना कला-कुशल और पराक्रमी बन्दर हू। मेरे सामने तेरी क्या शक्ति है ? बैया बेचारा [illegible] हुआ बोला—कुपात्र को कभी भी हितशिक्षा नही देनी चाहिए। यदि मै मौन रहता तो आज यह दुष्परिणाम क्यो भोगना पडता !

विवेकशील व्यक्ति पात्र-अपात्र को देखकर ही उपदेश देते है। अपात्र को दिया गया उपदेश [illegible] है। अतः योग्यायोग्य की परीक्षा अवश्य ही करनी चाहिए।

शिक्षा देना पात्र को, करके हृदय विचार।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, होगा अमित बिगाड ॥

मायाजाल

एक [illegible] लडका था। उसके पिता का देहान्त हो जाने के कारण वह अति स्वच्छन्द हो गया। बाल्य-अवस्था मे ही वह दुर्गुणो का दास बन गया था। जुआ खेलता था। शराब के नशे मे चूर रहता था। एक दिन उसे रुपयो की आवश्यकता थी। उसने सोचा कहा से लाऊ, चोरी करना जानता नही हू। आखिर उसके शैतानी मस्तिष्क ने एक रास्ता खोज निकाला—किसी एक-दूसरे गाव मे एक बुड्ढे को औरत की जरूरत थी। वह लडका वहा जा पहुचा। बुड्ढे से बाते करने लगा। उसने कहा—सेठ साहब ! औरत बिना घर बरबाद हो जाता है।

श्मशान जैसी वीरानगी रहती है। आपकी यदि इच्छा हो तो पन्द्रह सौ रुपया दो, मैं अपनी विधवा बहन का नाता आपके साथ कर दूगा।

बुड्ढे के पास धन बहुत था। वह बोला—तुम जो कहते हो सब स्वीकार है। लडका घर पहुचा। मां के साथ मीठी-मीठी बात बनाता हुआ बोला—मा ! चलो कुछ दिन के लिए तुम्हे मौसी के यहा छोड आऊ। मा ने पुत्र का कहना मान लिया। ऊट पर चढाकर वह कोसो दूर उस गाव मे अपनी मा को ले गया। उस बुड्ढे के घर जाकर उसने उसे उतार दिया और पन्द्रह सौ रुपये गिनने लगा। उसकी मा ने सोचा, यहा कहा ले आया। सन्देह उत्पन्न हुआ। जाच-पडताल करने से सही स्थिति का ज्ञान हुआ। उसने जोर से हल्ला मचाया। अडोसी-पडोसी अनेक लोग एकत्र हो गये। दोनो तरफ की जानकारी करने से सब लोग समझ गये कि दोनो ओर से धोखा हुआ है। वह मा ऐसा दुष्कृत्य करना नही चाहती थी। बडी कठिनता से वह उस मायाजाल से निकलकर घर पहुची। मन ही मन दु ख करने लगी— हाय ! ऐसा पुत्र

यह कलियुग की एक घटित घटना है। कुछ ही समय पहले अखबार मे इसका उल्लेख था। स्वार्थ-सिद्धि के लिए मानव मानवता को भूल जाता है और एक-दूसरे को धोखा देने के लिए क्रूर बन जाता है। किन्तु जब तक नैतिकता की लौ नही जलेगी, तब तक देश मे अधेरा ही अधेरा छाया रहेगा।

लोभी फसकर लोभ मे, करता मायाजाल।
मा को भी सुत ने दिया, धोखा अति विकराल॥

आत्म-स्वरूप का ज्ञान

एक गर्भवती सिहनी थी। वह अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए शिकार की खोज मे जगल मे इधर-उधर भटक रही थी। उसने दूर से भेडो के एक झुण्ड को चरते देखा। उन पर आक्रमण किया। ज्यू ही छलाग मारी त्यो ही उसके प्राण पखेरु उड गये। मातृविहीन बच्चे का जन्म हुआ। भेडे उस बच्चे की सार-सभाल मे जुट गयी। भेडो के बच्चो के साथ वह सिह-शिशु बडा होने लगा। हर क्रिया भेडो की भाति करने लगा। घास-पात खाकर रहने लगा। भेडो से 'मैं-मैं' करना भी सीख लिया। कुछ ही समय पश्चात् वह एक बलिष्ठ सिंह जैसा बलवान बन गया, फिर भी वह अपने आपको भेड ही समझता था और उन सब मे ही अपना जीवन यापन कर रहा था।

उसी जगल मे एक दिन एक सिह शिकार हेतु आ पहुचा। उसने उस भेड-सिह को देखा। आश्चर्य हुआ — भेडो के बीच यह सिह कहा से आ गया। उसे यह 'तू भेड नही, सिह है' समझाने के लिए ज्यो ही वह आगे बढा त्यो ही भेडो का झुण्ड दौडने लगा और साथ-साथ वह भेड-सिह भी। परन्तु उस सिह ने उस भेड-सिह को अपने यथार्थ स्वरूप का भान कराने के लिए प्रयास नही छोडा। वह सब कुछ देखता रहा कि यह भेड-सिह कहा रहता है, कहा सोता है, क्या करता है। एक दिन उसे अकेला देखकर वह छलाग मारकर उसके पास जा पहुचा और बोला—'अरे! तू भेडो के साथ रहकर अपने यथार्थ स्वरूप को कैसे भूल गया? तू भेड नही है, तू तो सिह है। इन भेडो के बीच रहकर अपने जीवन को क्यो नष्ट कर रहा है? भेड-सिह ने कहा—मैं तो भेड हू, सिह कैसे कहला सकता हू? मैं आपका कहना कभी भी मानने वाला नही हू, चाहे आप कितना भी प्रयत्न करे। यो कहकर वह भेडो की भाति मिमियाने लगा। कुछ ही देर बाद उस सिह ने भेड-सिह को उठाकर किसी तालाब के किनारे ले जाकर कहा, 'अब देख पानी मे, जैसा प्रतिबिम्ब मेरा पड रहा है वैसा ही प्रतिबिम्ब तेरा है। तेरा और मेरा आकार समान है। तू अपने असली रूप को भूल रहा है।' अब वह अपने प्रतिबिम्ब को देखने लगा। [illegible] आकार का सही आभास होते ही वह सिह की तरह गरजने लगा।

हर आत्मा मे अनन्त शक्ति है। उस शक्ति का दर्शन ही आत्म-दर्शन है। जब तक मानव उसका दर्शन नही कर पाता तब तक वह अपने आपको भेड-सिह की भाति कमजोर और निर्बल समझता है। पर ज्यो ही उसे आत्म-रूप का ज्ञान हो जायेगा वह स्वानन्द मे रमण करने लग जायेगा।

जब तक आत्मा को नही, आत्म-रूप का भान।
तब तक वह पर-द्रव्य मे, करता रमण महान॥

श्रद्धा

सेठ [illegible]चन्द ने निजी नौकर गजेन्द्र से कहा—जाओ, बाजार से घी ले आओ। गजेन्द्र बोला—सेठ साहब! अभी मैं जा नही सकता, क्योकि चारो ओर अंधेरा छाया हुआ है। गलियो मे कही भी रोशनी की व्यवस्था नही है। मुझे अंधेरे से डर लगता है। सेठ बोला—तुम झूठा वहम कर रहे हो। तुम दिन मे इस रास्ते जाते हो, फिर डर कुछ भी नही है। बेचारा चला। सीढियो से ही वापस लौट आया। सेठ ने पूछा—क्या घी ले आया? उसका वही उत्तर था—मैं नहीं जा सकता, मुझे अंधेरे से डर लगता है।

सेठ ने फिर वही उपाय बताया। वह फिर चला और बीच मे से ही लौट आया। तीसरी बार फिर सेठ ने कहा—दुनिया मे हिम्मत की कीमत है। साहसी व्यक्ति हर कार्य मे सफल होता है। जाओ, घी ले जाओ। वह चला, सीढियो से नीचे उतरा और दो ही क्षणो मे घी से भरा बर्तन सेठ साहब के सामने रख दिया। सेठ ने पूछा—क्या घी ले आए ? राजेन्द्र बोला—हा, ले आया। सेठ ने सूघकर कहा—अरे मूर्ख ! घी कहा ? यह तो गधे का मूत्र है। राजेन्द्र बोला—मैं कहता हू आपको, यह घी ही है। आप इसे घी मानने मे क्यो सकोच कर रहे है ? सेठ बोला—जो घी नही, उसे मैं घी कैसे मान लू ? राजेन्द्र बोला—मुझे डर लगता है, तब मैं कैसे मान लू कि डर कुछ भी नही है ? आखिर सेठ ने सोचा—तर्क मे कुछ भी उपलब्धि नही है। श्रद्धा ही जीवन का सारभूत तत्त्व है।

हर क्षेत्र मे श्रद्धावान् ही सफल होता है। जब तक किसी एक के प्रति श्रद्धा नही टिकेगी, तर्क के प्रति तर्क और तर्क से तर्क करते रहोगे तो लक्ष्य से भटक जाओगे, मिलेगा कुछ भी नही।

नही कभी भी तर्क से, मिल सकता नवनीत।
श्रद्धा रखने से तुरत, मिलता तत्त्व पुनीत॥

मलाई की लड़ाई

एक किसान ने अपनी पत्नी से कहा—कल मुझे किसी गाव जाना है। घर का ध्यान रखना। वह बोली—किसलिए जाते हो ? क्या काम है ? किसान बोला—भैंस लाने के लिए जाता हू। वह बोली—आप अच्छी तरह जाइये, क्योकि परिवारवाले घर मे भैंस होने से कई तरह के लाभ हैं। पर एक बात मेरी माननी पडेगी। दूध की मलाई मैं अपनी मा को खिलाऊगी। किसान बोला—'यह कैसे हो सकता है ? भैंस लाऊ मैं और मलाई खाए तुम्हारी मा !' इस बात पर विवाद बढा। गाली-गलौज की नौबत भी आ गई। झगडा होने लगा। कोलाहल से मकान गूजने लगा। तनातनी और खीचातानी से वातावरण दूषित बन गया।

पडोसी आया। झगडे का कारण समझा। लाठी को घुमाकर घडे फोडने लगा। किसान झल्लाता हुआ बोला—अरे ! मेरे घर का नुकसान क्यो कर रहे हो ? ऐसे घडो को फोडने मे क्या लाभ है ? पडोसी बोला—तेरी भैंस ने मेरा बहुत नुकसान कर दिया, सारा खेत चर गई। किसान बोला क्यो ऐसी झूठी बातें बनाते हो ? मेरे घर भैंस है ही नही, फिर तुम्हारा खेत कैसे चर गई ? बिना नीव महल झुकाना चाहते हो ! पडोसी बोला—दूसरो को शिक्षा देना सरल है, अपने

अन्तर को टटोलना बडा मुश्किल है। जरा अपने आप को देखो, अभी भैंस ही नहीं है तो फिर मलाई की लडाई करना क्या बुद्धिमत्ता है?

पडोसी की बात सुनते ही किसान की आखे खुली। हृदय मे प्रकाश हुआ। विवेक जगा। अपने कृत कार्य मे लज्जित हुआ। लडाई शान्त हुई। घर मे प्रेम की गगा बहने लगी। प्रेम ही जीवन का शृगार है। स्वय की गलती का आभास होते ही किसी भी प्रकार का तनाव नही रहता। खीचातानी नही रहती। वैमनस्य दूर होते ही शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।

नही लडाई टिक सके, बिना सही बुनियाद।
'मुनि कन्हैया' नही टिके, बिना नीव प्रासाद॥

क्षमा वीरों का भूषण

[illegible] 'सुकरात' का नाम आज भी दुनिया मे सुप्रसिद्ध है। [illegible] चिन्तन मे इतना डूबे रहते थे कि उन्हे खान-पान आदि [illegible] था। घर पहुँचते-पहुँचते उन्हे देर हो ही जाती थी। उनकी [illegible] प्रतीक्षा मे थक जाती थी। जब वे आते तो उनकी [illegible], '[illegible] समय पर आ जाये तो भोजन आदि से समय पर निवृत हो जाते।' सुकरात कहते, 'अच्छा, मैं ध्यान रखूगा, समय पर आने का प्रयत्न करूगा।'

एक दिन की बात है, वे अपनी मित्र मण्डली के साथ चिन्तन-मनन मे इतने तल्लीन हो गये कि घर बहुत देरी से पहुचे। उनकी पत्नी कलहकारिणी थी। बात-बात पर झगडा करती थी। जब उसे गुस्सा आता तो वह विवेक-भ्रष्टा बन जाती थी। छोटे-बडे का उसे भान नही रहता था। सुकरात को देरी से आये देखकर उसकी आखो मे खून प्रवाहित हुआ। अधरपल्लवों मे कम्पन बढा। जोर-जोर से [illegible] लगी। खरी-खोटी सुनाने लगी। सुकरात मौन रहकर उसकी झिडकिया [illegible] खरी-खोटी सुनते रहे। भोजन करने के बाद उन्होने शान्त भाव से पत्नी [illegible] देखा। इससे उसका गुस्सा दुगुना हो गया, मानो तप्त तवे पर पानी डाला [illegible]। [illegible] अनर्गल शब्दो का प्रयोग करने लगी। कृत्य-अकृत्य का भान [illegible]।

सुकरात ने सोचा—इसका गुस्सा शान्त नही हो रहा है, अब यहा रहना उचित नही। घर से चले। ज्यो ही बाहर जाने लगे त्यो ही उनकी पत्नी [illegible]

और भी झल्लाई। मन का वेग वढने लगा। थरथराने लगी। अपने वश मे न रह सकी। झट उठी, रसोई के वाहर आयी। सफेदी करने के लिए घडे मे पडे हुए चूने के घोल को उन पर उडेल दिया। फिर भी सुकरात ने क्षमा को नही छोडा। उन पर तनिक भी गुस्सा नही किया। प्रत्युत शान्त-भाव से हसकर कहा—'मैंने सुना था, पहले वादल गरजते है और फिर वरसते है। तुम जिस समय गरज रही थी तव मैं सोच रहा था कि अव वरसोगी भी। खैर इतने मे ही काम वन गया। विजली तो नही गिरी।' सुकरात का यह रहस्य-भरा उत्तर सुनकर वह पानी-पानी हो गई, सुकरात के चरणो मे पड गई, गुस्सा शान्त हो गया और अपने दुष्कृत्य पर पछताने लगी।

क्षमा वीरो का भूषण है। क्षमावान के आगे दुश्मन भी झुक जाता है। अत हर व्यक्ति को अपने जीवन मे अधिक से अधिक क्षमाधर्म अपनाना चाहिए।

वीरो का भूषण क्षमा, क्षमा हृदय का हार।
क्षमावान के सामने, अनवत है ससार॥

सहिष्णुता का फल

स्वामी विवेकानन्दजी के रहन-महन मे वहुत सादगी थी। उनकी सीधी वेश-भूषा से किसी को पता नही लग सकता था कि ये विद्वान हैं। एक वार वे किसी यात्रा पर जा रहे थे। जिस रेल-डिब्बे मे वे वैठे थे, उसी मे दो अग्रेज भी थे। वे अग्रेज साधु-सतो से वडी घृणा करते थे। इसी कारण वे रास्ते भर साधुओ की निन्दा करते रहे। उन्होंने सोचा—यहा के साधु लोग पढे-लिखे नही होते हैं, वे अपनी भाषा को नही समझते है। दिल खोलकर कुत्सित शब्दो का प्रयोग करते रहे साधुओं के प्रति। खासकर वे वुराई कर रहे थे स्वामी विवेकानन्द की। आखिर उन दोनो को प्यास लग गई। अग्रेजी मे ही परस्पर वातचीत की। गला सूख रहा है। अगले स्टेशन पर पानी पीना है। स्वामीजी उन दोनो की वाते चुपचाप सुन रहे थे।

स्टेशन आया। गाडी रुकी। स्वामीजी दरवाजे पर खडे हुए। पानी पिलाने वाले आदमी को पुकारा। जव वह निकट पहुचा तो उन्होने अग्रेजो की ओर सकेत करते हुए कहा, 'इन्हे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ।' अग्रेजो ने जव ऐसा सद्व्यवहार देखा तो लज्जा से उनके सिर झुक गये। मन मे सोचा, यह व्यक्ति कौन है? इसके दिल मे तो वडी सहृदयता है। यह तो अग्रेजी भी जानता है। अपनी सव वातो को यह समझ रहा था, ऐसा प्रतीत होता है। कुछ ही समय

पश्चात् उन्हें यह भी पता लग गया कि यह स्वामी विवेकानन्दजी ही है। तब तो और भी अधिक शर्माये और उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे—ये महात्मा कितने उदार हैं। कितने सहनशील हैं। हमने इन्हें इतनी गालियां दी। पर ये बिलकुल भी तप्त नहीं हुए, नाराज नहीं हुए, प्रत्युत हमारे लिए पानी की व्यवस्था की। धन्य है इनकी सहिष्णुता और उदारता को। ऐसे महापुरुष ही विश्व का कल्याण करेंगे। दोनों ही व्यक्ति अपनी गलती पर बहुत पछताए।

अप्रिय वचन और गालियों को सुनकर जो गुस्सा नहीं करता है, वही मानव विश्व का ताज बन सकता है। गालियों को समभाव से सहन करने वाले के सामने दुश्मन भी मित्र बन जाता है।

सुन करके अप्रिय वचन, रखता जो समभाव।
[illegible] के उसका अन्य पर, पड़ता अमित प्रभाव॥

सहानुभूति

[illegible] था। मार्ग में नदी होने के कारण गांव वालों को [illegible] होती थी। आखिर सबने मिल-जुलकर श्रम-[illegible] बनाया। [illegible] ही सकरा था। उस पर से एक ही [illegible] था। [illegible] कि दो मनुष्य, एक पूर्व दिशा से [illegible] आ पहुंचे। दोनों पुल को पार करना चाहते [illegible] हुआ। बात ही बात में दोनों भिड़ गए। [illegible] था। न एक-दूसरे को मार्ग देने के लिए तैयार था। [illegible]। गाली गलौज की नौबत आ गई। वचनयुद्ध के बाद [illegible] हो गई। लड़ते-लड़ते कुछ ही क्षणों में दोनों पुल के नीचे गिर [illegible] के लिए आवाज लगा दी। नदी पर स्नान करने वाले लोगों [illegible] आवाज निकली 'हाय! मनुष्य-मनुष्य [illegible] नहीं देखता।'

[illegible] की बकरियां उसी पुल पर पहुंची। एक पूर्व दिशा से आ रही [illegible]। पुल के मध्य भाग में दोनों का मिलन हुआ। दोनों [illegible] थी। कुछ क्षणों तक दोनों एक-दूसरे के मुंह की तरफ [illegible] बकरी पुल पर अट बैठ गई। उसी [illegible] बहुत ही खुश हुई और [illegible] बढ़ गई। दोनों बकरियां पुल को पार [illegible]

अपने इच्छित स्थान पर पहुच गई। वहा पर स्नान करने वालो ने यह दृश्य भी देखा। सबके मुह से एक ही स्वर निकला कि पारस्परिक सहयोग के अभाव मे मनुष्यो ने तो अपना जीवन खो दिया और बकरियो (पशुओ) ने आपसी समझौते और सहयोग से निर्बाध गति से पुल को पार कर अपना स्थान प्राप्त कर लिया, धन्य है इनकी सहानुभूति को!

सहयोग और सहानुभूति सफलता का महामन्त्र है। इसमे टूटे दिल को जोडने की अगम्य शक्ति होती है। अत हर व्यक्ति को सहयोग और समझौते की भावना का विकास करना चाहिए।

आपस का सहयोग ही, सफल सफलता मन्त्र।
मित्रभाव बिन क्या कभी, चल सकता जन-तन्त्र ॥

धार्मिक कौन ?

विद्वद्जनो की सभा जुड रही थी। विभिन्न विषयो पर प्रश्नोत्तर हो रहे थे। नगर के गणमान्य व्यक्ति भी वहा उपस्थित थे। अचानक एक मानव नया रूप धारण करता हुआ वहा आ पहुचा। किसी गोष्ठी सदस्य ने उससे जिज्ञासा-भरी भाषा मे पूछा—बन्धुवर! तुम्हारे जीवन की विशेषता क्या है? वह बोला—हर व्यक्ति के जीवन मे कुछ न कुछ विशेषता अवश्य होती है। मेरे जीवन की विशेषता यह है कि मैं अपने धर्म को कभी भी नही छोडता। सभी विद्वानो ने उसे आश्चर्य भरी दृष्टि से निहारा। सभी के कान उसकी बात सुनने को उत्कधर हो रहे थे। वह बोला—मैंने जरूरत पडने पर शराब पी ली, जुआ खेल लिया, पर धर्म को नही छोडा। भूख की समस्या बडी जटिल होती है। क्षुधातुर को सब कुछ करना पडता है। जीवन-निर्वाह हेतु कभी-कभी चोरी भी करता हू। डाका भी डाल देता हू। किन्तु धर्म को नही छोडा।

मन की दुर्बलता हर आदमी मे होती है। युवावस्था मे इन्द्रिया अन्धी बन जाती है। काम-वासना की ओर मन-वानर दौडता रहता है। इन्द्रिय-अधीन बन-कर वेश्यागमन भी कर लेता हू, पर मैंने धर्म नही छोडा। प्रतिकूल अवस्था मे क्रोध भी कर लेता हू। कभी-कभी तो पारा इतना गरम हो जाता है कि क्रोधान्ध बनकर मैंने खून भी कर डाला, पर धर्म नही छोडा। वह आख मूदकर स्वप्रशसा के गीत गाता चला गया। किसी एक सदस्य से रहा नही गया तो उसने सादर पूछा—महाशय! आपका कथन विचित्र-सा लगा, बताइये तो सही, आपका धर्म क्या है?

वह अपनी गर्व की भाषा मे बोल पडा—'मैंने अछूत के हाथ का नही खाया।

अनेक विपत्तियो का सामना करना पडा, फिर भी मैंने अपने इस धर्म पर अटल रहा।'

ऐसे धार्मिको से समाज का कभी भी कल्याण नही हो सकता। धार्मिक कहलाना जितना सरल है उतना ही धर्म को आचार और व्यवहार मे लाना कठिनतम माना जाता है। सच्चा धार्मिक वही है जिसका आचार पवित्र हो।

सच्चा धार्मिक है वही, जिसका हृदय पवित्र।
'मुनि कन्हैया' मानता, दुश्मन को भी मित्र ॥

अभय कौन ?

[illegible] चूहे ने [illegible] करके शकर से वरदान मागा कि हे प्रभो! मुझे रात-दिन [illegible] भय [illegible] है। मैं सुख से नींद नही ले सकता। न सुख से खाना ही खा [illegible]। [illegible] मुझे [illegible] बना दीजिए। शकर ने वैसा ही किया। बिल्ली [illegible] उसे कुत्ते का भय सताने लगा। इसी दुविधा को लेकर वह [illegible] और बोला—मैं तो कुत्ते के भय से आक्रान्त हू। हृदय हरदम [illegible] न जाने। अत कृपा करके आप मुझे चीता [illegible] थे। अत उसकी बात कैसे टाल सकते थे! [illegible] हर समय उसे अरण्य के स्वामी [illegible] बहने लगा। दौडा-दौडा [illegible] और [illegible] आकर बोला—देव! क्या करू, [illegible] नही है। कही सिंह आकर मुझे कुचल न दे। [illegible] है। शकर ने [illegible] और सिंह से [illegible]।

[illegible]—क्या? अब तो कोई डर नहीं [illegible] है? [illegible]—देव! मैंने तो सोचा था कि मनुष्य [illegible] नहीं। किसी का भय सताएगा ही नही। [illegible] नही है। [illegible] मन [illegible] नही है। हरदम मैं चिन्तित [illegible] है। मनुष्य [illegible] मेरी समस्या [illegible] है। मैं चाहता हू कि मुझे [illegible] जाए। शकर [illegible]।

[illegible] मुख शान्ति [illegible]

संसार नही है। अत अभय की साधना का विकास परम आवश्यक है।

मृत्यु-विजेता बन सके, जग मे अभय महान।
अभय बने बिन क्या कभी, मिल सकता निर्वाण॥ ७

सच्चा मित्र कौन ?

एक सेठ था। उसके तीन मित्र थे। पहले मित्र का नाम 'नित्य-मित्र', दूसरे मित्र का नाम 'पर्व-मित्र' और तीसरे का नाम 'नमस्कार-मित्र' था। नित्य-मित्र प्रतिदिन सेठ के घर आता-जाता था। सेठ उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। सहयोग देता था। खान-पान भी साथ चलता था। गुप्त से गुप्त बात के लिए भी कोई पर्दा नही था। पर्व-मित्र विशेष पर्वों के दिन सेठ से मिलने आता। भोजन कर वापस चला जाता। नमस्कार-मित्र जब कभी मार्ग मे मुलाकात हो जाती तो सेठजी से नमस्कार कर लेता था। एक समय का किस्सा है, सेठ पर राजा क्रुद्ध हो हो गया। उसने देश से निकल जाने का आदेश दे दिया। सेठ ने सोचा, इस विषम स्थिति मे मेरा रक्षक और कोई भी नही हो सकता, हो सकता है तो मेरा 'नित्य-मित्र'। वहा जाऊ। अवश्य ही मुझे वहा छिपने के लिए स्थान मिल जायेगा।

सेठ आशाभरी दृष्टि से नित्य-मित्र के घर जा पहुचा और आत्मव्यथा सुनाते हुए उसने कहा—मैं तुझे अपना उत्कृष्टतम साथी समझता हू, तू मुझे शरण दे। नित्य-मित्र ने कहा—तू राजा द्वारा अपराधी घोषित हो चुका है, ऐसी स्थिति मे मैं तुझे आश्रय नही दे सकता। इस उत्तर से उसके दु ख का पार नही रहा। लज्जित होकर वहा से चल पडा। पर्व-मित्र के पास पहुचा। उसे अपनी कहानी सुनाई। आश्रय के लिए याचना की। किन्तु उसके द्वारा भी न उसे सहयोग मिला, न सहानुभूति के कोई शब्द ही निकले। सेठ की आशा निराशा मे परिणत हो गई। आकृति पर उदासी छा गई। सकल्प-विकल्पो का जाल बुनता हुआ चला जा रहा था, मार्ग मे अचानक नमस्कार मित्र का मिलन हो गया। उसने सेठ को उदासीन देखकर कहा, 'बन्धुवर! आज ऐसी कौन-सी चिन्ता सता रही है? इतने खिन्न क्यो बन रहे हो?' सेठ ने प्रारम्भ से अन्त तक अपनी दु खभरी कहानी सुनाते हुए कहा—'अब मैं तेरी शरण मे हू।' नमस्कार मित्र बोला, 'घबराने की जरूरत नही है, धीरज रखो, घर चलो।' मित्र के ऐसे ढाढसपूर्ण शब्द सुनकर सेठ बहुत खुश हुआ। आखिर सेठ मित्र के घर चला गया। सेठ की आत्मकथा पुन सुनी और उसका समाधान भी नमस्कार-मित्र ने ढूढ निकाला जिससे सेठ सुखी बन गया।

अनेक विपत्तियो का सामना करना पडा, फिर भी मैंने अपने इस धर्म पर अटल रहा।'

ऐसे धार्मिको से समाज का कभी भी कल्याण नही हो सकता। धार्मिक कहलाना जितना सरल है उतना ही धर्म को आचार और व्यवहार मे लाना कठिनतम माना जाता है। सच्चा धार्मिक वही है जिसका आचार पवित्र हो।

सच्चा धार्मिक है वही, जिसका हृदय पवित्र।
'मुनि कन्हैया' मानता, दुश्मन को भी मित्र ॥

अभय कौन ?

एक चूहे ने तपस्या करके शकर से वरदान मागा कि हे प्रभो! मुझे रात-दिन विल्ली का भय रहता है। मैं सुख से नीद नही ले सकता। न सुख से खाना ही खा सकता हू। अत आप मुझे विल्ली वना दीजिए। शकर ने वैसा ही किया। विल्ली वन जाने के वाद अव उसे कुत्ते का भय सताने लगा। इसी दुविधा को लेकर वह शकर के पास गया और वोला—मैं तो कुत्ते के भय से आक्रान्त हू। हृदय हरदम कापता रहता है कि कही कुत्ता निगल न जाये। अत कृपा करके आप मुझे चीता वना दीजिए। शकरजी उस पर सन्तुष्ट थे। अत उसकी वात कैसे टाल सकते थे! वह चीता वन गया। अव भी वह अभय कहा था। हर समय उसे अरण्य के स्वामी सिंह का भय कुरेदने लगा। मन मे अशान्ति का स्रोत वहने लगा। दौडा-दौडा फिर शकर की छत्रछाया मे पहुचा और हाथ जोडकर वोला—देव! क्या करू, मन मे स्वस्थता नही है, शान्ति नही है। कही सिंह आकर मुझे कुचल न दे। क्योंकि वह मेरे से वलिष्ठ है। शकर ने उसे चीते से सिंह और सिंह से आखिर मनुष्य वना दिया।

शकर ने उससे एक दिन पूछा—क्यो? अव तो कोई डर नही सता रहा हे? सर्वश्रेष्ठ योनि मे पहुच गया। उसने कहा—देव! मैंने तो सोचा था कि मनुष्य होने के वाद कोई समस्या रहेगी ही नही। किसी का भय सतायेगा ही नही। किन्तु यह वात नही है। अव भी मेरे मन मे समाधि नही है। हरदम मैं चिंतित रहता हू। मौत का डर आज भी सता रहा है। मनुष्य होने पर भी मेरी समस्या सुलझ नही पायी है। मैं चाहता हू कि मुझे फिर चूहा वना दिया जाये। शकर ने वर दिया और चूहा अपने मूल रूप मे आ गया।

मृत्यु-विजेता ही अभय वनता है। अभय वने विना जीवन मे सुख शान्ति का

सच्चा नही है। अत अभय की साधना का विकास परम आवश्यक है।

मृत्यु-विजेता बन सके, जग मे अभय महान।
अभय बने बिन क्या कभी, मिल सकता निर्वाण॥ ७

सच्चा मित्र कौन ?

एक सेठ था। उसके तीन मित्र थे। पहले मित्र का नाम 'नित्य-मित्र', दूसरे मित्र का नाम 'पर्व-मित्र' और तीसरे का नाम 'नमस्कार-मित्र' था। नित्य-मित्र प्रतिदिन सेठ के घर आता-जाता था। सेठ उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। सहयोग देता था। खान-पान भी साथ चलता था। गुप्त से गुप्त बात के लिए भी कोई पर्दा नही था। पर्व-मित्र विशेष पर्वो के दिन सेठ से मिलने आता। भोजन कर वापस चला जाता। नमस्कार-मित्र जब कभी मार्ग मे मुलाकात हो जाती तो सेठजी से नमस्कार कर लेता था। एक समय का किस्सा है, सेठ पर राजा क्रुद्ध हो हो गया। उसने देश से निकल जाने का आदेश दे दिया। सेठ ने सोचा, इस विषम स्थिति मे मेरा रक्षक और कोई भी नही हो सकता, हो सकता है तो मेरा 'नित्य-मित्र'। वहा जाऊ। अवश्य ही मुझे वहा छिपने के लिए स्थान मिल जायेगा।

सेठ आशाभरी दृष्टि से नित्य-मित्र के घर जा पहुचा और आत्मव्यथा सुनाते हुए उसने कहा—मैं तुझे अपना उत्कृष्टतम साथी समझता हू, तू मुझे शरण दे। नित्य-मित्र ने कहा—तू राजा द्वारा अपराधी घोषित हो चुका है, ऐसी स्थिति मे मैं तुझे आश्रय नही दे सकता। इस उत्तर से उसके दु ख का पार नही रहा। लज्जित होकर वहा से चल पडा। पर्व-मित्र के पास पहुचा। उसे अपनी कहानी सुनाई। आश्रय के लिए याचना की। किन्तु उसके द्वारा भी न उसे सहयोग मिला, न सहानुभूति के कोई शब्द ही निकले। सेठ की आशा निराशा मे परिणत हो गई। आकृति पर उदासी छा गई। सकल्प-विकल्पो का जाल बुनता हुआ चला जा रहा था, मार्ग मे अचानक नमस्कार मित्र का मिलन हो गया। उसने सेठ को उदासीन देखकर कहा, 'बन्धुवर! आज ऐसी कौन-सी चिन्ता सता रही है? इतने खिन्न क्यो बन रहे हो?' सेठ ने प्रारम्भ से अन्त तक अपनी दु खभरी कहानी सुनाते हुए कहा—'अब मैं तेरी शरण मे हू।' नमस्कार मित्र बोला, 'घबराने की जरूरत नही है, धीरज रखो, घर चलो।' मित्र के ऐसे ढाढसपूर्ण शब्द सुनकर सेठ बहुत खुश हुआ। आखिर सेठ मित्र के घर चला गया। सेठ की आत्मकथा पुन सुनी और उसका समाधान भी नमस्कार-मित्र ने ढूढ निकाला जिससे सेठ सुखी बन गया।

सन्त पुरुषो ने इस शरीर को नित्य-मित्र, परिवार को पर्व-मित्र और धर्म को नमस्कार-मित्र कहा है। दु ख मे सच्चा सहयोगी धर्म ही है। अत हर व्यक्ति को धर्म—नमस्कार-मित्र पर ही विश्वास रखना चाहिए, यही सच्चा मित्र है।

जिनवरभाषित धर्म को, समझो सच्चा मित्र।
'मुनि कन्हैया' धर्म से, मिलता स्थान पवित्र ॥

सच्चा ज्ञान

चार मूर्ख मित्र थे। आपस मे अच्छा प्रेम था। लकडिया वेच-वेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। एक दिन लकडिया बीनने के लिए चारो सघन जगल मे जा पहुचे। सूर्य की प्रखर किरणो से धरातल तप्त हो रहा था। चारो के शरीर से पसीना टपक रहा था। भूख और तृषा से व्याकुल हो रहे थे। लडकिया इकट्ठी करने की चिन्ता भी सता रही थी। चारो ने आपस मे सलाह करके एक को खाना वनाने का काम सौपा और तीनो लकडिया बीनने के लिए चल पडे। जाते समय तीनो ने अपने साथी को सूचित कर दिया था कि भोजन बनाने के लिए आग की आवश्यकता पडेगी, इसलिए अरणी की लकडी पडी है, इसमे से निकाल लेना।

पीछे रहा लकडहारा खाना बनाने के लिए बैठा। आग के लिए अरणी को ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह देख लिया, पर आग नही मिली। फिर उसने सोच-विचारकर उसके दो टुकडे कर डाले, किन्तु आग नही जली। गुस्से मे आकर लकडी के टुकडे-टुकडे कर डाले, फिर भी आग न निकली। आग के अभाव मे खाना वन ही नही सकता था। वह बहुत परेशान हुआ। साथियो की प्रतीक्षा करते-करते वह लेट गया। नीद आ गई। इधर तीनो लकडहारे चार गट्ठर लेकर वहा पहुचे। साथी को ऊघते हुए देखा तो वे तीनो आग-बबूला हो उठे। साथी को जगाकर आक्रोश-भरी भाषा मे बोले—क्या अभी तक खाना बनाया ही नही ?

वह साथी बोला—आप लोग मुझे कैसी लकडी दे गये, मैंने तो लकडी को ऊपर से नीचे तक देख लिया, टुकडे-टुकडे कर दिये, फिर भी मुझे आग नही मिली। आग के अभाव मे खाना कैसे बनाया जाये ? तीनो साथी बोले—लकडी काट डालने से आग नही निकलती। लकडी से आग निकालने का भी सच्चा ज्ञान चाहिए। उन्होने अरणी को रगडकर आग पैदा कर ली। खाना बनाया। भूख को शान्त कर अपने गाव जा पहुचे।

ज्ञान के अभाव मे मानव भटक जाता है, इसीलिए भगवान् महावीर ने

कहा—'पढम नाण तओ दया'—पहले ज्ञान, पीछे दया। अत हर व्यक्ति सम्यक्-ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

सही ज्ञान बिन मनुज का, पूर्ण न होता लक्ष।
'मुनि कन्हैया' है सुखद, जिन-वाणी प्रत्यक्ष ॥

राजा और बन्दर

एक शिक्षक था। वह बन्दरो को प्रशिक्षण देने मे बडा निपुण था। बन्दरो को पढाकर बेचना उसने अपना व्यवसाय बना रखा था। एक दिन वह राज-सभा मे पहुचा। साथ मे एक बन्दर था। राजा ने पूछा—क्या यह बन्दर प्रशिक्षित है? वह बोला—हा, इसे प्रशिक्षण देते पाच वर्ष हो गये। प्रत्येक कला मे यह दक्ष है। राजा ने उस बन्दर की कुछ परीक्षा ली। आखिर उसके प्रशिक्षण से राजा बहुत प्रभावित हुआ। उनने उसको खरीद लिया। राजा कही भी जाता है तो बन्दर को वह हर समय साथ रखता है। कभी-कभी उसके साथ मनोरजन भी कर लेता है। कुछ ही वर्षो मे राजा और बन्दर मे परस्पर आत्मीयता हो गई। वे एक दूसरे के लिए प्राण देने को तैयार रहते थे। वह बन्दर तन-मन से राजा की परिचर्या भी करता था। उससे राजा को यह विश्वास हो गया कि यह वास्तव मे स्यामखोर है।

एक दिन राजा सो रहा था। बन्दर हाथ मे नगी तलवार लेकर राजा की सुरक्षा मे बैठा पहरा दे रहा था। राजा के गले पर मक्खी बैठ गई। बन्दर ने उसे भगाने के लिए काफी प्रयत्न किया, पर मक्खी नही उडी, जिससे बन्दर ने क्रोध मे आकर मक्खी को उडाने के लिए उस पर तलवार चला दी। राजा के प्राण-पखेरु उड गये।

बन्दर प्रशिक्षित अवश्य था। किन्तु उसमे मनन व चिन्तन नही था। जिसका दुष्परिणाम राजा को भोगना ही पडा। प्रशिक्षण के साथ-साथ चिन्तन-मनन व अनुभव की परम अपेक्षा है। अनुभव के अभाव मे शिक्षा व विद्या भी घातक सिद्ध होती है।

विद्या भी अनुभव बिना, बने विनाशक हेतु।
है अनुभव सबमे बडा, दुखसागर मे सेतु॥

पुरुषार्थ

एक चोर किसी के घर चोरी करने गया। घर के सदस्यगण सब निद्रित अवस्था मे थे। किन्तु चोर ज्यो ही दरवाजो को तोडने लगा, घर वाले जाग गये। हल्ला किया। अडोसी-पडोसी भी सब जाग गये। चोर भागा। उसे पकडने के लिए पीछे-पीछे लोग भी दौडे। पुलिस ने भी उसका पीछा किया। वह चोर दौडता-दौडता थक गया। सोचा—अब तो किसी मकान मे छिपना ही अच्छा होगा। आगे जाते-जाते जगल मे एक देवी का मन्दिर आया। वह उस मन्दिर मे चला गया। आस-पास के क्षेत्र मे वह देवी-मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध था। सैकडो व्यक्ति उसकी उपासना के लिए दूर-दूर से आते थे। 'वहा जाकर कोई निराश नही लौटता'—ऐसा जन-जन मे विश्वास जम गया था। चोर भी अपनी मनोकामना को पूर्ण करने मन्दिर के प्रागण मे पहुचा। देवी को नमस्कार किया। हाथ जोडकर बडी विनम्रता से करुण स्वर में बोला—हे देवी! आज मै तेरी शरण मे आया हू। तू सबकी सरक्षिका है। मेरी भी रक्षा कर। उसकी करुण पुकार से देवी बहुत ही प्रसन्न हुई और बोली—बेटे! जब तुझे पकडने के लिए कोई आये तब तू जोर से हुकार कर देना, उससे सब डरकर भाग जायेगे।

चोर बोला—हे देवी मा! तेरा कहना बिलकुल ठीक है। किन्तु करू क्या, भय के कारण मेरा गला रुध गया है, इस स्थिति मे मै हुकार नही कर सकता।

देवी बोली—जो तुझे पकडने के लिए आये, उसके सामने आख उठाकर देखना, तेरी आखो की ज्योति के आगे कोई भी नही ठहर सकेगा और न तुझे कोई पकड ही सकेगा।

चोर बोला—देवी! डर के मारे मेरी आखे पथरा गई हैं, आखो पर जाला छा गया है। अत मैं आख उठाकर किसी को भी नही देख सकता।

देवी बोली—अच्छा, इतना तू कायर है तो कम से कम मन्दिर के किवाड बन्द कर लेना, फिर तुझे कोई भी नही पकड सकेगा।

चोर बोला—मातेश्वरी! मेरे पर तेरी बहुत कृपा है, पर मेरे हाथो मे तो बहुत शिथिलता आ रही है। डर के कारण ये इतने सठिया गये है, मैं किवाड बन्द नहीं कर सकता।

देवी ने विनोद-भरी भाषा मे कहा—रे आलसी! तू तो बिलकुल निष्क्रिय बन रहा है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति किसी भी क्षेत्र मे फलवान नही बन पाता। जा, मेरी प्रतिमा के पीछे तो छिप जा।

वह बोला—मा! दुःख-निवारक तू है, हृदय-प्रकाशक तू है। जन-जीवन-विनाशक तू है। पथ-प्रदर्शक तू है। किन्तु भय के कारण मेरे पैर स्तब्ध हो गये है,

मैं चल नही सकता।

देवी की आकृति पर क्रोध का आवरण छा गया। अधरावलि को कपाती हुई दुत्कार की भाषा मे उसने कहा—चला जा यहा से, ऐसे पुरुषार्थहीन, निर्वीर्य, निकम्मे व्यक्ति की सुरक्षा कभी नही हो सकती।

दुःख से छुटकारा पाने के लिए पुरुषार्थ की परम आवश्यकता है। 'उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः'—उद्यम से प्रत्येक कार्य सिद्ध हो सकता है।

पुरुषार्थी नर कर सके, कठिन कठिनतम काम।
नही आलसी पा सके, अपना लक्ष्य ललाम॥

अपना दोष

एक महाजन था। उनके घी और तम्बाकू का बहुत बडा व्यवसाय था। वह अपने व्यापार मे कभी भी अनीति नही करता था। सरल-स्वभावी व मधुरभाषी होने के कारण वह आस-पास के क्षेत्र मे जनप्रिय था। उसके एक भोला-भाला लडका था। सेठ को एक दिन किसी कार्यवश बाहर जाना था, किन्तु मन मे चिन्ता थी कि दुकान पर कौन बैठेगा। लडके ने कहा—पिताजी! चिन्ता करने की जरूरत नही है, दुकान को मै सम्भाल लूगा। आप मुझे वस्तुओ के भाव बता दे।

पिता ने कहा—पुत्र! अपनी दुकान पर घी और तम्वाकू दो ही चीज है। दोनो के एक भाव है। पर एक बात विशेष याद रखना, जब तक खुले हुए टीन खत्म न हो जाये, दूसरे टीन मत खोलना। पुत्र को शिक्षा देकर पिता गाव चला गया। पुत्र दुकान पर आया। चारो तरफ नजर दौडाई। एक तरफ घी के टीन पडे थे और एक तरफ तम्वाकू के टीन। दोनो ओर एक-एक टीन आधे खाली थे। उसने सोचा—पिताजी कितने मूर्ख हैं, एक भाव की वस्तु के लिए दो टीन रोक रखे है। उसने घी का टीन उठाया और तम्वाकू वाले टीन मे उसे उडेल दिया। इतने मे घी का ग्राहक आया। उसने उसमे से घी दिखाया। ग्राहक ने कहा—घी मे तम्वाकू कैसे? हमे असली घी चाहिए। वह गुस्से मे आकर बोला—यह तो असली घी है, लेना हो तो लीजिए, वरना चले जाइये यहा से!

थोडी देर बाद तम्वाकू का ग्राहक आया और पूछा—सेठ साहब कहा है? वह बोला—सेठ की क्या आवश्यकता है, मैं बैठा हू उनका लडका। क्या चाहिए? ग्राहक बोला—तम्वाकू लेने आया हू। उसने उसी टीन मे से लाकर दिखा दी। ग्राहक ने कहा—मूर्ख! यह क्या तम्वाकू है? वह बोला—मूर्ख मैं क्यो, मूर्ख तुम

हो, लेना हो तो लो वरना आगे चलो। यहा अट-सट वोलने की जरूरत नही है। इस प्रकार अनेक ग्राहक आये। उनको वही दिखाया जाता था सव। खाली हाथ लौट गये। दूसरे दिन पिता आया। पुत्र से दुकान का हाल पूछा तो वह गरज पडा—पिताजी! आपने सव ग्राहको को विगाड रखा है। जो भी आता है मुझे मूर्ख व गधा कहता है। मैं आपका पुत्र मूर्ख क्यो? मूर्ख वे हैं। पिता ने कहा—पुत्र! तूने ग्राहको को माल अच्छी तरह नही दिखाया होगा। चलो दुकान पर चले।

पुत्र ने कहा—पिताजी! एक समझदारी तो आपकी भी मुझे अच्छी नही लगी। घी और तम्बाकू दोनो का एक भाव है, फिर भी आपने अलग-अलग टीन रोक रखे थे। मैंने उनको मिलाकर एक टीन खाली कर रख दिया। पिता ने हसते हुए लाडले वेटे से कहा—वेटे! जाओ, उस एक टीन को भी कूडा-खाना में डालकर खाली कर आओ और तुम अपना दोष देखो। वास्तव मे ग्राहक मूर्ख नही है, मूर्ख तुम हो।

जो व्यक्ति स्वय की त्रुटि को नही देखता है उसका कभी भी सुधार नही हो सकता। अत सब आत्मदोषदर्शी वने—इसी मे सवका भला है।

अपनी त्रुटि का है नही, जिसे ज्ञान तिल मात्र।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, बने नही गुण-पात्र॥

असत्य निर्णय

राजा वसु सत्यवादी था। जहा भी जाता वहा उसे अपूर्व सम्मान मिलता था। यहा तक कहा जाता है कि सत्य के प्रभाव से उसका सिंहासन आकाश मे अधर रहता था। किसी मे परस्पर विवाद हो जाता तो राजा वसु से न्याय कराया जाता था। एक वार ब्राह्मणो व नारद मे किसी विषय को लेकर विवाद छिड गया। न्याय कराने के लिए राजा वसु के पास आये। ब्राह्मणो ने कहा—'राजन्! *'अजैर्यष्टव्य'*—इस वेद-वाक्य के आधार से हमारा कहना है कि यज्ञ मे वकरो की वलि दी जानी चाहिए।' नारदजी वोले—राजन्! इस उक्ति का यह अर्थ नितान्त गलत है। इसका सही अर्थ है कि 'न जायन्ते इति अजा व्रीहय', अर्थात् स्वत निष्पन्न धान्य की ही यज्ञ मे आहुति दी जानी चाहिए। आप सत्यवादी है, जो निर्णय दे दें, वही मान्य और वही सत्य होगा।

राजा वसु ने दोनो पक्षो की वात सुनी, जो कि तर्क वल से अपने-अपने अभि-मत की पुष्टि कर रहे थे। राजा वसु ने सोचा—नारदजी का पक्ष सत्य है और

ब्राह्मणो का असत्य। किन्तु ऐसा निर्णय देने से मेरे कौटुम्बिक ब्राह्मण नाराज हो जायेगे, इसी पारिवारिक मोह और आग्रह ने उसे सत्य से विचलित कर दिया। जीवन मे उसने कभी भी सत्य का परित्याग नही किया था, किन्तु इस अवसर पर अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—ब्राह्मणो का कथन सत्य है और नारदजी का असत्य। ब्राह्मणो की खुशी का पार न रहा। बासो उछलने लगे। अपने विजय पर अकडते हुए नारदजी की हार पर खिलखिलाने लगे। नारदजी को यह बुरा लगा, किन्तु करते क्या? झूठ की कभी जय नही होती और सत्य की पराजय नही होती। वसु के उस असत्य निर्णय का साक्षात् फल मिलना ही था, उसका आकाश मे अधर रहने वाला सिहासन डोल उठा और धडाम से नीचे आ गिरा। इससे राजा वसु को बडा दु ख हुआ और वह मन ही मन पछताने लगा—हाय! असत्य निर्णय नही देता तो···

सत्य विजय है। असत्य पराजय है। सत्य मे शक्ति है। असत्य मे कमजोरी है। किसी भी स्थिति मे सत्य को नही छोडना चाहिए।

सुनकर वसु भूपाल का, निर्णय सर्व असत्य।
अधर रहा ना गगन मे, सिहासन यह तथ्य॥

श्रद्धा से लाभ

एक योगी वन मे साधना करता था। अचानक वहा नारदजी पहुच गये। योगी ने पूछा—हे नारद ऋषि! आप कहा जा रहे हैं? नारद ने कहा—मैं ब्रह्माजी के पास जा रहा हू। योगी ने कहा—'मुझे मुक्ति कब मिलेगी, मेरे इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्माजी से अवश्य लेकर पधारे।'

नारदजी आगे चले। मार्ग मे फिर एक योगी मिला। उसने भी वही प्रश्न नारदजी के सामने रखा—'मुझे मुक्ति कब मिलेगी, इसका उत्तर चाहिए।' दोनो के प्रश्न लेकर नारदजी ब्रह्माजी के पास पहुचे। वदन-नमस्कार किया। दोनो हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी से उन दोनो का उत्तर लेकर नारदजी चले। वे पहले योगी के पास पहुचे। बोले—योगिन्! ब्रह्माजी ने आपके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि दस हजार वर्षो पश्चात् आपको मोक्ष मिलेगा।

यह सुनते ही वह योगी विचलित हो गया। इतने वर्ष हो गये साधना करते-करते, अभी तक कुछ भी लाभ नही मिला। क्या सार है साधना मे? कितने कष्ट सहे! कष्ट सहते-सहते थक गया। ऐसे सोचकर वह अपने घर चला गया।

दूसरे योगी के पास नारदजी पहुचे और बोले—योगिन् ! आप जिस वट-वृक्ष के नीचे साधना कर रहे है, उस वृक्ष के जितने पत्ते हैं, उतने ही वर्षों के बाद आपको मोक्ष मिलेगा। यह सुनते ही वह योगी अवाक् रह गया। फिर भी उसने साधना नही छोडी। स्थिर रहा। घबराया नही। श्रद्धा मे साधना करते-करते मोक्ष पहुच गया।

जो व्यक्ति श्रद्धा से साधना करता है उसकी साधना अवश्य ही फलित होती है। जो विचलित हो जाता है, साधना मे श्रद्धा नही रखता है, वह मानव उस योगी की तरह ससार मे भटकता रहता है। वास्तव मे श्रद्धा से ही लाभ मिलता है।

उस योगी को झट मिला, श्रद्धा से शुभ लाभ।
'मुनि कन्हैया' जगत मे, श्रद्धा से ही आब ॥

परिग्रह पाप का मूल

दो भाई थे। आपस मे अच्छा प्रेम था। परस्पर चिन्तन चला। यहा किसी भी प्रकार का व्यापार नही है इसलिए दोनो ही परदेश चले गये। कपडे का व्यापार किया। कुछ ही समय मे लाख रुपये कमा लिये। घर की याद आते ही दोनो अपने गाव की ओर रवाना हो गये। चलते-चलते मार्ग मे बडे भाई का मन बिगड गया। उसने सोचा, मेरे हिस्से मे धन आधा आयेगा। छोटे भाई को मार दू तो सारा धन मेरे पास रह जायेगा।

इधर छोटे भाई के दिल मे भी विकृति उत्पन्न हो गई—यदि मैं बडे भाई का कत्ल कर दूं तो लाख रुपयो का मालिक मै ही बन जाऊगा। क्या है, कौन देखता है ? मार दू बडे भाई को। तैयारी कर ही रहा था। इतने मे उसके विचारो ने मोड खाया। सद्बुद्धि का अभिसचार हुआ। धन के लिए भाई की हत्या करू ? धिक्कार है मेरे जीवन को ! यह परिग्रह पाप का मूल है। परिग्रह को रखने मे लाभ नही है। बडा भाई सो रहा था। छोटे भाई ने रुपयो की झोली पानी मे बहा दी।

रुपयो की आवाज होते ही वह चौककर उठा और बोला—अरे भैया ! अभी यह शब्द किसका हुआ ?

छोटे भाई ने विनम्र शब्दो मे कहा—भाई साहब ! क्या कहू ? बात कहने जैसी नही है। यह धन अनर्थ का मूल है। इस धन के लिए मैं आपकी हत्या करने

के लिए तैयार हो गया, किन्तु आखिर सद्बुद्धि जागृत होते ही मैंने धन की झोली नदी मे बहा दी। बडे भाई ने कहा—बहुत अच्छा किया। मेरे मन मे भी ऐसी निकृष्ट विचारधारा उत्पन्न हुई थी कि मैं छोटे भाई को मार दू। भैया! अब कभी भी अपने को धन का सग्रह नही करना है। दोनो भाई अपने-अपने घर पहुचे और प्रेम से रहने लगे।

गिरकर लालच गर्त मे, हुआ बन्धु विकराल।
ज्येष्ठ बन्धु को मार दू, उमडे हृदय विचार॥

तब मैं खुदा के साथ

सन्त खैयाम अपने शिष्य के साथ वन मे जा रहे थे। नमाज का समय हुआ। झरने के पानी से वजू करके दोनो ने चद्दर बिछाई। नमाज का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। इतने मे तर्जारव करता हुआ अचानक एक सिह दूर से दिखाई दिया। उसे देखकर शिष्य भयभीत होने लगा, वह दौडकर वृक्ष पर चढ गया। ज्यो-ज्यो सिह नजदीक आता गया, शिष्य के मन मे घबराहट बढती गयी। शरीर थर-थर कापने लगा। सिह आया और चला गया। सन्त खैयाम नमाज मे इतने लीन हो रहे थे कि उन्होने सिह की ओर देखा तक नही। सिह ने भी उन्हे नही देखा। शिष्य वापस वृक्ष से नीचे उतरा। नमाज पढी। नमाज सम्पूर्ण होते ही चद्दर उठाकर वे आगे जाने लगे।

अचानक एक मच्छर सन्त खैयाम की नाक पर आ बैठा, उसने काटा। सन्त चीख उठे। वे उस वेदना को सहन नही कर सके। शिष्य बोला—सतवर! यह क्या? सिह पास मे से चला गया, तब तो आपने नजर उठाकर देखा तक नही और इस तुच्छ मच्छर ने थोडा-सा काटा तो इस वेदना को सहन नही कर सके, चीख उठे। यह अन्तर क्यो?

सन्त खैयाम ने बहुत ही गहरा उत्तर देते हुए कहा—शिष्य! उस समय मैं खुदा के साथ था और इस समय मनुष्य के साथ हू।

बाह्य रमण को छोडकर, रहो खुदा के साथ।
'मुनि कन्हैया' लीनता, फलती हाथोंहाथ॥

बिल पेमेंट करो

एक महिला थी। डॉक्टर की कोठी पर पहुची। वह बोली—"डॉक्टर साहब ! मेरे पतिदेव का दिमाग खराव हो गया है। हरदम बकवास करते रहते है कि 'बिल पेमेट करो', 'बिल पेमेट करो'। बस, इसी दिमागी रोग से सग्रस्त है। इलाज प्रारम्भ कर दीजिये। यह लीजिए एडवास के रूप मे तीन सौ रुपये। आपकी इच्छा हो तो घर चलिये, अन्यथा यहा ले आऊ आपकी मोटर मे।" डाक्टर साहब की नजर तो नाटो पर थी। वह बोला—"हा, मोटर ले जाइए। रोगी को यही पर ले आइये।"

वह महिला वहा से चली और जौहरी बाजार मे पहुची। किसी जौहरी के दुकान पर वह पहुची और सोलह हजार के मोती खरीदकर उसने सेठजी से कहा—"ये लीजिए तीन हजार रुपये नकद। बाकी तेरह हजार का बिल बना दीजिए और मेरे साथ आप अपने मुनीम को भेज दीजिए। मेरे पतिदेव से बिल पेमेट करा लेंगे।" सेठ साहब की नजर उन तीन हजार के नोटों पर थी। आदेश मिलते ही मुनीम उस औरत का बिल लेकर रवाना हो गया। उसने कहा—मेरे पतिदेव बहुत बडे डाक्टर हैं। उनके सामने और कुछ भी मत कहना, बस केवल इतना ही कहते रहना—बिल पेमेंट करो, बिल पेमेंट करो। आपका काम हो जायेगा।

मोटर डाक्टर साहब की कोठी पर पहुची। अगुली से इशारा करते हुए उसने कहा—वे बैठे हैं डॉक्टर साहब मेरे पतिदेव, उनसे बिल पेमेट करवा लेना, मैं उन्हे सचेत करते हुए जाऊगी। बडी द्रुतगति से वह डॉक्टर के पास पहुची और बोली—डॉक्टर साहब ! मेरे पतिदेव आ रहे है। आप इलाज प्रारम्भ करे। डॉक्टर साहब तो नोटो के नशे मे चूर थे। वह महिला वहा से चली, मोटर मे बैठकर नो-दो-ग्यारह हो गई।

वह मुनीम वहा पहुचते ही जोर मे बोला—बिल पेमेंट करो। डॉक्टर साहब ने कहा—आप बैठ जाइए, थोडी देर बाद आपका पेमेट करूगा। थोडी देर बाद उसने तीन-चार बार दोहराते हुए कहा—बिल पेमेंट करो, देर हो रही है। रोगियो की भीड मिटते ही डॉक्टर साहब ने उसकी जाच शुरू की। मुनीम बोला—मैं बीमार नही हू। मेरी क्या जाच कर रहे हो ?

डॉक्टर—हा, मुझे पता है आपके दिमाग मे खराबी है, इसलिए आप पुन -पुन बोल रहे हैं कि बिल पेमेट करो।

मुनीम—मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हू। आपकी धर्मपत्नी अभी सोलह हजार के मोती लेकर आयी है, मैं उसका पेमेट लेने आया हू। इसलिए पुन -पुन कहना पडता है कि बिल पेमेट करो।

डॉक्टर चौंका और बोला— वह मेरी नही, आपकी पत्नी है। उसने कहा— मेरी नही, वह तो आपकी घरवाली है। आखिर सारा भेद खुला। वह औरत, गायब, मोटर भी गायब, किसी का भी पता नही लगा। डॉक्टर साहब का चेहरा सफेद। हाय, ऐसी धूर्त नारी कि मेरी मोटर भी ले गई। मुनीम के समाचारो से सेठ भी हक्का-बक्का हो गया और उस महिला की धूर्तता पर आश्चर्य और खेद प्रकट करने लगा।

उस महिला ने दिवस मे, धोखा दिया अपार।
हाय मसलते रह गये, डॉक्टर जी साकार ॥

स्थायी पता क्या है ?

सुकरात के शिष्य को किसी ने पूछा—धर्म की व्याख्या क्या है। डायोजनीस ने कहा—इसका उत्तर आज नही दूगा, फिर कभी···किन्तु आप अपना पता तो बतला दीजिये। उसने अपना परिचय-पत्र निकालकर दे दिया।

डायोजनीस क्या यह स्थायी पता है ?

उसने कहा – हा, यह मेरा स्थायी पता है ?

डायोजनीस—तो क्या इससे पहले भी यही थे ?

वह असमजस मे पडा। कुछ चिन्तन चला। समझ मे नही आ रहा है। यह व्यक्ति अजीब-सा प्रतीत हो रहा है। कैसे प्रश्न पूछ रहा है ? आखिर उसे एक विकल्प सूझा और बोला— मैं स्थाई रूप से अपनी आत्मा मे निवास करता हू, इसलिए स्थायी पता मेरी 'आत्मा' है।

डायोजनीस— बन्धुवर ! आपने पहले पूछा था कि धर्म की व्याख्या क्या है ? बस, धर्म की परिभाषा यही है—'अपनी आत्मा मे रमण करना'। आत्म-मर्यादा का उल्लघन करना अधर्म है।

डायोजनीस के कलापूर्ण उत्तर से वह व्यक्ति बहुत खुश हुआ और बोला— मैं आपके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हू। वास्तव मे आत्मा मे निवास करना ही धर्म है।

जग मे सच्चा धर्म है, करना आत्म-निवास।
'मुनि कन्हैया' धर्म से, मिलता शिव-आवास ॥

मेरे दिल में राम

राजस्थान मे कहते है—'इणरो राम निकल ग्यो'। अर्थात् यह विवेकशून्य है। रामायण का प्रसग है—सीता ने हनुमान को हीरो का हार दिया। हार तोडा और उसमे कुछ देखने लगे।

सीता हसती हुई वोली—क्या खोज रहे हो ?

हनुमान वोला—इसमे राम है ? यदि इसमे राम नही है तो मेरे काम का नही है।

सीता ने कहा—अरे वीर हनुमान ! राम तेरे हृदय मे तो हैं ही ?

हनुमान—माताजी ! इसमे क्या सशय है ? मेरे अणु-अणु मे राम का नाम लिखा हुआ मिलेगा।

यो कहते हुए वीर हनुमान ने अपना कलेजा चीरा तो अन्दर राम नाम लिखा पडा था, ऐसा कहा जाता है !

राम विना हार भी वेकार है। राम (विवेक) विना मनुष्य का क्या मूल्य है ? भगवान महावीर ने कहा—'विवेगे धम्ममाहिय'—विवेक मे ही धर्म है। जैन रामायण मे आता है—

> रा उच्चरता मुख थकी, पाप विलाई जाय।
> मनि फिर आवै तेहथी, 'म' मो किमाटी थाय॥

हर दृष्टि मे राम शब्द का वहुत वडा महत्त्व है। सुवह उठते ही कई लोग राम की माला फेरते है।

> राम भक्त हनुमान मम, रहो समर्पित सव्य।
> 'मुनि कन्हैया' नित रटो, राम नाम है भव्य॥

लक्ष्य के प्रति श्रद्धा

एकदा मौलाना रूम अपने शिष्यो को लेकर एक खेत मे गये। खेत के मालिक किसान ने पानी के लिए पचास-पचास हाथ गहरे चार गड्ढे खुदवाये, किन्तु पानी नही निकलने से उन चार गड्ढो के पास मे ही पाचवा गड्ढा खुदवा रहा था।

शिष्यो ने जिज्ञासा जागृत करते हुए कहा—यह खेत का मालिक जमीन को जगह-जगह से क्यो खोद रहा है ? इसके पीछे क्या रहस्य है ?

मौलना रूम ने समाधान देते हुए कहा—शिष्यो इस खेत के मालिक ने खेत मे पानी देने के लिए पचास-पचास हाथ गहरे चार कुए खोदे है, एक के वाद एक। मगर चारो मे पानी नही निकला। अव पाचवा कुआ फिर खोद रहा है। कितना अनभिज्ञ है, कितना मूर्ख है यह! अगर अपना धन और श्रम वह चारो के वजाय एक ही सौ हाथ गहरा कुआ खोदने मे लगाता, तो खेत भी नही विगडता और पानी भी मिल जाता। लक्ष्य भी पूरा हो जाता। लेकिन जिस व्यक्ति के दिल मे लक्ष्य के प्रति श्रद्धा नही होती उस व्यक्ति को सफलता आलिगन नही कर सकती।

जिज्ञासु शिष्यो! इससे सवक लो! जिसके हृदय मे लक्ष्य के प्रति श्रद्धा नही है, जो वार-वार वदलते रहते हैं, उनकी वही गति होती है, जो किसान की हुई। सफलता के इच्छुक मनुष्य को लक्ष्य के प्रति श्रद्धाशील रहना चाहिए। श्रद्धा के अभाव मे किसी व्यक्ति का विकास नही हो सकता। सासारिक, सामाजिक व आध्यात्मिक क्षेत्र मे वही उन्नति कर सकता है जिसके दिल मे गहरी श्रद्धा है श्रद्धाहीन का तनिक भी मूल्य नही है।

सवको अपने लक्ष्य प्रति, रहना श्रद्धावान्।
विन श्रद्धा कृषिकार ज्यो, होगा दु ख महान ॥

सोअ्हम्

एक गुरु के दो शिष्य थे। एक विनीत था और एक अविनीत। गुरु ने दोनो को 'सोऽहम्' का पाठ पढाया। अविनीत ने साधना तो की नही। वाजार मे लोगो को कहता फिरता है कि 'मैं ईश्वर हू', 'मैं ईश्वर हू'। कुछ विवेकशील लोगो ने कहा—क्यो वृथा वकवास करता है? ईश्वर वनना कोई सरल कार्य नही। मौन मे ही फायदा है।

लेकिन वह अविनीत कहा मानने वाला था! वह तो अपनी धुन मे ही मस्त। उसी वात का प्रचार—मैं ईश्वर हू। लोगो ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके मुख पर चाटा मारा, हाथ पर अगारे रखे। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—हाय! मेरा हाथ जल गया। हाय! मेरा हाथ जल गया। लोगो ने कहा—मूर्ख! क्यो चिल्लाता है, तू तो ईश्वर है। ईश्वर का हाथ क्या कभी जलता है? ईश्वर के चाटा लगता है?

उस विनीत शिष्य ने साधना प्रारम्भ की। क्या पाच इन्द्रिया सोऽह हैं?

नही। गुरु ने कहा – शिष्य! साधना कर। क्या मन सोऽहम् है? नही है। क्या बुद्धि सोऽहं है? नही है। साधना करते-करते आखिर उसको नवनीत मिला—'आत्मा ही सोऽहं है'। आत्मा के सिवाय अन्य सब जो बाह्य पदार्थ है, वे सब नाशवान है, अस्थिर है। आत्मा अजर है, अमर है, अटल है, शाश्वत है। सोऽहं आत्मा है, आत्मा!

गुरु ने कहा—शिष्य! तेरी विद्या फलित हुई है। तूने विनय से ज्ञानार्जन किया, उसी का शुभ परिणाम सबके सामने है। वह अविनीत था, उसका ज्ञान उसके ही अपमान का हेतु बना, यह सर्वविदित ही है।

सोऽहं आत्मा अटल नित, अजर अमर अविकार।
विनयशील उस शिष्य को, हुआ ज्ञान सुखकार॥

भोजन का प्रभाव

एक महात्मा था। वह प्राय जगल मे वृक्ष के नीचे रहता था। वहा उसे जो आनन्दानुभूति होती थी, वैसी शहर मे नही होती थी। एक दिन राजा ने महात्मा से निवेदन करते हुए कहा—महात्मन्! आप मेरे महलो मे पधार जाइये। यहा जगलो मे आपको विभिन्न प्रकार की दुविधाओ का सामना करना पडता होगा।

महात्मा, राजा के आग्रह को टाल न सका। वह राजमहल मे पहुच गया। वहा रहने लगा। तीन महीने बीत गये। एक दिन का किस्सा है कि महारानी गुसलखाने से स्नान करके वापस लौट गई, किन्तु हार वहा भूल गई। तत्पश्चात् महात्मा स्नान करने हेतु वहा पहुच गया। हार को देखते ही महात्मा का दिल बदल गया। हार को चुराकर जगल मे चला गया। भूख लगी हुई थी। उसने ऐसे फल खाये, जिससे जुलाब होने लगा। पेट साफ हो गया। विचारो मे परिवर्तन होने लगा। मन ही मन सोचने लगा—अरे! महात्मा, क्या तू महात्मा है, चोरी करके हार ले आया, अब तू महात्मा नही है, तू चोर है। धिक्कार है तेरे जीवन को! ऐसा कृत्य तेरे लिए उचित नही था।

वह दौडा-दौड राजमहल मे आया। रात्रि का समय था। सब सोये हुए थे। जोर से बोलने लगा - राजन्! यह लीजिये आपका हार। राजा की आखे खुली। बोला—क्या बात है? महात्मा बोला—मै आपका हार चुराकर ले गया था। उसे वापस देने के लिए आया हू। राजा ने कहा—वापस देना ही था तो लेकर तू गया ही क्यो?

महात्मा ने कहा—राजन् ! तीन महीने तक आपके घर का अन्न खाया, जिसमे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। विचारो मे विकृति पैदा हो गई। हार चुराकर ले गया। जगल मे पहुचा। फल खाये। जुलाब होने लगा। पेट साफ हुआ। विचारो मे सद्बुद्धि जागृत हुई। तब मुझे ज्ञान हुआ कि विचारो पर भोजन का इतना प्रभाव पडता है। यह उक्ति भी सिद्ध हुई—'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन'।

देखो योगीराज ने, जैसा खाया अन्न।
'मुनि कन्हैया' हो गया, वैसा उसका मन ॥

पापी रो धन परले जाय

एक लोभी वैद्य था। वह लोगो को ठग-ठगकर धन इकट्ठा करता था। एक दिन एक बुढिया आयी और बोली—वैद्यराज जी ! मेरा लडका बहुत बीमार है। उसको स्वस्थ कर दीजिये। मैं आपका उपकार नही भूलूगी। कृपया घर चलिये। वैद्य ने कहा—पचीस रुपये लूगा। बुढिया—गरीब निवाज ! मै गरीब हू। इतने रुपये मेरे पास कहा है ? वैद्य—रुपये बिना इलाज नही होगा, यहा से चली जाओ। आखिर बुढिया घर के कुछ बर्तन बेचकर, कुछ कपडे बेचकर पचीस रुपये लेकर वैद्यजी के पास पहुची और बोली—ये लीजिए पचीस रुपये।

उपचार प्रारम्भ हुआ। कुछ ही दिनो मे बुढिया का पुत्र स्वस्थ हो गया। एक दिन वैद्यजी की धर्मपत्नी ने कहा—पतिदेव ! आप अधिक लोभ न करे। सतोषी सदा सुखी होता है। लेकिन स्त्री की शिक्षा पर कौन ध्यान देता है ! उसने अन्याय से धनार्जन करना नही छोडा। रात्रि मे उनके घर पर चोर आये और सारा धन चुराकर ले गये। वैद्यजी के पास कुछ भी न रहा। आखिर वे परदेश गये और नीति से दवाइयो का काम करने लगे। कमाई अच्छी हुई। कुछ ही महीनो पश्चात् अपने गाव के लिए रवाना हुए। मार्ग मे एक रोगी को ठीक किया। उसने खुश होकर पाच अनार वैद्यजी को दिये। वह अपने नगर मे पहुचा। नगर का राजा रोग से ग्रस्त हो गया। डॉक्टरो ने कहा—राजा को अनार के रस के सिवाय कुछ भी नही देना है। बाजार मे अनार कही भी नही मिला। उस वैद्य के पास मिला। राजा बहुत खुश हुआ। उसको पचीस हजार का इनाम मिला। वैद्यजी घर आये। एक अनार को चीरा तो मोती निकले।

स्त्री ने कहा—यह सब देवमाया से हुआ है, पतिदेव ! आपने परदेश मे नीति

को महत्त्व दिया है, ऐसा मेरा मत है। न्याय-नीति रखने मे सब काम ठीक होता है। नीति का धन टिकता है और अनीति का धन यो ही चला जाता है। राजस्थानी कहावत है—

'पापी रो धन परले जाय।'

वैद्यजी बोले—हे प्राणप्रिये ! अक्षरश सत्य है। नीति से कमाया हुआ धन वास्तव मे टिकाऊ होता है। अब मैं किसी को भी धोखा नही दूगा। किसी के भी साथ ठगी नही करूगा और जीवन मे अधिक से अधिक सन्तोष को महत्त्व दूगा।

जीवन क्षणभगुर है। लक्ष्मी भी चचल है। किसी के साथ नही जाती है। सब यहा रह जाते हैं। इसलिए अधिक से अधिक नीति को महत्त्व मिलना चाहिए। नीति से सुयश बढता है और अनीति से अपयश।

पैसा जो अन्याय का, नही टिके अति काल।
'मुनि कन्हैया' नीति का, टिकता वित्त विशाल ॥

अपनी विद्या अपने को खा गई

चार भाई थे। परस्पर मे बडा प्रेम था। तीन भाइयो, सजीवनी ने विद्या पढी। एक दिन धन कमाने के लिए चारो ही भाई परदेश के लिए रवाना हुए। चलते-चलते मार्ग मे भयकर जगल आ जाता है। एक वृक्ष के नीचे उन्होंने किसी अस्थि-पजर को देखा। परस्पर चिन्तन चला। एक ने कहा—अपने पास विद्या है, प्रयोग अवश्य करना चाहिए। अगर समय पर भी प्रयोग नही करते है तो विद्या केवल भारभूत होकर ही रह जायेगी। अत मेरा तो सिद्धान्त है कि पास मे जो कुछ भी हो उसका अवश्य ही उपयोग होना चाहिए।

दूसरे और तीसरे भाई ने भी यही सलाह दी।

चौथे ने कहा—ये अस्थिपजर शेर के है, विद्या का प्रयोग नही करना चाहिए, जीवित होकर कही हमे खा न जाए। 'अपना ही सिर और अपना ही जूता' इस कहावत को चरितार्थ मत कर देना। तीनो हसे और बोले—तू तो डरपोक है, कायर है। हमारे साथ तू आया ही क्यो ? घर पर रहना ही अच्छा था। अगर अवसर पर विद्या को काम मे नही लाते हैं तो विद्यार्जन का क्या लाभ ? हम तो विद्या का प्रयोग करके देखेंगे कि हमारी विद्या फलवती है या नही।

चौथा भाई वृक्ष पर चढ गया। तीनो ने सजीवनी विद्या का प्रयोग किया। उस विद्या के प्रभाव से शेर जीवित हो गया। भूख लगी हुई थी। शेर तीनो को खा गया। चौथा भाई ऊपर बैठा-बैठा सारा दृश्य देख ही रहा था। उससे रहा नही

गया, वह इसी गरमी [illegible] नाली में सोने लगा — [illegible]
[illegible] करनी नहीं सीखी, अपनी [illegible] बिना [illegible] ।

ज्ञानार्जन करना बुरा नहीं है किन्तु ज्ञानार्जन के [illegible] अनुभव [illegible] करना चाहिए । अनुभव के अभाव में [illegible] ज्ञान [illegible] होता है ।

ज्ञान [illegible] धर्म ना, अनुभव है [illegible] ।
'मुनि [illegible]' अनुभव बिना, [illegible] ॥

स्त्री की नटखट

एक बूढा था । उसके एक लडका था । उस लडके की धर्मपत्नी व्यभिचारिणी थी । वह किसी पर-पुरुष के साथ लगी हुई थी । बूढे ने सोचा—यह घर का नाश कर देगी । पुत्र को स्त्री का दुराचार बताने के लिए एकदा पर-पुरुष के साथ सोयी हुई का वह जेवर ले आया । उस स्त्री की नीद उडी । वह पति के साथ आकर सो गई । स्त्री बोली—पतिदेव ! आज गरमी बहुत है, बाहर सोना अच्छा होगा । पर-पुरुष वाली जगह पर आकर सो गये । पति को नीद आ गई । वह स्त्री उठी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी—हाय रे ! गजब हो गया । बाड भी खेत को खाने लग गई । पति की आखे खुली और बोला—क्यो हल्ला कर रही है ? क्या बात है ? उसने कहा—'थारो बाप बडो व्यभिचारी है । म्हारा गैहणा खोल ले गयो ।'

यह सुनते ही लडका क्रोधाकुल हो गया । उठा, बाप के पास आया और पैरो मे पूजा करता हुआ जोर से बोला—बुड्ढा कही का ! निकल मेरे घर से, मेरी स्त्री के साथ बुरा बरताव करता है । इतने मे वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी—हरे राम ! मैं तो कुए मे गिरकर मरूगी । मेरे पर झूठा कलक लगा गया । या तो बूढा जिदा रहेगा या मैं···

पति भौदू था । स्त्री की नटखट को समझ नही सका । पुलिस को इत्तला मिलते ही पुलिस उसके घर पहुच गई । पुत्र ने बूढे का सारा दुराचार बतला दिया । सही हकीकत सुनाने पर भी बूढे की कौन सुने ! पुलिस वालो ने हथकडी पहनाकर जेल मे बैठा दिया । स्त्री ने अपना मन इच्छित काम करवा लिया ।

दुनिया मे स्त्री-चरित्र का पार नही है । स्त्रियो की नटखट के आगे पुरुष भी हार जाते है । स्त्री पुरुष को अपने पजे मे ऐसा फंसाती है कि जैसा वह कहे

वैसा करना ही पडता है। स्त्री के चक्कर मे किसी को भी नही आना चाहिए।

नारी नटखट को कभी, नही समझें इन्सान।
दिया वृद्ध को जेल मे, कैसा यह अज्ञान॥

ईर्ष्या से नुकसान

एक सिद्ध पुरुष थे। उनके पास एक सेठ पहुचा। सेठ ने कहा—मैं आपकी शरण मे आया हू, मुझे कुछ दीजिए। सिद्ध पुरुष बोले—मैं तुझे एक शख देता हू। उससे तू जितना मागेगा तुझे तो उतना ही मिलेगा, किन्तु पडोसी को तेरे से दुगुना मिलेगा। तू जलना मत। ईर्ष्या भी मत करना।

सेठ सिद्ध पुरुष से शख लेकर घर पहुचा। वह हजार मागता है तो पडोसी को दो हजार मिलता है। वह लाख मागता है तो उसके पडोसी को दो लाख मिलता है। यह सब सेठ को सहा था। यह तो मेरे से ही बडा वैभवशाली बन जायेगा। उसके सामने मैं सदा निस्तेज ही रहूगा। उसकी उन्नति होगी। उसने सोचा—ऐसा कोई मार्ग निकालू, जिससे उसका नुकसान हो जाये। ईर्ष्या का वेग बढा, उसन ने धावा बोला—उसने अपने घर मे चार कुए खुदवाये, पडोसी के घर मे आठ कुए हो गये। अब क्या करू? आखिर उसने शख से कहा—मेरी एक आख फोड दो। बस, देरी क्या थी! उसकी आख फूटते ही पडोसी की दोनो आखे फूट गईं। वह अन्धा हो गया। घर मे जगह-जगह कुए थे, कुए मे पडकर पडोसी मर गया।

ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी-भी दूसरो की उन्नति को सह नही सकता है। 'पर का बुरा कैसे हो' इसी विचारधारा मे वह डूबता रहता है। जलन-जलन मे वह स्वय का बिगाड भी करता है तथा औरो का भी।

ईर्ष्या से खुद का बुरा, पर का भी नुकसान।
'मुनि कन्हैया' छोड दो, यदि चाहो उत्थान॥

परोपकार

एक बुढिया थी। उसके लडके का नाम गजेन्द्र था। घर मे बडी गरीबी थी। बुढिया ने कहा—पुत्र! बाजार मे जाओ, पूछकर आओ कि अपनी गरीबी दूर कैसे हो? गजेन्द्र गया। दुकानदारो से पूछने लगा। एक व्यापारी ने कहा—यहा

से पचास कोस पर एक महात्मा रहता है, वह इस प्रश्न का उत्तर देने मे समर्थ है। घर आया और बोला—मा, मुझे आशीर्वाद दो, मैं जाता हू महात्माजी के पास उस प्रश्न का उत्तर लेने। मा ने खुशी-खुशी विदाई दी। वह चला। चलते-चलते एक गाव आ गया। रात हो गई। उसने सेठ की हवेली मे विश्राम लिया। सुबह जाने लगा तो सेठानी ने जानकारी ली। वह बोली—मेरे भी एक प्रश्न का उत्तर ले आना—'मेरी लडकी कब बोलेगी ?' राजेन्द्र आगे बढा। जगल मे मुनि मिल गये। बातचीत हुई। मुनि ने कहा—'मुझे साधु हुए पचास वर्ष हो गये किन्तु अभी तक साधुत्व का स्वाद क्यो नही आया ?' इस प्रश्न का भी उत्तर लाना। वह आगे चला। मार्ग मे माली मिला। उसने कहा—'इस अनार के चारो तरफ कोई भी वृक्ष जड क्यो नही पकड रहा है, इसका उत्तर अवश्य लाना। राजेन्द्र महात्माजी के पास पहुचा। नमस्कार किया और बोला—मै कुछ प्रश्नो का उत्तर लेने आया हू। कृपा कीजिए। महात्मा ने कहा—इस समय एक साथ तीन प्रश्नो का उत्तर दे सकता हू, चाहे सो पूछ सकता है। राजेन्द्र विषम समस्या मे पड गया। प्रश्न चार है। आखिर अपना प्रश्न छोडकर उन तीनो प्रश्नो का उत्तर लेकर वापस चला। माली मिला। राजेन्द्र ने कहा—माली! इस वृक्ष के चारो तरफ मोहरो से भरे हुए चार कलश है। जब तक कलश रहेगे, तब तक कोई भी दूसरा वृक्ष जड नही पकडेगा। माली ने कशी से खोदा। चार कलश मिल गये। माली ने आभार प्रदर्शित करते हुए कहा—राजेन्द्र! मोहरो का यह कलश देता हू। कलश लेकर वह आगे चला। मुनि मिले। उसने कहा—महाराज! आपकी जटा मे रत्न है। जब तक यह रहेगा, साधुत्व का स्वाद नही आयेगा। मुनि ने कहा—तुम उपकारी हो, यह लो रत्न। राजेन्द्र सेठानी के घर पहुचा। उसने कहा—आपकी लडकी जब अपने पति का मुह देखेगी, वह बोलने लग जायेगी।

अचानक वह लडकी वहा आ गई। राजेन्द्र को देखते ही बोलने लगी। सेठानी ने कहा—इसके पतिदेव आप ही है। राजेन्द्र की शादी हो गई। लाखो का धन लेकर रथ मे धर्मपत्नी सहित घर पहुचा। मा ने पूछा—पुत्र! गरीबी कैसे दूर होगी, उत्तर ले आया ? पुत्र बोला—माताजी! आपके आशीर्वाद से लाखो का धन मिल गया और मेरी शादी हो गई। उसने आदि से अन्त तक की कहानी सुनाई। वह अब ठाठ-बाट से रहने लग गया। गरीबी दूर हो गई।

जो व्यक्ति दूसरो का उपकार करते है, दूसरो का भला करते है, उनका भला अपने आप ही हो जाता है। किन्तु परोपकारी ससार मे विरले मिलते है। महा-पुरुष पर-उपकार के लिए जीवन खपा देते है।

भला अन्य का जो करे, करे अन्य उपकार।
'मुनि कन्हैया' स्वय का, होगा भला अपार॥

अक्ल से छुटकारा

एक चौधरी था। उसके एक ही लडका था। अच्छा घर देखकर लडके की शादी कर दी। बहू घर पर आयी। सास की प्रकृति कर्कश थी। सास-बहू मे झगडा प्रारम्भ हो गया। एक दिन भयकर लडाई हुई। बहू ने सोचा, अब जीना बेकार है। रात्रि मे उठकर कुए मे गिरकर मर गई। सूर्योदय हुआ। पता लगते ही अडोसी-पडोसी पचासो व्यक्ति इकट्ठे हो गये। कुए मे से लाश निकाली गई। कइयो ने कहा—लाश को जला देना चाहिए।

कइयो ने कहा—लाश को नही जलाना चाहिए। आखिर मे कई चालाक व्यक्तियो ने जला दी। इतने मे पुलिस आ गई। थानेदार ने केस की तहकीकात की।

शाम को ससुरजी आये। सारी जानकारी ली। कहा—'बयान मे मैं कहू जैसे बोलना।' कचहरी मे उपस्थित हुए। थानेदार ने कहा—उस लाश को जलाया क्यो? कई गवाह बोले—मरने के बाद क्या करे? चाहे कुए मे गिरकर मरो, चाहे मौत से मरो। वह भी बिना मौत नही मरी थी। यदि बिना मौत मरती तो आज तो नहीं मरे। दो दिन पहले एक सेठ मर गया था। उसको भी जलाया था। मरने के बाद शव को हम एक दिन भी नही रखते है। अब आप कहे तो जितने भी मरेगे उन सबको आपके पास भेज देगे, जलायेगे नही। आप उन सबको सुरक्षित रखना।

थानेदार ने सोचा—ये सब मूर्ख है। उनके सामने बोलना राख मे घृत डालना है। मूर्खों से बात करने से भी नुकसान है। थानेदार ने उन सबको छोड दिया। सब अपने-अपने घर चले गये।

कभी-कभी मूर्खों की अक्ल भी काम आ जाती है। अक्ल से सब बरी हो गये। कचहरी से छुटकारा मिला। दुनिया मे अक्ल का बहुत बडा महत्त्व है।

मूर्ख गण भी अक्ल से, सहसा बचे तमाम।
'मुनि कन्हैया' अक्ल से, होते इच्छित काम॥

शब्दों का सही अर्थ

बादशाह अकबर और बीरबल घूमने के लिए चल पडे। चलते-चलते यमुना नदी के तीर पर पहुच गये। उन्होंने वहा एक मच्छीमार को देखा। उसे देखकर बादशाह का भी जी ललचाने लगा। वे मछलियो को मारने के लिए बैठ गये।

वेगम ने वीरवल को वुलाकर पूछा—वादशाह नही आये ? घूमने के लिए साथ ही गये थे । कहा रह गये ?

वीरवल वोला—मच वताऊ या झूठ ?

वेगम—वीरवल ! मात गुनाह तुझे माफ है । सही-सही वताना पडेगा । वोल, जल्दी वोल, वादशाह कहा पर ठहरे है ?

वीरवल ने कहा—वादशाह झख मार रहा है ।

यह सुनते ही वेगम का चेहरा वदल गया और मन ही मन सोचने लगी—आज वादशाह किसकी सगत मे है, अभी तक नही आये । क्या वात है ? इस प्रकार उनके दिल मे विकल्प उठने लगे ।

इतने मे ही वादशाह आ पहुचा । वेगम ने रोष-भरे शव्दो मे पूछा—'इतनी देर कहा थे ? प्रतीक्षा करती-करती थक गई । आपने वीरवल को सिर पर चढा रखा है । वह यो कहता है कि वादशाह झक मार रहा है ।'

यह सुनते ही वादशाह गुस्से से लाल हो गया । वीरवल को वुलाकर सारी वात कही ।

वीरवल वोला—शव्दो का सही अर्थ नही समझने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है । आखिर मे सही अर्थ का पता लगते ही वादशाह और वेगम का गुस्सा शान्त हो गया ।

हर शव्द का अर्थ सोच-समझकर करना चाहिए । एक ही शव्द के कई अर्थ हो सकते है । सही अर्थ के अभाव मे वहुत वडा अन्याय हो सकता है ।

अर्थ न लेने से सही, होता वडा अनर्थ ।
'मुनि कन्हैया' शव्द का, करो सही शुभ अर्थ ॥

बुद्धि का चमत्कार

एक सेठ था । उसके घर मे चोर घुस गये । सेठजी की आखें खुलते ही उन्होंने सेठानी से पूछा—तेरे आभूषण कहा हैं ? सेठानी वोली—पीहर मे भूल गई । सेठ वोला—कल ले आना । यह वात सुनकर चोर वहा से चले गये । सेठ ने दूसरे दिन चार सर्प मगवाये । और चार घडो मे डालकर कमरे के चारो कोनो मे घडो को रख दिया । रात्रि मे चारो चोर आये । कमरे मे पहुचे । चारो ने एक साथ घडो मे हाथ डाले । सर्पो ने डक मारा । चोर जोर से चिल्लाये । सेठ ने सोचा काम वन गया । कुछ ही क्षणो मे चारो चोर यमदूत के मेहमान वन गये । सुवह

होते ही देखा, चार लाशे पडी हैं। इतने मे ही एक वावा आ गया। उसने गाजा मागा। सेठ ने कहा मेरा नौकर मर गया है। इसे दफनाओ तो दस का नोट मिल जायेगा। यदि वह मुर्दा वापस आ गया तो एक भी पैसा नही दूगा।

उसने सब स्वीकार कर मुर्दे को कधे पर उठाकर जगल मे गड्ढा खोदकर गाड दिया। दौडा-दौडा आकर वह वावा वोला—सेठ साहव! दीजिए दस रुपये। सेठ बोला – वह मुर्दा तो वापस आ गया, पहले इसको दफनाओ, तव नोट मिलेगा। उसने वैसे ही दूसरी वार और तीसरी वार दफनाया। सेठ ने कहा—वापस आ गया। वावा ने सोचा, इस वार दफनाऊगा नही। अब इस मुर्दे की लाश को कुए मे डालूगा। चौथी वार जव कुए मे डाला तो वहुत जोर का धमाका हुआ। पास मे मस्जिद थी। मियाजी नमाज पढ रहे थे। यह धमाका सुनते ही वे घबराये और दौडे। मियाजी के पीछे-पीछे वह वावा दौडा, उसने सोचा—वही मुर्दा है जिसको मैंने कुए मे डाला था। सेठ ने दौडते हुए मियाजी से कहा—क्या बात है, घबराये कैसे? मियाजी ने सारी स्थिति की जानकारी दी। सेठ ने उनको अपने घर पर सुला दिया। बावा पहुचा और वोला—दीजिए दस रुपये का नोट। सेठ ने कहा—वह मुर्दा वापस आ गया। खटिया पर सोया हुआ है। वावा वोला—दफनाता-दफनाता मैं तो थक गया। मेरे से अव काम नही होता है। नही चाहिए मुझे दस का नोट। नमस्ते! हाथ घिसता-घिसता यो ही चला गया।

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि से हर काम कर लेते है। इसलिए दुनिया मे बुद्धि और अक्ल का सर्वत्र महत्त्व है। बुद्धिहीन कही पर भी सफल नही होता है।

तीक्ष्ण बुद्धि से सेठ ने, वचा लिया निज माल।
'मुनि कन्हैया' हो गया, वावा का वेहाल॥

नारी की करामात

एक पडितजी प्रतिदिन कथा करते थे। कथा मे वे स्त्रियो के चरित्र की अपनिन्दा करते थे। एक दिन रानी की दासी ने उनके घर पर मोहरें डाली। पडितजी बोले—क्या बात है? दासी ने कहा—पडितजी महाराज, राजा की महारानी आपकी वाणी से बहुत प्रभावित हुई हैं। आप रानीजी को दर्शन दें। आपको रानी नवलखा हार उपहार देंगी। पडितजी का मन ललचा गया। रानीजी के महलो मे पहुचे। भेट हुई। अचानक राजाजी का आना हो गया। पडितजी कापने लगे—मेरी प्रतिष्ठा रेत मे मिल जायेगी। अब क्या करू? रानी ने उपाय सोचकर पडितजी को सन्दूक

मे घुमेडकर बन्द कर दिया। दरवाजा खोला। राजा आया और बोला—दरवाजा इतनी देर मे क्यो खोला ? रानी बोली—कपडे तो ठीक करने पडते है। नृप ने कहा—रानी ! अपनी होशियारी जमा रही है। मुझे लगता है यहा कोई आदमी आया था, इसलिए देर हुई है।

रानी गुस्से मे लाल-पीली होकर बोली—आदमी ? आदमी है। इस सन्दूक मे। क्रोधाकुल होकर राजा ने पेटी को ठोकर मारी। तलवार निकाली। हुकार सुनते ही पडितजी को पेशाब आ गया। रानी कुछ मुस्कराती हुई बोली—हद हो गई। आप तो मैं कहती हू वही मान लेते हैं। पेटी मे गगाजली थी। लात से फूट गई। देखिये पानी बाहर निकल रहा है। पेटी मे क्या आदमी समा सकता है ?

यह सुनते ही राजा तत्काल बदल गया। पश्चाताप करने लगा—हाय ! मेरे योग से गगाजली फूट गई। राजा राज्यसभा मे आ गया। पडितजी पेटी मे से निकले। रानी ने कहा—पडितजी ! क्या आप कथा मे स्त्रियो की निन्दा करते हैं ? पडितजी बोले—अब स्त्रियो की निन्दा भूल-चूककर भी कभी नही करूगा। मैंने देख ली नारी की करामात ! आपने अपनी करामात से ही मुझे उबारा है, अन्यथा मैं तो यमनगरी का पथिक बन जाता।

स्त्री के चरित्र का कोई पार नही है। स्त्रिया अपने चरित्र के माध्यम से पुरुषो को भी चकमा दे देती है। 'स्त्रीणा चरित्र, देवो न जानाति कुतो मनुष्य '—स्त्रियो के चरित्र को देवता भी नही जान सकते, मनुष्य तो जान ही कैसे सकता है !

जग मे नारी चरित का, क्या पा सकते पार ?
उनके सन्मुख हो रही, पुरुषो की भी हार।

•

तृष्णा के दास

एक अद्भुत योगी था। उसकी वचनसिद्धि अनुपम थी। तपोनुष्ठान से कई शक्तिया उत्पन्न हो गईं। एक दिन एक सेठ योगी के पास आया। योगी ने कहा—सेठ ! धर्म किया कर, प्रभु के नाम की माला फेरा कर। सेठ बोला—योगिराज ! आपका कथन अक्षरश सत्य है। किन्तु क्या करूं ? जीवन-निर्वाह समस्या बन रही है। कमाई एक पैसे की नही। मुझे यदि प्रतिदिन एक रुपया मिलने लग जाये तो फिर धर्म-ध्यान करूगा। योगी ने उसके हाथ पर एकाएक लिख दिया। अब उसके प्रतिदिन एक रुपये की कमाई आरम्भ हो गई। कुछ

ही दिनो के पश्चात् सेठ ने योगी से कहा—महाराज ! खर्चा बढ गया। एक रुपये मे काम नही चलता, सारे दिन मजदूरी करता हू। धर्म के लिए समय मिलता ही नही है। अत आप एक के पास बिन्दी लगा दीजिये, फिर धर्म करूगा।

योगी ने वैसा ही किया। दस रुपये मिलने प्रारम्भ हो गये। योगी ने कहा, अब तो प्रवचन सुना कर। उसने कहा – समय मिलने पर सुनूगा। उसके दिल मे तृष्णा बढी। उसने सोचा—दस के आगे एक बिन्दी और लगा दे तो सौ रुपये प्रतिदिन प्राप्त हो जाने मे सब ठीक हो जायेगा। वह दौडा-दौडा फिर योगी के पास आया और बडी विनम्रता से बोला—महाराज बडी भाग-दौड करता हू। जीवन-निर्वाह सुचारु रूप मे नही हो रहा है। अब आप दस के आगे एक बिन्दी और लिख दीजिए। प्रतिदिन सौ रुपयो की कमाई हो जाने से मुझे किसी की परवाह नही रहेगी और खूब धर्म-ध्यान करूगा।

योगी ने सोचा—यह तृष्णा का दास है। इसकी भूख कभी भी मिटने वाली नही, यह पैसे के पीछे पागल हो रहा है। यह सोचकर योगी ने एक के पीछे बिन्दी लगा दी। अब उसकी सारी कमाई बन्द हो गई। वह पुन गरीब हो गया। दु ख से कहा—हाय ! ऐसा पता होता तो

जो व्यक्ति तृष्णा के दास है, उनको कही भी चैन नही है। लोभी मनुष्य शांति से नही खा सकता, सो नही सकता, जी नही सकता। अत तृष्णा को दूर करो, सन्तोषी बनो, जिससे सच्चे सुख की उपलब्धि हो सके।

सेठ बना वह लालची, था तृष्णा का दास।
'मुनि कन्हैया' अन्त मे, क्रमश उनका ह्रास॥

आत्म निन्दा

एक अध्यापक था। वृद्धावस्था मे उसकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। किन्तु मास्टर साहब का मन बूढा नही हुआ था। किसी दूध बेचने वाली लडकी से उनका प्रेम हो गया। उससे शादी कर ली। लडकी ने सोचा—मैं कहा आ गई। इस बुड्ढे से मेरी इच्छा पूर्ण होने वाली नही है। जब तक यह जीवित रहेगा। तब तक अपनी इच्छा मैं पूर्ण नही कर सकती। किसी उपाय से उसको परलोक पहुचा दू तो मेरा इच्छित हो सकता है।

दूसरे ही दिन उसने लड्डुओ मे जहर मिला दिया। मास्टरजी ने भोजन किया। लड्डू खाये। थोडी देर बाद शरीर मे जहर फैला और प्राण-पखेरू उड

गये। वह लडकी पति की लाश को पेटी मे वन्द कर नदी मे वहाने हेतु चल पडी। उसी समय एक व्यतर देवता (जो कि उसी मास्टर का चेला था।) ने ज्ञान से देखा कि ये तो मेरे गुरु हैं। इस औरत (पतिव्रता) ने मेरे गुरु को जहर देकर मारा। अव इसको भी सजा मिलनी चाहिए। उसने वह पेटी उसके माथे पर चेप दी। वह नदी के किनारे पहुची। पेटी सिर से अलग नही हो रही थी। उसने सोचा—अव मैं आत्महत्या कर लू। क्योकि पेटी चिपक गई है। इतने मे कुछ साध्वियो का योग मिल गया। उन्होंने समझाया कि आत्महत्या करना भयकर पाप है, वह उनके साथ शहर मे आई। लोगो ने पूछा—यह पेटी सिर पर क्यो रखती है? सवके सामने आत्म-निंदा करती हुई उसने अपना सारा रहस्य वतला दिया। आत्म-निंदा से पेटी माथे से दूर हो गई। और सयम लेकर उसने अपना कल्याण कर लिया।

भगवान् महावीर ने आत्म-निंदा का वहुत महत्त्व वताया है। पर-निन्दा करने मे सव अग्रणी हैं। किन्तु स्वय की निन्दा करने वाले व्यक्ति कम मिलते हैं। आत्म-निंदा वही कर सकता है जिसके हृदय मे साहस हो, आत्मिक वल हो।

अपनी निंदा जो करे, वह मानव मतिमान।
उस महिला ने कर लिया, आत्मा का कल्याण।

जिसका काम उसी को छाजे

जाट और वनिये मे परस्पर अच्छी दोस्ती थी। जाट खेती करता था। बनिया अपने व्यापार मे मस्त रहता था। वर्षा नही होने से जाट वडा चिंतित रहने लगा। खेती हुए विना परिवार का पालन-पोषण कैसे होगा? एक दिन वह अपने मित्र वनिये के पास गया और वोला—मित्र! तेरे तो कमाई प्रतिदिन होती है, मैं आज-कल विलकुल खाली वैठा हू, कोई रोजगार नही है। कमाई का कोई साधन हो तो अवश्य वताना। सेठ वोला—मेरा खास व्यापार है ववूल के गोद का। यहा गोद काफी मिलता है। सस्ता है। दूसरी जगह का भाव तेज है। कमाई अच्छी होगी।

जाट ने सौ रुपयो का गोद लेकर रख लिया। उसने सोचा, कोई थोक का ग्राहक आयेगा तो वेच दूगा। इधर वह वनिया ज्यो ही गोद लेता त्यो ही वेच देता। कुछ ही दिनो पश्चात् जोर से वर्षा हुई, जिससे गोद खराव हो गया। इधर भाव भी उतर गये। गोद का वाजार विलकुल मन्दा हो गया। जाट दौडा-दौडा वनिये के पास आया और वोला—भाई साहव! गजव हो गया। आखिर वनिये ने सारा

माल ले लिया और सौ के तीस रुपये दिये। बनिये ने जाट को ठग लिया। जाट बेचारा हाथ मलता ही रह गया।

जो व्यक्ति जिस क्षेत्र मे दक्ष होता है, उसी मे सफल होता है। जिसका जिसे अनुभव नही होता वह काम करने से आखिर पछताना पडता है।

बनिज करेंगे बानिए, और करेंगे रीस।
बनिज किया था जाट ने, रह गये सौ के तीस॥

त्याग से लक्ष्मी

[illegible] [illegible] सेठ था। [illegible] [illegible] के पीकदान मे थूकता था। सेठजी के पास [illegible] एक भोला ब्राह्मण आया। उससे रहा नही गया। वह मुसकराते हुए बोला—[illegible]! मैं निरन्तर लक्ष्मीजी की पूजा करता हू। ध्यान धरता हू। उपासना करता हू। फिर भी लक्ष्मी मेरे से दूर रहती है। मैं आखे फाडता ही रहता हू कि लक्ष्मीजी का मेरे घर पर कब पदार्पण होगा। प्रतीक्षा करते-करते थक गया किन्तु अभी तक लक्ष्मीजी ने दर्शन नही दिये। क्रोधाकुल हो गया और [illegible] [illegible] [illegible]। बोला—निर्गम लक्ष्मी! यह क्या बात है? तेरा जो तिरस्कार करते है, तेरे पर थूकते है, उनके पास तू दौडी-दौडी जाती है, वहा तू निवास करती है। बडी विचित्र गति है तेरी!

यह सब सुनकर सेठ ने कहा—अरे भोले ब्राह्मण! तू अभी तक अज्ञान [illegible] मे है। लक्ष्मी की उपासना करने से लक्ष्मी नही मिलती है। लक्ष्मी को ठुकरा देने से पीछे-पीछे दौडती है। जो लक्ष्मीदास है, वह सारे ससार का दास है। जिसने लक्ष्मी को अपनी दासी बना लिया। सारा ससार उसका दास है।

'मुनि कन्हैया' त्याग से, लक्ष्मी हरदम पास।
तृष्णा रखने से अनिल, उससे दूर निवास॥

श्रद्धा का महत्त्व

एक बुढिया अपने गाव से मार्ग मे पडने वाली नदी को नौका के द्वारा पारकर निरन्तर महात्माजी का व्याख्यान सुनने आती थी। एक दिन महात्मा ने अपने भाषण मे कहा—'राम के नाम से मनुष्य भवसागर को तर सकते हैं।' व्याख्यान समाप्त होते ही बुढिया घर के लिए रवाना हो गई। नदी के तीर पर आयी, तो उसने सोचा—आज पैसे खर्च नही करुगी क्योकि गुरुजी ने कहा था कि राम के नाम से मनुष्य समुद्र को पार कर सकता है, पर यह तो छोटी-सी नदी है। नौका का सहारा लिये विना ही उस पार पहुच जाऊगी। बुढिया राम-राम कहती हुई नदी मे कूद गई। मछली की तरह तैरकर अपने घर चली गई। बुढिया निरन्तर इसी क्रम से आती-जाती थी। एक दिन बुढिया ने महात्मा से कहा—'आज आप मेरे घर भोजनार्थ पधारे।' उसकी अति भक्ति देखकर महात्मा उसके साथ चल पडे। नदी आते ही महात्मा वोले—'अब कैसे जायेगे ?' बुढिया वोली, 'राम का नाम लेकर कूद जाइये, उस पार पहुच जायेंगे।'

महात्मा—'बुढिया ! ऐसे कैसे वोलती हो ? आगे कही अधिक पानी होने से डूव जाऊगा तो ?' बुढिया वोली—'आपने जिस दिन कहा था कि राम के नाम से मनुष्य समुद्र को तैर सकता है, मैं तो उसी दिन से राम के नाम पर श्रद्धा रखती हुई नदी मे कूदकर उस पार पहुच जाती हू। समुद्र की अपेक्षा नदी तो बहुत छोटी है, आप डरते क्यो हैं ?'

महात्मा के दिल मे श्रद्धा का अभाव था, वे घबराते हुए वोले—'मैंने तो ससार-रुपी समुद्र के लिए कहा था। इसके लिए थोडे ही कहा था ?' बुढिया वोली—'मैं तो इसको भी तैर जाती हू।' इस प्रकार कहकर वह कूद गई और उस पार पहुच गयी। महात्मा देखते ही रह गये।

हर क्षेत्र मे श्रद्धा का महत्त्व है। श्रद्धा के अभाव मे कोई भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकता है। अत हर एक को अपने जीवन मे अधिक-से-अधिक श्रद्धा को स्थान देना चाहिए।

सफल वही हर क्षेत्र मे, जो है श्रद्धावान।
बुढिया की ज्यो तर सके, सरिता को अम्लान ॥

५ वचन का प्रभाव

मानसिंह नाम का एक ठाकुर था। नौकरी की तलाश मे वह सेठ मानकचन्द जौहरी की दुकान पर जा पहुचा। सेठ ने कहा—'किसलिए आये हो?' ठाकुर ने कहा—'नौकरी के लिए।' परस्पर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। सेठ को नौकर की आवश्यकता नही थी, फिर भी उनने उसको नीतिज्ञ समझकर नौकरी पर रख लिया, किन्तु उसे कुछ भी काम नही सभलाया गया। ठाकुर बोला—'सेठ साहब! मैं मुफ्त मे रोटी खाने वाला नही हू। मुझे कोई काम सौपा जाये।' सेठ ने कहा—'मुझे पानी पिलाया करो और जहा कही बाहर जाना पडे तो पानी की झारी हमेशा साथ रखा करो। बस, इस काम का पूरा-पूरा ध्यान रखना।'

एक दिन सेठजी किसी यात्रा के लिए रवाना हुए। साथ मे अनेक मुनीम थे। मानसिंह भी पानी की झारी लिये सेठ के पीछे-पीछे चल पडा। पानी पिलाने के लिए वह प्रतिक्षण तैयार रहता था। मार्ग लम्बा होने के कारण पानी की झारी खाली हो गयी। मानसिंह विचार मे पड गया कि अब क्या करू? सेठ साहब अवश्य प्यासे है किन्तु झारी खाली होने से पानी नही माग रहे है। हाय! धिक्कार है मेरे जीवन को कि जो काम मुझे सौपा गया वह भी पूरा नही कर सका। [illegible] ठीक नही है। इतने मे एक छोटा-सा गाव दिखाई दिया। मानसिंह पानी लेने के लिए बडी तेज गति से वहा पहुचा और पानी के विषय मे पूछा। गाव के लोगो ने कहा—'ठाकुर साहब! यहा दूध मिलना तो सरल है पर पानी मिलना बडा कठिन है।'

ठाकुर—'क्या यहा पर कोई कुआ या बावडी नही है?' लोगो ने कहा—'बावडी है तो सही, पानी भी उसका मीठा है, किन्तु वहा जाने वाला वापस नही आता है। बावडी का रक्षक राक्षस सब को मार देता है। इस गाव मे जल की बडी कमी है। किसी का भी जीवन आराम मे नही है।'

ठाकुर मानसिंह बडी हिम्मत रखके बावडी की ओर रवाना हुआ। बावडी निर्मल जल से लबालब भरी थी। ऊपर कमल छाए हुए थे। पानी अमृत जैसा मीठा था। वह बावडी मे गया, पानी पिया। झारी भरकर ज्यो ही बाहर आने लगा, त्योंही विकराल रूप धारण किए हुए राक्षस ने उसे ललकारा—'अरे, ठहरना, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे, फिर पानी लेकर जाना।' हाथ मे एक लम्बी हड्डी लटकाकर बोला—'देख, यह शस्त्र मेरे हाथ मे कैसा सुन्दर लगता है?' मानसिंह ने मधुर स्वर मे कहा, 'राक्षसदेव! यह शस्त्र आपके हाथ मे बहुत ही अच्छा लगता है। इस शस्त्र को मैं इन्द्रदेव का वज्र कहू या वासुदेव के चक्र की उपमा मे अलकृत करू, इसके लिए मेरे पास कोई उपमा भी नही है।' ठाकुर का उत्तर सुनकर

राक्षस वहुत ही प्रसन्न हुआ और वोला—'मैं तुम्हारे मीठे वचन से प्रभावित हू, वरदान मागो।'

ठाकुर ने कहा—'यहा पानी के विना लोग क्यो तरस रहे है ?'

राक्षस—'मैं सवसे यही प्रश्न करता हू जो तुमसे किया है, पर यहा के लोग जवान के वहुत कठोर और कडवे है, उत्तर ऐसा अश्लील देते है कि मेरा दिल खट्टा हो जाता है।'

ठाकुर—'आप मेरे निवेदन को मान किसी को भी पानी के लिए न तरसाए, वस यही वरदान मागता हू।'

ठाकुर की अमृतमयी वाणी सुनकर राक्षस वोला—'अच्छा जाओ, तुमको यह वर देता हू।' गाव मे आकर ठाकुर ने समग्र घटना-चक्र से लोगो को अवगत किया और कहा—'आप लोगो का सकट टल गया है किन्तु अपशब्दो का प्रयोग किसी के भी प्रति नही होना चाहिए।' स्थानीय लोगो ने ठाकुर साहव का वहुत-वहुत सम्मान किया। भोजन के लिए निवेदन और आग्रह करने लगे, किन्तु ठाकुर कहा मानने वाला था, वह तो शीघ्र झारी लेकर सेठजी के पास जा पहुचा।

हर व्यक्ति पर मिष्ट वचन का प्रभाव पडता है। दुनिया को वश मे करने के लिए मिष्ट वचन एक महामन्त्र है। मिष्ट वचन से शत्रु भी मित्र वन जाता है और मिष्ट वचन के अभाव मे मित्र भी शत्रु वन जाता है। अत कर्कश शब्दो का परित्याग करके मधुर वचन का प्रयोग परम अपेक्षा रखता है।

मधुर वचन से शत्रु भी, वन जाता है मित्र।
वश मे करने जगत् को, है यह मन्त्र पवित्र ॥

विनीत का सच्चा ज्ञान

दो ब्राह्मण विद्यार्थी थे। वारह वर्ष तक काशी मे अध्ययन करके वे घर जाने के लिए रवाना हुए। दोनो मे एक विनीत था और एक अविनीत। मार्ग मे जाते-जाते दोनो ने एक पैर का निशान देखा। इस पर विनीत वोला—'वताओ भाई ! यह पैर किसका है ?' अविनीत विना विचारे ही शीघ्र वोला—'यह पैर हाथी का होना चाहिए।' विनीत चिन्तनपूर्वक वोला—'मित्र ! यह पैर हथिनी का होना चाहिए, फिर वह दाहिनी आख से कानी है, उसके ऊपर राजा की गर्भवती रानी है और अभी-अभी वह शहर गयी है।' अविनीत क्रुद्ध होकर वोला—'मेरे वचन मे कभी फर्क नही पड सकता। यह पैर हथिनी का नही हो सकता ! हाथी का है।'

वचन का प्रभाव

मानसिंह नाम का एक ठाकुर था। नौकरी की तलाश मे वह सेठ मानकचन्द जौहरी की दुकान पर जा पहुचा। सेठ ने कहा—'किसलिए आये हो?' ठाकुर ने कहा—'नौकरी के लिए।' परस्पर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। सेठ को नौकर की आवश्यकता नही थी, फिर भी उसने उसको नीतिज्ञ समझकर नौकरी पर रख लिया, किन्तु उसे कुछ भी काम नही सभलाया गया। ठाकुर बोला—'सेठ साहब ! मैं मुफ्त मे रोटी खाने वाला नही हू। मुझे कोई काम सौंपा जाये।' सेठ ने कहा—'मुझे पानी पिलाया करो और जहा कही वाहर जाना पडे तो पानी की झारी हमेशा साथ रखा करो। वस, इस काम का पूरा-पूरा ध्यान रखना।'

एक दिन सेठजी किसी यात्रा के लिए रवाना हुए। साथ मे अनेक मुनीम थे। मानसिंह भी पानी की झारी लिये सेठ के पीछे-पीछे चल पडा। पानी पिलाने के लिए वह प्रतिक्षण तैयार रहता था। मार्ग लम्बा होने के कारण पानी की झारी खाली हो गयी। मानसिंह विचार मे पड गया कि अव क्या करु? सेठ साहव अवश्य प्यासे है किन्तु झारी खाली होने से पानी नही माग रहे हैं। हाय ! धिक्कार है मेरे जीवन को कि जो एक कार्य मुझे सौंपा गया वह भी पूरा नही कर सका। हराम का नमक खाना ठीक नही है। इतने मे एक छोटा-सा गाव दिखाई दिया। मानसिंह पानी लेने के लिए वडी तेज गति मे वहा पहुचा और पानी के विषय मे पूछा। गाव के लोगो ने कहा—'ठाकुर साहव ! यहा दूध मिलना तो सरल है पर पानी मिलना वडा कठिन हैं।'

ठाकुर—'क्या यहा पर कोई कुआ या वावडी नही है?' लोगो ने कहा—'वावडी है तो सही, पानी भी उसका मीठा है, किन्तु वहा जाने वाला वापस नही आता है। वावडी का सरक्षक राक्षस सव को मार देता है। इस गाव मे जल की पूरी तगी है। किसी का भी जीवन आराम मे नही है।'

ठाकुर मानसिंह वडी हिम्मत करके वावडी की ओर रवाना हुआ। वावडी निर्मल जल से लवालव भरी थी। ऊपर कमल छाए हुए थे। पानी अमृत जैसा मीठा था। वह वावडी मे गया, पानी पिया। झारी भरकर ज्यो ही वाहर आने लगा, त्योही विकराल रूप धारण किए हुए राक्षस ने उसे ललकारा—'अरे, ठहरना, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे, फिर पानी लेकर जाना।' हाथ मे एक लम्बी हड्डी लटकाकर वोला—'देख, यह शस्त्र मेरे हाथ मे कैसा सुन्दर लगता है?' मानसिंह ने मधुर स्वर मे कहा, राक्षसदेव ! यह शस्त्र आपके हाथ मे वहुत ही अच्छा लगता है। इस शस्त्र को मैं इन्द्रदेव का वज्र कहू या वासुदेव के चक्र की उपमा से अलकृत करू, इसके लिए मेरे पास कोई उपमा भी नही है।' ठाकुर का उत्तर सुनकर

राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुआ और बोला—'मैं तुम्हारे मीठे वचन से प्रभावित हू, वरदान मागो।'

ठाकुर ने कहा—'यहा पानी के बिना लोग क्यो तरस रहे है?'

राक्षस—'मैं सबसे यही प्रश्न करता हू जो तुमसे किया है, पर यहा के लोग जबान के बहुत कठोर और कडवे हैं, उत्तर ऐसा अश्लील देते है कि मेरा दिल खट्टा हो जाता है।'

ठाकुर—'आप मेरे निवेदन को मान किसी को भी पानी के लिए न तरसाए, बस यही वरदान मागता हू।'

ठाकुर की अमृतमयी वाणी सुनकर राक्षस बोला—'अच्छा जाओ, तुमको यह वर देता हू।' गाव मे आकर ठाकुर ने समग्र घटना-चक्र से लोगो को अवगत किया और कहा—'आप लोगो का सकट टल गया है किन्तु अपशब्दो का प्रयोग किसी के भी प्रति नही होना चाहिए।' स्थानीय लोगो ने ठाकुर साहब का बहुत-बहुत सम्मान किया। भोजन के लिए निवेदन और आग्रह करने लगे, किन्तु ठाकुर कहा मानने वाला था, वह तो शीघ्र झारी लेकर सेठजी के पास जा पहुचा।

हर व्यक्ति पर मिष्ट वचन का प्रभाव पडता है। दुनिया को वश मे करने के लिए मिष्ट वचन एक महामन्त्र है। मिष्ट वचन से शत्रु भी मित्र बन जाता है और मिष्ट वचन के अभाव मे मित्र भी शत्रु बन जाता है। अत कर्कश शब्दो का परित्याग करके मधुर वचन का प्रयोग परम अपेक्षा रखता है।

मधुर वचन से शत्रु भी, बन जाता है मित्र।
वश मे करने जगत् को, है यह मन्त्र पवित्र॥

विनीत का सच्चा ज्ञान

दो ब्राह्मण विद्यार्थी थे। बारह वर्ष तक काशी मे अध्ययन करके वे घर जाने के लिए रवाना हुए। दोनो मे एक विनीत था और एक अविनीत। मार्ग मे जाते-जाते दोनो ने एक पैर का निशान देखा। इस पर विनीत बोला—'बताओ भाई! यह पैर किसका है?' अविनीत बिना विचारे ही शीघ्र बोला—'यह पैर हाथी का होना चाहिए।' विनीत चिन्तनपूर्वक बोला—'मित्र! यह पैर हथिनी का होना चाहिए, फिर वह दाहिनी आख से कानी है, उसके ऊपर राजा की गर्भवती रानी है और अभी-अभी वह शहर गयी है।' अविनीत क्रुद्ध होकर बोला—'मेरे वचन मे कभी फर्क नही पड सकता। यह पैर हथिनी का नही हो सकता! हाथी का है।'

दोनो वाद-विवाद करते हुए शहर मे गए। वहा सर्वत्र खुशी का वातावरण छाया हुआ था। मोहल्ले-मोहल्ले मे बधाइया बाटी जा रही थी। उत्सव का कारण पूछने पर दोनो को पता चला कि महारानी के आज कुवर हुआ है। दोनो राजभवन मे गए और पूछताछ करने पर विनीत की कही हुई सभी बाते मिल गई। दोनो ने वहा भोजन किया। फिर आगे चले। रास्ते मे तालाव के घाट पर विश्राम लिया। दोनो वहा बैठे-बैठे बाते कर रहे थे।

इतने मे एक बुढिया वहा पर आ पहुची। सिर पर पानी का घडा था। उन दोनो के तिलक-छापे देखकर बुढिया बोली—'पडितजी महाराज आप ज्योतिष विद्या के जानकार है, कृपया बताइए, मेरा पुत्र परदेश से कब आएगा? उसको गए हुए तीन वर्ष हो गए।' बुढिया का तो इतना कहना हुआ कि अचानक सिर मे घडा गिर गया। अविनीत शिष्य से रहा नही गया, वह अभिमानपूर्वक बोला—'घडा फूट गया, तेरा वेटा भी मर गया।' बुढिया के क्रोध का पार न रहा। हाय-हाय करती हुई आक्रन्दन करने लगी। विनीत विद्यार्थी ने आश्वासन देते हुए कहा—'माजी! दुःख करने की जरूरत नही है। आप घर जाइये, आपका पुत्र आपको घर पर ही मिलेगा।' बुढिया दौडी-दौडी घर गयी। पुत्र उसी समय परदेश से आया था। बुढिया बोली—'वेटा! तेरे से फिर बात करूगी, पहले पडितजी को बुलाकर लाती हू।' बुढिया गयी और हाथ जोडकर बोली—'पडितजी महाराज! धन्य है आपके ज्ञान को, ज्योतिष शास्त्र को! आपकी बात अक्षरश मिल गयी। कृपया मेरे घर पधारिए, किन्तु इसे साथ न लाए।' आखिर दोनो ही उसके घर गये। बुढिया ने विनीत विद्यार्थी का काफी आदर-सत्कार किया और दक्षिणा के रूप मे उसका एक सौ एक रुपये दिये।

अविनीत ने सोचा—यह क्या? मैं जो बात बताता हू वह तो सब झूठ निकलती है। इसकी सब बाते सच मिलती है। गुरु ने विद्याध्ययन कराने मे अवश्य ही पक्षपात किया है। दोनो लडते-झगडते वापस गुरु के पास आये और सारे वृत्तान्त से गुरु को अवगत कराया। दोनो से पूछताछ कर गुरु बोले—'भाई! मैंने अध्ययन कराने मे बिलकुल पक्षपात नही किया है, किन्तु यह सब विनय और अविनय से विद्या प्राप्त करने का फल है। विनयवान् की विद्या ही वास्तव मे फलीभूत होती है।'

हरेक विद्यार्थी को विनय से विद्याध्ययन करना चाहिए। विनयवान् की विद्या ही फलवती होती है, अविनीत का ज्ञान उसके लिए प्रत्युत भारभूत सिद्ध होता है, अत गुरुजनो का विनय करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

विनयवान का ज्ञान ही, हो सकता फलवान।
विद्यार्थी अविनीत वह, कर न सका उत्थान ॥

स्वार्थ का संसार

एक सेठ था। उसके चार पुत्र थे। सेठ ने पुत्रो को विवेकशील समझकर समस्त व्यापार तथा घर की सारी सम्पत्ति उनको सौप दी। सेठानी का अचानक देहावसान हो गया। सेठ की शारीरिक शक्ति क्षीण हो गयी और आखो की ज्योति मे भी फर्क पड गया। घुटने मे दर्द का प्रावल्य होने के कारण सेठ प्राय आगन मे ही लेटा रहता था।

एक दिन सेठ की चारो पुत्र-वधुओ ने अपने-अपने पति को कहा—'पतिदेव ! हम तो श्वसुर की सेवा-चाकरी करती-करती ऊब गई। यह बुढा सारे दिन आगन मे थूकता रहता है, सफाई करने के लिए हमे समय नही है। हमे अपने वाल-बच्चो की सार-सम्भाल करनी पडती है और घरेलू कार्य भी वहुत रहता है, अत आप जाने और आपका वाप जाने, हमारा यह बूढा क्या लगता है ?'

चारो ही भाई पिता के पास आये और बोले—'पिताजी, आप सारे दिन आगन को विगाडते है, यह अच्छा नही है।' पिता ने कहा—'पुत्रो ! बाहर जाने की मुझमे शक्ति नही है और थूके विना रहा नही जाता क्या करू ?'

आखिर चारो पुत्रो ने पलग सहित पिता को उठाकर बाहर नोहरे मे डाल दिया और कहा—'पिताजी ! अव खूव आनन्द से थूका करे, कुछ भी रोकथाम नही है।'

सेठ वडा दु खी हो गया। समय पर खाना मिलना भी कठिन हो गया। जो मिलता, वह भी तीन दिन का रूखा-सूखा। सेठ ने सोचा—हाय ! यदि मैं सारा वैभव पुत्रो को नही सौपता तो आज मेरी ऐसी दशा क्यो होती ? अव सेठ का एक-एक दिन एक-एक वर्प के समान व्यतीत होने लगा। एक दिन सेठ का पुराना मित्र सुनार सेठ से मिलने के लिए आया। उसने दु ख-सुख की वाते पूछते हुए कहा—'सेठ साहव ! आजकल तो आप काफी कमजोर रहने लग गये। शरीर भी काला पड गया, केश भी लम्वे-लम्वे वढ रहे है, इसका क्या कारण है ?'

सेठ ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा—'मित्र ! इधर तो वुढापे मे सेठानी का स्वर्गवास हो गया, उधर चारो ही पुत्र वडे स्वार्थी निकले। सेवा-चाकरी की तो वात दूर रही, रोटी की भी समस्या हो रही है। मेरा एक-एक दिन वडा दु ख मे जा रहा है। क्या करु ?' सुनार वडा चतुर था। उसने कहा—'कल मैं आपके पास छोटे-छोटे गोल पत्थरो से भरकर एक पेटी भेज् गा। उसके दो ताले लगाये हुये होगे, आप अपने पलग के नीचे रखना। अगर कोई आपसे पूछे कि इसमे क्या है, तो आप उत्तर देना कि इसमे सोने के आभूषण हैं। इतने दिन तो यह पेटी मेरे मित्र के घर था, अव मैं मरणासन्न स्थिति मे हू, इसलिए मैंने आज ही मगाई है।

आपके पुत्रो को इतना मालूम होते ही सब दौडे-दौडे आयेंगे और आपकी सेवा-भक्ति मे जुट जायेगे।' सुनार अपने घर गया और उसने वैसे ही किया। पेटी आ गयी। सेठ ने पलग के नीचे रख दी। कुछ ही समय बाद चारो बहुओ को यह पता लगा कि सेठ के पास अभी तक काफी माल-ताल है। चारो ही दौडी-दौडी आयी और पूछा—'श्वसुरजी ! इस पेटी मे क्या है ?' श्वसुर ने कहा—'इसमे तरह-तरह के स्वर्ण-आभूषण है। इतने दिन मित्र के घर थी, आज ही आयी है।'

यह सुनते ही चारो बहुए सेठ की सेवा-भक्ति मे जुट गयी। कोई बादाम का हलुआ बनाकर खिलाती, कोई गर्म-दूध पिलाती तो कोई ठडा-ठडा पानी लाकर हाजिर होती। इधर चारो पुत्रो को भी यह पता लगा कि बुड्ढे के पास अभी तक काफी सम्पत्ति है तो चारो ही पिताजी की सेवा मे पहुचे। पेटी को वजनदार देख चारो ने हाथ जोडकर विनय से कहा—'पिताजी ! आपको यहा मच्छर काटते होगे, सुख की नीद भी नही आती होगी। कृपया ऊपर वाले कमरे मे पधारे।'

पिता ने कहा—'पुत्रो ! मुझे बार-बार थूकना पडता है, अत मेरे लिए यही स्थान उपयुक्त है।' पुत्रो ने कहा, 'पिताजी ! इसकी आप चिन्ता न करे। हमारे पास सब व्यवस्था है।' पुत्र सेठ को ऊपर ले गये और तन, मन, धन से उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लग गये।

सेठ बोला—'पुत्रो ! मेरी पेटी मेरे पास ही रखना। जो अधिक सेवा करेगा, उसी को पेटी दूंगा।' सेठ सुखी हो गया। दु ख की घडिया उसकी समाप्त हो गयी। कुछ वर्षो बाद सेठ का स्वर्गवास हो गया।

चारो ही भाइयो ने सोचा—लाओ ! अब तो उस पेटी को खोले, उसमे क्या-क्या माल निकलता है। चारो देवरानी-जिठानी भी मन मे अनेक कल्पनाए सजोती हुई आ गयी। सभी एकत्रित हो धन की आशा मे आखे फाड रहे थे। आखिर पेटी को खोला गया। अन्दर निकले गोल-गोल पत्थर। सब दग रह गये। सेठ को गालिया देने लगे—'हाय ! बुड्ढे ने कैसा जाल रचा ? पहले पता होता तो क्यो इतनी सेवा-चाकरी करते और क्यो घर का माल गवाते, किन्तु अब क्या ?'

सारा ससार स्वार्थ से भरा पडा है। जब तक स्वार्थ होता है तब तक सब दौड-दौड कर आते है, किन्तु स्वार्थ के अभाव मे कोई किसी को नही पूछता है, अत. इस स्वार्थ भरे ससार मे धर्म ही सबका सरक्षक है।

कहलाते जो निकट के, वही बदलते अत्र।
'मुनि कन्हैया' स्वार्थ की, पूजा है सर्वत्र ॥

बुराई का बदला

सेठजी परदेश गये हुए थे। सेठानी निरन्तर प्रतीक्षा किया करती थी कि पतिदेव अब आए। सेठानी का पीहर निकट के गाव मे ही होने के कारण वह चक्कर लगाया ही करती थी। एक दिन पीहर से घर जा रही थी। मार्ग मे अचानक मूसलाधार पानी बरसने लगा। रात्रि का समय था। बिजली चमक रही थी। उसने सोचा—ऐसी विषम स्थिति मे तो रात-भर कही रुकना ही अच्छा होगा। मठ निकट ही था। वह उस मठ मे गई और बोली—'बाबाजी महाराज! रात-भर विश्राम यही लेना चाहती हू क्योकि बरसात जोर से होने लग गई है। चारो तरफ रास्ते मे पानी भर गया है, जिससे घर जाना कठिन है।

बाबा बोला—'बेटी, घबराने की कोई बात नही है। इस पास वाले कमरे मे ठहर जाओ, सुबह चली जाना।'

सेठानी कमरे मे जाकर लेट गई किन्तु उसके मन मे विकार उत्पन्न हो गया, शीघ्र उठी और बाबा के पास आयी, कुचेष्टाए करने लगी। हाव-भाव से बाबा को रिझाते हुए बोली—'आप अकेले है। मैं भी अकेली हू मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए।' बाबा बडा सच्चा था। उसे फटकारते हुए कहा—'निर्लज्ज! चली जा चुपचाप, ऐसी बात मेरे सामने करने की जरूरत नही है।' वह कमरे मे जाकर सो गयी और मन ही मन विचार करने लगी—'हाय! हाथ भी बाल्या, पुवा भी नहीं खाया।' बाबा कही मेरी बदनामी न कर दे। अब तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे बाबा मर जाए।

सुबह जाते-जाते वह बोली—'बाबाजी महाराज! आज आप भोजन मेरे घर का ग्रहण करे।' घर जा शक्कर के मालपुओ मे विष मिला, भोजन तैयार किया और अपने नौकर के साथ बाबाजी के यहा भेज दिया। बाबा ने कहा—'आज तो मैंने भोजन कर लिया है, तुम वापस ले जाओ।' तब सेठानी स्वय गयी और हाथ जोडकर बोली—'बाबाजी! मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है जो आप मेरे छोटे से आग्रह को भी ठुकरा रहे है। आज आपको थोडा-सा भोजन तो मेरे घर का करना ही पडेगा।'

सेठानी की अति भक्ति देखकर बाबा बोला—'खैर, भोजन रख दो। भूख लगेगी तो देखा जाएगा।' बाबा के मन मे कोई पाप नही था। मालपुए वहा रखकर सेठानी अति खुश होती हुई अपने घर गई।

उसी दिन सेठानी का पति परदेश से आ गया। रात्रि का समय होने से वह घर न जाकर मठ मे ठहर गया। सोचा—सुबह चला जाऊगा। उसने बाबा से

आपके पुत्रो को इतना मालूम होते ही सव दौडे-दौडे आयेंगे और आपकी सेवा-भक्ति मे जुट जायेगे।' सुनार अपने घर गया और उसने वैसे ही किया। पेटी आ गयी। सेठ ने पलग के नीचे रख दी। कुछ ही समय बाद चारो वहुओ को यह पता लगा कि सेठ के पास अभी तक काफी माल-ताल है। चारो ही दौडी-दौडी आयी और पूछा—'श्वसुरजी ! इस पेटी मे क्या है ?' श्वसुर ने कहा—'इसमे तरह-तरह के स्वर्ण-आभूषण है। इतने दिन मित्र के घर थी, आज ही आयी है।'

यह सुनते ही चारो वहुए सेठ की सेवा-भक्ति मे जुट गयी। कोई वादाम का हलुआ वनाकर खिलाती, कोई गर्म-दूध पिलाती तो कोई ठडा-ठडा पानी लाकर हाजिर होती। इधर चारो पुत्रो को भी यह पता लगा कि बुड्ढे के पास अभी तक काफी सम्पत्ति है तो चारो ही पिताजी की सेवा मे पहुचे। पेटी को वजनदार देख चारो ने हाथ जोडकर विनय से कहा—'पिताजी ! आपको यहा मच्छर काटते होगे, सुख की नीद भी नही आती होगी। कृपया ऊपर वाले कमरे मे पधारे।'

पिता ने कहा—'पुत्रो ! मुझे वार-वार थूकना पडता है, अत मेरे लिए यही स्थान उपयुक्त है।' पुत्रो ने कहा, 'पिताजी ! इसकी आप चिन्ता न करे। हमारे पास सब व्यवस्था है।' पुत्र सेठ को ऊपर ले गये और तन, मन, धन से उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लग गये।

सेठ बोला—'पुत्रो ! मेरी पेटी मेरे पास ही रखना। जो अधिक सेवा करेगा, उसी को पेटी दूंगा।' सेठ सुखी हो गया। दुख की घडिया उसकी समाप्त हो गयी। कुछ वर्षों वाद सेठ का स्वर्गवास हो गया।

चारो ही भाइयो ने सोचा—लाओ ! अव तो उस पेटी को खोले, उसमे क्या-क्या माल निकलता है। चारो देवरानी-जिठानी भी मन मे अनेक कल्पनाए सजोती हुई आ गयी। सभी एकत्रित हो धन की आशा मे आखे फाड रहे थे। आखिर पेटी को खोला गया। अन्दर निकले गोल-गोल पत्थर। सब दग रह गये। सेठ को गालिया देने लगे—'हाय ! बुड्ढे ने कैसा जाल रचा ? पहले पता होता तो क्यो इतनी सेवा-चाकरी करते और क्यो घर का माल गवाते, किन्तु अव क्या ?'

सारा ससार स्वार्थ से भरा पडा है। जव तक स्वार्थ होता है तव तक सव दौड-दौड कर आते हैं, किन्तु स्वार्थ के अभाव मे कोई किसी को नही पूछता है, अत इस स्वार्थ भरे ससार मे धर्म ही सवका सरक्षक है।

कहलाते जो निकट के, वही वदलते अत्र।
'मुनि कन्हैया' स्वार्थ की, पूजा है सर्वत्र॥

आपको देख ही रहा हू । यदि आप मेरी लडकी सुदेश को देखना चाहते है तो घर पधारिये ।' उसने कहा—'मुझे भी आप पर पूर्ण विश्वास है । लडकी को क्या देखू ? मैं तो साक्षात् आपको देख रहा हू । आपकी वोल-चाल तथा रहन-सहन से यह पता लगता है कि आपका खानदान वहुत अच्छा है । अच्छे घर की लडकी भी अच्छी होती है । मुझे तो पूर्ण विश्वास है, जैसा आप चाहे, वैसा करे ।'

दोनो को भय था कि कही पाप का घडा फूट न जाए, एक-दूसरे की कमी का पता न लग जाए । दोनो के दिल मे ठगाई थी । ऊपर से वडे मीठे बोलने वाले थे । शीघ्रातिशीघ्र सम्वन्ध पक्का करके विवाह का दिन निकट ही निश्चित कर लिया गया । दोनो ही अपने-अपने घर पहुचे । दिल मे खुशी का पार नही था । दोनो के घर मे विवाह की तैयारिया होने लगी । सुशीलकुमार की मा ने सोचा—वस, अव तो मेरे घर मे वहू आएगी । घर का सारा काम वह सभाल लेगी । मैं वैठी-वैठी आराम करूगी ।

सुशीलकुमार सज-धजकर आखो पर दो चश्मे लगाकर विवाह-मण्डप मे आ गया । सुहागिन स्त्रिया विवाह के मगल-गीत गा रही थी । जोर-जोर से बाजे बज रहे थे । वडे ठाट-वाट से सुशीलकुमार की शादी सुदेश कुमारी के साथ हो गयी । सासारिक सभी रस्मे पूरी हो जाने के वाद परिवार वाले वहुत खुश हुए । सभी ने सोचा सुदेश कुमारी का भार उतर गया ।

इधर सुशीलकुमार का पिता भी वडा खुश हुआ । हृदय मे हर्ष उछलने लगा और जोर से वोल पडा—'गढ जीत्यो रे वेटा काणिया ।' लडकी के पिता से भी रहा नही गया, वह भी जोर से वोला—'खवर पडसी उठाणिया ।' यह सुनते ही उसके चेहरे पर उदासी छा गई और अखिर सारी धूर्त्तता स्पष्ट होते ही दोनो विलाप करने लगे । अपनी-अपनी कुटिलता का दुष्परिणाम भी स्पष्ट हो गया ।

दूसरो को धोखा देकर कोई भी सुख से जी नही सकता । स्वय का कुटिलता-पूर्ण व्यवहार स्वय के लिए दु खद सिद्ध होता है, अत किसी के भी साथ कुटिलतापूर्ण व्यवहार नही करना चाहिए ।

स्वर्णकार दो धूर्त्त थे, दोनो के मन पाप ।
स्पष्ट हुई जव धूर्त्तता, दोनो करे विलाप ।

लोभ का त्याग

एक राजा था । सतान नही होने से वह वडा चिन्ताग्रस्त रहता था । हर समय उसके मस्तिष्क मे यही चिन्तन चलता था कि पुत्र के अभाव मे राज्य का भार

किसको दूंगा ? मै अपना उत्तराधिकारी किसको चुनूगा ? इसी दु ख से मन्त्री भी पीड़ित था। वह भी पुत्र के बिना काफी शोकाकुल रहता था। उसके मन मे भी यही चिन्तन था कि मेरा मन्त्री-पद कौन सभालेगा ? मन्त्री और राजा दोनो ने ही पुत्रोत्पत्ति के लिए अनेक मन्त्र-तन्त्र करवाये। अनेको देवी-देवताओ की शरण मे गये, किन्तु भाग्य के अभाव मे वे असफल रहे।

एक दिन राजभवन मे एक महात्मा आए और राजा से पूछा—'राजन् ! तुम्हारे मुख पर उदासी क्यो छा रही है ?'

राजा—'महात्मन् ! मेरे और मन्त्री के एक भी पुत्र नही है। इससे हम दोनो दु खी हैं। इसी चिन्ता से हमारा स्वास्थ्य बिगड रहा है कि हमारा उत्तराधिकारी कौन होगा ?'

महात्मा—'राजन् ! इस समस्या का समाधान मेरे पास है। आपको बताऊ ?'

राजा—'भगवन् ! हम आपका उपकार नही भूलेगे। शीघ्र फरमाइये।'

महात्मा—'शहर मे जितने भी भिखारी है,उन सबको एक स्थान पर एकत्रित करके तुम अपने हाथ से सबको एक-एक रोटी का दान दो। मैं दरवाजे पर खडा रहूगा। जो भिखारी पूरी रोटी का त्याग करेगा, उसको तुम राजा बना देना और जो आधी रोटी को छोडेगा उसको मन्त्री पद पर नियुक्त कर देना।'

महात्मा के कथनानुसार राजा ने वैसा ही किया। महात्मा नोहरे के दरवाजे पर खडे हो गये। ज्योही दान लेकर एक-एक भिखारी बाहर निकलता, त्योही महात्मा एक-एक को कहने लगे 'जो पूरी रोटी का त्याग करेगा उसको राजा बनाया जाएगा और जो आधी रोटी छोडेगा उसको मन्त्री बनाया जाएगा।' सभी ने सोचा— यह सब कहने की बात है। कहा पडा है राज्य ? इतने मे एक भिखारी ने सोचा—आज मै आधी रोटी से ही काम चला लूंगा। उसने आधी रोटी छोड दी। एक रक ने पूरी रोटी छोड दी। महात्मा बोला—'इन्होने रोटी के लोभ का त्याग किया है।' राजा ने एक को राज्य दे दिया और एक को मन्त्री बना दिया। ऐसा देखकर सभी भिखारी चिल्लाते हुए बोले— 'ऐसा पता होता तो हम भी त्याग कर देते, किन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो सकता है ! समय चला गया।'

जो व्यक्ति लोभ का परित्याग करता है, वही आगे जाकर उन्नति के शिखर पर चढ सकता है। त्याग का सदा महत्त्व है क्योकि त्यागी पुरुष ही समाज और देश का विकास कर सकते है।

स्वल्प लोभ के त्याग से, मिल जाता है राज।
बन जाता है रक भी, जन-जन का सरताज।

सब अच्छा होगा

एक दिन एक राजा और मत्री दोनो घूमने जा रहे थे। मार्ग मे चलते-चलते दोनो थक गये। वट-वृक्ष की सघन छाया मे विश्राम करने के लिए दोनो बैठ गये। तृषाकुल राजा पानी की खोज मे इधर-उधर दृष्टि दौडा रहा था। अचानक लहलहाते हुए गन्ने को देखकर स्वय वहा गया और गन्ना तोडकर लाया। चाकू से छीलने लगा। असावधानी के कारण राजा की एक अगुली कट गई। मन्त्री ने शीघ्र उस पर पट्टी बाध दी। अगुली की असह्य पीडा से पीडित नृपति बोला—"मन्त्री ! बहुत बुरा हुआ, मैं क्षताग बन गया।"

मन्त्री ने उत्तर देते हुए कहा—"राजन् ! आप दु ख न करे। जो कुछ भी होता है वह सब अच्छे के लिए ही होता है। आपकी अगुली कटी, यह भी बहुत अच्छा हुआ।" यह सुनते ही राजा के हृदय मे क्रोधाग्नि भभक उठी। आखो को लाल करके बोला—"कृतघ्नी ! मेरी तो अगुली कटी और तू कहता है—बहुत अच्छा हुआ ? कहा गई तेरी बुद्धि ? मै ऐसे क्रूर हृदय वाले व्यक्तियो को रखना नही चाहता। चले जाओ अपने घर।" नृप की यह डाट सुनकर मन्त्री अपने घर चला गया।

राजा को शिकार करने की आदत थी। वह इसी जगल मे शिकार की खोज मे इधर-उधर भटक रहा था। पार्श्वस्थ पहाडी से निकलकर अचानक वहा कई डाकू आ गये। डाकुओ ने देवी की बलि चढाने के लिए राजा को पकड लिया। देवी के मन्दिर मे गये और निरीक्षण करने लगे कि कही यह क्षताग तो नही है। सूक्ष्म दृष्टि से सभी अगो का निरीक्षण करते-करते राजा की कटी हुई अगुली पर सहसा नजर पहुची। छताग की बलि चढाई नही जाती, इसी कारण उन्होंने उसको छोड दिया। राजा खुश होता हुआ अपने राजभवन मे पहुचा। बैठा-बैठा चिन्तन करने लगा—मन्त्री बडा बुद्धिमान था। उसने पहले ही मुझे कह दिया था, जो होता है वह अच्छे के लिए होता है। अगर मेरी अगुली कटी हुई न होती, तो आज मुझे यमराज के घर जाना पडता। मै किसी भी स्थिति मे जीवित नही बच सकता था। मैंने बहुत बडी गलती की, ऐसे विचक्षण मन्त्री को निकाल दिया।

राजा ने मन्त्री का पता लगा वापस उसे राजभवन मे बुलवाया और सारा वृत्तान्त उसको सुनाया। मन्त्री ने कहा—"राजन् ! मैंने पहले ही कहा था, जो होता है अच्छा ही होता है और जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। आपके लिए भी अच्छा हुआ और मेरे लिए भी अच्छा हुआ।"

राजा—"तुम्हारे लिए अच्छा कैसा हुआ ?"

मत्री—"राजन् ! मै आपका उपकार भूल नही सकता हू। आप क्रुद्ध होकर यदि मुझे नही निकालते और मैं आपके साथ होता तो मुझे वहा पर अवश्य मरना पडता क्योकि मैं क्षताग नही था। अत मेरे लिए भी अच्छा हुआ।" राजा वहुत खुश हुआ और पुन मन्त्री पद पर उसे नियुक्त कर अपने आप को कृत्य-कृत्य समझने लगा।

किसी भी व्यक्ति को निराश नही होना चाहिए। 'यद् भाव्य तद् भविष्यति' जो होना है वह होकर रहेगा, और जो होता है वह अच्छा ही होता है इसी तथ्य पर अटल रहकर इन्सान को आशावान् रहना चाहिए।

जो होना, होता वही, जो होता वह ठीक।
आशावादी वन सतत, वढे चलो निर्भीक॥

नियम पर अटल

एक गरीव वनिया था। वह वडी कठिनाई से घर का गुजारा चलाता था। एक दिन कोई पर्व समझ, वह मुनिजनो का व्याख्यान सुनने चला गया। व्याख्यान समाप्त होते ही मुनि ने यथाशक्ति सवको एक-एक नियम दिलाया। जव उस वनिए को कहा गया तो उसने कहा—"महाराज, मैं गरीव हू। मुझसे नियम नही निभ सकता।" मुनि के अत्याग्रह से उसने 'आज दिन भर विना आज्ञा कोई भी वस्तु नही लूगा' यह नियम लिया। मुनि को नमस्कार कर वह अपने काम को रवाना हुआ। निकटस्थ छोटे गाव से सौदा वेच, वह अपने नगर वापस आ रहा था। मार्ग मे निवटने के वाद वह धूल मे लोटे को माज रहा था कि उसे एक कलश का किनारा नजर आया। उसने मिट्टी को दूर कर कलश को निकाला। वह मोहरो से खचाखच भरा हुआ था। लेने को जी ललचाया किन्तु वह दुविधा मे पड गया—नियम रखू तो धन जाता है और धन रखू तो नियम जाता है। उसने सोचा—अरे मन ! जीवन दो दिन का है। नियम लेकर कभी नही तोडना चाहिए। मुनि ने नियम तो जवरन दिलाया नही था। मैने अपनी इच्छा से लिया था। नियम के प्रताप से ही आज लक्ष्मी जी के दर्शन हुए है। नियम तो आज का है कल आकर ले जाऊगा।

वापस उसी स्थान पर घडे को गाड, उस पर मिट्टी डाल निशानी के लिए ऊपर एक छोटी सी लकडी गाडकर घर आ गया। खाना खाकर शीघ्र लेट गया। नीद न आने के कारण स्त्री ने पूछा—"पतिदेव ! आज आपका मन कहा दौड रहा है?" उसने टालमटोल करते हुए कहा—"नही ऐसी कोई बात नहीं है।"

आखिर स्त्री के अत्याग्रह के आगे वह अपने मन की बात को छिपा नही सका। ज्योही वह अपनी स्त्री को सब बाते सुनाने को उद्यत हुआ त्योही अचानक उसके घर मे दो चोर आए। स्त्री बोली—"ऐसा अवसर बार-बार नही आता। नियम तोडकर धन ले आते तो सारा दु ख दूर हो जाता। नियम भग का प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो जाते। किसी को यदि उस निशानी का पता लग गया तो फिर हाथ मलते ही रह जायेगे।"

दोनो की सारी बाते सुनकर चोर दौडे-दौडे वहा गये। लकडी की निशानी देख बडे खुश हुए। मिट्टी हटाकर कलश निकाला किन्तु दैवयोग से वह मोहरे बिच्छू बन गई। ज्योही लेने के लिये दोनो ने कलश मे हाथ डाला त्योही बिच्छुओं ने डक मारा। दोनो चिल्लाये और सोचा—बनिया बडा धूर्त्त निकला। अब तो वापस जाकर बदला लेना चाहिए। कलश को रस्सी से बाधकर उस बनिये के घर पर लाकर डाल दिया और दोनो भाग गये।

कलश के छप्पर पर गिरते ही जोर से धमाका हुआ बनिये की स्त्री घबराई और बोली—"पतिदेव! बाहर जाकर देखिये, छप्पर पर क्या गिरा है?" बनिया लाठी लेकर बाहर आया तो मोहरो से चौक चमचमा रहा था। स्त्री भी आई। दोनो के हृदय मे खुशी का पार नही रहा। बनिया बोला—"देख! नियम पर अटल रहने से घर बैठे ही लक्ष्मी जी के दर्शन हो गये।"

जो व्यक्ति अपने नियम पर अटल रहते हैं, सकट मे भी जो नियम नही तोडते है, उनको नियम के प्रभाव से यथेष्ट की उपलब्धि होती है। अत· 'प्राण जाये पर प्रण नही जाये' प्राण भले ही चले जाये पर प्रण को नही तोडना चाहिए।

नियम-निष्ठा नर प्रवर की, होती विजय अगम्य।
एक नियम के योग से, मिला मनेच्छित द्रव्य॥

आप भला तो जग भला

एक शहर मे एक करोडपति सेठ रहता था। उसके पाच पुत्र और एक पुत्री थी। जहा पाच भाइयो मे एक बहिन होती है, वहा लाड-प्यार भी अधिक होता है। इसलिए उसका नाम भी 'लाडकवर' रखा गया, किन्तु वह लाड ही लाड मे इतनी बिगड गई कि हरेक के साथ गाली-गलौज करना, लडाई-झगडा करना उसके लिये साधारण बात हो गई। आस-पास के गावो के व्यक्ति उसके कर्कश स्व-भाव से परिचित हो गये। जिससे उसके साथ कोई विवाह भी करना नही चाहता

था। सेठ को बडी चिन्ता हो गई। आखिर सेठ ने दूर देशान्तर मे अच्छा घर व वर देखकर वडे ठाट-वाट से लाडकवर का विवाह किया। किन्तु उसके स्वभाव मे किंचित भी परिवर्तन न हुआ। वह निरन्तर वात-वात पर सास और जेठानी मे झगडा करती रहती थी। श्वसुर, पति, जेठ किसी का भी कहना नही मानती थी। सब उस वहू से ऊव रहे थे। सब ने सोचा—यह वहू पीहर चली जाय तो अच्छा, घर की अशान्ति मिट जाये। आखिर एक आदमी के साथ उसे पीहर के लिये रवाना कर दिया।

पिता ने सिर पर हाथ रखकर पूछा—पुत्री! तेरा ससुराल कैसा है?"

पुत्री—"पिताजी! ससुराल क्या है, साक्षात नरक है।"

पिता—"तेरे सास-श्वसुर कैसे है?"

पुत्री—"सास तो डायन है और श्वसुर टाकी है।"

पिता—"देवरानी-जिठानी कैसी है?"

पुत्री—"वे तो वनी वनाई चुडैल हैं।"

पिता—"खैर, सवको जाने दो, किन्तु तेरा पति कैसा है?"

पुत्री—"उनमे भी यदि कुछ अक्ल होती तो फिर रोना ही किस वात का? वे तो यमदूत के तुल्य है।"

पिता—"पुत्री! मेरे पास एक मत्र है। यदि तुम उस मत्र को केवल छ महीनो तक साधना करोगी तो सारा ससुराल तेरे वश मे हो जायेगा।"

पुत्री—"ऐसा मत्र तो मुझे अवश्य वताइये। मैं उसकी निर्विघ्न साधना करूगी।"

पिता—मत्र यह है—"णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व साहूण।" अगर तेरी कोई भूल वताये तो मौन रहकर इस मत्र को याद कर लेना। हाथ जोडकर 'ठीक' शब्द के अतिरिक्त कुछ नही वोलना। सास श्वसुर ने उसे नही वुलाया, फिर भी सेठ ने पुत्री को ससुराल भेज दिया। अव उसे कोई भी कुछ कहता तो वह मौन रहती और उस मत्र का स्मरण करने लग जाती। धीरे-धीरे उस महामत्र के प्रभाव से लाडकवर की काया-पलट हो गई। और सभी घर वाले उसका पक्ष लेने लगे। सास ने थोडे ही दिनो मे वहू को घर की चाविया सौप दी। और सवको कह दिया कि मेरी यह वहू ही घर की मालकिन होगी। इसे कुछ भी कठोर कहने की आवश्यकता नही है।

कुछ ही दिनो वाद लाडकवर के पिता ने पुत्री को लेने के लिए एक आदमी भेजा। सास ने कहा—"आदमी वहू को लेने के लिए वार-वार क्यो आता है? वहू के विना मेरे घर का काम नही चल सकता। अच्छा आज तो ले जाओ शीघ्र ही वापस भेज देना।" वडी मुश्किल से लाडकवर पीहर आई। पिता ने पूछा—

"पुत्री ! ससुराल कैसा है ?'

पुत्री—"पिताजी ! साक्षात् स्वर्ग ही है।"

पिता—"सास-श्वसुर कैसे है ?"

पुत्री—"आपके (माता-पिता के) तुल्य हैं।"

पिता—"तेरा पति कैसा है ?"

पुत्री—"साक्षात् परमेश्वर है।"

पिता—"तेरी देवरानी-जिठानी कैसी है ?"

पुत्री—"बहिन से भी अधिक प्यार करती है।"

सेठ के मुख से सहसा यही वाणी निकली—"आप भला तो जग भला", अर्थात् आत्मदमन करने वाला ही सबको प्रिय लगता है और सबके लिए पूज्य बन जाता है।

जिसने अपनी आत्मा का दमन कर लिया है, उसने सारे ससार को जीत लिया है। आत्म-दमन ही शान्ति की प्रथम मजिल मानी गई है अतः हरेक को आत्म-दमन करना सीखना चाहिए।

आत्म-दमन ही विश्व मे, सुख का सच्चा द्वार।
दमितात्मा के सामने, अवनत है ससार ॥

समय का मूल्य

सेठ धनीराम की पुस्तको की एक दुकान थी। सेठ जी नीतिज्ञ होने के साथ-साथ सदाचारी भी थे। सारा शहर उनको इज्जत की दृष्टि से निहारा करता था। एक दिन उनकी दूकान पर एक ग्राहक आया। उसने नौकर से कहा—"मुझे यह पुस्तक खरीदनी है, इसकी क्या कीमत है ?"

नौकर ने उत्तर दिया—"एक रुपया।"

ग्राहक—"इस छोटी सी पुस्तक का एक रुपया ? कम नही हो सकता ?"

नौकर—"नही।"

ग्राहक का मस्तिष्क चिन्तन व मनन के गहरे सागर मे डुबकिया लगाने लगा। कैसे खरीदू यह पुस्तक ? कीमत अधिक है। आखिर ग्राहक ने पूछा—"क्या सेठ साहब अन्दर है ? उनसे मिलना चाहता हू।"

नौकर और ग्राहक का सवाद चल ही रहा था कि इतने मे अचानक सेठ ने दरवाजा खटखटाया। ग्राहक ने सत्कार भरी वाणी मे कहा—"सेठ साहब !

नमस्कार ! आपकी ही प्रतीक्षा मे बैठा था। अच्छा हुआ आप शीघ्र पधार गये।"

सेठ जी ने कहा—"बोलो भाई ! क्या काम है? किसलिए प्रतीक्षा कर रहे हो?"

ग्राहक—"सेठ साहब ! इस पुस्तक की कम से कम क्या कीमत है?"

सेठ जी—"सवा रुपया।"

ग्राहक—"हैं ! अभी तो आपके नौकर ने एक रुपया कहा था। अब सवा?"

सेठजी—"बिलकुल सही है, क्योकि मैं अपना काम छोड़ कर आया हू। इसमे मेरा समय भी तो खर्च हुआ, वह कहा जायेगा?"

ग्राहक के आश्चर्य का पार नही रहा। वह कल्पना के अन्तरिक्ष मे विचरण करने लगा। अरे यह क्या? कुछ समझ मे नही आ रहा है। सेठजी कही नशे मे तो नही है?

आखिर उसने कहा—"सेठजी ! मोल-तोल करना तो रहने दीजिए, अच्छा हो मुझे इसकी कम से कम कीमत बता दें, तो मैं खरीद लू।"

सेठजी—"डेढ रुपया।"

ग्राहक—"वाह-वाह ! क्या आप भी बच्चो जैसा खिलवाड कर रहे हैं। अभी तो अपने सवा रुपया कहा था और अब डेढ रुपया?"

सेठजी—"हा, मैंने पुस्तक की कीमत उस समय सवा रुपया कही थी। पर अब तो उसकी कीमत डेढ रुपया है और तनिक ध्यान से सुन लीजिए—ज्यो-ज्यो आप देरी करेंगे, पूछताछ कर हमारा अमूल्य समय नष्ट करते जायेंगे। त्यो-त्यो पुस्तक की कीमत पर समय का मूल्य भी बढता जाएगा। यदि आपको लेनी है तो शीघ्र ले लीजिए। कुछ समय पश्चात् पुस्तक की कीमत दो रुपया हो जायेगी।"

ग्राहक ने सोचा—अब अधिक भाव-ताव करना उचित नही है क्योकि क्रमशः मूल्य मे वृद्धि हो रही है। तुरन्त जेब से पैसे निकाल कर दे दिये और पुस्तक खरीद कर अपने घर की राह ली। घर पहुचा। सोचने लगा कीमत क्रमश क्यो बढती गई। आखिर उसने यही निष्कर्ष पाया कि समय ही सच्चा धन है। समय से बढकर ससार मे कोई भी अमूल्य निधि नही है। समय को व्यर्थ मे नष्ट करना मूर्खता है और समय का सदुपयोग करना बुद्धिमता है। भगवान् महावीर ने कहा—जो समय व्यतीत होता है, वह वापस लौटकर नही आता। अत हरेक को समय का मूल्याकन करना चाहिए।

समय न खोना व्यर्थ मे, समय बडा अनमोल।
समझो कीमत समय की, अन्तर आखे खोल।।

एक दिन का राज्य

तीन मित्र थे। तीनो मे परस्पर वडा प्रेम था। विद्यालय मे भी तीनो एक साथ अध्ययन करते थे। तीनो मे एक राजकुमार था और दो वणिक्पुत्र। एक दिन तीनो मित्र विद्यालय से घर आ रहे थे। मार्ग मे वणिक्पुत्रो ने राजकुमार से कहा—"मित्र! अभी तू घनिष्ठ मित्रता का परिचय दे रहा है, लेकिन जब राज-सिंहासन पर आरूढ हो जाएगा, तब क्या हमारे साथ अभी जैसा व्यवहार करेगा? हमको कुछ बख्शीश करेगा?"

राजकुमार ने कहा—"दोस्तो! आपस मे अक्षुण्ण प्रेम भी कभी भुलाया जाता है?" उसी वक्त मैत्री की निशानी के रूप मे राजकुमार ने यह लिखकर दे दिया—"मैं राजा बनने के बाद तुम्हे एक-एक वरदान दूगा, जो भी तुम मागोगे वही मिल जायेगा।" कुछ ही समय बाद वह राजकुमार राज्यासन पर बैठा और वे दोनो मित्र अच्छा समय देखकर मित्र से कुछ मागने के लिए गये।

पहले मित्र ने कहा—"मित्र! मुझे न तो धन चाहिए तथा न कोई जमीन-जायदाद। मुझे चाहिए एक दिन का राज्य।"

राजकुमार ने हा भर ली और दूसरे दिन सारे शहर मे उसकी आज्ञा प्रसारित करवा दी गई। राज्यासन पर बैठते ही उसने समस्त राज्य कर्मचारियो के लिए यह आदेश जारी कर दिया कि जिसको जितना वेतन मिलता है अब उसे आधा मिलेगा। अपना राज्य भडार भरने के लिए उसने सब कर दुगने कर दिये। सारे शहर मे हाहाकार मच गया। चारो तरफ से राजा को धिक्कार मिलने लगी, किन्तु वह स्वय तो राज्य अभिमान के शिखर पर चढा हुआ था। न किसी की मानता और न किसी की सुनता। सारा दिन स्नान भोजन आराम आदि कार्यो मे लगा दिया। पूरी रात नृत्य सगीत व निद्रा मे बीत गयी।

प्रात. होते ही सेवक सरक्षको ने कहा—"जनाब! आपका समय समाप्त हो गया है। एक दिन के लिए जो आपको अधिकार मिला था, वह अब नही है।" वह हक्का-बक्का रह गया! क्या एक दिन ही? हाय? मैं तो कुछ कर ही नही सका। आखिर आरक्षको ने हाथ पकडकर उसको बाहर निकाल दिया। ज्योही वह राजमहल से बाहर आया त्योही हजारो लोग चारो तरफ से उसके पीछे पड गये। कई उस पर थूकते थे, कई रेत उछालते, कई धिक्-धिक् करते। उसे बुरी गालिया देते क्योकि एक ही दिन मे उसने सबके साथ दुश्मनी मोल ले ली।

दूसरे मित्र ने भी एक दिन के राज्य की याचना की। राजकुमार ने सहर्ष उसके लिए भी घोषणा करवा दी। ज्योही उसने राज्यभार सभाला त्योही समस्त राज्य-कर्मचारियो के वेतन दुगने-तिगुने कर दिये। जनता को समस्त करो से मुक्त

कर दिया। सार्वजनिक सस्थाओ को खुले हाथ दान देना शुरू कर दिया। दीन-हीन कोई भी आये उनकी आशा को फलवती बनाना उसने अपना अटल सिद्धान्त बना लिया। सारे दिन जन-हिताय, जन-विकासाय अनेको विचार विमर्श चले। अनेको योजनाए तैयार की गई। सायकाल होते ही राज्य का भार मन्त्री को सभालकर वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग मे अनेको राज्य-कर्मचारियो, विद्वानो व व्यापारियो द्वारा उसका अभूतपूर्व हार्दिक स्वागत किया गया। घर-घर उसकी कीर्ति-ध्वजा फहराने लगी और समस्त जन-मानस के लिए वह श्रद्धा का पात्र बन गया।

मनुष्य का जन्म भी एक दिन के राज्य के समान है। विवेकशील व्यक्ति ही इसका सदुपयोग कर सकते है। दुरुपयोग करने वालो का कभी सत्कार नही होता है, अत हर एक को इस जन्म का लाभ उठाना चाहिए।

एक दिवस के राज्य सम, मानव का अवतार।
लाभ उठाते दक्ष नर, नहि खोते बेकार॥

स्वभाव में रमण

एक ब्राह्मण था। वह गगा नदी मे स्नान के लिए गया। गगा के तटस्थ वृक्ष पर एक बिच्छू था। अचानक वह गगाजल मे गिर पडा और तडपने लगा। उसे देखकर ब्राह्मण का दिल काप उठा। हृदय मे दया के भाव जागृत हुए। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छू को उठाया किन्तु दुर्जन अपनी दुर्जनता को नही छोडते हैं। बिच्छू हाथ पर चढा और डक मार दिया। डक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया। बिच्छू पानी मे गिर गया और वैसे ही तडपने लगा ब्राह्मण दयावान् था। वह दूसरो का दु ख देख नही सकता था। उसने सोचा अगर इस बिच्छू को नही निकालूंगा, तो बेचारा मर जायेगा उसने फिर उस बिच्छू को बाहर निकाला, किन्तु वह अपने स्वभाव का परित्याग कैसे कर सकता था ? डक लगाते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और वह फिर पानी मे गिर पडा। ब्राह्मण ने इस तरह तीन चार बार बिच्छू को उठाया, लेकिन हर बार बिच्छू ने उसे काटा।

गगा के तट पर एक कवि खडा था। अनिमेष नयन उस ब्राह्मण के अनोखे खेल को वह देख ही रहा था। उससे रहा नही गया। आखिर उसने पूछ ही लिया।

"भाई! बिच्छू ने तुमको बार-बार काटा, फिर भी तुम उसको बार-बार निकालने का प्रयास करते रहे। क्या इसमे कोई तथ्य है ?"

ब्राह्मण-ने कहा—"कविवर ! वह अपने स्वभाव को नही छोडता है तो फिर मैं मेरे स्वभाव को कैसे छोड़ूं ? दुर्जन अपनी दुर्जनता को नही छोडता है। सज्जन अपनी सज्जनता का परित्याग कैसे करेगा ?"

दुर्जन के साथ भी जो सज्जनता का व्यवहार करता है, बुरे के साथ भी जो भलाई करता है वही इस भूतल पर सन्त पुरुष कहलाता है।

तजे न विपदा मे कभी, ब्राह्मण सम सौजन्य।
नही छोडता विच्छू सम, दुर्जन निज दौर्जन्य॥

देखा-देखी मत करो

एक गाव मे टीलिया नाम का एक जाट रहता था। उसकी जाटनी का देहावसान हो गया। जाट ने लोगो से कहा—"दुनिया मे सतिया तो बहुत हुई है, किन्तु सता आज तक कोई नही हुआ है। अब मेरी इच्छा है कि जाटनी के पीछे सता वन जाऊ। आप लोग मुझे जाटनी के साथ-साथ जला देना।" लोगो ने उसे काफी समझाया, किन्तु वह कव मानने वाला था। वस, चिता पर जाटनी को सुलाया गया उसके ऊपर ही वह जाट सो गया, धीरे-धीरे आग बढने लगी।

इतने मे गाव मे आग लग गई। जिससे श्मशान मे गये हुए सारे लोग चिता को वीच मे छोडकर गाव चले गये। पीछे से त्योही अग्नि का ताप जाट के शरीर तक पहुचा त्योही वह वहा से भाग चला। उसके कपडे सारे जल चुके थे, अतः झाडी मे जाकर छिप गया।

गाव की आग शान्त कर लोग वापिस-श्मशान भूमि मे पहुचे। सवने सोचा, जाटनी के साथ-साथ जाट भी जलकर सता हो गया है, ऐसा मालुम पडता है। लोग अपने-अपने घर चले गये।

इधर उस टीलिए को भूख सताने लगी। तीन चार दिन वीत चुके। वह रोटियो की तलाश मे सलग्न था। अचानक एक औरत उसी मार्ग से (जहा टीलिया रहता था) खाना लेकर खेत पर जा रही थी। टीलिए ने उसे ललकारते हुए कहा—"ठहर जा, ठहर जा, मुझे भूख लग रही है।"

औरत ने पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

वह वोला—"मेरा नाम टीलिया है।

टीलिया नाम सुनते ही वह घवराई। खाने का सामान वही छोड कर दौडी-दौडी गाव मे आई और पचो से कहने लगी—"टीलिया तो मरकर भूत हो गया

है। अमुक झाडी मे छिपकर वैठा है। मै वडी मुश्किल मे प्राणो को वचाकर आई हूं।"

गाव के लोग इकट्ठे हुए। सवने कहा—"भूत को वश मे करने के लिए काजी जी को वहा भेजा जाय।" काजी जी घोडी पर चढकर उम झाडी के निकट पहुचे। खूंटी गाडकर घोडी को एक तरफ वाध दिया और भूत को वश मे करने के लिए तरह-तरह के मन्त्र पढने लगे। टीलिया मुन ही रहा था, अचानक वहा आया और काजी जी का कान पकड कन्धो पर वैठ गया। काजी जी ने वडी मुश्किल से पिंड छुडाया और शीघ्र घोडी पर सवार हो घोडी को दौडा दिया। पीठ मे तो खूंटी की लग रही थी, किन्तु काजी जी को यह पता नही लगा कि खूंटी की मार पड रही है। वे तो जोर-जोर से हल्ला करते जा रहे हैं—"हाय रे ! मुझे तो टीलिया मार रहा है।"

लोगो ने पूछा—"टीलिया कहा है ? यह तो खूंटी की लग रही है। तव कही काजी जी ने घोडी ठहराई।"

काजी जी ने कहा—"यह भूत ऐसे वश मे आने वाला नही है। इसका मौसर होना चाहिए।"

लोगो की प्रेरणा से घर वालो को कर्ज लेकर भी मौसर निश्चित करना पडा। टीलिया को भी पता लगा कि अमुक दिन मेरा मौसर होने वाला है। ठीक उसी दिन वह तालाव पर जा पहुचा। वहा एक धोवी कपडा धो रहा था। टीलिए ने जोर से चीख मारी—"धोवीडा ठहरजा, ठहरजा, मैं टीलिया आ रहा हू" धोवी भूत के डर से कपडो को छोडकर दौड गया। पीछे से टीलिया धोये हुए सफेद कपडो को पहनकर हाठ मे लाठी ले अपने घर जा पहुचा। वहा सैकडो ही स्त्री पुरुष भोजन कर रहे थे। टीलिया को देखते ही सव चिल्लाने लगे—"अरे ! टीलिया भूत आ गया है, दौडो-दौडो।" सव एक-दूसरे से आगे दौडने लगे। टीलिए ने कहा—"अरे भाइयो ! दौड क्यो रहे हो ? मैं भूत नही हू। वही टीलिया हू जो पहले था। आखिर मे सव भेद खुला और लोग तालिया पीटते हुए वोले—

देखा देखी सत चढे, चढ्यो टीलियो जाट।
धोवी गवाया कापडा, काजी कुटाई टाट ॥

घर वालो का लज्जा से सिर झुक गया। मन ही मन दुख करने लगे—'हाय ! लोगो मे हसी मजाक हुई सो हुई, किन्तु मौसर के लिए जो हजारो का कर्ज लिया गया वह कैसे उतरेगा ?'

जो व्यक्ति अपनी ताकत को नही तोलता है और केवल देखा-देखी करने पर उतारू हो जाना है, उसे कदम-कदम पर लज्जित होना पडता है। अत आत्म-

शक्ति को देखकर ही किसी क्षेत्र मे कदम बढाने चाहिए ।

आत्म-शक्ति देखे बिना, करता है जो काम।
वह मानव हर क्षेत्र मे, पछताता अविराम ॥

चारों के तुक्के सच्चे

चार मूर्ख थे। चारो मे अच्छा प्रेम था। एक दिन चारो ही परदेश के लिए रवाना हुए। रास्ते मे भूख लग आई। चारो ने वट वृक्ष के नीचे विश्राम लिया। भोजन पकाने के लिए अलग-अलग काम बाटा गया। रोटिया तैयार हुई, किन्तु घी लाना किसी को भी नही सौपा था। इससे परस्पर तना-तनी बढी। घी कौन लाये ? आखिर यह फैसला हुआ कि जो पहले बोलेगा उसे ही घी लाना पडेगा। चारो पलथी मारकर बैठ गये। इतने मे दो कुत्ते आये। सारी की सारी रोटिया खा गये। कोई भी नही बोला। रात पड गई। अर्द्ध-निशा मे दो चोर चोरी करके और उसी वृक्ष के नीचे अपने थैलो को ठीक करने लगे। इतने मे ही उनको पुलिस वाले दीख गये। चोर तो दौड गये किन्तु धन के थैलो को वही छोड गये। पुलिस वालो ने धन देख कर उन चारो से पूछा—"क्या तुम चोर हो ?" घी लाने के भय से चारो ही मौन रहे। चारो को हथकडिया पहिनाकर राज-दरबार मे लाया गया। राजा ने चारो को बड़े चोर समझकर फासी का दड सुना दिया। चारो को श्मशान भूमि मे लाया गया। फासी पर लटकाने की तैयारी थी। इतने मे ही छोटे मूर्ख से रहा नही गया और वह जोर से बोला—'हम चोर नही हैं'। यह सुनते ही तीनो उछल पडे और हल्ला करने लगे—"घी तुम्हे लाना है, घी तुम्हे लाना है।"

पुलिस वाले वाले दग रह गये। यह क्या बला है ? शीघ्र राज-दरबार मे आये और उन्होंने समग्र वृत्तान्त से राजा को अवगत किया। नृप के आदेश से चारो ही मूर्ख पुन राज-दरबार मे हाजिर हुए। उन चारो की शक्ल देखकर राजा ने मन मे सोचा—ये मूर्ख अवश्य है, किन्तु हैं किस्मत वाले। राजा ने किस्मत की परीक्षा करने के लिए चारो से प्रश्न किया—"बोलो भाई ! मेरी इस बधी मुट्ठी मे क्या है ?" पहले मूर्ख ने तुक्का लगाकर कहा—"गोलमाल, दूसरे ने कहा, 'रग गुलाब', तीसरे ने कहा 'दानेदार' चौथे ने कहा खोल राजा 'अनार'।" चारो के तुक्के सच्चे होने से राजा बडा खुश हुआ और उसने भडारी से कहा—"इन चारो को पांच-पाच सौ रुपये इनाम दे दो।"

चारो ही इनाम लेकर उसी वृक्ष के नीचे पहुचे। रात भर विश्राम यही लेना है सुबह आगे चलेगे। रुपयो को वृक्ष की जड मे खुले आम रखकर चारो सो गये। चिता फिक्र नही होने से नीद आ गई।

इधर एक आरक्षक फिरता-फिरता वहा पहुच गया। दो हजार रुपयो को देखकर उसका जी ललचा गया। रुपयो को लेकर वह अपने घर आ गया। सुबह चारो उठे। रुपये न मिलने से चारो राजा के पास आये। राजा ने कहा—"तुम ही तुक्के लगाकर बताओ कि रुपये किसने लिये हैं?"

पहला बोला—"आयो फिरतो-फिरतो", दूसरा बोला—"आयो घोडे चढतो", तीसरा बोला—'हाथ मे तलवार', और चौथा बोला—"चोर कोतवाल"। कोतवाल ही हमारे रुपयो का चोर है। कोतवाल को दरबार मे बुलाया गया। नृप ने सब बात पूछी। आखिर चारो के तुक्के सच्चे हो गये। राजा उन चारो के सही तुक्के पर बडा खुश था, चारो को एक-एक हजार रुपये का इनाम फिर दिलवाया। चारो ने सोचा—अब कही नही जाना है, बस घर मे ही रहना है।

चारो मूर्ख होते हुए भी चारो की किस्मत अच्छी थी जिससे उनका सकट टल गया और उनको अच्छी धनराशि मिल गई। अत दुनिया मे किस्मत ही सच्ची निधि है।

चारो मूर्खों के वचन, हुए सत्य अभिराम।
किस्मत के आधार से, इच्छित हुए तमाम॥

पाप का घड़ा

कमल और विमल दो मित्र थे। दोनो मे अच्छा प्रेम था। कमल करोडपति था, विमल गरीब था। विमल के पुत्र का विवाह होने के कारण वह मित्र कमल को निमत्रण देने गया।

कमल ने कहा—"मित्र! तेरे पुत्र की शादी मे अवश्य भाग लूंगा, किन्तु तुम यह एक हार ले जाओ, पुत्र को पहिना देना—अच्छा लगेगा। मित्र के अत्याग्रह से आखिर विमल ने उस हार को लेकर घर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे जाते-जाते कुछ ही क्षणो मे उसका मन बिगड गया। विचार करने लगा—इस नवलखा हार को यदि वापस न दूं, तो मेरा दारिद्र्य दूर हो जायेगा। मित्र के पास न तो कोई साक्षी है और न मेरे हस्ताक्षर है। वह कैसे मागेगा, हार हजम हो जाएगा। इसी दृष्टिकोसे हार को घर मे छिपा दिया।

दूसरे दिन कमल विवाह-मण्डप मे आ पहुचा। दूल्हे के गले मे हार न देख कमल ने कहा—"मित्र विमल ! दूल्हे को वह हार क्यो नही पहिनाया ?"

विमल—"कौन सा हार ?"

कमल—"ऐसे कैसे बोलते हो ? कल मैंने हार दिया तो था।"

विमल—(सरोष) 'कब दिया था हार ? बिल्कुल नमक की रोटी बना रहे हो।'

कमल हक्का-बक्का रह गया। मुख निस्तेज हो गया। आखिर दोनो मे इतनी तना-तनी बढी कि, कमल को राजदरबार मे जाना पडा। राजा ने कमल की सब बाते सुनकर पूछा—"क्या तुम्हारे पास कोई साक्षी या उसके हस्ताक्षर है ?"

कमल—"राजन् ! मैंने तो हार मित्रता के नाते दूल्हे को पहिनाने के लिए दिया था। हस्ताक्षर कराने का कोई सवाल ही नही था। मुझे क्या पता था कि यह मित्र होकर मेरे साथ ऐसा बर्ताव करेगा ? विश्वासघात करेगा ?"

राजा ने विमल को बुला, सारा किस्सा पूछा।

विमल—"राजन् ! मेरे जैसे गरीब को नौ लाख रुपये का हार कौन देता है ?"

राजा—"क्या कमल तेरा मित्र है ?"

विमल—"मित्र था, किन्तु अब मुझ पर झूठा कलक लगा रहा है, अत शत्रु से भी बढकर है।" राजा ने दोनो की बात सुनकर कहा—"कल तुम दोनो को देवी के मदिर मे सुबह उपस्थित होना है। वहा पर न्याय करूगा कि कौन सच्चा है कौन झूठा ?"

राजा की उद्घोषणा के अनुसार सूर्य उदय होते ही देवी के मदिर मे हजारों की भीड जमा हो गई। राजा भी सिंहासन पर बैठ गये। कमल भी आ गया। धूर्त विमल भी घडे मे हार को रखकर, ऊपर कपडा तथा रस्सी बाध, हाथ मे घडे को लटका कर सभा मे उपस्थित हो गया। नृप ने तथा दूसरो ने पूछा—"साथ मे घडा कैसे लाए हो ?"

विमल ने कहा—"मेरे कण्ठ-शोष का रोग है, समय-समय प्यास लगती है, अत पानी का घडा मुझे हमेशा साथ रखना ही पडता है।"

राजा ने जन-समूह को सुनाते हुए कहा—इस छोटी सी खिडकी मे से जो निकल जाएगा, वह सच्चा है और जो फस जाएगा वह झूठा है।

विमल ने कमल से कहा—"मेरा यह जल का घडा थोडी देर के लिए तू हाथ मे रखना।" बस ! घडा उसे पकडाकर जोर से बोला—'हे सत्य सहायक देवी ! यदि मेरे पास हार हो तो मैं इस खिडकी मे फस जाऊ और यदि कमल का हार कमल के पास हो तो मैं निकल जाऊ।' इस प्रकार कहता हुआ वह शीघ्र खिडकी

से निकल गया। सभी लोग कहने लगे—"विमल सच्चा, कमल झूठा।" नृप के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कमल के होश गुम हो गये। इधर विमल ने शीघ्र आकर कमल से घडा मागा। कमल के हाथ थर-थर काप रहे थे। ज्योही घडा देने लगा त्योही वीच मे हाथ से रस्सी छूट गई और जमीन पर गिरकर घडा फूट गया। हार वाहर निकलते ही नृप ने विमल की धूर्त्तता पर उसे देश-निकाला देते हुए कहा—"इनसान चाहे जितना पाप करे किन्तु एक दिन तो पाप का घडा फूटे विना नही रहता है। कमल विल्कुल सच्चा है, इसका तनिक भी दोप नही है।"

जो व्यक्ति कोयला खायेगा उसका मुख काला हुए विना नही रहेगा। रुई मे आग कभी नही छिप सकती। पाप चाहे जितना छिपकर करो, किन्तु एक दिन तो वह अवश्य ही प्रकट होगा, अत हरेक को अपना दिल स्वच्छ रखना चाहिए।

पाप न छिपता तनिक भी, कितने करो प्रयास।
फूटेगा घट पाप का, होगा दिव्य प्रकाश॥

क्या तैरना सीखा ?

वैरिस्टर वावू रमेशकुमार अपनी पत्नी को साथ लेकर विलायत से रवाना हुआ। फस्ट-क्लास की टिकट ले जहाज मे वह दम्पत्ति उल्लसित मन वैठ गया। वावू के गले मे टाई, आखो पर चश्मा और कलाई मे घडी थी। कुर्सी पर वैठा वह दैनिक समाचार-पत्र पढ रहा था। उसके दिल मे वैरिस्टर का वडा घमण्ड था। अपने आपको विद्या-वारिधि समझता था। इतने मे एक खलासी (जहाज मे काम करने वाला) वावू के पास आया और हाथ जोडकर वोला—"वावू साहव! घडी मे कितने वजे है?" वावू अखवार पढने मे इतने तल्लीन थे कि उनको कुछ भी सुनाई नही दे रहा था। दो-तीन वार पूछने पर वावू का ध्यान गया तो रोप-भरी वाणी मे वोला—"टेविल पर घडी पडी है, तुम स्वय देख लो। क्यो विना मतलव शोर मचा रहे। चले जाओ यहा से।"

खलासी—(नम्रभाव से) "वावू साहव! मुझे घडी देखनी नही आती है?"

वावू—"क्या इस वैज्ञानिक युग मे तूने घडी देखना भी नही सीखा? हाय! तव तो तेरी दो आना जिन्दगी पानी मे चली गई। अच्छा तुम पढे कहा तक हो?"

खलासी—"वावूजी! आप तो मेरे साथ मजाक करने लग गये। मैं कहा पढा हू? मेरे लिए तो काला अक्षर भैस वरावर है।"

वावू—"नही पढने के कारण तेरी दो आना जिन्दगी फिर पानी मे चली गई। अरे मूर्ख! आज के जमाने मे पढाई का वहुत महत्त्व है। पढाई के विना कोई

किसी को नही पूछता। शादी भी मुश्किल से होती है क्योंकि अनपढ को कोई भी लडकी देना नही चाहता। क्या तेरा विवाह हो गया ?"

खलासी—"मेरा तो नही, किन्तु मेरे पिताजी का विवाह अवश्य हुआ था।"

वावू —"अरे खलासी ! तेरे जैसा हतभागी कोई नही है। इस भौतिकवादी युग मे तूने स्त्री-सुख का आस्वाद नही लिया। इससे तेरी आठ आना जिन्दगी फिर पानी मे चली गई।"

दोनो मे ऐसी हल्की-फुल्की वाते हो रही थी। अचानक समुद्र मे भयकर तूफान आ गया। चारो तरफ भीषण अन्धकार छा गया। जहाज डगमग-डगमग डोलने लगा। खतरे की घटी वजते ही खलासी जोर से वोला—"वावूजी ! वावू जी ! जहाज डूवने वाला है। क्या आपने तैरना सीखा है ?" वावूजी के होश गुम हो गये। हक्का-वक्का रह गया और जोर से वोला—"अरे भाई खलासी ! तैरना तो नही सीखा है।"

खलासी वोला—"मुझे और तो कुछ नही आता, किन्तु तैरना जरूर आता है। मैं तो तैरकर समुद्र के किनारे पर चला जाऊगा। पर आप क्या करेगे ? वावू जी, आप हर क्षेत्र मे निपुण एव दक्ष वने, किन्तु एक तैरना नही आने के कारण आप की क्या गति होगी ? तनिक हिसाव मिलाइए आपके कथनानुसार मेरी जिन्दगी तो वारह आना ही पानी मे गई परन्तु आपकी जिन्दगी अब सोलह आना ही पानी मे जाने वाली है।"

खलासी की वात सुनते ही वावूजी के हृदय मे तहलका मच गया। हो-हल्ला करने लगा, पर उपाय क्या···? वह खलासी तो तैरकर समुद्र के तट पर चला गया और वावू समुद्र मे डूव गये।

मनुष्य अन्यान्य कलाओ मे तो प्रवीण और दक्ष वन जाते है, किन्तु एक तैरने की कला के अभाव मे उनका जीवन खत्म हो जाता है। अत ससार समुद्र से पार होने के लिए सवसे पहले तैरने की कला मे निपुण होना परम अपेक्षित है।

सव विद्याएँ सीखकर, पडित वना महान्।
किन्तु न सीखा तैरना, डूव गया मतिमान्॥

पक्षपात

सुनार ने अपनी जिज्ञासा का समाधान पाने के लिए भगवान् ऋषभदेव मे पूछा—"भगवन् ! मेरे पास थोडी-सी पूजी है। मै अल्पारभी, अल्पपरिग्रही हू। मैं मरकर कहा जाऊगा।"

भगवान ने कहा—"तुम नरक मे जाओगे।"

सुनार—"तो फिर आपके पुत्र भरत जी कहा जाएगे ? वे तो षट्खण्ड के अधिपति हैं। महारभी महा-परिग्रही हैं।"

भगवान ने फरमाया—"सुनार ! भरत मोक्ष मे जायेगा—क्योकि वह अल्पारभी और अल्पपरिग्रही है। तुम महारभी और महा परिग्रही हो।" यह सुनते ही सुनार अवाक् रह गया। आकृति वदल गई। मन ही मन सोचने लगा—यह तो भगवान् का साक्षात् पक्षपात है।

भरतजी सुनार की वाह्य आकृति से उसके भाव ताड गये। उसे राजमहलो मे बुलाकर कहा—"यह कटोरा तेल से लवालव भरा है। इसे अपनी हथेली पर रख सारे शहर मे चक्कर लगा किन्तु ध्यान रहे एक वूद भी यदि नीचे गिर गई तो तुम्हारे पीछे-पीछे चलने वाले आरक्षक उसी समय तुम्हारी गर्दन उडा देंगे। सुनार घवडा गया, सोचा—आज तो विना मौत के मरना पडेगा। किन्तु चक्रवर्ती के आदेश का पालन आवश्यक था। इच्छा न होते हुए भी आज्ञा माननी पडती है। कटोरा लेकर सुनार चला। पीछे-पीछे आरक्षक हो गये। शहर के समस्त वाजारो मे तथा समग्र गलियो मे घूमकर वह सुनार भरतजी के समक्ष उपस्थित हुआ। भरत जी ने पूछा—"सारे शहर मे घूम आया ?"

सुनार—"हा आपके आदेश का पालन तो करना ही पडता है।"

भरतजी—"क्या इस कटोरे से तनिक भी तेल नीचे गिरा ?"

सुनार—"गिरे कैसे ? काल तो मेरे पीछे-पीछे चल रहा था।"

भरतजी—"अच्छा वताओ तो सही नगर के वाजार मे क्या-क्या देखा ?"

सुनार—"मैंने कुछ भी नही देखा। देखू भी कैसे, मेरी दृष्टि तो उस कटोरे पर टिकी हुई थी। मन मे मृत्यु का भय था।"

भरतजी—"इसका मतलव समझे या नही ?"

सुनार—"मै तो कुछ भी नही समझा, आपने यह क्या खेल रचा ?"

भरतजी—'सुनार ! मैंने तुझे समझाने के लिए यह प्रयोग किया है, मेरे हृदयस्थ विचारो को ध्यान से सुन—

मैं ससार के समस्त सुख, ऐश्वर्य को एक वाजार समझता हू। मैं यहा निवास करता हुआ भी कटोरे की तरह केवल आत्मा का ही ख्याल रखता हू। राज्य सम्पदा पर मुझे तनिक भी आसक्ति नही है। मेरी दृष्टि मे ये सव वन्धन है। मुझे पल-पल परलोक का भय है। मैं प्रतिदिन यह चिन्तन करता रहता हू कि इस ससार से कव छुटकारा मिले। इसलिए मैं अल्प-परिग्रही हू। तुम्हारे पास सम्पत्ति थोडी है—फिर भी तुम्हारे मन मे अनन्त आशाए है। रात-दिन तुम हाय पैसा, हाय पैसा, हाय पैसा करते रहते हो, इसलिए महा-परिग्रही हो।" भरतेश्वर की वात

अक्षरश सुनार की समझ मे आ गई ।

आसक्ति और अनासक्ति मे बडा अन्तर है । अनासक्त अवस्था परम शान्ति का मार्ग है । आसक्त अवस्था पतन का द्वार है, अत किसी भी क्षेत्र मे आसक्ति नही रखनी चाहिए ।

सुनार सम आसक्ति मे, करो न कोई काम ।
अनासक्ति भरतेश सम, रखनी है अविराम ॥

आदत से लाचार

एक गाव मे एक ककु काकी रहती थी । उसका स्वभाव बहुत ही खराब था । एक दूसरे को लडाने मे वह बहुत होशियार थी । गाव मे उसके कारण से काफी अशान्ति रहती थी । एक दिन उस गाव मे साधु सन्तो का आगमन हुआ । उनके व्याख्यान मे अच्छी-अच्छी शिक्षाए लोगो को मिलती थी ।

एक दिन कुछ बहिनो ने महाराज से निवेदन करते हुए कहा—"महाराज ! इस गाव मे एक ककु काकी है । वह एक दूसरे को आपस मे लडाने मे बडी निपुण है । उने कुछ शिक्षा फरमाइये ।"

एक दिन अकस्मात् ककु काकी सतो के स्थान पर आ गई । मुनि ने उसे काफी समझाया । ककु ने कहा—"महाराज ! दिन मे एक बार से अधिक झगडा न करने का नियम दिला दो ।" मुनि ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"बहिन ! ऐसे जघन्य कार्य से तेरी गति बिगड जायेगी अत तनिक भी छूट मत करो ।" किन्तु वह कहा मानने वाली थी ? वह घर गई । उसने सोचा—आज से अधिक आग तो लगानी नही है । एक ही ऐसी लगाऊ कि सारा गाव जल जाए । वह एक ब्राह्मण की दुकान पर गई । उसमे मीठी-मीठी बाते बनाती हुई बोली—"बेटा ! तेरा शरीर इतना कमजोर क्यो है ?"

ब्राह्मण बोला—"माताजी ! मेरी प्रकृति ही ऐसी है ।"

ककु बोली—"बेटा ! तेरी स्त्री डायन है । तुझे जब नीद आ जाती है तब वह निरतर तुझे खाती है, इससे तेरा शरीर दुर्बल रहता है । यदि मैं झूठ कहती हू तो आज इसकी परीक्षा कर लेना ।"

ब्राह्मण बोला—'अच्छा, आज मैं स्त्री की परीक्षा करूगा ।"

इधर ककु ब्राह्मण के घर आई । ब्राह्मणी से मीठी-मीठी बाते बनाती हुई बोली—"बेटी ! तेरे पति की जाति क्या है ?"

ब्राह्मणी बोली—"माता जी ! मैं ब्राह्मणी हू तो मेरे पति ब्राह्मण ही हैं।" ककु बोली—"भोली तुझे पता ही नही तेरा पति ब्राह्मण नही खारवाल है। आज रात उसकी पीठ चाट कर—परीक्षा करना, नमक जैसा कडवा लगेगा।" इस तरह उसके दिल मे भी बात जमाकर ककु अपने घर चली गई।

ब्राह्मण दुकान से घर आया। खाना खाकर कपटनिद्रा मे सो गया। ब्राह्मणी भी परीक्षा करने को तैयार हुई। थोडा सा कपडा हटाकर ब्राह्मण की पीठ चाटने लगी। मुह कडवा हो गया। ब्राह्मण उठा और ब्राह्मणी को पीटता हुआ बोला—"डायन ! रोजाना खाती है। इससे मेरा शरीर दिनो दिन कमजोर होता जा रहा है।" ब्राह्मणी भी सर्पिणी की भांति फुंफकार करती हुई बोली—"अरे खारवाल ! तूने मुझे भ्रष्ट कर दिया।" इस तरह दोनो के आपस मे भयकर चिनगारिया उछलने लगी। इधर बाहर बैठी ककु काकी ने सोचा—मैंने जो चिनगारी लगाई थी, वह अच्छी तरह से भडक उठी। ककु की खुशी का पार नही रहा और वह जोर-जोर से नाचने लगी। उस कोलाहल से पडोसियो की भी नीद टूट गई। सब दौडे-दौडे आए और दोनो को समझाने लगे। आखिर झगडे के कारण का पता लगते ही ककु काकी को दुत्कारने लगे।

आखिर ब्राह्मण-ब्राह्मणी इस निष्कर्ष पर पहुचे कि न कोई डायन है और न कोई खारवाल। यह सब ककु का ही प्रताप है। दोनो का झगडा शान्त हो गया।

जो व्यक्ति आदत से लाचार होता है वह एक को कुछ कह देता है तो दूसरे को कुछ कह देता है। परस्पर झगडे कराने मे ही वह अपना महत्त्व समझता है किन्तु कलह करना मन-मुटाव करना बहुत बड़ा पाप है। विवेकशील मानव को इससे बचते रहना चाहिए।

कलह कराने मे कई, होते अति होशियार।
किन्तु उन्हे मिलता नही, कभी मान सत्कार॥

संसार से ग्लानि

याज्ञवल्क्य नाम के एक ऋषि थे। उनके दो पत्निया थी। मैत्रेयी और कात्यायिनी। ऋषि बडे आध्यात्मिक व गहरे चिन्तक थे। एक दिन उनके मस्तिष्क मे चिन्तन चला—अब मुझे इस प्रवृत्तिमय जीवन से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। उन्होंने दोनो पत्नियो से कहा—"मैं अब सन्यास लेना चाहता हू। इस ससार मे मुझे ग्लानि उत्पन्न हो गई है। जीवन का कुछ भी विश्वास नही है। मैं प्रवृत्ति के

मार्ग को छोड निवृत्ति के मार्ग को अपनाना चाहता हू। लेकिन इससे पहले मै मेरी सम्पत्ति तुम्हे वाटकर फिर सयम-पथ को स्वीकार करना चाहूगा।" मैत्रेयी कुछ बुद्धिमती थी उसने कहा—"स्वामिन ! आप जिस सम्पत्ति को छोड निवृत्ति लेना चाहते है और हमे देते है, क्या वह सम्पत्ति मुझे सच्चा सुख देगी ? क्या वह जन्म-मरण के दावानल को शान्त करेगी ?" याज्ञवल्क्य ने कहा—"मैत्रेयी ! उस सम्पत्ति से आध्यात्मिक सुख तो नही मिलेगा, किन्तु भौतिक सुखानुभूति अवश्य होगी।"

मैत्रेयी ने कहा—"स्वामिन् ! जिसे आप हेय समझते है दु ख का कारण मानते है, वह सम्पत्ति आप हमे दे रहे हैं क्या—यही आपका महत्त्व है ? मुझे ऐसी भौतिक सम्पत्ति की चाह नही है। यह समस्त सम्पत्ति आप मेरी बहिन कात्यायिनी को दे दे। कृपया मुझे तो आप ऐसी आत्म शक्ति दे, जिससे मुझे सही सुखानुभूति हो सके।"

आखिर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आध्यात्मिक मार्ग बताते हुए सयम मे रमण करने की प्रेरणा दी और कहा—"तुम्हारे विचार बहुत ही प्रशसनीय एव दूसरो के लिए अनुकरणीय भी है।"

जो व्यक्ति आध्यात्मिक सुख के आकाक्षी है, उन्हे ससार से विरक्त रहना चाहिए और सयम सरोवर मे स्नान कर आन्तरिक पाप को धोने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे सही सुख की उपलब्धि हो सके।

आध्यात्मिक सुख इच्छुको जग से रहो विरक्त।
"मुनि कन्हैया" नित रहो, सयम मे अनुरक्त॥

विचारों का प्रभाव

एक वार हिन्द के वादशाह ने सोचा—हम क्यो जीते है ? चीन के वादशाह की तरह हम भी दीर्घजीवी क्यो नही होते ? इसका क्या कारण है ? आखिर शका का समाधान पाने के लिए एक दिन हिन्द के वादशाह ने चीन के वादशाह को लिखा कि हमारा जीवन तो वहुत छोटा होता है, किन्तु आप वडे दीर्घजीवी होते हैं, इसका क्या कारण है ? वादशाह ने यह पत्र लिखकर मत्री को ५०० नौजवानो सहित चीन के वादशाह के पास भेजा और कहा—"तुम इस पत्र का जवाव लेकर आना। अगर जवाव लिए विना ही आ गये, तो तुम्हे प्राण दण्ड दिया जायेगा।"

मन्त्री पत्र लेकर चीन पहुचा। उसने वह स्वर्ण पेटी वादशाह को दे दी, जिसमे वह पत्र वन्द किया हुआ था। चीन के वादशाह ने पत्र को पढा और हिन्द से आने

वाले ५०० नौजवानो का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया। उन सव की सेवार्थ कुछ आदमी भी नियुक्त कर दिये गये। पाच-सात दिन वाद मन्त्री वादशाह के पास गया और वोला—"महाराज! अव तो पत्र का जवाव दीजिए।"

वादशाह ने कहा—"भाई! अभी तो तुम आये हो कुछ दिन ठहरो और यहा की सस्कृति को देखो, तुम्हे उत्तर भी मिल जायेगा।"

मन्त्री कुछ दिन और ठहरकर वादशाह से वोला—"आप अपना उत्तर दे दीजिए। यहा आए वहुत दिन हो गये। यहा की सस्कृति का भी अध्ययन कर लिया है।"

वादशाह—"भाई! जिस मकान मे ठहरे हो, उसके सामने वाला वट-वृक्ष जव जलकर खाक हो जायेगा तव तुम्हे मैं अपना जवाव दूगा।"

मन्त्री वहुत वडे असमजस मे पड गया। ५०० वर्ष पुराना वह वृक्ष कव जलेगा और कव हम अपने घर जायेंगे। मन्त्री को अव घर जाने की कोई उम्मीद नही रही। वह अपने ५०० साथियो के पास आया और वोला—"यह वट वृक्ष जव जल जायेगा, तव वादशाह का उत्तर मिलेगा। अव तो घर जाने की कोई भी आशा नही है। सव यही मर-खप जायेगे। मन्त्री तथा उसके साथियो के मस्तिष्क मे सोते-जागते, उठते-वैठते निरन्तर यही विचार रहता कि यह वट वृक्ष कव जले और कव हम अपने घर वापस जाए। इस प्रकार निम्न विचारो व क्षुद्र भावना से वह वट-वृक्ष सिर्फ दो ही महीनो मे जलकर खाक हो गया। मन्त्री को आश्चर्य हुआ पर उन्हे खुशी भी हुई कि अव हम घर पहुच जायेगे। मन्त्री वादशाह के पास गया और वोला—"आपके कहे अनुसार वह वट-वृक्ष जलकर खाक हो गया है, अव हम अपने घर को रवाना हो रहे है, अत अपना जवाब आप हमे दे दीजिए।"

वादशाह ने कहा—"भाई! तुम्हारे पत्र का जवाव तो तुम्हे मिल गया? फिर मैं क्या कहू?"

मन्त्री ने साश्चर्य पूछा—"महाराज! जवाब कैसे मिल गया? अभी तक तो आपने कुछ भी उत्तर नही दिया।" वादशाह ने कहा—जिस प्रकार तुमने ५०० वर्ष पुराने वट-वृक्ष को भी "कव जले-कव जले" के अनिष्ट विचारो से दो महीने की अल्प-अवधि मे ही जलाकर खाक कर दिया है, उसी प्रकार तुम्हारे राजा भी प्रजा से प्रेम नही करते हैं। इसलिए प्रजा उन्हे अशान्ति की नजर से देखती है और वादशाह के प्रति उनके विचार भी अच्छे नही रहते हैं, इसी कारण हिन्द के वादशाह अल्पजीवी होते है। मेरी प्रजा मुझे चाहती है, प्रेम भरी नजरो से देखती है, मेरे प्रति उनके विचार भी अच्छे रहते है, इसी कारण यहा के वादशाह दीर्घजीवी होते हैं। लम्वे समय की जिन्दगी वसर करते है।"

मन्त्री ने हिन्द मे आकर अपने वादशाह को समग्र विचारो से अवगत किया।

हिन्द के वादशाह पर इन समाचारो का वहुत ही अच्छा प्रभाव पडा। सहसा उनके मुख से ये शब्द निकले—"हरेक को शुद्ध विचार रखने चाहिए।"

विचारो मे अपरिमित शक्ति होती है। जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसा ही फल मिलता है। निम्न विचारो से ह्रास और उच्च विचारो से विकास। अत सवको विचारो की मलिनता को त्यागकर पवित्र विचार रखने चाहिए।

अवनति का कारण सही, दिल के बुरे विचार।
उन्नति का सन्मार्ग है, पावन उच्च विचार॥

जमाना झूठ का

सुन्दरपुर शहर मे वीरसेन नाम का राजा रहता था। राजा वडा धर्मनिष्ठ एव नीतिज्ञ होने के साथ-साथ व्यवहारकुशल भी था। एक दिन राजा राज्यसभा मे अनेको विद्वानो के सामने नृप ने प्रश्न किया—"ससार मे सबसे वडा क्या है?" किसी ने कहा—"अहिंसा परमो धर्म, अहिंसा सर्वोत्कृष्ट है।" किसी ने 'ब्रह्मचर्य' तो किसी ने 'सन्तोष' को वडा वतलाया। इस तरह सभी विद्वानो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अलग-अलग उत्तर दिये। अन्त मे राजा बोला—"दुनिया मे सवसे वडा है सत्य। इससे वढकर कुछ भी नही हो सकता।"

इतने मे एक वेश्या खडी होकर वोली—"राजन्! सत्य का समय नही है। जमाना झूठ का है। झूठ सवको मीठा लगता है और सत्य कडवा है। सत्य के पूछ भी नही है और झूठ के मूछे वन रही है।" राजा वोला—"सत्य के विना कोई भी काम नही चल सकता, अत जमाना झूठ का नही, सत्य का है।" परस्पर वाद-विवाद वढने से राजा ने वेश्या से कहा—"इसका प्रमाण देकर वताना कि जमाना झूठ का है?"

सभा विसर्जित हुई। वेश्या मीरावाई के सदृश सफेद कपडे पहन कर परदेश के लिए रवाना हो गई। खुले केश भी पीछे लटका लिये। गले मे तुलसी की माला व हाथ मे तम्वूरा ले उसने अपनी एक नई भजन मण्डली वना ली। गाव-गाव मे मधुर-मधुर भजनो द्वारा लोगो को आकर्षित करने लगी। आखिर फिरते-फिरते उसी सुन्दरपुर मे आई और पुर के वाहर अपने डेरे डाले। जो भी वहा आते, उन सव को वह भक्ति भरे भजन सुनाती और श्रीकृष्ण के दर्शन कराती। हवा की तरह सारे शहर मे मीरावाई की वात फैल गई कि मीरावाई मुफ्त मे श्रीकृष्ण के दर्शन कराती है।

राजा के कानों मे मीराबाई की महिमा गूजने लगी। राजा भी सुसज्जित होकर मीराबाई की सभा मे आ पहुचा। मीराबाई ने तरह-तरह के भजन सुनाकर राजा के दिल को मोहित कर लिया। उसे तम्बू मे ले जाकर मीराबाई बोली—"राजन्! जिनके असली माता-पिता है उन सबको तो श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे, वरना वशीधर के बदले जूता नजर आयेगा।" राजा ने ऊपर नजर टिका कर कहा—"धन्य हो मीराबाई आपके काम को! मुझे तो आपकी कृपा से विष्णु के दर्शन हो रहे हैं। क्योकि राजा के हृदय मे यह भय था कि सच बोलने मे यह मुझे वर्णशकर बना देगी। इस भय से झूठ का सहारा लेना ही पडा। आखिर वहा से छुटकारा पाकर राजमहलो मे आया और सोचने लगा—दर्शन कहा था, सब ने धोखा खाया। अगर कोई जूता कह देता तो मीराबाई उसको 'वर्णशकर' घोषित कर देती। इस भय से कोई भी भेद को खोल नही सका। इधर मीरा अपनी सब माया को समेट कर वेश्या के कपडे पहन कर राजमहल मे चली आई।

राजा—"वेश्या! आज तो बहुत दिनो से आई?"

वेश्या—"हवा बदलने गई हुई थी। कल ही वापस आई हू।"

राजा—"हम तो कल सत्सग मे गये थे, प्रभु के भी दर्शन किये।"

वेश्या—"आपने श्रीकृष्ण के दर्शन किये क्या?"

राजा—"हा तम्बू मे दर्शन किये थे। विष्णु गरुड पर सवार थे, साथ मे लक्ष्मी भी विराज रही थी। हाथ मे उनके सुदर्शन चक्र था।"

वेश्या कडककर बोली—"राजन्! आपको झूठ बोलते तनिक भी सकोच नही होता? कहा थी मीराबाई? कहा थे श्रीकृष्ण के दर्शन? तम्बू मे तो मेरा जाल था। कृष्ण स्थान पर जूते के दर्शन किये होंगे।"

वेश्या की वाणी सुनते ही राजा शर्मिन्दा होकर अपनी गलती को स्वीकार करते हुए बोला—"वेश्या, जमाना सत्य का नही, झूठ का है। अत सत्य नही, सबसे बडा झूठ है।"

आज सर्वत्र झूठ तथा ठगाई का बोलबाला है। वेश्या ने धर्म के नाम पर भी बहुत बडी ठगाई की। सबको धोखा दिया। पर क्या इससे वेश्या की इज्जत बढ सकती थी? कदापि नही। मोल उसी का बढेगा जो ठगाई को छोडकर हृदय को स्वच्छ रखेगा, सर्वत्र निश्छलता का व्यवहार करेगा।

अजब जमाना झूठ का, नही सत्य साकार।
धर्म नाम पर धूर्तता, पलती हाय! अपार॥

जब तक श्वास तब तक आश

जोधपुर के नरेश जसवन्तसिहजी बडे न्यायी राजा हुए है। वे किसी को भी दु ख देना नही चाहते थे। प्रतिक्षण दूसरो का भला करने के लिए जागरूक रहते थे। स्वभाव के सरल थे। योगाभ्यास आदि विविध क्रियाओ मे वडे निपुण थे। राजस्थानी भाषा के सिद्ध हस्त कवि थे। एक दिन उन्होने सोचा—मेरा यह कुवर आज्ञाकारी है या नही, इसका परीक्षण करना चाहिए। कुवर को बुलाया और बोले—"पुत्र ! मैं जसा कहूगा वैसा करेगा ?"

पुत्र हाथ जोडकर बोला—"पिताजी ! मै कभी भी आप की आज्ञा का उल्लघन नही करूगा। कृपया कार्य फरमाइये।"

राजा—"क्या आदेश का अक्षरश पालन करेगा ?"

पुत्र—मैं दृढ निष्ठा से आपको विश्वास दिलाता हू कि रच मात्र भी इधर से उधर नही होऊगा।"

राजा—"पुत्र ! जिस दिन मेरा देहावसान हो जाए, उस दिन जो कपडे और आभूपण मेरे तन पर पहिने हुए हो उन सव को उतारना मत, बदला-बदली भी मत करना। जैसा का तैसा ही मुझे चिता पर अर्थात् उन कपडो व आभूषणो सहित मुझे जला देना। किसी की भी मत सुनना।" पुत्र—"पिताजी। इस आदेश का ध्यान रखूगा। जैसा आपने कहा वैसा ही होगा। तनिक भी अन्तर नही होने दूगा।"

राजा जी को श्वास चढाना आता ही था। कुछ ही महीनो बाद अच्छे-अच्छे वहुमूल्य कपडे तथा आभूषण पहिनकर नृप ने पुत्र को बुलाया और कहा—"पुत्र ! आज तो शरीर मे काफी वेचैनी है। पेट मे भी काफी दर्द है और सिर पीडा से फूट रहा है। कोई भी वस्तु स्वादिष्ट नही लगती है। न जाने किस भयकर रोग ने घेरा डाल दिया है।" यो वाते करते-करते महाराज जसवन्तसिह ने श्वास चढा लिया और धरती पर लम्बे लेट गये। आखे फाड ली। मुख पर झाग चढ गये। नाडी भी हाथ मे नही आने से कुवर को यह दृढ विश्वास हो गया कि दरवार तो स्वर्गलोक मे पहुच गये। मन्त्री निकट ही बैठा था। कुवर ने मन्त्री से कहा—"मन्त्रीवर ! कुछ समय पूर्व पिताजी ने कहा था—कपडो तथा आभूपणो को उतारना मत। उनके सहित ही जला देना, किन्तु अव दरवार तो रहे नही, मिट्टी हो गई। यदि ये वस्त्र आभूपण आदि नही खोलेंगे, तो इतना वैभव व्यर्थ जल जायेगा। अत मेरी इच्छा है कि इन सवको उतार वदले मे दूसरे पहिना दिये जाए। जिससे अधिक नुकसान न हो। यह सव वातें दरवार सुन ही रहे थे। अचानक निद्रा से आदमी उठता है वैसे ही दरवार उठे और आखें खोली। उसी

समय मसार के स्वरूप के विपय मे उन्होने एक दोहा कहा—

खाया सो तो खो दिया, दीधा चाल्या सत्य।
जसवन्त, धर पोढाविया, माल विराणे हत्थ ॥

जव तक श्वास है तव तक आश है। श्वास निकल जाने के वाद कोई भी किमी को नही पूछता है। दरवार को यह विश्वाम नही था कि मेरा पुत्र इस प्रकार वदल जायेगा, अत· इस स्वार्थ-भरे मसार मे धर्म के सिवाय कोई किमी का नही है।

दौड-दौड सव आ रहे, जव तक तन मे श्वास।
निकल जायेगा श्वास जव, (तव) कोई न आए पाम ॥

लज्जा

मोहनी और सोहनी नाम की दो स्त्रिया थी। मोहनी सदाचारिणी, लज्जावती एव पतिव्रता स्त्री थी। शहर मे उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सोहनी वडी दुराचारिणी एव कर्कश स्वभाववाली थी। वह मोहनी की निरन्तर निन्दा करती थी। आम-पास की स्त्रियो को भडकाती रहती थी कि मोहनी अच्छी स्त्री नही है। किमी को भी इसकी मगति नही करनी चाहिए। एक दिन मोहनी और सोहनी मे परस्पर झडप हो गई। मोहनी ने कहा—"सोहनी ! विना मतलव मेरी निन्दा क्यो करती हो ? तेरे-मेरे क्या लेना-देना है ?"

इतना सुनते ही सोहनी भडक उठी। अनर्गल शब्दो से उसको दुत्कारने लगी। आखिर घर गई। सोचने लगी—सोहनी पर ऐमा कलक लगाऊ, जिसमे उसकी इज्जत और आवरू मिट्टी मे मिल जाये। दूसरो को बुरा करने के लिये मानव अपना नुक्सान भी सह लेता है। उसने आव देखा न ताव, शीघ्र अपने पुत्र को मार उसके शव को मोहनी के मकान के पास कुए मे फेंक आई और विलाप करती हुई पुत्र को खोजने लगी "हाय ! न जाने मेरा वत्स कहा गायव हो गया।" दूसरे लोग भी उसको ढूढने लगे। आखिर उमी कुए के पास पहुचे। उसमे वच्चे की लाश निकल आई। मोहनी तमक कर गरजने लगी—"हाय ! इस मोहनी ने मेरे वच्चे को मार दिया। पापिनी ! धिक्कार है तेरे वश को।" दोनो मे परस्पर भयकर झगडा हुआ। दोनो वादशाह के पाम पहुची। वादशाह ने सारी वात सुनी। उससे फैमला नही हुआ। वादशाह का वजीर वडा बुद्धिमान था। उसने कहा—जहापनाह ! इम मामले मे कानून की किताव कामयाव नही हो सकती। कौन झूठी है, कौन मच्ची है, इमकी जाच मैं करूगा। आप फिक्र न कीजिए।"

वजीर दोनो स्त्रियो को अपने घर ले गया और पहले मोहनी से कहा—"तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लडके को मारा है। तुम कहती हो, मैंने नही मारा। इस बात का विश्वास करना है तो नगी होकर आ जाओ।" यह सुनते ही वह चौकी और भृकुटी चढाकर बोली—"वजीर! ऐसी बात करने की कोई जरूरत नही है। मैं अपने प्राणो की आहुति देने को तैयार हू, किन्तु अपनी लज्जा नही छोड सकती।" वजीर समझ गया, यह सच्ची सती है। इसके बाद वजीर ने सोहनी को बुलाकर कहा—"तुम मेरे सामने कपडे खोल दो तो मैं समझूगा कि तुम सच्ची हो।"

वह कुलटा अपने कपडे खोलने लगी। वजीर ने शीघ्र उसको रोक दिया और जल्लाद को बुलाकर कहा—"इस स्त्री को बेतो से मारो।"

जल्लाद उसको जोर-जोर से पीटने लगे। वह चिल्लाई, प्रार्थना करने लगी। "मुझे मत मारो, मैं आपका उपकार कभी नही भूलूगी।"

जल्लाद ने पूछा—"सही-सही बता लडके को किसने मारा है।" कहावत है—'मार के आगे भूत भी भागते है।' वह जोर से बोल पडी—"बच्चे का वध करने वाली मैं ही हू।"

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश किया और कहा—लडके को मारने वाली उसी की मा है।

सारा वातावरण बदल गया। सच्चरित्र मोहनी के सर पर मढा कलक मिट गया। सर्वत्र उसकी महिमा फैल गई। बादशाह भी उसकी प्रशसा करने लगा और कुलटा सोहनी को फासी की सजा सुनाकर कहा—"ऐसी स्त्रियो का मुखावलोकन भी सुखद नही है।"

लज्जा एक बहुत बडा गुण है। लज्जा के प्रताप से ही इस बहिन की रक्षा हुई। लज्जावान ही धार्मिक बन सकता है। अत हर एक को लज्जा, दया आदि सद्गुणो मे अनुराग रखना चाहिए।

लज्जा गुण आवास है, लज्जा नया प्रकाश।
बहिन मोहनी का जमा, लोगो मे विश्वास॥

वाणी से पहिचान

एक अन्धा था, किन्तु उसके हृदय मे इतना प्रकाश था कि वह सारे शहर में चक्कर लगा लेता था। और परीक्षक भी सच्चा था। हर एक की वाणी से हर एक को पहिचान लेता था कि अमुक इज्जत वाला है और अमुक नीच है।

एक दिन उस गाव के ठाकुर साहब कही पर जीत के नगारे बजाकर अपने गाव मे प्रवेश कर रहे थे। उनके आगे-आगे उनके नौकर (गोले) घोडो पर चल रहे थे। मार्ग मे वह अन्धा मिल गया। नौकरो ने अन्धे से कहा—"अन्धिया भाई राम-राम।" अन्धा भी जोर से बोल पडा—"हा, गोलणिया भाई राम-राम।" पीछे से ठाकुर साहब पधार रहे थे। वे भी जोर से बोले—"सूरदास भाई! राम-राम, सूरदास भाई! राम-राम।"

अन्धा भी विवेक पूर्वक बोला—"हा ठाकुर साहब राम-राम! ठाकुर साहब राम-राम!" यह दृश्य देखकर लोगो के दिलो मे आश्चर्य का पार न रहा। लोगो ने अन्धे से पूछा—"भाई! तू इस निर्णय पर कैसे पहुचा कि ये गोले हैं और ये ठाकुर साहब है?"

अन्धे ने अपनी मधुर भाषा मे उत्तर देते हुए कहा—"भाइयो! डिया फुट्या पर हिया नही फुट्या" अर्थात् मेरी ऊपर की आखें जरूर गई, किन्तु हृदय की आखे अभी तक विद्यमान है। ऊपर से अधेरा है, किन्तु हृदय मे प्रकाश है। मैंने उनकी वाणी से उनको पहिचान लिया कि ये गोले हैं, ये ठाकुर साहब है क्योकि तुच्छ आदमी तुच्छ बोली बोला करते है और बडे आदमी बडी बोली बोला करते हैं।"

हर एक को ऊची बोली बोलना चाहिए। 'बचने का दरिद्रता' बचन मे दरिद्रता क्यो? क्योकि वाणी से इन्सान की पहचान हो जाती है कि अमुक व्यक्ति कितना गहरा है और अमुक कितना छिछला है अर्थात् अमुक तुच्छ है, अमुक महान् है।

हो जाती इन्सान की, वाणी से पहिचान।
'सूरदास' को हो गया, दोनो जन का ज्ञान॥

पचास हजार का त्याग

एक दक्ष वकील था। वह झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने मे बडा निपुण था। बडे-बडे वकील उसके पास सलाह लेने आते थे। सर्वत्र उसकी प्रतिष्ठा थी। एक दिन की बात है। वकील साहब भोजन कर रहे थे। इतने मे उनका एक मुवक्किल आया और उसने पचास हजार के नोट वकील साहब के सामने रख दिये। वकील साहब ने गर्व प्रकट करते हुए अपनी अर्धांगिनी से कहा—"प्रिये! देखो मेरी चतुरता, धटाधड रुपये आ रहे है।" यह सुनते ही स्त्री की आखो से पानी बहने लग गया।

वकील ने कहा—"प्रिये ! रुदन क्यो कर रही हो ? अपने घर मे किस वात की कमी है ? अच्छी से अच्छी कमाई हो रही है। सर्वत्र मेरा मान है। सभी कार्यों मे मुझे अवाच्य सफलता मिलती है। फिर भी रोती हो ?" वकील की पत्नी ने कहा—"प्राणाधार ! मै आपके कृत्य को देखकर रो रही हू।"

वकील—"प्रिये। मैंने कौन सा ऐसा बुरा काम किया है ?"

पत्नी - "प्राणेश ! मुझे दु ख इस वात का है कि आप झूठे को सच्चा वनाते हैं और सच्चे को झूठा। क्या यह अकृत्य नही है ? आप पचास हजार रुपए देख-कर खुश हो रहे है लेकिन जिसको एक लाख घर से देने पडे, कृपया उससे पूछिए कि वह कितना दु खी है। पतिदेव ! इस प्रकार के पैसे कमाकर आप आनन्द मना रहे है। क्या यह मानवता है ? तनिक गहराई से चिन्तन करे। वकील —"प्रिये ! तुम्हारा कहना एक दृष्टि से ठीक है पर करे क्या ? हमारा व्यापार ही ऐसा है। झूठ को सच न करे तो काम ठप्प हो जाए।"

पत्नी—"पतिदेव ! आप सत्य को असत्य वनाते है। इसके वदले सत्य को सत्य वनाने की वकालत क्यो नही करते ? यदि आप प्रामाणिकता से काम करेंगे, तो क्या घर का काम नही चलेगा। मैं चाहती हू कि आप यह शपथ ग्रहण करे कि भविष्य मे कोई भी झूठा मुकदमा नही लेगे। आपको कदम-कदम पर सफलता अवश्य ही मिलती रहेगी।

पत्नी की न्यायनिष्ठा देखकर वकील साहव के विचारो मे परिवर्तन आ गया। उन्होंने अपने मुवक्किल से कहा—"आप ये रुपये ले जाइये और किसी प्रकार प्रतिवादी को समझाइए। अव मैं झूठे मुकदमो से दूर रहना चाहता हू।"

मुवक्किल भी यह सव देखकर दग रह गया। और पुन -पुन वकील साहव की पत्नी की प्रशसा करने लगा कि ऐसी सत्यनिष्ठा स्त्री ही ससार का कल्याण करेगी, जिसने पचास हजार का त्याग कर दिया।

प्रत्येक व्यक्ति को सत्य न्याय पर अटल रहना चाहिए। धन के आगे भी जो न्यायमार्ग को नही छोडता है वही इस विश्व मे प्रतिष्ठावान वन सकता है।

धन आगे झुकते नही, करते न्याय महान्।
"मुनि कन्हैया" मनुज वे, वने प्रतिष्ठावान ॥

मन का अनियंत्रण

एक राजा था। उसको आम खाने का वडा शौक था। अधिक आम खाने मे उसके भयकर, असाध्य रोग पैदा हो गया। वैद्यो द्वारा इलाज प्रारम्भ हुआ। कोई भी औषधि लाभदायक नही होने से आखिर वैद्यो ने कहा –"आपको कभी आम नही खाने चाहिए। आपके लिए आम जहर है। आम छोडने पर ही हमारा उपचार सफल हो सकेगा। आप पूर्ण स्वस्थ बन जायेगे।" कुछ ही दिनो मे राजा जी स्वस्थ हो गये। भविष्य के लिये भी वैद्यो ने यही सलाह दी—"यदि आपको जीवन प्रिय है, तो आप निरन्तर आम से वचते रहे। कभी भी आप पर रोग आक्रमण नही करेगा।"

राजा ने सोचा—यदि देश मे आम के वृक्ष रहेगे, तो वार-वार मेरी नजर मे आएगे और मन ललचाये विना नही रहेगा। इससे तो अच्छा यही है कि देश मे जितने भी आम के वृक्ष है उन सवको कटवा दिया जाये। वस, न रहे वास, न वजेगी वासुरी। आम देखने को ही नही मिलेगा तो खाऊगा क्या ?

सारे देश मे राजा का आदेश प्रसारित होते ही आम का एक भी वृक्ष न रहा। आनन्द से राज करने लग गया। एक दिन अन्य देश से घोडे आये। राजा और मत्री उन घोडो पर सवार हो क्रीडा के लिए चल पडे। घोडे अति त्वरितगामी होने से शीघ्र ही राजा और मत्री अपने देश की सीमा को पार कर गये। राजा थक गया, अत घोडे ठहर गये।

राजा ने मत्री से कहा—"वह सामने वाला वृक्ष काफी सघन है। कुछ देर उसकी शीतल छाया मे विश्राम लेना सुखद होगा।"

मत्री ने कहा—"वह तो आम का वृक्ष है, उसकी छाया मे भी वैठना आपके लिए हानिकारक है।" राजा—"छाया मे वैठने से क्या होता है ? आम खाऊगा नही।"

दोनो ने उस वृक्ष की शीतल छाया मे ही विश्राम लिया। राजा की नजर उन वडे-वडे सुगन्धित आमो पर पडी। इतने मे ही पवन के झोके से एक आम नीचे गिरा। राजा का मन वश मे न रहा, जी ललचा गया। राजा खाने को उद्यत हुआ मत्री ने शीघ्र हाथ पकडते हुए कहा—"राजन् ! क्या आप भूल गये ? आपके लिए आम जहर है। मन पर नियत्रण रखिए।"

राजा वोला—"उस वात को वहुत वर्ष हो गये। पूरा न खाकर आम का तनिक रसास्वादन करने मे अव क्या नुकसान है ?" मत्री ने काफी समझाया, किन्तु राजा कहा मानने वाला था। आम को खा ही लिया। कुछ ही देर वाद रोग का प्रकोप हुआ राजा और मत्री शीघ्र अपने देश मे आये। जहर की तरह सारे शरीर

मे रोग फैलने लगा। कोई भी उपचार लागू नही पड़ा। आखिर मन के अनियत्रण से राजा परलोक का निवासी वन ही गया।

जो व्यक्ति अपने मन का निग्रह नही कर सकते हैं उनको नृप की भाति अपनी जीवनलीला समाप्त करनी ही पडती है। अत सुखेच्छुको के लिये मन का नियत्रण अत्यावश्यक माना गया है।

मनो अनिग्रह से महिप, पहुच गया परधाम।
मन पर निग्रह कीजिए, यदि चाहते आराम॥

मणिशेखर

मणिशेखर एक विश्वस्त सेठ का पुत्र था। घर मे कोई भी कमी नही थी। वाल्यावस्था मे ही कुसगति के कारण मणिशेखर चोरिया करने लगा। इससे सेठ वहुत दुखी था। समय-समय पर मणिशेखर को शिक्षा देता था। चोरी का दुष्परिणाम वता-वता कर चोरो के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए काफी प्रयत्नशील था। परन्तु उस चिकने घडे पर क्या असर होने वाला था?

एक दिन उस नगर मे ज्ञानी सतो का आगमन हुआ। हजारो मनुष्य वन्दनार्थ गये। सेठ गया और अपनी दर्दभरी कहानी मुनिराज को सुना दी। अवसर देखकर मुनि ने मणिशेखर से कहा—"भाई! 'पर-धन धूलि समान' पराये के धन को धूलि के समान समझो। चोरी करना भयकर पाप है।" वहुत समझाने पर उसने कहा—"महाराज! मैं आदत से लाचार हू। चोरी तो करूगा, किन्तु झूठ नही वोलूगा।" मुनि से असत्य न वोलने की विचित्र प्रतिज्ञा ग्रहण करने के वाद भी मणिशेखर दिन मे तो कारोवार करता और रात को चोरी। प्रतिदिन चोरिया होने के कारण सारे शहर मे हाहाकार मच गया। लोग जाकर राजा से पुकार करने लगे। आखिर एक दिन अर्द्धरात्रि को राजा वेप वदलकर समस्त शहर मे गश्त लगा रहा था।

मणिशेखर चोरी करने के लिए चला और मार्ग मे आरक्षक मिल गया। उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

मणिशेखर—"मैं चोर हू।"

आरक्षक—"चोरी कहा करेगा?"

मणिशेखर—"राजमहलो मे।"

आरक्षक ने सोचा—यह कोई पागल, शरावी मनुष्य है इधर-उधर भटक रहा है, चोर नही है। मणिशेखर आगे वढा, उसकी गश्त लगाते हुए नृप से मुलाकात हो गई।

राजा ने पूछा—"कौन हो ?"

मणिशेखर—"मैं हू मणिशेखर ।"

राजा—"किधर जा रहे हो ?"

मणिशेखर—"चोरी करने के लिए ।"

राजा—"अच्छा, चोरी कहा करोगे ?"

मणिशेखर—"राजमहलो मे ।"

राजा ने भी उसे पागल समझकर छोड दिया। मणिशेखर राजमहल मे गया, पहरेदार सोये हुए थे। उसने भडार के ताले तोड कर एक डिब्बी मे से चार रत्नो की चोरी की और वहा से घर के लिए चला। मार्ग मे फिर वही सरक्षक मिला। पूछा—"कौन है तू ?"

मणिशेकर—(निर्भयतापूर्वक) "मैं चोर हू।"

आरक्षक—"कहा गया था ?"

मणिशेखर—"चोरी करने के लिए।"

आरक्षक समझ गया—वही पागल इधर-उधर भटक रहा है। आगे जाते-जाते मणिशेखर को वापिस राजा मिल गया। राजा ने वही प्रश्न किया—"कौन है?"

मणिशेखर—"मै मणिशेखर हू।"

राजा—"कहा गया था ?"

मणिशेखर—"राजमहल मे।"

राजा ने उसका पता लिख लिया और उसे वही पागल समझ कर छोड दिया। मणिशेखर अपने घर पहुचा। राजा अपने महलो मे गया।

सुबह होते ही मत्री आया। भडार के ताले टूटे देखकर वह हक्का-बक्का रह गया। आखिर सब कुछ देखने पर पता लगा कि चार रत्नो की चोरी हुई है। मत्री ने सोचा—चोर कोई मूर्ख था, चार रत्न ले गया और तीन रत्नो को छोड गया। क्यो नही अवसर का लाभ उठाऊ ? मत्री की बुद्धि बिगड गई। चोरी के साथ चोरी। तीन रत्न गायब कर उसने राजा को इत्तला कर दी कि सात रत्नो की चोरी हुई है। राजा ने मणिशेखर को बुलाया और पूछा—"क्या राज भडार मे चोरी की ?"

मणिशेखर—"हा, मैंने चोरी की।"

राजा—"अच्छा बताओ, चोरी मे कितने रत्न गये ?"

मणिशेखर ने कहा—"चार रत्न।"

मन्त्री ने कहा—"राजन् ! चार की नही, चोरी सात रत्नो की हुई है। चोर तो झूठ बोला करते है।" किन्तु राजा को अटल विश्वास हो गया कि मणिशेखर

कभी भी झूठ बोलने वाला नही है। मन्त्री को ललकारते हुए राजा ने कहा—"यह तो दाल मे काला है। बताओ, और रत्न कहा गये ?" आखिर चोर का कलेजा कच्चा होता ही है। मत्री थर-थर कापने लगा। चेहरे पर उदासी छा गई। उसका चिन्ताग्रस्त चेहरा देखकर मणिशेखर ने कहा—"इस मन्त्री ने चुराए है।" मत्री ने भी हाथ जोडकर कह दिया—"बात सही है। मैंने सोचा चोरी तो हो ही गई है। चार का कहेगे, वैसे ही सात कह देगे।" तीनो रत्न राजा के सामने आ गये। जो चोर था वह साहूकार निकला और जो साहूकार था वह चोर। मणिशेखर की इस अटल सत्यवादिता पर अति खुश होकर राजा ने उसको अपना मन्त्री बना लिया। चोरी अपने आप छूट गई।

सत्य के सहारे चोर भी साहूकार हो सकता है। सत्यवादी का सर्वत्र सम्मान व स्वागत होता है। हर एक की उन्नति सत्य के आधार पर आधारित रहती हे। अत जीवन के हर पहलू मे अधिक से अधिक सत्य को सम्मान मिलना चाहिए।

मणिशेखर वह चोर भी, नृप का बना वजीर।
"मुनि कन्हैया" सत्य से, खुल जाती तकदीर ॥

तीसमारखाँ

एक गाव मे भोलू ब्राह्मण था। उसकी पत्नी बाते बनाने मे बडी होशियार थी। हर एक के आगे अपने पति की प्रशसा करने के लिये दिन मे तीन-चार घण्टे लगाये बिना नही रहती थी। भोलू वास्तव मे भोला ही था। न तो पढा हुआ था, न वह बोली-चाली मे दक्ष था। वह छोटे-छोटे गावो मे तेल, गुड आदि निरन्तर बेचने के लिए जाता था। मार्ग मे डाकुओ का अधिक भय रहता था। जिससे वह भोलू हरदम अपने पास तलवार रखता था। दूर से वह क्षत्रिय जैसा प्रभावशाली लगता था।

एक दिन वह गावो मे माल-ताल बेचकर अपने गाव आ रहा था। मार्ग मे अधिक थकान ने कही सो गया। नीद इतनी गहरी आई कि ढोल बजाने पर भी वह निद्रामुक्त नही हो सकता था। दरिद्री आलसी तथा बेसहूर होने के कारण उसके मुख पर मक्खिया भिन-भिनाने लगी। आख खुलते ही उसके क्रोध का पार न रहा। शीघ्र कपडे को डालकर ३० मक्खिया मार डाली। भोलू दौडा-दौडा घर आया और पत्नी से कहने लगा—आज तो तेरे भाग्य सिकन्दर थे। चूडा अमर रहने का कोई योग ही था। अभी-अभी जब मै आ रहा था तब रास्ते मे ३० डाकू मिल गये। फिर भी मैं घबराया नही। वीरतापूर्वक सग्राम लडा। तीसो को मार कर विजयपताका फहराता हुआ घर आया हू।

यह वात सुनते ही उसकी खुशी का पार नही रहा और हाथ जोडकर वोली—"पतिदेव ! धन्य है आपकी वीरता को। धन्य है आपके अवतार को !" भोलू की वीरता सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई और उसे लोग 'तीसमारखा' के नाम से पुकारने लगे। स्थान-स्थान पर उसका स्वागत होने लगा। नृप को भी यह पता लगा कि अपने नगर मे एक नया वीर 'भोलू ब्राह्मण' प्रकट हुआ है। नृप ने उसको राज-भवन मे वुलाकर काफी इनाम दिया।

एक वार लडाई का मौका आ गया। नृप ने भोलू को सेनापति वनाकर कहा—"जाओ ! अव सेना तुम्हारे साथ है। जीत के नगाडे वजाकर आना।" नृप का आशीर्वाद लेकर चला। दिल मे काफी भय था। रात भर उसे नीद नही आई—अव तो मेरी पोल खुलेगी। फिर भी उसने साहस नही तोडा और दूसरो को सत्रस्त करने के लिए वृक्ष की डाली तोडकर अपने कधो पर रख कर आगे वढने लगा। उसका अनुकरण करते हुए सारी सेना ने सारे पेड उखाड-उखाड कर अपने कधो पर रख लिये और मूछो पर ताव लगाते हुए रणस्थल मे जा पहुचे।

शत्रु की सेना ने सबके कन्धो पर वडी-वडी डालिया देखकर सोचा ये तो वडे-वडे पेड उखाड डालते है। यदि हमारे से लडेंगे तो हमको ये चुटकी मे मार देंगे। उसी वक्त सारी शत्रु सेना उल्टे पाव रणस्थल से भाग गई। भोलू का काम वन गया और नृप को निवेदन करते हुए कहा—"राजन् ! आपकी कृपा से सव काम सिद्ध हो गया है। अपनी सेना का वल और शौर्य देखकर शत्रुओ की सेना डरकर भाग गई।" भोलू की वीरता पर प्रसन्न होकर नृप ने उसको 'वीर चक्र' प्रदान कर सम्मानित किया।

भोलू प्रकृति मे भद्र होते हुए भी उसकी किस्मत वडी तेजस्वी थी। किस्मत के सहारे इन्सान को यथेप्ट की उपलब्धि हो सकती है।

जगती मे जिस मनुज की, किस्मत है वलवान्।
भोलू ब्राह्मण की तरह, पा सकते सम्मान॥

धन का स्वागत

धन्ना नाम का एक जाट था। एक दिन उसकी पत्नी धापू ने कहा "पतिदेव ! वैठे रहने से घर का पल्ल कैसे निकलेगा ? कृपा करके परदेश पधारो और कुछ कमाई करके लाओ।" जाट ने स्त्री को घर सम्हला दिया और परदेश के लिए रवाना हो गया। किसी वडे शहर मे जाकर किसी सेठ के घर नौकर रह गया, किन्तु काम का वडा आलसी था। सेठ ने चार-पाच महीना रखकर वापस उसको छोड दिया। पन्द्रह-वीस दिन तक नौकरी के लिए शहर मे उसने काफी प्रयास

किया। नौकरी नही मिलने के कारण वह अपने गाव आ गया। पत्नी ने पूछा—"कितनी कमाई करके लाये हो ?" उसने कहा—"क्या करू ? मेरे कर्म ही ऐसे है, मैंने काफी दौड-धूप की, फिर भी कमाई नही हुई।" धापू के क्रोध का पार नही रहा। धन्ना बोला—"मुझे भूख लग रही हे।' धापू ने रोटी और राबडी परोसी। धन्ना परदेश मे सेठ के यहा काफी पकवान खाया हुआ था जिससे उसने कहा—"मुझे यह भोजन अच्छा नही लगता है।" धापू को गुस्सा तो चढा हुआ था ही उसने उसके सिर पर एक कलछी की मारी। उसके भय से धन्ना दौडा, पीछे-पीछे वह भी चली। आगे जाते-जाते वह तो किसी मन्दिर मे छिप गया। धापू अपने घर आ गई।

धन्ना देवी की मूर्ति के आगे जाकर सो गया। अधिक थकान के कारण उसको गहरी नीद आ गई। रात्रि मे एक दो वजे अचानक दो चोर शहर मे चोरी करके वहा देवी को नारियल चढाने के लिए आये। हीरे-पन्नो से भरे हुए थैलो को एक तरफ रखकर पत्थर खोजने लगे। अमावस की रात होने के कारण सघन अधकार छाया हुआ था। पत्थर टटोलते-टटोलते चोर का हाथ धन्ना के सिर पर जा पडा। नारियल फोडने के लिए यह पत्थर अच्छा है। जोर से उस पर नारियल पटका। धन्ना की आखे खुली उसने सोचा — धापू आ गई। वह लेटा-लेटा धीरे से बोला—"रावडी खाऊ खाऊ", यह शब्द सुनते ही चोर भूत समझकर दौडे और धन के थैले वही भूल गये।

पीछे मे धन्ना उठा और धापू को इधर-उधर देखते हुए धन के थैलो पर नजर जा पहुची। खुशी का पार नही रहा। कली-कली खिलने लग गई। किस्मत की सराहना करता हुआ शीघ्र थैलो को कधो पर रखकर घर आया।

धापू वोली—"क्या थैलो मे पत्थर भरकर लाये हो ?"

धन्ना वोला—"आज तो तेरी तकदीर खुल गई। आख खोल थैलो मे देख क्या है ?" हीरो पन्नो पर नजर पडते ही धापू का कलेजा शीतल हो गया। और वार-वार पति का स्वागत करने लगी। हाथ जोडकर वोली—"पतिदेव! मैंने आपका काफी अविनय किया। अव हृदय से क्षमा याचना करती हू।" धन्ना ने सोचा—यह स्वागत मेरा नही है। धन का स्वागत है। आखिर उसने ससार के स्वरूप को झूठा समझ कर आध्यात्मिक मार्ग की शरण ली। पत्नी को पति तव तक सुहावना लगता है जव तक उसका स्वार्थ सधता है। स्वार्थ के अभाव मे पति भी जहर जैसा कडवा लगने लगता है। इस स्वार्थ भरे ससार मे आध्यात्मिकता की शरण ही सुखकर होती है।

स्वार्थ भरे ससार मे, साथी केवल धर्म।
परिजन कोई न पूछता, (फिर) वाध रहे क्यो कर्म ॥

क्षमा की विजय

एक कौशल्या नाम की बुढिया थी। उसे लडने का बहुत शौक था। विना लडे उसे चैन नही पडता था। अत जवरन वह एक न एक से लडती ही रहती थी। वेचारे गाव वाले उससे तग आ गये। एक दिन विवश हो, वे सव मिलकर ठाकुर साहव के पास गये और अपनी फरियाद रखी। ठाकुर साहव ने कौशल्या को बुलाया और कहा—"माजी! तुम हमेशा क्यो लडती झगडती हो? क्या इससे तुम्हे कोई लाभ मिलता है?"

बुढिया ने कहा—"विना लडे मेरा भोजन नही पचता है, अत लडना ही पडता है।"

ठाकुर साहव ने उसे वहुत समझाया, पर बुढिया को सद्बुद्धि कहा उत्पन्न होने वाली थी? आखिर ठाकुर साहव ने एक उपाय सोचा और बुढिया से कहा—"अच्छा, तुम्हारे पास प्रतिदिन एक-एक व्यक्ति आया करेगा और तुम उससे लडाई करती रहना। फिर तो दूसरो को तग नही करोगी?" बुढिया ने स्वीकार कर लिया। अव निरन्तर उसके पास एक-एक व्यक्ति जाने लगा। इस प्रकार लड-लटाकर वह अपने व्यसन का पोषण करती थी।

एक दिन एक धर्मात्मा स्त्री की वारी आई। जव वह जाने लगी तव उसकी वडी पुत्री ने कहा—"मा! तुम मत जाओ। आज मैं उस बुढिया के पास जाऊगी!" माता ने उसे समझाते हुए कहा—"पुत्री! वह वहुत लडने-झगडने वाली स्त्री है। तुझे दिन भर तग करेगी। अत मुझे ही जाने दे।" पुत्री नही मानी और उस बुढिया के पास जा पहुची।

लडकी पढी-लिखी और सस्कारित थी। वह बुढिया के पास आई और वोली—"माजी! आपको किस वस्तु की आवश्यकता है? क्या लाऊ?"

बुढिया अपने स्वभावानुसार वोली—"तेरी मा डायन है, तेरा वाप राक्षस है।" इस तरह वह अनेको बुरी-बुरी गालिया देने लगी, परन्तु लडकी शान्त रही और चुपचाप सव सुनती रही। वह अपने साथ कुछ सीने-पिरोने का काम ले गई थी और पढने की कुछ पुस्तके भी, अत चुपचाप अपना काम करती रही, बुढिया ने देखा कि यह तो कुछ वोल ही नही रही है। अत वह जोर-जोर से वकवास करने लगी और गालिया देती हुई कहने लगी—"तू वोलती क्यो नही है? क्या तेरे जुवान नही है? गूगी है।" बुढिया जव गालिया देकर थक गई तो लडकी ने कहा—"माजी! अव आराम कीजिए, आपका मुह दुखने लग गया होगा।"

बुढिया ने सोचा—यह कैसी लडकी है? मैं तो इसे गालिया सुना रही हू, हृदय मे आग सुलगा रही हू और यह वदले मे मुझे आराम करने को कहती है। कुछ

समझ मे नही आ रहा है यह लडने वाली आज कैसी आ गई। प्रतिदिन आने वालो से तो यह अनोखी ही मालूम पडती है। अव मैं कैसे लडूगी ? यह कुछ भी नही वोलती है। आखिर वुढिया ने लडकी से कहा—"पुत्री! तुम्हारी क्षमा और सहनशीलता के आगे ऐसा कौन मानव है जिसका हृदय न पिघले। तुम्हे भभकाने के लिए मैंने काफी प्रयत्न किये परन्तु तुम्हारा हृदय कहा उभरने वाला था, प्रत्युत मुझे ही तुम्हारी क्षमा के सामने चुप होना पडा।"

"क्षमा वीरस्य भूषणम्" क्षमा वीरो का आभूषण है। जिनके पास क्षमा-रूपी अमूल्य निधि है, उनके चरणो मे सारा ससार सिर झुकाता है। क्षमाशील के आगे वडे-वडे दुश्मन एव लडाकू व्यक्ति शान्त हो जाते हैं। अत सवको क्षमाशील वनना चाहिए।

क्षमावान् के सामने, दुश्मन वनता मित्र।
क्षमा-सलिल से मलिनता, धोकर वनो पवित्र॥

शराब से भयंकर नुकसान

एक वार भगवान् नेमिनाथ से श्रीकृष्ण ने पूछा—"प्रभो! द्वारिका का दहन कैसे होगा ?"

भगवान ने फरमाया—"इस नगरी का दहन मदिरा के योग से होगा।"

श्रीकृष्ण—"भगवान्! क्या किसी उपाय से दहन टल सकता है ?"

भगवान्—"जव तक नगरी मे उपवास, आयविल आदि तप होता रहेगा, तव तक इस नगरी का कोई वाल भी वाका नही कर सकेगा।"

श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करके वापस राजभवन मे आये और सारे शहर मे घोपणा करवा दी कि कोई भी व्यक्ति अपने पास शराव न रखे। जितनी शराव हो उस सवको नगरी के वाहर डाल दिया जाए और नगरी मे प्रतिदिन एक उपवास अथवा आयविल अवश्य होना चाहिए। तप के प्रभाव से नगरी मे किसी भी प्रकार का सकट उत्पन्न नही होगा।

श्रीकृष्ण का आदेश होते ही नगरी मे तपस्या की मानो वाढ-सी आ गई हो। घर-घर मे तपस्या होने लगी। शराव भी किसी ने नही रखी। सभी ने शहर के वाहर फिकवा दी।

एक वार कई राजकुमार क्रीडा करने के लिए जगल मे गये हुए थे। वापस आते समय मार्ग मे तृपाकुल हो गये। वर्पाकाल का समय होने से जगह-जगह

क्षमा की विजय

एक कौशल्या नाम की बुढिया थी। उसे लडने का बहुत शौक था। विना लडे उसे चैन नही पडता था। अत जबरन वह एक न एक मे लडती ही रहती थी। बेचारे गाव वाले उससे तग आ गये। एक दिन विवश हो, वे सब मिलकर ठाकुर साहब के पास गये और अपनी फरियाद रखी। ठाकुर साहब ने कौशल्या को बुलाया और कहा—"माजी ! तुम हमेशा क्यो लडती झगडती हो ? क्या इसमे तुम्हे कोई लाभ मिलता है ?"

बुढिया ने कहा—"विना लडे मेरा भोजन नही पचता है, अत लडना ही पडता है।"

ठाकुर साहब ने उसे बहुत समझाया, पर बुढिया को सद्बुद्धि कहा उत्पन्न होने वाली थी ? आखिर ठाकुर साहब ने एक उपाय सोचा और बुढिया से कहा—"अच्छा, तुम्हारे पास प्रतिदिन एक-एक व्यक्ति आया करेगा और तुम उससे लडाई करती रहना। फिर तो दूसरो को तग नही करोगी ?" बुढिया ने स्वीकार कर लिया। अब निरन्तर उसके पास एक-एक व्यक्ति जाने लगा। इस प्रकार लड-लडाकर वह अपने व्यसन का पोषण करती थी।

एक दिन एक धर्मात्मा स्त्री की बारी आई। जब वह जाने लगी तब उसकी बडी पुत्री ने कहा—"मा ! तुम मत जाओ। आज मैं उस बुढिया के पास जाऊगी !" माता ने उसे समझाते हुए कहा—"पुत्री ! वह बहुत लडने-झगडने वाली स्त्री है। तुझे दिन भर तग करेगी। अत मुझे ही जाने दे।" पुत्री नही मानी और उस बुढिया के पास जा पहुची।

लडकी पढी-लिखी और सस्कारित थी। वह बुढिया के पास आई और बोली—"माजी ! आपको किस वस्तु की आवश्यकता है ? क्या लाऊ ?"

बुढिया अपने स्वभावानुसार बोली—"तेरी मा डायन है, तेरा बाप राक्षस है।" इस तरह वह अनेको बुरी-बुरी गालिया देने लगी, परन्तु लडकी शान्त रही और चुपचाप सब सुनती रही। वह अपने साथ कुछ सीने-पिरोने का काम ले गई थी और पढने की कुछ पुस्तके भी, अत चुपचाप अपना काम करती रही, बुढिया ने देखा कि यह तो कुछ बोल ही नही रही है। अत वह जोर-जोर से बकवास करने लगी और गालिया देती हुई कहने लगी—"तू बोलती क्यो नही है ? क्या तेरे जुबान नही है ? गूगी है।" बुढिया जब गालिया देकर थक गई तो लडकी ने कहा—"माजी ! अब आराम कीजिए, आपका मुह दुखने लग गया होगा।"

बुढिया ने सोचा—यह कैसी लडकी है ? मैं तो इसे गालिया सुना रही हू, हृदय मे आग सुलगा रही हू और यह बदले मे मुझे आराम करने को कहती है। कुछ

समझ मे नही आ रहा है यह लडने वाली आज कैसी आ गई। प्रतिदिन आने वालो से तो यह अनोखी ही मालूम पडती है। अव मैं कैसे लडूगी ? यह कुछ भी नही वोलती है। आखिर बुढिया ने लडकी से कहा—"पुत्री ! तुम्हारी क्षमा और सहनशीलता के आगे ऐसा कौन मानव है जिसका हृदय न पिघले। तुम्हे भभकाने के लिए मैंने काफी प्रयत्न किये परन्तु तुम्हारा हृदय कहा उभरने वाला था, प्रत्युत मुझे ही तुम्हारी क्षमा के सामने चुप होना पडा।"

"क्षमा वीरस्य भूषणम्" क्षमा वीरो का आभूषण है। जिनके पास क्षमारूपी अमूल्य निधि है, उनके चरणो मे सारा ससार सिर झुकाता है। क्षमाशील के आगे वडे-वडे दुश्मन एव लडाकू व्यक्ति शान्त हो जाते हैं। अत सवको क्षमाशील वनना चाहिए।

क्षमावान् के सामने, दुश्मन वनता मित्र।
क्षमा-सलिल से मलिनता, धोकर वनो पवित्र ॥

शराब से भयंकर नुकसान

एक वार भगवान् नेमिनाथ से श्रीकृष्ण ने पूछा—"प्रभो ! द्वारिका का दहन कैसे होगा ?"

भगवान ने फरमाया—"इस नगरी का दहन मदिरा के योग से होगा।"

श्रीकृष्ण—"भगवान् ! क्या किसी उपाय से दहन टल सकता है ?"

भगवान्—"जव तक नगरी मे उपवास, आयविल आदि तप होता रहेगा, तव तक इस नगरी का कोई वाल भी वाका नही कर सकेगा।"

श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करके वापस राजभवन मे आये और सारे शहर मे घोषणा करवा दी कि कोई भी व्यक्ति अपने पास शराव न रखे। जितनी शराव हो उस सवको नगरी के वाहर डाल दिया जाए और नगरी मे प्रतिदिन एक उपवास अथवा आयविल अवश्य होना चाहिए। तप के प्रभाव से नगरी मे किसी भी प्रकार का सकट उत्पन्न नही होगा।

श्रीकृष्ण का आदेश होते ही नगरी मे तपस्या की मानो वाढ-सी आ गई हो। घर-घर मे तपस्या होने लगी। शराव भी किसी ने नही रखी। सभी ने शहर के वाहर फिकवा दी।

एक वार कई राजकुमार क्रीडा करने के लिए जगल मे गये हुए थे। वापस आते समय मार्ग मे तृषाकुल हो गये। वर्षाकाल का समय होने से जगह-जगह

चट्टानों में पानी भरा पड़ा था। उन्होंने उस पानी को पी लिया। चन्द ही क्षणों में सब नशे में चूर हो गये। क्योंकि उन चट्टानों में कुछ शराब रह गयी थी। कुछ ही दूरी पर द्वैपायन ऋषि ध्यानावस्था में खड़े थे। वे राजकुमार वहां जा पहुंचे। मुंह से ऋषि को अनर्गल शब्द बोलने लगे। बुरी-बुरी गालियां देते हुए ऋषि को ध्यान से विचलित करने लगे।

कुछ समय तक तो ऋषि शान्त रहे। आखिर वे क्रोधाकुल होकर बोले—"अरे! ये मूर्ख कौन है? मेरे साथ भी गाली-गलौज करते हैं।" ऋषि से रहा नहीं गया और उन्होंने यह निर्णय किया कि "यदि मेरी तपस्या का कुछ भी फल हो, तो मैं इस नगरी का दाहक बनूं।" ऋषि मरकर अग्निदेवता हुआ। पूर्वभव के वैर के कारण वह निरन्तर द्वारिका दहन के लिए आता और लौटकर वापिस चला जाता क्योंकि तपस्या के आगे उसका जोर नहीं चलता था। इस प्रकार बारह वर्ष पूरे हो गये, किन्तु उसको ऐसा योग नहीं मिला जिस दिन उपवास और आयंबिल नगरी में न हुआ हो।

एक दिन एक दूसरे के भरोसे में सब रह गये। न किसी ने उपवास किया और न किसी ने आयंबिल। वह देव प्रतिदिन आता ही था। उसको मौका मिल गया। समस्त द्वारिका नगरी पर उसने धधकते हुए अंगारों की वर्षा करनी शुरू कर दी। सारा शहर जलकर भस्म हो गया। केवल बलदेव और वासुदेव उस आग से निकल सके। इस भयंकर संहार का मूलभूत कारण था—शराब।

इन्सान को हर नशीली वस्तु से परे रहना चाहिए। शराब पीना तो एक बहुत बड़ा दुर्व्यसन है। इसके सेवन से भयंकर नुकसान हो जाता है। स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी इसे हेय माना गया है अतः किसी भी स्थिति में शराब नहीं पीनी चाहिए।

हुआ द्वारिका का दहन, मद्य योग से व्यक्त।
व्यसनरहित बन धर्म में रहना है अनुरक्त॥

४ शब्दों की पकड़

एक सेठ था। उसके पुत्र का नाम बाबूलाल था। सेठ ने अच्छा घर व सुशील लड़की देखकर बड़े ठाठ-बाट से पुत्र का विवाह कर दिया। पुत्रवधू रूपवती व सास की आज्ञाकारिणी तो अवश्य थी, किन्तु बिल्कुल अनपढ़ थी। काला अक्षर उसके लिए भैंस के बराबर था। ग्रामीण होने के नाते शहर के वातावरण से वह पूर्णतया

अपरिचित थी। फैशनपरस्ती मे दूर थी। बोलचाल की भाषा भी सीधी-सादी थी। बडो के सामने कैसे बोलना, रहना, बैठना आदि व्यवहारो से वह बिल्कुल अनभिज्ञ थी। सास, श्वसुर एव पति आदि को 'तू' कहकर बतलाती थी। सारे दिन भर घर मे हा-हू करती रहती थी, किसी की भी लाज-शर्म नही थी। फिर भी वह निश्छल होने के कारण सबको प्रिय लगती थी। सब उससे बोलना चाहते थे। क्योकि उसके पेट मे दावपेच न था। वह स्वभाव की बहुत ही अच्छी थी।

एक दिन सास ने बहू को शिक्षा देते हुए कहा—प्राचीन युग मे और वर्तमान युग मे काफी अन्तर है। आज का युग सभ्यता का युग है। बडो के सामने कैसे बोलना, खडा रहना, बैठना—यह सब सीखना चाहिए। तुम जो बोलचाल की भाषा मे 'तू' का प्रयोग करती हो, यह युग के अनुकूल नही है। अपने घर मे जितने भी प्राणी है सबको 'जी' कहकर बतलाना चाहिए। दूसरी शिक्षा यह है कि किसी भी काम के लिए बोलना पडे तो धीरे-धीरे बोलना चाहिए। अधिक हो हल्ला नही करना चाहिए।

बहू ने हाथ जोडकर कहा—"सासजी! आपकी शिक्षा को क्रियान्वित करने का प्रयास करुगी।"

अब वह बहू सबको जी कहकर पुकारने लगी। एक दिन भैस का पाडा खुल गया। वह ऊपर बैठी-बैठी बोलने लगी—"ओ सासजी! भैसजी का पाडाजी खुल गया जी! जल्दी जाओ जी।" सास दौडी-दौडी आई और गुस्से मे लाल होकर बोली—"यह क्या गीत गा रही हो? भैस और पाडे के आगे 'जी' लगाने के लिए मैंने कब कहा था।"

बहू हाथ जोडकर बोली—"खैर, भविष्य मे सब ध्यान रखूगी। किन्तु सासु जी आपने ही कहा था कि सबके आगे 'जी' लगाना, इसलिए मैंने 'जी' शब्द का प्रयोग किया क्योकि मेरी दृष्टि मे तो सब समान है। "जिस्यो सासुजी रो लाडोजी, विस्यो भैसजी रो पाडोजी।"

एक दिन हवेली के पास वाले नोहरे मे आग लग गई। ऊपर बैठी हुई बहू ने आग को देख लिया। वह मन्द-मन्द स्वर मे बोलने लगी—"ओ सासूजी! जल्दी आओजी, नोहरे मे जी, आग जी, लग गई जी।" सास ने सोचा—वह धीरे-धीरे कुड-कुड क्या कर रही है? शीघ्र आई और बहू से पूछा—"क्या गाना गा रही हो?" बहू ने धीमे से कहा—"देखिए! नोहरे की तरफ," आग धुआधार थी। सास ने कहा—"ऐसे अवसर पर भी धीरे बोलती हो?" बहू—"आपही ने कहा था धीरे-धीरे बोलना चाहिए।"

सास ने सोचा—"मूर्ख को टक्का दे देना चाहिए, अक्ल नही देनी चाहिए। मूर्ख को दी हुई शिक्षा नुकसानदायक ही होती है। हाय! ऐसी बहू से क्या लाभ?"

जो व्यक्ति शब्दो को ही पकडकर चलता है, उसे यथेष्ट की उपलब्धि असभव है। अत शब्दो को न पकडकर शब्दो के रहस्य की ओर ध्यान देना चाहिए, परन्तु जो मूर्ख होते है, वे शब्दो को पकडकर अपनी अकड मे रहते है और उनकी गहराई को वे सोच ही नही पाते हैं, अत मूर्ख को किसी भी तरह की शिक्षा न देकर उसके सामने तो मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

मूर्ख मनुज के सामने, रहो निरन्तर मौन।
शिक्षा देकर के उसे, सुख पाएगा कौन॥

मनचाहा नहीं करना

एक मुनि एक गाव से दूसरे गाव जा रहे थे। अचानक रास्ता भूल गये। खेत मे एक कृषिकार खडा था। मुनि ने उससे पूछा—"अमुक नगर को जाना है, मार्ग कौन-सा है?" किसान भला था। उसने मुनि को नमस्कार करते हुए कहा—"महाराज! मार्ग तो बहुत दूर रह गया, आप रास्ते से कैसे भटक गये?" मुनि ने कहा—"भाई जो होना था वह हो गया। अब तुम बताओ, मार्ग कौन-सा है? जिससे मुझे भटकना न पडे।" किसान मुनि के साथ हो गया। सीधे एव चौडे रास्ते मे मुनि को ले जाकर बोला—"महाराज, इस मार्ग को आप कभी भी न छोडे। यह सीधा उस नगर मे चला जायेगा, मैं अब वापस जाता हू।" मुनि ने कहा—"कृषिकार! तुमने तो मुझे रास्ता बता दिया, किन्तु थोडा-सा मार्ग मैं भी तुझे बता दू।"

कृषिकार—"शीघ्र बताए, मुझे खेत मे जाना है। अधिक समय मेरे पास नही है।"

मुनि—"अरे किसान! मनुष्यजन्म बडी मुश्किल से मिला है। कुछ न कुछ तुझे नियम लेना चाहिए। नियम के बिना मनुष्य पशु-योनि मे आता है।"

कृषिकार—"नियम लेने से क्या लाभ है?"

मुनि—"मनरूपी मदोन्मत्त हाथी को वश मे करने के लिए नियम अकुश के समान हैं।"

कृषिकार—"कठिन नियम तो नही ले सकता। कृपया कोई सरल नियम बता दीजिए।"

मुनि—"अष्टमी-चतुर्दशी को रात्रि भोजन नही करना और न हरी वस्तु खाना।"

कृषिकार—"महाराज! ये बनिये वाले टेढे-मेढे नियम तो नही ले सकता। और न मुझे याद रहता है। मुझे तो एक सीधा छोटा-सा नियम बता दीजिए।"

मुनि—अच्छा ! निरन्तर भगवान् की एक माला फेरना।"

कृषिकार—"महाराज ! यह भी याद नही रहता, मुझे तो कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे शीघ्र कल्याण हो जाये।"

मुनि—"मन का चाहा नही करना, इस एक नियम को तो ले सकते हो ?"

बस, कृषिकार ने उपरोक्त नियम ले लिया। मुनि रवाना हो गये। पीछे से उसने चाहा खेत मे जाऊ। उसको याद आया कि यह तो नियम लिया हुआ है। मन का चाहा नही करना। बैठ जाऊ, वृक्ष की छाया मे चला जाऊ। यह भी तो मन का चाहा है। इतने मे उसकी स्त्री उसे ढूढनी-ढूढती आ पहुची, जोर-जोर से बकने लगी—चलो, जल्दी चलो। यहा खडे-खडे क्या करते हो ? खेत मे कितना काम बाकी पडा है। किसान ने सोचा उत्तर दू। यह भी मन का चाहा हो गया। अब चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना-बोलना आदि उसकी समस्त क्रियाये बन्द हो गई।

स्त्री ने सोचा—पति तो पागल हो गये। कुछ कहते सुनते ही नही। आखिर वह हताश होकर खेत मे चली गई। कृषिकार वहा खडा-खडा आत्मध्यान मे लीन हो गया। मच्छर-चीटी आदि अनेको जीव जन्तु उसे काटने लगे, फिर भी वह अधीर नही हुआ। सब कष्टो को समता से सहता गया। क्रमश आत्म-भाव मे वह इतना रम गया कि सब कर्मो को काट वह सिद्ध स्वरूप को प्राप्त हो गया।

जीवन मे नियम आवश्यक है। नियम-हीन जीवन खतरनाक होता है। नियम अकुश है, निधि है, जीवन का सम्बल है। नियम का अर्थ है इच्छाओ का दमन, अत हरेक को कुछ न कुछ नियम लेना जरूरी है।

मन का चाहा मत करो, मिल जाये निर्वाण।
मुनि की शिक्षा धारकर, बन गया मुक्त किसान ॥

+ जाट की करामात

एक धनाढ्य जाट था। उसके हर साल सैकडो मन अनाज होता था। वह खाता, पीता और मौज उडाता था। किसी भी तरह की उसको चिन्ता नही थी। जाटनी भी पतिव्रता एव पतिभक्ता होने के साथ-साथ बडी धर्मिष्ठा थी। सोमवती अमावस की बात है कि जाट तो किसी गाव गया हुआ था। पीछे से उसके घर पर एक ब्राह्मण आया और जोर-जोर से बोलने लगा—"माताजी ! आज सोमवती अमावस का बडा शुभ दिन है। आज के दिन जो कोई ब्राह्मणो को दान देता है, उसको बहुत पुण्य होता है। उसके समस्त सकट दूर हो जाते है। घर मे किसी भी

तरह मे उसके कमी नही रहती है।" जाटनी ने मोचा—पण्डितजी जो वात कहते हैं वह वास्तव मे सही है। पाच मेर आटा और आधा मेर घी का दान देने के लिए ज्यो ही वह तैयार हुई। इतने मे एक खाती आया और जोर मे वोला—माताजी ! पहले मेरी वात सुनो, पीछे दान देना। शास्त्रो मे कहा है—"सौ पूजा एक पाती, सौ ब्राह्मण एक खाती।" सौ ब्राह्मणो को दान देने मे जितना पुण्य होता है, उतना ही पुण्य एक खाती को देने मे हो जाता है।"

जाटनी के दिमाग मे खाती की वात सोलह आना जच गई। और उसी को दान देने लगी। इतने मे एक डाकौत आया और वोला—"माताजी ! पहले मेरी वात सुनो, पीछे दान देना। शास्त्रो मे कहा है—"सौ वशौला एक करौत, सौ खाती एक डाकौत।" जैसे एक तरफ तो सौ वशौले हैं और एक तरफ एक करौत, किन्तु शक्ति मे वरावर है वैसे ही सौ खाती और अकेला डाकौत वरावर है। डाकौत को दान देने मे वडा लाभ है। वडा पुण्य है।"

जाटनी को इसका कथन भी अक्षरश सत्य लगा। डाकौत को दान देने की जच गई। इतने मे एक पडा आ गया। वह वोला—"माताजी ! डाकौत से पडे का ऊचा स्थान है। ग्रन्थो मे भी लिखा है—'सौ झडी एक झडा, सौ डाकौत एक पंडा'। जैसे एक झडे के आगे सौ झण्डियो का कुछ भी महत्त्व नही है, वैसे ही एक पडे के सामने यदि सौ डाकौत भी है तो उनका कुछ भी मूल्य नही हैं।"

जाटनी वडी उधेड-वुन मे पड गई—क्या करु ? किसको दू ? इतने मे एक नाई आया और वोला—"आधी गद्दी वैठण नै, माथे पर भी हाथ। हमको महाजनो की गद्दी मिलती है उनके माथे पर भी हाथ रखने वाले हम है। ग्रन्थो मे भी लिखा है—सौ खाडा एक खाई, सौ पडा एक नाई। नाई का वहुत ऊचा स्थान है अत इस दान का हकदार मैं हू।" इतने मे घर का मालिक जाट आ गया। वह वडा चतुर था। वह वोला—"देख शास्त्रो मे लिखा है—सौ पीढी एक खाट, सौ नाई एक जाट। दुनिया मे जाट का वहुत ऊचा स्थान है। अत. यह दान तो मुझे मिलना चाहिए।" जाटनी समझ गई। किसी को भी दान नही दिया गया। जाट की करामात एव दक्षता से घर का सामान घर मे ही रह गया।

जो व्यक्ति वुद्धिमान एव चतुर होता है उसको कोई भी ठग नही सकता। वह अपने चातुर्य से हर क्षेत्र मे सफल होता है। समय पर उसको ऐसी वुद्धि उपजती है कि उसको किसी भी तरह का नुकसान नही उठाना पडता है।

देख चतुरता जाट की, चकित हुए सव लोग।
चतुर मनुज का हर जगह, होता सफल प्रयोग॥

परोपदेशे पाण्डित्यम्

एक भट्ट जी कथा वाचन करते थे। अनेको भक्त उनकी कथा सुनने के लिए आते थे। एक दिन भट्टजी की सुपुत्री भी कथा सुनने चली गई। कथा मे वैंगन का प्रसग चल रहा था। भपृजी ने भक्तो को उपदेश देते हुए कहा—"वैंगन किसी को भी नही खाने चाहिए। उसमे वीज बहुत होते हैं, अत वह वायु-कारक होता है।" पुत्री ने सोचा—पिताजी तो निरन्तर वैंगन खाते हे और कहा भी करते हें—'नीली टोपी श्याम घटा, सव शाको मे शाक भटा।' किन्तु आज तो विल्कुल विपरीत नजर आ रहे हैं, वैंगन की तो खुलकर निंदा करते है। ऐसा आभास होता है कि पिताजी को वैंगन की वुराइयो का आज ही पता लगा है। वह दौडी-दौडी घर आई और मा से कहने लगी—"अम्मा! आज शाक किसका वनाओगी?"

अम्मा—"पुत्री! वैंगन का तो वनाना ही है। साथ मे एक और वना लूगी।"

पुत्री—"आज वैंगन का शाक मत वनाना। पिताजी नही खायेंगे। मैं कथा सुनकर आई हू। पिताजी ने अपने भापण मे वैंगन की वहुत निन्दा की है। और लोगो से कहा—'वैंगन अभक्ष्य हैं'।"

अम्मा—"पुत्री! वे वैंगन नही खायेंगे तो मैं किसके लिए वनाऊगी? तुमने अच्छा किया जो पहले सचेत कर दिया।"

भट्ट जी कथा समाप्त करके घर आये। भोजन के लिए बैठे। व्राह्मणी ने भोजन परोसा। अन्य तरकारियो के माथ वैंगन की तरकारी नजर नही आने से भट्ट जी वाल पडे—"आज वैंगन का शाक क्यो नही वनाया? उसके विना भोजन स्वादिष्ट नही लगता है। क्या घर मे वैंगन नही थे?"

व्राह्मणी ने कहा—"मैं वैंगन का शाक वना ही रही थी। इतने मे यह पुत्री दौंडी-दौडी आई और इसने वैंगन वनाने के लिये मना ही कर दिया।"

पुत्री को ललकारते हुए भट्ट जी ने कहा—"अरी! तूने वैंगन का शाक नही वनाने दिया। किसलिए निपेध किया?"

पुत्री ने विनयपूर्वक कहा—"पिताजी! आपने कथा मे वैंगन को आध्यात्मिक व शारीरिक दोनो ही दृष्टि से अभक्ष्य वताया था। मैंने सोचा आप इतनी निन्दा करते है तो आप स्वय कैसे खाएगे? इसलिए मैंने निपेध किया।"

भट्ट जी वोले—पुत्री! तू तो भोली है। तुझे इतना ज्ञान कहा कि कथा के वैंगन अलग होते है और रसोईघर के अलग। कथा मे तो जो वात आती है वह कहनी ही पडती है। ऐसा अगर उपदेश न करे तो आजीविका कैसे चले। उपदेश के अनुसार अपने आपको चलाने की आवश्यकता नही है।" भट्ट जी ने उसी समय वैंगन का शाक वनवाया।

'परोपदेशे पाण्डित्यम्' दूसरे को उपदेश देने मे सव कुशल हैं। उपदश को क्रियान्वित करने वाले वहुत कम है, किन्तु जीवन मे उतारे विना किसी का भी उत्थान नही हो सकता।

स्वय वनो आचारयुत, फिर दो पर-उपदेश।
उस शिक्षा का अन्य पर, होगा असर विशेप॥

सुखी कौन ?

एक सिद्ध पुरुप महात्मा थे। उनके पास एक भक्त आया और साप्टाग नमस्कार किया। महात्मा ने उसे उपदेश देते हुए कहा—"भक्त ! धर्म किया करो। मनुष्य-जन्म वार-वार नही मिलता।"

भक्त—"महात्मा जी ! आपका फरमाना अक्षरश सत्य है, किन्तु आज के विपम युग मे परिवार वालो का भरण-पोपण करना वडी टेढी खीर है। सारे दिन दौड-धूप करने के वाद वडी मुश्किल से पेट भर खाना मिलता है। अगर कही आजीविका का प्रवन्ध हो जाए तो धर्म करने की इच्छा है।"

महात्मा—"भक्त ! अगर तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाये, तव तो भगवान का भजन करेगा ?"

भक्त—"योगिराज ! ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या ? फिर तो मैं ऐसा भजन करु कि भगवान और मैं एक वन जाऊ।"

महात्मा ने उसकी हथेली पर एका लिख दिया। त्यो-त्यो करके प्रतिदिन उसे एक रुपया मिल जाता था। घर का काम चलने लगा।

कुछ दिनो वाद महात्मा जी से उसकी फिर मुलाकात हुई। महात्मा ने कहा—"आजकल भी तुम भगवान् का भजन नही करते हो, यह क्या वात है ?"

भक्त—"महाराज ! कितनी महगाई है ? एक रुपये से घरेलू खर्च कैसे निभ सकता है ?"

महात्मा—"भक्त ! तो फिर तुम क्या चाहते हो ?"

भक्त—"करुणानिधान ! दस रुपये प्रतिदिन मिल जाय, तो खर्च अच्छी तरह चल सकता है।"

महात्मा—"रोज दस रुपये मिलने पर तो भगवान का भजन करेगा ?"

भक्त—"फिर तो मै सारा समय ही ईश्वर की भक्ति मे लगा दूगा।"

महात्मा ने उसके हाथ पर जो एक का अक था उसके आगे एक शून्य और वढा दी। अव उसको तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगा। घरेलू खर्च भी वढा।

विवाह-सगाई भी ऊची हैसियत के अनुसार होने लगी ।

कुछ दिनो पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले—"भक्त आजकल तो दस रुपये रोज मिलते है फिर भी तू भजन नही करता है।"

भक्त—"दीनदयाल! क्या करु खर्च बढ गया। परिवार वालो का भार सिर पर बहुत है। इज्जत के माफिक सब काम करना पडता है। आप सिद्ध पुरुष है। यथोचित देने के लिए आप कल्प-तरु हैं। कृपा करके कुछ आमदनी और बढा दीजिए।"

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढाकर कहा—"भक्त! अब तो भगवान् का भजन करेगा?"

भक्त ने हाथ जोडकर कहा—"योगिराज! मेरे पर आपने बडी कृपा की। मैं अपना सारा जीवन भगवान् की भक्ति मे ही खपाऊगा।"

अब उसको प्रतिदिन १००) रुपये, महीने मे ३०००) रुपये, बारह महीने मे ३६००० रुपये मिलने लग गये। फिर भी उसकी लालसा शान्त कहा होने वाली थी? और कहा भजन के लिए समय मिलने वाला था?

इन्सान की इच्छाओ का अन्त नही है, ज्यो-ज्यो आय बढती है, त्यो-त्यो लोभ बढता है किन्तु सुखी वह होगा जिसने इच्छाओ का दमन कर लिया।

भक्त भजन नही कर सका, पाकर इच्छित ऋद्धि।
इच्छाओ के दमन से, होती सुख की वृद्धि ॥

दो घड़ी

एक बुधराम नाम के लखपति सेठ थे। उनका व्यापार परदेश मे चलता था। घर पर अनेको नौकर रहते थे। परदेश से समाचार आया कि सेठ साहब को एक बार अवश्य ही दूकान पर आना चाहिए और व्यापार सम्हालना चाहिए। सेठ जी परदेश गये। व्यापार की देख-रेख करके दो-तीन महीने वहा ठहर कर वापस घर आने के लिए रवाना हुए। साथ मे अधिक धनराशि होने के कारण सेठ ने तीन-चार पहरेदार ठाकुर साथ ले लिए। सेठ ज्योही नगर के कुछ नजदीक पहुचा, त्योही उसके मन मे विचार आया कि इन सब ठाकुर लोगो को यदि घर ले जाऊगा तो सबको भोजन कराना पडेगा। इससे अच्छा है कि मै यहा से ही इनको विदा दे दू। सेठ ने सब ठाकुरो को कह दिया—"अब तुम्हारी आवश्यकता नही है, मेरा नगर नजदीक है अब किसी का भय नही है। तुम सब जाओ।" ठाकुरो की इच्छा थी कि

हम सेठ साहब की हवेली देखकर जाए, किन्तु सेठ का आदेश पालन करना भी आवश्यक था। वे सेठ से विदा लेकर रवाना हो गये।

अब केवल सेठ जी और रथ को चलाने वाला सारथी ये दो ही रह गये। ज्योही कुछ आगे चले त्योही अचानक पहाडी मे से साठ भीलो (डाकुओ) का गिरोह आ निकला।

सब जोर-जोर से बोलने लगे—"लूटो, पकडो, इस सेठ को···।"

सेठ हक्का-बक्का रह गया। कलेजा थर-थर कापने लगा—हाय! ऐसा पता होता तो ठाकुरो को विदाई क्यो देता? आज बिना मौत मरना पडेगा। इतने मे साठो ही चोर सेठ के नजदीक आये और लूटने के लिए उद्यत हुए। उन साठो चोरो मे से दो चोरो को सेठ ने पहचान लिया। जोर से उनका नाम लेकर सेठ जी बोले—"अरे! तुम हो?" दोनो ने सोचा—इनको अपने नाम का पता कैसे लगा? दोनो ने ध्यानपूर्वक देखा तो यह पता लगा—"अरे! ये तो अपने सेठ है, हम दोनो ने इनके घर पर पहले नौकरी की थी, इनका नमक-पानी खाया हुआ है। इन पर हाथ डालना, इनको लूटना, अपने लिए शोभास्पद नही है। जिस डाली पर बैठना, उसी को काटना क्या मूर्खता नही है।"

दोनो ने अठावन चोरो से कहा—"इनको मत लूटो, ये हमारे सेठ है।" चोरो मे भेद पड जाने के कारण चोरी नही हो सकती। सब हताश हो गये। सबके हाथ जहा के तहा रह गये। दोनो ने कहा— "सेठ साहब! आप आराम से धीरे-धीरे घर पधारिये। कोई भी आप पर हाथ नही डालेगा।" सेठ जी आनन्द से घर पहुच गये और मन ही मन सोचने लगे—दो की पहचान से किसी का भी जोर नही चला। सबकी हार हो गई, दो जीत गये।

रात-दिन की साठ घडी होती है, अगर दो घडी भी भगवान का भजन किया जाय तो अठावन घडी का तनिक भी जोर नही चल सकता है। '५८ घडी कर्म की तो २ घडी धर्म की' इस कहावत को ध्यान मे रखते हुए हर एक को दो घडी तो अवश्य ही धर्म करना चाहिए।

घडी साठ दिन-रात की, करो घडी दो धर्म।
विजय करो बुधराम का, सुनकर सच्चा मर्म॥

महेन्द्र और नरेन्द्र

महेन्द्र और नरेन्द्र दो मित्र थे। दोनो मे घनिष्ठ मैत्री थी। महेन्द्र बडा धर्म-निष्ठ था। निरन्तर भगवान की माला फेरना, सन्तो का व्याख्यान सुनना उसने अपना दैनिक कार्यक्रम बना रखा था। नित्य नियम को वह किसी भी परिस्थिति मे

नही छोडता था। नरेन्द्र इसके बिल्कुल विपरीत था। वह ससार के मायाजाल मे फसा रहता था। कुछ भी धर्मध्यान नही करता था। एक दिन मित्र महेन्द्र ने नरेन्द्र से कहा—"भाई! ससार मे कोई भी तेरा नही है, सब स्वार्थ के साथी है। जब तक स्वार्थ होता है तब तक सब पीछे-पीछे दौडते हैं। स्वार्थ दूर होते ही सब बदल जाते हैं। और क्या? पतिव्रता कहलाने वाली स्त्री भी मुह फेर लेती है, अत तू कुछ धर्म किया कर।"

नरेन्द्र बोला—"महेन्द्र ऐसी बात नही है। मेरी स्त्री मेरे मे बडा प्रेम करती है। सुख-दु ख मे साथ रहने वाली है। मैं कभी रोग-ग्रस्त हो जाता हू तो वह खाना-पीना सब भूल जाती है। केवल मेरी सेवा-शुश्रूषा मे उसका ध्यान रहता है। खुद भले ही रुखा-सूखा खा ले, किन्तु मुझे निरन्तर गर्म-गर्म माल खिलाती है।"

महेन्द्र—"मित्र! इसकी तो जब तू परीक्षा करेगा तब पता लगेगा कि स्त्री कैसा प्यार करती है? कैसा अपना कर्तव्य निभाती है।"

नरेन्द्र—"परीक्षा कैसे करु?"

महेन्द्र—"पेट दर्द का बहाना लेकर श्वास चढाकर सो जाना। फिर देखना तू तेरी स्त्री का तमाशा तथा प्रेम का वास्तविक स्वरुप।"

नरेन्द्र—"मुझे तो श्वास चढाने की क्रिया आती नही है।"

महेन्द्र—"मैं तुम्हे कुछ ही दिनो मे सिखा दूगा।"

नरेन्द्र ने कुछ ही दिनो मे श्वास-विद्या का अभ्यास कर लिया। एक दिन उसने पत्नी से कहा—"आज तो मेरे पेट मे दर्द हो रहा है, शूलें चल रही हैं।" यो कहता हुआ श्वास चढाकर लम्बा पसर गया। स्त्री ने सोचा—पतिदेव तो परलोक पहुच गये। अब तो 'पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा'। उसने चूटिया चूरमा तथा भैंस का दही दबादब खाकर पेट भर लिया। रोने की तैयारी करने लगी, इतने मे उसको याद आया—इनके दातो मे सोने की चीप है। दौडी-दौडी पसेरी लाई और दातो को तोडने लगी। नरेन्द्र लेटा-लेटा सारा नाटक देख ही रहा था। एकाएक उठा और बोला—"चूटियो चूरमो, भैंस रो दही, तू खायो मै देख्यो सही। सुण-सुण हे चरितारी नार, ले पसेरी म्हारा दात मती पाड।"

"देख लिया मैंने तेरा झूठा प्रेम, कम से कम पत्थर से मेरे दात तो मत तोड।" दौडा-दौडा शीघ्र महेन्द्र के घर आया और बोला—"मित्र! तूने कहा था वह सब सत्य है। मेरा कोई नहीं है। समय पर मेरी स्त्री भी बदल गई है।" आखिर दोनो ने ही ससार के स्वरूप को झूठा समझकर सयम लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

सारा ससार मतलब का है। मतलब से ही सब दौडे-दौडे आते है। मतलब के अभाव मे पतिव्रता कहलाने वाली नारी भी बदल जाती है, अत. ससार का झूठा

प्रेम समझकर हर एक को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होना चाहिए।

जव तक मतलव पहुचता, तव तक सव हैं साथ।
विना स्वार्थ ससार मे, कोई न पूछे वात॥

स्त्रीहठ

राजा भोज की महारानी और कवि कालिदास की धर्मपत्नी दोनो की आप मे वडी मित्रता थी। प्राय. प्रतिदिन दोनो का मिलन हो ही जाता था। एक दि महारानी ने उससे कहा—"वहन! राजा को मैंने इतना वश मे कर रखा है वि मेरी आज्ञा का पालन राजा को करना ही पडता है। मैं जैसा चाहू वैसा कार्य करव सकती हू। क्या तेरा पति कवि कालिदास भी तेरे वश मे है?" उसने कहा— "जैसे तेरे पति तेरे वश मे है, वैसे ही मेरे पति भी मेरे वश मे हैं, मेरा मन इच्छि उनको करना ही पडता है।" महारानी ने कहा—"आज इसकी परीक्षा करे वि किसका पति किसके वश मे अधिक है। तू तेरे पति कालिदास को आज भ (सिरमुण्डन) वना देना।" उसने कहा—"वहन! तू राजा को गधा वनाकर उस ऊपर चढना।"

उसने घर आकर अपने पति कालिदास से कहा—"पतिदेव! आज आपव भद्र होना है।" कालिदास की इच्छा न होते हुए भी स्त्री-हठ का पालन तो कर ही पडता है। भद्र होकर कालिदास ने स्त्री से पूछा—"प्रिये! इतना हठ पकडने क्या कोई कारण था?" पत्नी ने सव वातें, जो महारानी के साथ हुई थी, वता दं

इधर ज्यो ही राजा भोज राजमहल मे आया त्योही महारानी पिशाचिनी भाति विकराल रूप धारण कर वोली—"पतिदेव! आपको गधा वनना पडे मैं ऊपर वैठूगी।" राजा सहम गया, किन्तु महारानी का हठ भी अजेय थ आखिर राजा ने सोचा महलो मे कौन देखता है। जैसा महारानी ने कहा था, वै ही राजा को करना पडा।

दूसरे दिन कवि कालिदास ज्योही राज्यसभा मे पहुचा त्योही राजा भोज उसे मुण्डित देख कहा—

"कालिदास कविश्रेष्ठः, कस्मिन पर्वणि मुण्डनम्।"

"कालिदास! किस पर्व के उपलक्ष मे सिर को मुण्डाया है।"

कालिदास वडा दक्ष कवि था। वह अवसर को कव चूकने वाला था। श वोला—

"राजानो गर्दभायन्ते, तस्मिन् पर्वणि मुण्डनम्॥"

"राजन् रात्रि मे आप गधे वने थे, उसी पर्व के उपलक्ष मे मैंने सिर मुण्डवाया है।" राजा अवाक् रह गया। सिर नीचे झुक गया और धीरे से वोला—"ससार मे स्त्रीहठ वडा वलिष्ठ होता है।"

स्त्रीहठ और वालहठ के आगे वडे-वडे राजाओ को झुकना पडता है, किन्तु अत्याग्रह् करना कोई बुद्धिमत्ता का परिचायक नही है। आग्रह् को सर्वथा त्याज्य ही समझना चाहिए।

स्त्रीहठ के आगे झुके, विज्ञ और नरराज।
किन्तु सर्वथा त्याज्य है, आग्रह करना आज॥

संग्रह करना पाप

ईरान मे राजवंशी शाह् जूसा नाम का एक व्यक्तित्वशाली पुरुष था। उसका हृदय गगा-सलिल-सा निर्मल था। वहा के फकीर भी उसे पूज्य दृष्टि से देखते थे। शाह् जूसा के एक पुत्री भी थी। प्रत्येक कार्य मे वह वडी दक्ष थी। वह जितनी शिक्षित और सस्कारित थी उतनी ही सुन्दर भी थी। किसी राजा ने शाह् जूसा से कहा—"मैं आपकी लडकी से शादी करना चाहता हू।" शाह् जूसा—"राजन्! मुझे लडकी के लिए वर राजा नही त्यागी पुरुष चाहिए।" कुछ समय पश्चात् शाह् जूसा ने एक मस्त फकीर को देखा और उससे कहा—"क्या आप शादी करना चाहते हैं?"

फकीर ने कहा—"शादी करना तो चाहता हू किन्तु मुझ जैसे गरीव को लडकी कौन देगा? मेरे पास तनिक भी धन नही है।"

शाह् जूसा ने कहा—"मैं धनाढ्य की नही धार्मिक व्यक्ति की खोज मे हू। मैं दूगा आपको अपनी लडकी।"

फकीर—"महाभाग! मैं तो अकिंचन हू। मेरे पास तो केवल तीन पैसे है।"

शाह् जूसा—"आप अपने तीन पैसो से ही अगरवत्ती, कुकुम आदि ले आइए, मैं अपनी लडकी का विवाह् आपके साथ कर दूगा।"

फकीर सव सामग्री ले आया और शाह् जूसा ने उसके साथ अपनी लडकी का विवाह् कर दिया। फकीर उस लडकी को लेकर अपने निवास स्थान पर आया। लडकी ने ज्योही उस फकीर की झोपडी मे प्रवेश किया त्योही वह तमक कर वोली—"मैं इस घर मे नही रह सकती।"

फकीर—"मृगाक्षी! यह तो मैं जानता ही था कि तुम राजघराने की लड़की मुझ जैसे फकीर की झोपडी मे कैसे रह सकोगी?"

लडकी—"पतिदेव ! मैं आपकी झोपडी को देखकर भागना नही चाहती हू। पर आपने जो रोटियो का सग्रह कर रखा है इसे देख मन मे घृणा उत्पन्न हो रही है। क्या आपको कल का भरोसा नही है ?"

फकीर—"मृगलोचने ! कुछ रोटिया वच गई थी। मैंने सोचा, कल काम आ जाएगी इसलिए रख ली है।"

लडकी—"प्राणेश ! आवश्यकता से अधिक रखना अर्थात् किसी भी वस्तु का सग्रह करना वहुत वडा पाप है। सग्रहवृत्ति की भावना से देश का पतन हुआ हे। इसे आप छोड दीजिए। मैं यहा रहने को तैयार हू।"

फकीर—"प्रिये ! जैसा तुम कहोगी वैसा ही करूगा और सग्रह को हेय मानूगा।"

अव वह लडकी फकीर की झोपडी मे आनन्द से रहने लग गई क्योकि असग्रह की भावना का प्रभाव पडें विना कैसे रह सकता था ?

इन्सान के हृदय मे असग्रह-भावना जव तक जागृत नही होगी तव तक कोई भी समाज, प्रान्त, राष्ट्र अपना उत्थान नही कर सकेगा, अत असग्रह वृत्ति को अधिक महत्त्व देना चाहिए।

सग्रह करना छोड दो, यदि चाहते उत्थान।
होता सग्रह-वृत्ति से, कदम-कदम नुकसान॥

दुर्जन का संग

एक हस और एक कौवे मे एक वार अच्छी दोस्ती हो गई। गगन विहरण करते हुए दोना एक वृक्ष पर जा वैठें। प्रेमपूर्वक दोनो वाते करने लगे। किन्तु स्वभाव से दोनो अलग-अलग थे। हस की गतिविधि सज्जन जैसी थी और कौवे की दुर्जन जैसी। अचानक उसी वृक्ष की शीतल छाया मे विश्राम लेने के लिये थका हुआ एक मुसाफिर आ गया। वह अपनी चादर विछाकर सो गया। श्रान्त होने के कारण सहसा गहरी नीद आ गई। वृक्ष पर वैठें हुए हस ने देखा कि पथिक के वदन पर सूर्य की कुछ किरणे पड रही है। तीव्र ताप के कारण इसकी नीद टूट जायेगी। इस कारण हस अपनी पाखें फैलाकर वैठ गया। सारी धूप उसके पखो पर समाहित हो गई। यह वात कौवे को अच्छी नही लगी। उसने सोचा—हस विल्कुल भोला है। पथिक की चिन्ता मे खुद कितना ताप सह रहा है। पथिक को आराम क्यो देता है ? उसके सुख को पचा नही सकने के कारण कौवे ने मुसाफिर के मुख पर विष्टा कर दी।

पथिक की आखे खुली। सोचा—यह दुश्मन कौन ? पख फैलाए हुए हस को देखते ही वह तो आग-बबूला हो गया। मलकर्ता उसी हस को समझकर उसने गोली से उसके प्राण पखेरु उडा दिये। दुर्जन के सग से हस को बिना मौत मरना पडा।

दुर्जन का सग कभी भी सुखद नही होता है। सज्जन का सग सर्वदा लाभप्रद होता है। 'जैसा सग वैसा रग' जैसा सग मिलेगा वैसा ही रग चढ जायेगा। अतः हर एक को दुष्ट मनुष्यो की सगति से दूर रहना चाहिए।

दुर्जन कौवे-सग से, मरा बिचारा हस।
सज्जन सगति से मनुज, बनता जग-अवतस ॥

सबसे बड़ा मूर्ख

एक अजयपाल नामक ग्वाला था। वह जगल मे बकरिया चराता था। एक दिन नदी के किनारे उसे एक चमकीला पत्थर मिला। दीखने मे वह सुन्दर था। उस ककर को ले वह आया। उसने ककर बेच बदले मे महाजन से एक सेर गुड ले लिया। महाजन बाजार गया और मणिहारे के साथ सौदा कर लिया। उसने ककर के बदले मे एक रुपया दे दिया।

मणिहारे ने दुकान सजाई। इतने मे एक जौहरी उसकी दुकान पर आ पहुचा। जौहरी की नजर उस चमकीले ककर पर पडते ही मणिहारे से पूछा—"भाई ! इस ककर की क्या कीमत है ?" मणिहारे के मुख से सहसा निकल गया—"इसकी कीमत पाच रुपये है।" जौहरी ने क्रमश दो, तीन, चार रुपयो के लिए कहा। मणिहारे ने कहा—"पाच से एक पाई भी कम नही लूगा।" अत मे जौहरी बोला—"खैर, पाच रुपयो मे एक पैसा कम ले लो और ककर मुझे दे दो।" उसने कहा—"एक पैसा भी कम नही लूगा।" एक पैसे के लोभ मे वह जौहरी उस ककर को छोडकर चला गया।

पीछे से एक विवेकशील जौहरी उसी दुकान पर आ पहुचा। उसने भी उसी ककर के लिए पूछा—"इसकी क्या कीमत है ?" मणिहारे ने सोचा—क्या बात है, जो आते हैं वे इसी की कीमत पूछते है। वह शीघ्र ही बोला—"सेठ साहब ! इसकी कीमत पच्चीस रुपये है।" जौहरी ने तुरन्त जेब से निकालकर पच्चीस रुपये दे दिये और उस ककर को खरीद लिया।

कुछ ही समय पश्चात् वह लोभी जौहरी फिरता-फिरता वापस वहा आया

और वोला—वह ककर कहा है ?" मणिहारे ने कहा—"उसे पच्चीस रुपयो मे वेच दिया।"

जौहरी वोला—"मूर्ख ! तूने आज वहुत वडी गलती की। वह ककर नही था, सवा लाख का रत्न था। जिसको तूने पच्चीस मे वेच दिया। मणिहारा वोला—"सेठ साहव मैं तो अज्ञानी हू। मुझे ककर और रत्न की पहिचान न थी, परन्तु आप तो परीक्षक (जौहरी) थे। आपने एक पैसे के लिए सवा लाख का रत्न खो दिया, अत सच्चे मूर्ख तो आप है।" जौहरी हाथ मलते-मलते घर आया और मन ही मन मे दु ख करने लगा 'हाय ! अव ऐसा रत्न कव मिलेगा ?'

जो इस अमूल्य जन्म को निद्रा, हास्य, आलस्य, प्रमाद, और विपय-वामना मे वृथा गवा देते है, उनको अन्त मे उस मूर्ख जौहरी के सदृश पश्चात्ताप करना ही पडता है क्योकि अवसर निकल जाने के पश्चात् क्या···?

समझो मानव जन्म को, वड़ा कीमती रत्न।
इसकी रक्षा के लिए, करो निरन्तर यत्न ॥

मुंडा देखनै टीका काढ़ै

एक सेठ था। उसके दो लडकिया थीं। अच्छे घर व अच्छे वर देखकर सेठ ने दोनो लडकियो के विवाह कर दिये। सेठ का छोटा जमाई कान्तिलाल किस्मत वाला था। वह थोडे ही दिनो मे धनाढ्य वन गया। दुकान का कारोवार दिनो-दिन वढता गया। कई मुनीम व नौकर रहने लगे। कुछ ही दिनो मे उसकी गिनती लखपतियो मे होने लगी। सारे नगर मे उसकी इज्जत व प्रतिष्ठा हवा की भाति फैल गई।

किन्तु सेठ का वडा दामाद शान्तिलाल अधिक चतुर नही था। पढा हुआ भी कम था। घर का पालन-पोपण भी वड़ी मुश्किल से करता था।

एक वार सेठ ने दीपमालिका के शुभ अवसर पर दोनो जमाइयो को भोजन के लिए आमत्रण दिया। कान्तिलाल को तो अन्दर रगभवन मे ले जाकर सेठ ने उसका वटा आदर-सत्कार किया और तरह-तरह के मधुर पकवानो से उसका स्वागत किया गया। इधर वेचारे शान्तिलाल को वाहर वैठक मे गलीचे पर वैठा दिया और भोजन मे भी थूली परोसी गई। उससे रहा नही गया। वह शीघ्र वोला—

माहिला ने लाडू पेडा, वारला ने थूली।
या तो म्हारो दिहाडो वाकडो का पुरसण वाली थूली ॥

परोसने वाली बडी चतुर एव समझदार स्त्री थी। उससे भी रहा नही गया। वह भी शीघ्र बोली—

नही थारो दिहाडो बाकडो, नही पुरसण वाली भूली।
मुडा देखनै टीका काढै, मार गटागट थूली॥

वह जवाई समझ गया कि यहा पर पैसे वालो की मनुहार है, सम्बन्ध की नही। अपना अपमान समझकर बिना भोजन किये ही अपने घर के लिए रवाना हो गया।

ससार मतलब का है। सब चेहरा देखकर तिलक निकालते है। प्रतिष्ठा एव पूजा भी पैसे वालो की होती है किन्तु वास्तव मे चरित्रशील महानुभावो की ही प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

तिलक निकाले देख मुख, जग का क्या व्यवहार।
स्वार्थ बिना दामाद भी, पाता है दुत्कार॥

संसार से ग्लानि

याज्ञवल्क्य नाम के एक ऋषि थे। उनके दो पत्निया थी—मैत्रेयी और कात्यायिनी। ऋषि बडे आध्यात्मिक व गहरे चिंतक थे। एक दिन उनके मस्तिष्क मे चिंतन चला—अब मुझे इस प्रवृत्तिमय जीवन से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। उन्होंने दोनो पत्नियो से कहा—"मैं अब सन्यास लेना चाहता हू। इस ससार से मुझे ग्लानि उत्पन्न हो गई है। जीवन का कुछ भी विश्वास नही है। मैं प्रवृत्ति के मार्ग को छोड निवृत्ति के मार्ग को अपनाना चाहता हू। लेकिन इससे पहले मैं अपनी सम्पत्ति तुम्हे बाटकर फिर सयम-पथ को स्वीकार करना चाहूगा।" मैत्रेयी विदुषी थी। उसने कहा—"स्वामिन्! आप जिस सम्पत्ति को छोड निवृत्ति लेना चाहते है और हमे देते है, क्या वह सम्पत्ति हमे सच्चा सुख देगा? क्या वह जन्म-मरण के दावानल को शान्त करेगी?" याज्ञवल्क्य ने कहा—"मैत्रेयी! उस सम्पत्ति से आध्यात्मिक सुख तो नही मिलेगा। किन्तु भौतिक सुखानुभूति अवश्य होगी।"

मैत्रेयी ने कहा—"स्वामिन्! जिसे आप हेय समझते है, दु ख का कारण मानते है वह सम्पत्ति आप हमे दे रहे हैं। क्या यही आपका न्याय है? मुझे ऐसी भौतिक सम्पत्ति की चाह नही है। यह समस्त सम्पत्ति आप मेरी बहन कात्यायिनी को दे दे। कृपया मुझे तो आप ऐसी शक्ति दें, जिससे मुझे सही सुखानुभूति हो सके।"

आखिर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आध्यात्मिक मार्ग बताते हुए सयम मे रमण करने की प्रेरणा दी और कहा—"तुम्हारे विचार बहुत ही प्रशसनीय एव दूसरो के लिये अनुकरणीय भी है।"

जो व्यक्ति आध्यात्मिक सुख के आकाक्षी है उन्हे ससार मे विरक्त रहना चाहिए और सयम सरोवर मे स्नान कर आन्तरिक पाप को धोने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे सही सुख की उपलब्धि हो सके।

आध्यात्मिक सुख इच्छुको, जग से रहो विरक्त।
'मुनि कन्हैया' नित रहो, सयम मे अनुरक्त॥

लालच में फँसकर

एक ठाकुर था। गाव मे उसका प्रभाव था। युद्ध करने मे बहुत बडा शूरवीर एव दक्ष था। चारो तरफ उसकी धाक थी। एक दिन वह किसी शत्रु पर चढाई करने गया, वहा पर जीत के नगाडे बजा कर वापस गाव मे आने लगा। अनेको नर-नारियो द्वारा ठाकुर साहब का सत्कार हुआ। पानी के कलश लिए हुए सुहागिन औरतें मगलगीत गाती हुई एक पक्ति मे खडी-खडी ठाकुर साहब के चिरजीवी होने की कामना करने लगी। जय-विजय के नारो से ठाकुर साहब की सवारी ने गाव मे प्रवेश किया। प्रसन्न होकर ठाकुर साहब ने सभी स्त्रियो के कलशो मे एक-एक रुपया डालने के लिए आदेश जारी किया। इतने मे सामने से अचानक एक विधवा औरत का आना हो गया। वह घबराई। अपशकुन के भय से वह एक छोटी गली मे जाकर छिप गई। ठाकुर साहब ने उसको देख लिया। उसके विवेक पर वे बडे खुश हुए। ठाकुर साहब ने उसके घडे मे पाच रुपये डालने के लिए आदेश दिया।

पीछे मे सभी औरतो का मिलन हुआ। बातें चली। सभी ने कहा—"हमे एक-एक रुपया मिला है।" उस विधवा स्त्री ने कहा—"मेरे घडे मे तो पाच रुपये आये हैं। पाच रुपये की बात सुनकर सभी स्त्रियो ने भविष्य के लिए यह निश्चय किया कि अब कभी ऐसा काम पडे तब अपने को भी काले कपडे पहन कर आना चाहिए, जिससे पाच-पाच रुपये की प्राप्ति होगी, क्योकि ठाकुर साहब को काले कपडे अच्छे लगते हैं।

एक दिन फिर वैसा ही मौका मिल गया। ठाकुर साहब जय-विजय करके आ रहे थे। गाव के लोग सामने गये। स्त्रिया भी काले कपडे पहन सिर पर पानी का घडा रखकर, मगल-गीत गाती हुई मध्य बाजार मे खडी हो गईं। ठाकुर साहब के

आश्चर्य का पार नही रहा। यह क्या बात ? पीछे से क्या कोई बीमारी आ गई ? सभी स्त्रियो के कपडे काले हैं। पूछताछ करवाने पर ठाकुर को यह पता लगा कि पाच-पाच रुपये के लोभ मे फसकर सबने काले कपडे पहने है। ठाकुर साहब ने आदेश जारी किया कि राजभवन के पास वाले स्थान मे आज सब स्त्रियो को इनाम दिया जायेगा। सब स्त्रियो के दिल मे बडी खुशी थी। सब दौडी-दौडी वहा एकत्रित हो गई। ठाकुर साहब आये। नौहरे के दरवाजे बन्द करवाये गये। सब स्त्रियो को एक पक्ति मे खडी करके ठाकुर साहब बोले—"तुम सबको शर्म नही आती है, पाच रुपयो के लोभ मे आकर तुमने कुल मर्यादा का त्याग कर दिया। धिक्कार है तुम्हारे जीवन को।" तेरह-तेरह कोडो से एक-एक की पूजा करवाई गई। सब स्त्रियो की अक्ल ठिकाने आ गई। सभी ने सोचा—भविष्य मे कभी भी ऐसा काम नही करेगी।

लालच मे फसकर इन्सान को अपनी कुल-परम्परा का परित्याग नही करना चाहिए। धन सम्पदा सब यहा की यहा रह जायेगी। यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा।

विधवा बनकर नारिया, गाती मगल-गीत।
स्वल्प लोभवश तोड दी, अपने कुल की रीति॥

कुछ तुम समझे, कुछ हम समझे

एक बुढिया थी। शहर से कुछ सौदा खरीदकर अपने गाव की ओर रवाना हुई। अधिक थकान होने से वह मार्ग मे बैठ गई। उसी मार्ग से एक घुडसवार जा रहा था। बुढिया ने घुडसवार से कहा—"बेटे! जरा ठहरो, मेरी बात सुनो।"

घुडसवार बोला—"माजी! जल्दी बोलो, क्या काम है ? मुझे अमुक गाव मे शीघ्रता से पहुचना है।"

मीठी वाणी मे बुढिया ने कहा—"बेटे जिस गाव मे तुम जा रहे हो, उसी गाव मे मुझे जाना है। मैं वृद्धा हू। मेरे घुटनो मे काफी दर्द हो रहा है। अधिक वजन लेकर चल नही सकती। इसलिए तुम मेरे सामान की गठरी घोडे पर ले जाओ। घर पहुचा देना। तुम्हारा उपकार नही भूलूगी।"

घुडसवार ने तुनककर बोला—"माजी! मार्ग मे अनेको व्यक्ति मिलते हैं। किस-किसका सामान ले जाया जाए। मेरे से यह काम नही होता।" यो कहता हुआ घुडसवार आगे बढ़ गया।

कुछ ही दूरी पर घुड़सवार के मन मे आया—आज तो अच्छा अवसर आया था हाथ मे। भोलेपन मे यो ही गवा दिया। गठरी हजम करने का वहुत ही अच्छा मौका था। वह वापस मुडा। बुढिया के पास आया और मीठे शब्दो मे बोला—'मैं कुछ ही दूर गया, पर मेरे से चला नही गया। मन मे मथरता उत्पन्न हो गई। विचार वदले। मैंने सोचा—वृद्ध माजी को निराश करना व्यवहार मे अच्छा नही है। इसलिए गठरी लेने वापस आया हू। घोडे पर रख लू। तुम्हारे घर पहुचा दूगा।"

बुढिया हसकर बोली—"क्या है? समय निकल गया। अव नही दूगी। कुछ तुम समझे, कुछ हम समझे।"

घुडसवार चकित हुआ और वोला—"माजी! ऐसे कैसे कह रही हो? क्या हुआ?"

बुढिया ने कहा—"उस समय तुम्हारे विचार शुद्ध थे। इसी कारण मुझे भी गठरी देने की सूझी थी। अव तुम्हारे मस्तिष्क मे विकृति उत्पन्न हो गई। विचारो मे स्वच्छता नही रही। मन मे पाप भर गया। अनीति आ गई। उस अनीति का असर मेरे पर भी आ गया। मैं धोखा नही खाऊगी, अत अब अपना सामान देना नही चाहती, स्वय ले जाऊगी। तुम्हारे विचार बदले तो मेरे भी विचार बदल गये।"

मानसिक विचार-शक्ति का प्रभाव दूसरो पर वहुत जल्दी पडता है। जिस व्यक्ति की भली अथवा बुरी जैसी भी विचारधारा होगी, सामने वाले की वैसी ही वन जायेगी। अत हर व्यक्ति को अपनी विचारधारा पवित्र रखनी चाहिए।

कुछ तुम समझे हृदय मे, कुछ हम समझे अब।
बुरे विचारो का असर, मन पर पडता सब॥

हम गंगाजी तो जाएँगे

नारायणचन्द और ज्ञानचन्द नाम के दो भाई थे। दोनो बडे होशियार थे। एक भाई ऊपर की मजिल मे रहता था और दूसरा नीचे ''। दोनो की दो अलग-अलग दूकाने थी। दोनो व्यापार मे ईमानदारी एव प्रामाणिकता रखते थे। कम तोल-माप को त्याज्य समझते थे। एक भाव रखते थे, चाहे भोला वालक आए, चाहे होशियार पढा-लिखा। मुह देखकर कभी तिलक निकालने वाले नही थे, जिससे शहर मे दोनो की अच्छी छाप थी, अच्छी इज्जत थी, अच्छी प्रतिष्ठा थी।

सालाना जितना घरेलू खर्च था, उतनी ही आय थी। सग्रह की भावना तनिक भी नही रखते थे। दोनो का जीवन सुखी था। किसी भी तरह की चिन्ता नही थी। दोनो वडी मस्ती से रहते थे।

एक वार रात्रि मे उनके घर मे चोर घुस गया। दोनो भाई जाग गये। चोर को सुनाने के लिए ऊपर खडा-खडा ज्ञानचन्द वोला—

"नारायण! भाई नारायण! कल हम गगाजी तो जाएगे।"

"ज्ञानचन्द भाई! कल गगा जी की तीर्थयात्रा करने जाना है, तैयार हो जाना।", नारायण वोला—

"गगाजी तो जायेंगे पर घर किसको सम्हलायेंगे?"

"भाई ज्ञानचन्द! गगाजी जाना तो जरूरी है, परन्तु घर किसके भरोसे छोडेंगे?"

ज्ञानचन्द वोला—

चरखी वेची, पूणी वेची, घर के आग लगायेंगे।
नारायण भाई नारायण, हम गगाजी तो जायेंगे॥

"भाई! घर की क्या चिन्ता है? कौन से हीरे-पन्ने पडे हैं? चरखी पूणी वेच घर को जला देंगे।"

नारायण वोला—

"घर के आग लगायेंगे तो, मार्ग मे क्या खायेंगे?"

"भाई! तू कहता है वह तो ठीक है पर घर को जला देंगे तो आजीविका कैसे चलेगी? किराये की आमदनी का भी वहुत सहारा है इस सम्पत्ति को भी नष्ट कर देंगे, तो मार्ग मे क्या खाएगे?"

ज्ञानचन्द वोला—

मार्ग मे क्या खायेंगे, हम चोरी करके लायेंगे।
नारायण भाई नारायण, हम गगाजी तो जायेंगे॥

"भैया! मार्ग मे खाने की क्या चिन्ता? चोरी करके लायेंगे। खूव खायेंगे।"

नारायण वोला—

"चोरी कर धन लायेंगे, तो मार फडाफड खायेंगे।"

भाई! चोरी करके यदि धन लायेंगे तो मार खानी पडेगी।

परस्पर इस तरह सवाद चल रहा था। चोर वडी उधेड-वुन मे था—क्या करना चाहिए? इतने मे वहा गश्त लगाता हुआ आरक्षक आ गया वोला—"क्या वात है? आज ये प्रश्नोत्तर किस विषय मे हो रहे हैं?"

ज्ञानचन्द ने धीरे से कहा—"अन्दर चोर खडा है।"

आरक्षक शीघ्र उस चोर को पकडकर ले गया। दोनो का कुछ भी नुकसान नही हुआ क्योकि जो नीति से अर्जित धन होता है, उसे कोई भी लूट नही सकता, जला नही सकता।

नीतिवान व्यक्तियो को हर क्षेत्र मे सफलता मिलती है। कही भी उनको नुकसान नही उठाना पडता है और उनके पवित्र बुद्धि-कौशल से हर समस्या समाहित हो जाती है, अत हर एक को नीतिनिष्ठ बनना चाहिए।

नारायण अरु ज्ञानचन्द, दोनो भाई दक्ष।
अर्जित वैभव नीति का, बचा सकल प्रत्यक्ष ॥

चार अक्ल

एक दिन गुरु जी ने अपने सुविनीत चेले से कहा—"चेला! देश मे सर्वत्र अकाल है, उदर-पूर्ति करना एक भयकर समस्या बन गई है। परदेश मे चलो, वहा जीवन निर्वाह अच्छा होगा।" शुभ मुहूर्त देखकर दोनो चल पडे। एक विशाल नगरी मे पहुचे। नगरी के द्वार पर ही एक व्यक्ति जोर-जोर से अक्ल बेच रहा था—"लो अक्ल, लो अक्ल।"

गुरुजी ने पूछा—"क्या कीमत है?" व्यापारी बोला—"प्रत्येक अक्ल की कीमत एक रुपया है।" गुरुजी के पास चार रुपये थे, अत उन्होने चारो अक्ल खरीद ली। ये अक्ल थी—

(१) "समय पर जो बडा होता है उसे बडा मानना।"
(२) "परोसा हुआ भोजन न छोडना।"
(३) "गुप्त बात को प्रकट न करना।"
(४) "अन्यायी जनो की नौकरी नही करना।"

इन्हे खरीद कर गुरु-चेले दोनो आगे बढे। उसी दिन वहा के सम्राट का देहावसान हो गया। राजा के सन्तान नही होने के कारण हथिनी को घुमाया गया कि जिसके गले मे यह माला डाल देगी, वही नगरी का राजा होगा। राज्य सम्पदा के अभिलाषी अनेको व्यक्ति बाजार मे खडे हो गये और हथिनी के सम्मुख सिर झुकाने लगे। गुरु-चेले भी एक तरफ खडे थे।

हथिनी आई और चेले के गले मे माला डाल दी। स्थानीय नागरिको को नही पसन्द आने के कारण वे जोर-जोर से बोलने लगे—"हथिनी की गल्ती हो गई है। इसको हम राजा नही मानते। चुनाव दूसरी बार होनी चाहिए।" हथिनी

पुन घुमाई गई। किस्मत बलवान होने से हथिनी ने पुन उसी के गले मे माला डाल दी।

चेला राजा बना। सुशील सुन्दरी से राजा का विवाह हुआ। गुरुजी धर्मशाला मे ठहर गये। उदर-पोषण भी कठिनता से होने लगा। गुरुजी ने सोचा—चेले के पास जाना चाहिए, वहा मेरी सभी समस्याये सुलझ जायेगी। चेला छोटा है, फिर भी जाने मे मुझे सकोच नही करना चाहिए। गुरुजी को अक्ल भी याद आ गई कि समय पर जो बडा होता है उसे बडा मानना चाहिए। गुरुजी दरबार मे पहुचे। राजा ने सत्कार किया। गुरुजी अपने चेले को बडी इज्जत से देखने लगे। चेले ने गुरुजी को योग्य कार्य पर नियुक्त कर दिया। महारानी का स्वभाव अच्छा नही था। मन्त्री से उसका सम्बन्ध जुड गया। दोनो के पारस्परिक असद् व्यवहार का पता गुरजी को लग गया। गुरुजी को आश्चर्य का पार नही रहा। गुरुजी ने गुप्त बात को प्रकट करना उचित नही समझा। मन्त्री ने रानी से कहा—"अपने प्रेम का पता गुरु को लग गया है। राजा गुरु की बात मानता है, अत ज्यो त्यो कर गुरु को मरवाना है।"

महारानी कोपभवन मे जाकर सो गई। कपडे फाड दिये और बालो को बिखेर कर ओधे मुह पड गई। राजा आया और पूछा—"प्रिये ! आज यह कौन-सा शृगार कर रही हो ? कुछ समय मे नही आ रहा है, बताओ तो सही ?"

रानी बीभत्स रूप बनाकर विद्युत की भाति कडकडाती हुई बोली—"प्राणेश्वर ! या तो इस धरा पर मै जीवित रहूगी अथवा आपका गुरु।"

राजा—"सुन्दरी ! गुरुजी के प्रति इतनी निम्न भावना क्यो ? गुरुजी तो बडे सदाचारी है, विश्वासी है।"

रानी गर्जती हुई बोली—"और रोना ही किस बात का है ? यह गुरु नही गुण्डा है। मुझे बुरी नजर से देखता है। मेरे साथ दुर्व्यवहार करने के लिए कटिबद्ध है, किन्तु मै शीलवती हू। मुझे विचलित करने वाला कौन है ? अत. ऐसे व्यक्तियो को जीवित रखना क्या लाभप्रद है ?"

राजा के हृदय मे भी क्रोधाग्नि भभक उठी। शीघ्र राजसभा मे आया। कुछ प्रपच रचा। गुरुजी को बुलाया और कहा—"आप यह कटोरदान ले जाइये। अमुक चाण्डाल को दे देना।" गुरुजी ने कहा—"राजन् ! अभी जा रहा हू।"

गुरजी घोडे पर रवाना हुए। मार्ग मे मन्त्री का घर आया। परस्पर मिलन हुआ। मन्त्री के घर भोज था। अनेको प्रतिष्ठित व्यक्ति पधारे हुए थे। मन्त्री ने गुरुजी से कहा—"आप भी यहा भोजन कीजिए।" गुरुजी ने इन्कार करते हुए कहा—"राजा का कार्य करने जा रहा हू। अत यहा पर अधिक नही रुक सकता।"

मन्त्री ने कहा—"यह वर्तन मुझें दे दीजिए, मैं चला जाऊगा। वेफिक्र हो भोजन करे। थाली परोसी हुई है।"

गुरुजी को दूसरी अक्ल याद आई, भोजनार्थ वैठ गये। मन्त्री वर्तन लेकर चला। चाण्डाल के पास पहुचा। वर्तन उसे दे दिया। चाण्डाल ने वर्तन खोला। पत्र पढकर वोला—"मन्त्री साहव! इधर पधारिये, राजा के ये समाचार हैं 'जो तुम्हारे पास पत्र लेकर आता है, उसका सिर काट लेना।" मन्त्री चौंका, घवडाता हुआ वोला—"अरे! यह पत्र मेरे लिए नही है, मेरा सिर मत काटना।"

चाण्डाल ने कहा—"मैं आपको नही छोडूगा क्योकि पत्र लेकर आप ही मेरे लिए पास आए हैं।"

मन्त्री का सिर काटा, वर्तन मे रखा और राजा को देने के लिए चाण्डाल रवाना हुआ। इधर गुरुजी भोजन करके दरवाजे पर खडे हो गये। चाण्डाल आया। गुरुजी ने उससे कहा—"रख दो वर्तन, राजा के पास पहुचा दूगा।" गुरुजी के सामने चाण्डाल वोल ही क्या सकता था?

गुरुजी वर्तन लेकर दरवार मे पहुचे। राजा ने सोचा—यह क्या घटना घटी? गुरुजी जीवित कैसे आ गये? गुरुजी ने वर्तन सौंपा। राजा ने खोलकर देखा तो अवाक् रह गया। गुरुजी भी समग्र घटनाचक्र से अवगत हो गये। राजा की प्रवचना पर आश्चर्य प्रकट करते हुए वोले—"राजन्! मुझे विश्वास नही था कि तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार करोगे। विना गलती मुझे मरवाने का जाल रचोगे। गुप्त वात को प्रकट नही करना, इस तीसरी अक्ल के आधार पर मैंने मत्री और रानी की वात को प्रकट करना उचित नही समझा, किन्तु तुम्हारी परीक्षा हो गई। स्त्री के चक्रजाल मे फमकर तुम न्यायान्याय को भी भूल गये। हाय! धिक्कार है। ऐसे अन्यायी जनो की नौकरी कभी भी नही करनी चाहिए। यह चौथी अक्ल मेरे पास है। अव मैं तुम्हारे दरवार मे नही रह सकता। जाता हू।"

जो दूसरो का वुरा चाहते हैं, वे अपना वुरा करते हैं। मत्री ने चाहा, गुरु को मरवा दू, प्रत्युत मत्री को ही अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। यह है, वुरे का फल वुरा। ससार मे सुखी वही होता है जो दूसरो का भला करता है और चारो अक्लो को जीवन मे क्रियान्वित करता हुआ आगे वढता है।

वुरे विचारो से अमित, होता है नुकसान।
मेधावी उस सचिव ने, खोए अपने प्राण ॥

मेढक का धड़ा

एक बनिया था। पाच सेर घी लाने के लिए वह किसी गूजरो की बस्ती मे गया। साथ मे पसेरी तो थी पर छोटे-बड़े बाट नही थे। एक गूजर के साथ इसने घी का भाव-ताव निश्चित किया। गूजर ने कहा—सेठ साहब! घी किसमे लोगे? बनिया बोला, तपेली साथ लाया हू। किन्तु जरा ठहर जा, तपेली का धडा करना है। कुछ चीज ले आऊ। वह इधर-उधर कुछ ढूढने लगा पर कोई भी चीज नजर मे नही आई। वह ढूढता काफी दूर चला गया। तालाब के आस-पास भूमि मे मेढक कूद रहे थे। बनिये ने कुछ मेढक पकडे और थैले मे डाल लिए। उसने सोचा इनसे धडा ठीक हो जायेगा। वह झट आया और तपेली का धडा करने लगा। तपेली के वजन का अन्दाज लगाकर उसने ६ मेढक रखे, पर कम पडे उसने तराजू नीचे रख कर थैले मे से दो मेढक और निकाले। इतने मे ही तराजू से तीन मेढक कूद कर बाहर निकलकर दौडने लगे। बनिया ज्यो ही उन तीनो मेढको को लेने दौडा त्योही दूसरे दो-तीन मेढक फिर भाग निकले। इस तरह बनिया भागे हुए मेढको को लाता गया और उधर कुछ लाये हुए भागते गये। यह क्रम चलता रहा। बनिया असमजस मे पड गया—क्या करू, धडा कैसे होगा?

यह सब देखकर गूजर बोला—सेठ साहब! मेढको से धडा कभी भी होने वाला नही। कुछ पत्थर-रोडे लेकर आता हू उनसे धडा झट हो जायेगा।

बनिया बोला—बहुत अच्छा, जल्दी करो, समय बहुत हो गया है। दूकान का समय भी होने वाला है। गूजर झट गया और इधर-उधर से कुछ पत्थर लेकर आया—सेठ ने झट धडा किया और घी लेकर अपने घर की ओर रवाना हुआ।

सासारिक सुख मेढक के धडे के समान हैं। ससार मे सपूर्ण सुख की उपलब्धि होना बहुत कठिन है। दो सुख मिलते हैं तो एक चला जाता है, एक मिलता है तो दो चले जाते हैं। इस तरह का उपक्रम चलता रहता है। अत. ससार के सुखो को विनश्वर समझकर आत्मिक सुखो के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

सासारिक सुख है क्षणिक, मेढक-धडा समान।
आध्यात्मिक सुख के लिए, करना यत्न महान॥

बिचली को मार

गाव के बाहर वृक्ष के नीचे एक बाबा रहता था। प्रतिदिन एक धुन से अच्छे स्वर मे जाप किया करता था कि—"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, बिच

को जूतो की मार" ऐसी रट चालू ही थी। उसी वक्त शाम के समय तीन स्त्रिया ब्राह्मणी, राजपूतनी और वनियाइन वहा पानी भरने के लिए आई। वावा की वाणी सुनकर ब्राह्मणी और वनियाइन की आकृति खिल उठी किन्तु वीच मे चलने वाली राजपूतनी की आकृति मुरझा गई। सिर पर जो घडा था, वह भी गिर पडा। दौडी-दौडी अपने घर आई, कोपघर मे जाकर सो गई। न भोजन पकाया और न कोई चिराग जलाया। घर मे सर्वत्र अधेरा था। उसका पति राजपूत जो नौकरी पर गया हुआ था, वह घर मे आया। राजपूतनी के पास पहुचा। उसका विद्रूप देखकर वह वोला—आज ऐसे कैसे ओधें मुख पडी है? क्या किसी ने तेरा अपमान कर दिया?

राजपूतनी ने कहा—"जिसका पति कमजोर होता है। उसका कोई भी अपमान कर सकता है।" राजपूत जाति मे जोश तो होता ही है। उससे रहा नही गया, आक्रोशपूर्वक जोर से वोला—"कौन है तेरा अपमान करने वाला? नाम वता अभी जाकर वदला लू।"

राजपूतनी ने कहा—"गाव के वाहर कुए के पास वृक्ष के नीचे वावा वैठा है। उसने मेरा भयकर अपमान किया है।" समग्र घटनाचक्र से अवगत होते ही राजपूत वोला—"मैं उसका सिर काटकर लाता हू। तुझें तनिक भी दु ख करने की जरूरत नही है।"

राजपूत आखो को लाल करता हुआ कुए के पास पहुचा। वावा के पास भजन-मडली जुडी हुई थी। दस पन्द्रह राजपूत वैठे थे। इससे उसका तनिक भी साहस नही हुआ। हताश होकर खडा हो गया। धीरे-धीरे राजपतो की मडली विसर्जित हुई। वावा अकेला रह गया। पूर्व कर्म के अनुसार उसने अपना जप जपना शुरू किया—"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, विचली को जूतो की मार।" वावा की यह रट सुन राजपूत ने सोचा—"अभी यहा पर कोई भी स्त्री नही है फिर भी यह वावा ऐसा क्यो वोल रहा है। इसमे कोई न कोई रहस्य अवश्य छिपा हुआ है। समाधान पाने के लिए वह नमस्कार करता हुआ वोला—"योगिराज! आप यह क्या वोल रहे है? कुछ समझ मे नही आ रहा है।"

वावा ने कहा—"यह मेरे तो समझने की वात है अगर तू जानना चाहता है तो ध्यान मे सुन। जप मे वहुत वडा रहस्य छिपा हुआ है। जीवन की तीन अवस्थाए होती हैं—(१) वाल्यावस्था (२) युवावस्था (३) वृद्धावस्था। इसमे पहली और तीसरी अच्छी होती है। क्योकि वालक का हृदय सरल एव स्वस्थ होता है। विषय-वासना से दूर रहता है। वृद्धावस्था मे इन्द्रिया शिथिल हो जाती हैं ससार से विरक्त होने की भावना जागृत हो जाती है इसलिए कहता हू कि पहली भी अच्छी और पिछली भी अच्छी किन्तु विचली—युवावस्था मे इन्द्रिया उन्मत्त होती हैं,

मन उन्माद से भरा रहता उन पर नियन्त्रण करना बहुत ही कठिन है। इसीलिए कहता हू कि 'बिचली को जूतो की मार' अर्थात् इन्द्रियो और मन पर नियन्त्रण करो। इनका दमन बहुत ही मुश्किल है।"

रहस्य भरे वाक्य का सही हार्द पाते ही राजपूत का गुस्सा शान्त हो गया। बाबा को नमस्कार करता हुआ बोला "बाबाजी ! आपकी वाणी का अर्थ मेरी स्त्री ने उलटा समझा। तीन पनिहारियो मे वह बिचली थी। उसने सोचा—बाबा मुझे बुरी बता रहे हैं। उस अपमान का बदला लेने के लिए अर्थात् आपका खून करने आया था किन्तु अब मुझे सही-सही समाधान मिल गया। धन्य है आप की बुद्धि को ! धन्य है आपके तप-त्याग को !

राजपूत घर आया और स्त्री को भी सारी स्थिति से अवगत किया। स्त्री का गुस्सा भी शान्त हो गया।

हर एक बात को गहराई से सोचना चाहिए, शब्दावली की यथार्थता पर ध्यान देना चाहिए। शब्द के यथार्थ को पकडे बिना अट-शट गलत अनुमान कर लेने से बडा अनर्थ हो जाता है। अत हर विषय का अकन सही दृष्टिकोण से होना चाहिए।

गहराई से सोचिए, हर शब्दो का अर्थ।
शब्द अर्थ पकडें बिना, होते बडे अनर्थ॥

धोखा देना पाप

किसी गाव मे एक मूर्ख किसान रहता था। उसने अपने जीवन का अधिकतम समय घर में ही बिताया। बाहर निकलना, बाजार मे घूमना-फिरना उसे पसन्द नही था। एक दिन साहस बटोरकर वह अपनी कुछ पूजी साथ लेकर शहर के बाजार मे आया। वहा उसने बहुत ही अनोखी चीजे देखी। समझ मे नही आ रहा था कि क्या खरीदूं, क्या नही। वह इसी उधेड-बुन मे इधर-उधर भटकता-भटकता एक माली की दुकान पर जा पहुचा। वहा पर उसने बडे-बडे तरबूजे देखे। वह समझ नही रहा था कि यह क्या चीज है। माली से उस किसान ने पूछा—"ये क्या है बडे-बडे ?" माली को बडा अचरज हुआ कि यह कैसा देहाती है जो तरबूज को नही जानता। माली ने सोचा कि क्यो नही इस देहाती को बुद्धू बनाया जाये।

माली बोला—"भाई किसान ! इसे घोडे का अण्डा कहते हैं।"

किसान बोला—"अच्छा इससे क्या होता है ? इसकी क्या कीमत है ? मेरे पास तो केवल सौ रुपये हैं।" माली मुस्कराता हुआ बोला—हा-हा इसकी कीमत

तो सौ रुपये ही है। भइय्या! इसे काटोगे तो इसके अन्दर काले-काले बीज निकलेंगे। शाम हो ही गई है। रात होते-होते गाव पहुच जाओगे। इसे काट कर इसके बीज थोडे-थोडे फासलें पर बो देना, कुछ ही घण्टो मे घोडे पैदा हो जाएगे।

किसान ने तरबूज खरीदा। खेत मे पहुचा, तरबूज के बीज खेत मे रात को ही बो दिये। हारा-थका तो था ही उसे वहा नीद आ गई। उधर राजा की घुड़-सवार फौज आई। वह वही ठहर गई। घोडे खेत मे आराम करने लगें।

घोडो की हिनहिनाहट से किसान की नीद खुल गई। वहा हजारो घोडो को देखकर वह खुशी में उछल पडा। सोचने लगा, ये बीज तो बडें कमाल के हैं। दो चार घण्टो मे ही इतने घोडे पैदा हो गये। जब वह उन घोडो को अपने घर की ओर लें जाने लगा तो सैनिको मे झडप हो गई। बात राजा तक पहुची। किसान रो-रो कर अपनी बात बताने लगा। किसान की सारी बातें सुनने के बाद राजा ने सोचा, किसान महामूर्ख है। इसे धोखे मे डाला गया है। राजा ने आदेश जारी करते हुए कहा—"जब तक, 'घोडें किसके हैं' इस बात का निर्णय नही हो जाता तब तक सिपाहियो और किसान को रोक लिया जाए।"

राजा न्यायप्रिय था। दूसरे ही दिन वह भेष बदलकर किसान के साथ माली की दुकान पर पहुचा। वह किसान कही छिपकर खडा हो गया। राजा ने तरबूज के विषय मे पूछा।

माली ने कहा—"तरबूज की कीमत सौ रुपये है और ये घोडे के अण्डे हैं। कुछ ही समय मे इनमे घोडें उत्पन्न हो जाते है।" माली की बात सुनकर राजा ज्योंही अपने रूप मे प्रकट हुआ त्योंही माली घबडाया, चौंका और हाथ जोडकर बोला—"राजन्! बार-बार क्षमा मागता हू। मेरी गलती पर ध्यान न दे।"

नृप ने उसे ललकारते हुए कहा—

"माली! किसी को इस तरह धोखे मे डालना क्या तेरी इन्सानियत है? किसी से धोखा करना एक महान अपराध है। अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए।" राजा ने किसान के सौ रुपये लौटवा दिये और माली को जेल मे बन्द करवा दिया। किसान को भी समझाकर रवाना कर दिया।

जो व्यक्ति दूसरो को धोखा देता है वह स्वय को छलता है। धोखा देना, छल-कपट व्यवहार करना बहुत बडा पाप है अत हर एक को निश्छलता का व्यवहार करना चाहिए।

धोखा देना पाप है, खूब समझ लें आप।
धोखा देने मे मिला, माली को सताप॥

बुद्धि-विचक्षणता

एक नगर मे चार पण्डित रहते थे। एक आयुर्वेद मे, दूसरा धर्मशास्त्र मे, तीसरा नीतिशास्त्र मे, और चौथा कामशास्त्र मे दक्ष था। उन चारो 'मनीषियो' ने अपने-अपने विषय का एक-एक महाग्रन्थ बनाया। हर ग्रन्थ के एक-एक लाख श्लोक थे। हर श्लोक विद्वत्ता से परिपूर्ण था। शब्द अलकार एव भाव अलकार की सुन्दर अभिव्यक्ति थी। श्लोक का हर चरण वडा आकर्षक था।

चारो ही पण्डित जितशत्रु राजा की सभा मे पहुचे और वोले—"राजन्! हमने आपकी कृपा से अपने-अपने विषय का एक-एक ग्रन्थ लिखा है, उसे आप सुनिये।"

राजा ने कहा—"ये ग्रन्थ तो काफी वडे प्रतीत हो रहे है, प्रत्येक मे कितने-कितने श्लोक है?" पण्डितो ने कहा—"हर एक ग्रन्थ मे एक-एक लाख श्लोक हैं।"

राजा वोला—"धन्य है आपकी बुद्धि-विचक्षणता को! धन्य है आपके प्रखर पाण्डित्य को! एक-एक विषय पर आपने एक-एक लाख श्लोक लिखे। किन्तु इतने वडे ग्रन्थ को सुनने के लिए मुझे अवकाश कहा है। राज्य की जिम्मेदारी सभालनी पडती है। इसलिए आप इन ग्रन्थो को सक्षिप्त कर दीजिए। फिर कुछ समय निकाल कर सुनने का प्रयास करूगा।" पण्डितो ने कहा—"राजन्! आपने जो कहा, वह विल्कुल सत्य है क्योकि आपके कन्धो पर राज्य का वहुत वडा भार है। अत हर ग्रन्थ का समावेश पच्चीस-पच्चीस हजार श्लोको मे कर दिया जायेगा।"

राजा ने कहा—"यह भी वहुत है।" पण्डितो ने कहा—"अच्छा, हजार-हजार श्लोको मे कर दें तो?" राजा वोला—"इतना सुनने के लिए भी समय नही है।" आखिर पडित हजार से पाच सौ पर आए, सौ पर आये, दस पर आए, आखिर एक-एक श्लोक पर आ गये।

राजा ने कहा—"यदि इसका और भी सक्षेप हो सकता है तो कीजिए।" तव चारो पडित एक-एक चरण सुनाने को तैयार हो गए। राजा वोला—"एक-एक चरण तो सुनने का समय है, अवश्य ही सुनाइये।"

सवसे पहले आयुर्वेद के पडित ने कहा—'जीर्णभोजनमात्रेय' हमारे शास्त्र मे आत्रेय ऋषि का मत वडा प्रमाणभूत माना जाता है। वे कहते है कि पहले का भोजन पच जाने के वाद ही भोजन करना चाहिए।"

धर्मशास्त्र के पडित ने कहा—'कपिल प्राणिना दया' हमारे शास्त्रो मे कपिल ऋषि को सवमे वडा माना गया है वे कहते है कि दया से वढकर कोई धर्म नही है। नीतिशास्त्र के पडित ने कहा—'वृहस्पतिरविश्वास अनेको' महापुरुषो ने

नीति के विषय मे लिखा है उन सब में बृहस्पतिजी का स्थान भी अपने आप मे अद्वितीय है। वे कहते हैं कि जीवन मे सफल होना हो तो किसी पर अन्ध-विश्वास नही रखना चाहिए। कामशास्त्र के पडित ने कहा—'पाचाल. स्त्रीषु मार्दवम्' कामशास्त्र के प्रकाड विद्वान पाचाल ऋषि का अभिप्राय है कि प्रीति की सच्ची रीति स्त्रियो के साथ मृदुता से वर्ताव करना है।

ग्रन्थो का सक्षेपीकरण सुनकर राजा बहुत ही चकित हुआ और बोला—"महानुभावो! आपने एक-एक विषय पर लाख-लाख श्लोक रचे। विषय का विस्तार करने मे आप बड़े विदग्ध हैं। यह बात तो पहले ही मेरी समझ मे आ गई थी लेकिन देखना यह था कि आप विषय का सक्षेप कितना कर सकते हैं। सक्षेप करने मे भी आप बडे दक्ष हैं। आपकी प्रखर बुद्धि के सामने मेरा मस्तक अवनत है। मैं आपकी बुद्धि-कुशलता से बहुत ही प्रभावित हू। ये लीजिए मैं आप चारो को एक-एक लाख मोहरें इनाम देता हू।" इस तरह वे पडित बहुत ही सम्मानित हुए और अपने घर गये।

हजारो श्लोको का सार थोडे शब्दो मे कहा जा सकता है। सक्षेप मे कही हुई बात का दूसरो पर बहुत जल्दी असर होता है। अत हर एक को ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए कि शब्द थोडे हो और भाव अधिक हो।

स्वल्प सारयुत वचन का, होता असर महान्।
चन्दन का लघु खण्ड भी, करे ताप अवसान॥

+ साख से लाख

एक सेठ था। उसके रेशमी कपडे का व्यापार चलता था। कारोबार मे अप्रामाणिकता एव अनीति से वह सतत दूर रहता था। शहर मे सेठ का अच्छा विश्वास था, अच्छी प्रतिष्ठा थी। क्योंकि सेठ का स्वभाव मिलनसार था। हृदय सरल एव निश्छल था। किसी के भी साथ बुरा व्यवहार नही करता था। एक दिन नृप को कुछ रेशमी कपडे की आवश्यकता होने से उस सेठ को बुलाकर नृप ने अचानक पूछा—"क्या तुम्हारी दूकान मे रेशमी कपडा है?" सेठ हक्का-बक्का सा हो गया। कुछ सुध-बुध रही नही, सहसा मुह से निकल गया 'कपडा नही है।' इतना कह सेठ अपनी दुकान मे आ गया।

पीछे से कुछ चुगलखोर राजा के पास पहुचे और बोले—"नाथ! सेठ बिल्कुल झूठ बोलता है। हम अभी-अभी देखकर आये हैं। उसकी दुकान मे रेशमी

कपडे का ढेर लगा हुआ है।" राजा बोला—"सेठ बडा सत्यवादी है, नीतिज्ञ है। उसका मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह कभी भी असत्य नही बोलता है।" चुगलखोर बोले—"आप हमारे साथ सेठ की दूकान पर पधारे, स्वत ही पता लग जायेगा कि हम झूठे हैं या सेठ।"

राजा बोला—'अच्छा कल सुबह चलेगे।"

इधर सेठ के हृदय मे दु ख का पार नही था। चेहरे पर उदासी छा गई। शीघ्र अपने पुत्र को बुलाकर उसने कहा—"बेटा! आज तो गजब हो गया। मुझे कुछ सुध-बुध तो थी नही। मैंने नृप को गलती से कह दिया कि दूकान मे कपडा नही है। पुत्र! अब इस वचन को निभाने के लिए सारा माल जला दो।"

पुत्र—"पिताजी! दुकान मे लाख रुपये का माल है। कैसे जलाया जाये? कह दिया है तो क्या?"

पिताजी—"पुत्र! लाख की चिन्ता नही है, वचन की चिन्ता है। क्योकि—

लाख गया साख रह्या, फिर भी लाखज होय।
साख गया लाखज रहया, बात न पूछै कोय॥

लाख चले जाने पर भी यदि साख (विश्वास, इज्जत) रह जायेगी तो लाख फिर हो जाएगे, किन्तु साख गई और लाख रहे, तो कोई भी बात नही पूछेगा।" आखिर पिताजी के आदेशानुसार पुत्र ने सारा माल जला दिया।

राजा सेठ की दुकान मे आया, घर और गोदाम को भी सम्भाला, किन्तु कपडे का एक भी तार नही मिलने मे राजा सेठ की सच्चाई पर बडा खुश हुआ। राज-भवन मे आकर राजा ने क्रुद्ध होकर आदेश दिया—"उन चुगलखोरो की जीभ निकाल ली जाय। मेरे सामने भी उन्हे चुगली खाते शर्म नही आई।" सेठ को इस आदेश का पता लगते ही दौडा-दौडा वह राजा के पास आया और हाथ जोडकर बोला—"वे झूठे नही, सच्चे हैं। कल तक माल अवश्य था, किन्तु कल मैंने गलती से आपको कह दिया था कि कपडा नहीं है। इस वचन को निभाने के लिए रात्रि मे सारा कपडा जला दिया गया, अत उनको दण्ड न दिया जाय।" राजा ने पूछा—"माल कितना था?"

सेठ बोला—"एक लाख का।" राजा ने सेठ की नेक नीति पर प्रसन्न होकर उसी समय सेठ को एक लाख रुपये दिलवा दिये। सेठ ने घर जाकर पुत्र से कहा—"बेटा! 'साख से लाख' वापस हो गये।"

धन की पर्वाह न करके इन्सान को कदम कदम पर इज्जत का ध्यान रखना चाहिए। धन को हाथ का मैल समझते हुए जो इज्जत एव अपने वचन की सुरक्षा करता है वही मानव महान होता है।

वचन निभाने मनुज जो, सहन करे नुकसान।
अवसर पर उस सेठ सम, होता लाभ महान॥

अन्न और मन

एक महात्मा थे। जगल मे वृक्ष के नीचे उन्होने अपना निवास स्थान बना रखा था। ज्ञान-ध्यान आदि सद्‌क्रियाओ से अपने समग्र समय को सफल बना रहे थे। एक दिन की बात है नगरी का सम्राट शिकार की खोज मे उसी जगल मे जा पहुचा। महात्माजी यौगिक क्रियाओ मे सलग्न थे।

राजा ने साष्टाग नमस्कार करते हुए पूछा—"महात्मन्! आप इस भीषण अटवी मे निवास क्यो कर रहे है?"

महात्मा—"राजन्! जितनी आनन्दानुभूति मुझे इस निर्जन वन मे हो रही है, उतनी अन्यत्र नही।"

राजा—"योगिराज! ऐसी क्या बात है? आप मेरे महलो मे पधारिए। वहा आपको सभी सुख-सुविधाए उपलब्ध होगी। आपकी अच्छी से अच्छी परिचर्या होगी। हम आपके भक्त हैं। कृपा कर अवश्य ही आप हमारी कुटिया को पावन करें।"

राजा की भक्ति एव अत्याग्रह को देखकर महात्मा जी उसी समय राजा के साथ राजमहलो मे आ गये। खान-पान आदि समस्त क्रियाए वही होने लगी। महात्माजी को वहा रहते-रहते तीन महीने हो गये। राजा भी अपना अधिक समय महात्मा जी की सेवा मे व्यतीत करने लगा।

एक दिन महारानी गुसलखाने मे अपना हार भूल गई। पीछे से वे महात्माजी वहा स्नान करने के लिए जा पहुचे। उस हार पर दृष्टि पडते ही योगी का मन बदल गया। बुद्धि बिगड गई। उस हार को लेकर वे भाग गये। इधर हार नही मिलने से राजा-रानी चिन्तित हो गये। हार का पता लगाने के लिए काफी प्रयत्न किया लेकिन हार नही मिलने से रानी के हृदय मे निराशा छा गई।

लुकते-छिपते महात्माजी उसी परिचित जगल मे जा पहुचे और क्षुधा से पीडित इधर-उधर घूमने लगे। पर जगल मे खाने के लिए फलो के अतिरिक्त और क्या मिल सकता था। योगी ने डटकर फल खा लिए, कुछ ही समय बाद योगी को दस्त आने लगे। पेट बिल्कुल साफ हो गया। मन ही मन सोचने लगे, आत्मानुभूति होने लगी—'अरे योगी! क्या तू योगी है? नही, तू योगी नही है। तू पक्का चोर है। तूने राजा का हार चुराया है। तुझे धिक्कार है।' विचारो मे परिवर्तन आते ही योगी दौडे-दौडे राजमहल मे आये। रात्रि का समय था। सारी दुनिया सो रही थी। नरेश भी निद्राधीन थे। योगी ने राजा को जगाकर कहा—'राजा जी! यह लीजिए आपका हार।"

राजा चौंककर उठा और योगी के चरणो मे प्रणमन करता हुआ बोला—

"महात्मन् ! हार वापस देना ही था तो ले ही क्यो गये ?"

योगी ने कहा—नराधीश ! क्या कहू ? तीन महीने तक आपके यहा का अन्न खाने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। मन मे विकृति आ गई। इसी कारण मैं आपका हार चुराकर ले गया पर ज्योही जगल मे गया, पेट साफ हुआ, तब मुझे ज्ञान हुआ। विचारो मे सहसा परिवर्तन आया, अपने आपको धिक्कारने लगा और पुन. इस घृणित कार्य को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। मेरे मस्तिष्क मे चिन्तन चला कि विचारो मे परिवर्तन एकदम कैसे हुआ। आखिर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुचा कि राजभवन मे जाना ही मेरे लिए श्रेयस्कर नही था और न वहा का अन्न खाना ही। जब तक मेरे पेट मे आपके अन्न का अश था तब तक मेरे विचार मलिन थे। ज्योही उस अन्न से मेरा पेट स्वच्छ बना, त्योही विचारो मे स्वच्छता का सचार होने लगा, अत राजन् ! यह तो मैं दृढता से कह सकता हू कि विचारो पर भोजन का अचूक प्रभाव पडता है। ससार मे यह लोकोक्ति भी सुप्रसिद्ध है कि 'जैसा खाए अन्न, वैसा होने होवे मन।'

असर पडेगा अन्न का, मानस पर हर बार।
योगी के मस्तिष्क मे, उद्‌भव हुआ विकार॥

अभय-दान

वीरसेन नाम का एक क्षत्रिय था। उस पर एक अन्य क्षत्रिय ने चढाई की। परस्पर युद्ध हुआ। वीरसेन कुछ कमजोर होने के कारण यमराज का अतिथि बन गया। उस समय वीरसेन की पत्नी गर्भवती थी। कुछ समय पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ। माता ने अपने पुत्र को वीरोचित शिक्षा देकर वीर क्षत्रिय बना दिया। क्षत्रिय पुत्र की वीरता का सर्वत्र सम्मान होने लगा और वह राजा का कृपा-पात्र बना।

शत्रुओ को परास्त करने मे वह क्षत्रिय-पुत्र सबसे आगे रहता था। हर सग्राम मे विजयध्वज लहराकर आता था। उसका शारीरिक व आत्मिक शौर्य देखकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ। उचित पुरस्कार के द्वारा उसका सम्मान किया गया। नगर के लोग भी उसको आदर की दष्टि से देखने लगे, किन्तु उसकी मा उसके कार्य से खुश नही थी।

माता को रुष्ट एव खिन्न देखकर क्षत्रिय-पुत्र ने कहा "अम्मा ! सभी व्यक्ति मेरी वीरता पर प्रसन्न हैं, लेकिन तुम उदास क्यो हो ? क्या मुझमे कोई गलती हो गई है ? कृपया बताओ मैं भविष्य मे उसका ध्यान रखूंगा।"

माता ने करुण स्वर मे कहा—"वत्स ! तुमने अन्य शत्रुओं को जीतकर विजय प्राप्त की । क्या है इस विजय मे ? अभी तक तुम्हारे पिता को मारने वाला शत्रु जीवित है । क्या उसे जीतने का प्रयत्न किया ?"

क्षत्रिय-पुत्र चकित होकर बोला—"माताजी ! मेरे पिता का वध करने वाला अभी तक जीवित है ? आप मुझे अशीर्वाद दीजिए । मैं शत्रु को पराजित करने के लिए जाता हू । पिता के वैर का बदला लिए बिना नही लौटूगा ।" वह चल पड़ा ।

उस दुश्मन को यह पता लगा कि वीरसेन का पुत्र मुझ पर चढाई करने आ रहा है । वह बहुत वीर है, उसको मैं कभी भी परास्त नही कर सकूगा । उसकी शरण ही श्रेयस्कर होगी । क्षत्रिय पुत्र जब उसकी खोज करता हुआ वहा पहुचा तो वह क्षत्रिय पुत्र के चरणो मे गिर गया और उसके अधीन हो गया । वह क्षत्रिय-पुत्र पितृ-घातक शत्रु को लेकर माता के पास आया । उस समय वह (दुश्मन) मुह मे तृण डालकर बोला—"मैं आपकी गाय हू, आप मेरी रक्षा करे ।"

माता ने कहा—"वत्स ! तुमने अपने कर्तव्य का पालन कर लिया, किन्तु अब इसको शत्रु मत समझो । भाई समझो और इसे अभयदान दो । क्रोध को शान्त करने वाला ही सच्चा वीर कहलाता है ।" माता का आदेश पाकर पुत्र ने अपने शत्रु को मित्र समझा ।

शत्रु को मित्र समझने वाला ही महामानव कहलाता है । क्षत्रिय-पुत्र की भांति क्रोध को जीतकर इस विश्व मे वास्तविक वीर बनना चाहिए ।

प्राण प्रणाशक शत्रु को, (जो) समझे मित्र समान ।
'मुनि कन्हैया' विश्व मे, मानव वही महान् ॥

शिष्यों की परीक्षा

गुरुजी व्याख्यान दे रहे थे । सैकड़ो मनुष्य गुरुजी के वचनामृत का पान कर रहे थे । ओजस्वी एव प्रभावशाली व्याख्यान होने के कारण सभी का मन मत्र-मुग्ध सा बन रहा था । गुरु ने अपने दोनो शिष्यो मे से विनीत अविनीत कौन है, इसका परीक्षण करने के लिए व्याख्यान के बीच बडे शिष्यो को आवाज दी—"इधर आओ ।"

शिष्य अपने आसन पर बैठा-बैठा जोर से कड़ककर बोला—'क्या काम है ? आ रहा हू, जरा ठहर जाइए ।"

कुछ समय के पश्चात शिष्य आया और आंखो को लाल करके बिजली की तरह फडककर अभिमानपूर्वक बोला—"कहिए, क्या काम है ? किसलिए मुझे आवाज दी ?"

गुरु ने वत्सलतापूर्वक मधुर स्वर मे कहा—"शिष्य ! जाओ कैरी (आम) ले आओ।" यह सुनते ही शिष्य की आंखो से खून की धारा बह चली और गुरु को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ बोला—"गुरुजी ! क्या कैरी कल्पती है ? ऐसे कैसे अनर्गल शब्द का प्रयोग कर रहे हैं ? आप शास्त्रज्ञ हैं, किन्तु मुझे लगता है कि वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि मे विकार आ गया है। अन्यथा ऐसे अकल्पनीय शब्द का व्यवहार नही करते।" शिष्य की बात सुनते ही श्रावक-समाज की भी श्रद्धा डोल गई और सबके मस्तिष्क मे तरह-तरह की कल्पनाए घूमने लगी—अरे ! यह क्या ? गुरुजी मे तो पोल है। बेचारा यह शिष्य गुरु को सच्ची-सच्ची सुनाने वाला है कि कैरी कल्पती नही है हाय ! साधुत्व का दृष्टि से इनको वन्दना कैसे करे ? व्याख्यान के बीच मे ही गुरुजी को छोड-छोडकर प्राय सभी लोग जाने की तैयारी करने लगे। इतने मे ही गुरु ने छोटे शिष्य को आह्वान करते हुए कहा—"शिष्य ! इधर आओ।" चेला शीघ्र उपस्थित हुआ और हाथ जोड-कर बडे नम्र भाव से बोला—"गुरुदेव ! आपके चरणो का सेवक आपकी सेवा मे उपस्थित है, फरमाइए क्या काम है ?"

गुरु—"कैरी लाओ।"

शिष्य (हाथ जोडकर) "धन्य है आपके वचन, अभी जाता हू।" श्रावक श्रद्धा से गिरे हुए तो थे ही फिर इसकी बात सुनकर मन-ही-मन सोचने लगे—हाय ! ऐसा ही यह गुरु है और ऐसा ही यह हा मे हा मिलाने वाला शिष्य, कैसा दोनो का योग मिला है। यदि कैरी ले आएगा तो गजब हो जाएगा। बेचारा वह बडा शिष्य स्पष्टवादी था, गुरु को भी उसने साफ-साफ सुना दी क्योकि कैरी कल्पती नही है। सभी के दिलो मे बडी हलचल उत्पन्न हो गई।

वह शिष्य अन्दर गया। पछेवडी ओढकर, झोली-पात्र ले गुरुजी के पास आया और भक्ति भरे शब्दो मे बोला—"गुरुवर ! गोचरी की आज्ञा है ?" सभा मे सन्नाटा छा गया। सभी के दातो मे अगुलिया आ गई। सब गुरु की ओर देखने लगे। इतने मे उस शिष्य ने पूछा—"गुरुदेव ! कैरी मुरब्बे की लाऊ या अथाणे की ?" गुरु ने कहा—"शिष्य ! बस आ गई कैरी, बैठ जाओ। मुझे आज तुम दोनो की परीक्षा करनी थी कि विनीत कौन है ? अविनीत कौन है ? परीक्षा हो गई। अब कैरी की अपेक्षा नही है।"

सारा श्रावक-समाज दग रह गया—अरे ! यह तो और ही बात निकली। हम सब झूठी कल्पना कर रहे थे। गुरु तो वास्तव मे गुरु ही हैं। सभी श्रावक गुरु

के चरणो मे झुक गये और सन्देह दूर कर श्रद्धावान बन गये।

जो गुरु के वचनो के प्रति श्रद्धा रखते हैं, गुरु के आदेश का जो सम्यक् रूप से पालन करते हैं, वे शिष्य विनयी कहलाते हैं और आगे जाकर वे ही अपने जीवन का विकास कर सकते हैं। अत हरेक के जीवन मे विनय अत्यावश्यक है।

गुरु आज्ञा पर शिष्य जो, रखता ध्यान विशेष।
'मुनि कन्हैया' है वही, विनयी शिष्य हमेश॥

विकास का द्वार बन्द

एक गाव मे एक चित्रकार रहता था। चित्र बनाने मे वह बडा निपुण एव सिद्धहस्त था। दूर-दूर तक उसकी हस्तकला प्रसिद्ध थी। चित्र भी बडे आकर्षक व मोहक बनाता था। चित्रो को देख-देखकर बडे-बडे आदमी मोहित हो जाते थे।

एक दिन चित्रकार ने अपने प्रिय पुत्र महेश से कहा—"पुत्र! तुझे चित्रकला मे दक्ष होना है। इसके लिए प्रयास अपेक्षित है। उद्यम करने से हर एक क्रिया मे सफलता मिलती है।"

महेश—(हाथ जोडकर) "पिताजी! आपका आशीर्वाद चाहिए, सब अच्छा होगा। मैं आलस्य एव निद्रा को दूर कर चित्रकला मे प्रवीण होने के लिए प्रयास करूगा।"

पिता ने पुत्र को चित्रकला सिखानी शुरू की। अति श्रम से कुछ ही दिनो मे महेश चित्रकला मे पटु हो गया। एक दिन पिता ने कहा—"पुत्र! अब तू स्वय चित्र बनाया कर और शाम को मुझे दिखा दिया कर जिससे बहुत अच्छा लाभ होगा।" महेश ने अपने दिमाग से चित्र बनाना शुरू कर दिया। सुन्दर चित्र बनाकर प्रतिदिन पिताजी को दिखाता तो पिताजी उसमे कुछ न कुछ कसर अवश्य ही निकाल देते। कई दिनो तक ऐसा ही क्रम चलता रहा। महेश ने सोचा—पिताजी तो निरन्तर कमी निकालते है, कभी भी चित्र को सुन्दर नही बताते। आज काफी श्रम करके आकर्षक चित्र बनाऊगा और पिताजी से शाबाशी लूगा। महेश ने अति परिश्रम से एक सुन्दर एव सुकुमार बालक का अत्युत्तम चित्र बनाया। तरह-तरह के रगो से उस चित्र की आभा द्विगुणित हो रही थी। कपडो एव आभूषणो से उसमे निखार पैदा हो रहा था। देखने वालो के लिए बडा आकर्षक एव मोहक था। दूर से तो वह ऐसा लगता था मानो कोई सजीव बालक भगवान की प्रार्थना कर रहा हो। महेश फूला-फूला पिताजी के पास गया और उस चित्र को सामने रखा।

पिता ने नाक सिकोडते हुए कहा—"पुत्र ! और तो सब ठीक है, किन्तु इसकी दोनो आखे बराबर नही है एक मे थोडा-सा टेढापन है। कल इससे और अच्छा बनाना, जिसमे बिलकुल भी कमी न हो।"

दो चार दिन बाद महेश ने फिर एक सुन्दर चित्र बनाकर अपने मित्र रमेश को देकर कहा—"इस चित्र को आज तू मेरे पिताजी को दिखाना। देखे, पिताजी क्या कहते हैं ?" रमेश चित्र लेकर महेश के पिताजी के पास पहुचा। चित्र देखते ही महेश का पिता अवाक् रह गया और बोला—"क्या इस दुनिया मे ऐसा सुन्दर चित्र बनाने वाला अभी कोई है ? ऐसा मोहक चित्र मैंने कभी भी नही देखा।" महेश पीछे खडा ही था। पिता के मुह से प्रशसा सुनते ही वह जोर से अहकार-पूर्वक बोला—"इस चित्र को बनाने वाला मैं हूं। आपका पुत्र महेश।"

चित्र को फेंकते हुए पिता ने कहा—"पुत्र ! आज से तेरा विकास-द्वार बन्द हो गया है, रुक गया है। अब तू आगे बढ नही सकता क्योकि तेरे मन मे अहकाररूपी चोर घुस गया है और तू अपने आपको पूर्ण समझने लग गया है।"

किसी भी व्यक्ति को अभिमान नही करना चाहिए क्योकि अहकार से उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

अभिमानी के ज्ञान का, होता रुद्ध विकास।
चित्रकार के पुत्र का, सुनो सभी इतिहास ॥

सबसे मीठा क्या ?

एक दिन बादशाह अकबर ने समस्त सभासदो से प्रश्न किया—"ससार मे सबसे मीठा क्या है ?" सभी विद्वानो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। किसी ने सबसे मीठी बरफी, किसी ने मालपुए, आदि-आदि बताए। अन्त मे जब बीरबल की बारी आई तब उसने कहा—"जहापनाह ! न तो कोई पकवान मीठे हैं और न कोई खीर, मालपुए। ससार मे सबसे मीठा है—"वचन।"

बादशाह ने कहा—"बीरबल ! तुम्हारी बुद्धि तीन लोक से न्यारी है। पकवानो से तो पेट भर सकता है, क्षुधा भी शान्त हो सकती है। जीभ को भी स्वाद मिलता है, किन्तु वचन से क्या भूख शान्त होती है ? वचन का क्या मीठा ?"

बीरबल ने कहा—"अभी तो आप मेरा मखौल उडा रहे हैं, किन्तु समय आने पर मैं सिद्ध करके बताऊगा कि वचन मीठा है।" सभा विसर्जित हुई। आगन्तुक

अपने-अपने घर गये। कुछ ही दिनो बाद दीपमालिका का त्योहार आया। बीरबल ने बादशाह से कहा—आज हमारे हिन्दुओ का बहुत बडा पर्व है, अत आपकी बेगम (महारानी) को मेरे घर भोजन के लिए भेजिए। बादशाह बीरबल की बात को कैसे टाल सकता था ? बेगम उसके घर गई। बीरबल ने उसका अभूतपूर्व स्वागत किया। गद्दी पाट बिछाये हुए थे। तरह तरह की सब्जियो और मिठाइयो की खुशबू से सारा घर सुगन्धित हो रहा था। भोजन आरभ हुआ। भोजन करते-करते बेगम के मन मे विचार आया कि पकवान तो मैंने राजमहल मे बहुत खाए लेकिन आज जैसे मधुर व मनोज्ञ मिष्टान्न कभी नही खाए। बादशाह को यह सब बात सुनाकर बीरबल को अवश्य ही कुछ न कुछ पट्टा, परगना बखशीश करवाऊगी। दिल मे बहुत खुशी थी। बीरबल के प्रति अच्छे विचार थे। भोजन समाप्त हुआ। पान, सुपारी, इलायची आदि की भी मनुहारें हुई।

ज्योही बेगम वहा से उठी, दो चार कदम आगे रखे त्योही बीरबल ने जोर से अपने नौकर से कहा—"अभी वहा 'तुरकणी' ने भोजन किया, उस जगह को पानी से साफ कर देना।" यह 'तुरकणी' शब्द सुनते ही बेगम का खाया पीया जहर हो गया। हृदय मे क्रोधाग्नि भडक उठी। आखो से खून बरसने लगा। चुपचाप राजमहल मे आ गई और कोपभवन मे जाकर सो गई। बादशाह महलो मे पहुचा, बेगम का विकराल रूप देखकर बोला—"क्या बीरबल ने तुम्हारा स्वागत ठीक नही किया ? ऐसे कपडो को फाडकर कैसे सो रही हो ?"

बेगम बोली—"धिक्कार है उसके स्वागत मे। जिसको बोलने की भी तमीज नही है। मुझे तुरकणी कहकर पुकारा बस, या तो मैं जीवित रहूगी या वह बीरबल जीवित रहेगा।"

बादशाह भी क्रुद्ध हो नीचे आया और बीरबल को बुलाकर कहा—"अरे ! तुमने मेरी बेगम को नाराज कैसे कर दिया ?"

बीरबल—"मैंने तो अनेको मधुर-मधुर पकवान खिलाए, तन-मन और धन से उनका स्वागत किया।"

बादशाह—"धूल है तेरे स्वागत मे। क्या उनको 'तुरकणी' शब्द कहकर पुकारा तुमने ?"

बीरबल—"हा, किन्तु भोजन तो मीठा था। वचन ऐसा कह दिया तो क्या हुआ ? वचन से कोई पेट थोडा ही भरता है ?"

बादशाह—"उस वचन ने उनका खाया-पीया जहर हो गया। क्यो कहा ऐसा वचन ?"

बीरबल—"मैंने आपको समझाने के लिए कहा। उस दिन आपने सभा मे कहा था कि वचन क्या मीठा होता है ? अब बताइए वचन सबसे मीठा है या नही ?"

यह सुनते ही वादशाह की आखें खुली। गुस्सा शान्त हुआ। शीघ्र अपनी गलती को स्वीकार करते हुए वीरबल की पुन पुन प्रशसा करने लगा। यह मानना पडा कि वचन सबसे मीठा होता है।

जीभ मे ही जहर है और जीभ मे ही अमृत है। अमृतमय मधुर वचन सबको मनोज्ञ लगते हैं। मधुर वचन से सारा ससार वश मे हो जाता है और मधुरभाषी का सर्वत्र सम्मान होता है अत· किसी को भी कटु शब्द का प्रयोग नही करना चाहिए।

बोला मत्री बीरबल, सबसे मिष्ट जवान।
बादशाह को हो गया, आखिर इसका ज्ञान॥

सवाईराम की निपुणता

एक सवाईराम नाम का एक व्यक्ति था। वह एक दिन सपरिवार यात्रा पर जाने के लिए तैयार हुआ, किन्तु शहर मे चोरिया अधिक होने के कारण मुख्य-मुख्य बहुमूल्य वस्तुए तो उसने साथ ले ली। पीतल के बर्तन आदि पडोसी के घर मे रख दिए और यात्रा के लिए रवाना हो गया। पीछे से पडोसी का मन बिगड गया। नीयत मे फर्क आ गया और सोचा—ज्यो-त्यो करके कोई कला निकाल कर बर्तनो को घर मे ही रख लू। वापस नही दू, तो मेरी विशेषता है।

सवाईराम अपनी यात्रा समाप्त होते ही अपने घर आया। एक-दो दिन वाद पडोसी के घर पहुच गया और बोला—"भाई! मैंने जो तेरे यहा बर्तन रखे थे वे वापस दो।" पडोसी बोला—"भाई! क्या कहू बडे दु.ख की बात है। कहते हुए शर्म आती है। बर्तनो का तो नुकसान हो गया।" सवाईराम—"विचार करने की क्या बात है? हो गया सो हो गया। गई हुई कोई वस्तु तो आती नही, पर यह तो बताओ, बर्तन चोरी हो गये या कोई और ही किस्सा बना।"

पडोसी—भाई! मैंने काफी सुरक्षापूर्वक रखा था फिर भी उन बर्तन मे ऐसा घुन लगा कि थोडे ही दिनो मे सबको सफाचट कर गये।

सवाईराम बडा नीतिज्ञ एव समझदार था। पडोसी के दिल को समझ गया और अपने आपमे यह निर्णय कर लिया कि घुन बर्तनो के नही लगा है, घुन लगा है—पडोसी के दिल मे। अब तो किसी चालाकी से ही बर्तन आयेंगे। कुछ ही दिनो पश्चात् उसने तीर्थयात्रा के उपलक्ष मे एक भोज किया। पडोसी के बच्चे भी भोज मे सम्मिलित हुए। उसने उन दोनो बच्चो को कही बगीचे मे ले जाकर कमरे

मे छुपा दिया। भोज समाप्त होने पर भी बच्चे घर नही पहुचे तो पडोसी दौडकर आया और सवाई से पूछा—भाई साहब! बच्चे कहा गये? अभी तक घर नही पहुचे, क्या यही खेल रहे है?

सवाईराम अकुलाता हुआ बोला—"भाई! क्या करू कलेजा फट रहा है? मेरे देखते-देखते अचानक एक चील आई और बच्चो को उठा ले गई।" पडोसी हाय-हाय करता हुआ राजमहल मे पहुचा और राजा को सारा हाल सुनाया। नृप ने सवाईराम को बुलाकर पूछा—"भाई इसके दोनो बच्चे कहा हैं? सच सच बताओ।"

सवाईराम बोला—"नाथ! चील ले गई।"

राजा—"इतने बडे बच्चो को चील कैसे ले जा सकती है।"

सवाईराम बोला—

जैसे को तैसा मिले, सुनिये राजा भील।
पीतल को घुन खा गये, छोरो को ले गई चील॥

"जैसे बर्तनो को घुन खा जाते हैं, वैसे ही बच्चो को चील ले जाती है।" आखिर रहस्य का उद्घाटन होते ही दोनो को अपनी-अपनी चीज मिल गई।

जो व्यक्ति जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। कोई भी कोयला खायेगा तो उसका मुह अवश्य ही काला होगा। कपटाई चाहे जितनी करो, पर एक दिन तो अवश्य ही उसकी घृणा स्पष्ट हुये बिना नही रहेगी। निश्छल हृदय ही प्रेम का सच्चा द्वार है।

कपटाई कितनी करो, आखिर होती व्यक्त।
सदा सवाईराम सम, रहो नीति मे रक्त॥

बुरे का फल बुरा

एक गरीब ब्राह्मण निरन्तर राजसभा मे आता और जोर से बोलता—"धर्म जय, पाप क्षय।" एक दिन बाजार मे राजपुरोहित ने उस ब्राह्मण को कहा—"राजा जी दान दक्षिणा उसी को देते हैं जो मुख पर कपडा बाधकर राजसभा मे उपस्थित होता है।" उसने वैसा ही किया। इधर राजपुरोहित ने राजा को कहा—राजन्! यह जो गरीब ब्राह्मण सभा मे प्रतिदिन आता है, इसको आप जानते हैं? यह कौन है?'

राजा—"इसके लक्षणो से तो ब्राह्मण प्रतीत होता है।"

पुरोहित—"राजन् ! वह नाम मात्र का ब्राह्मण है। ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होकर शराब पीता है, अत इसमे द्विजत्व नही है।

राजा—"क्या ब्राह्मण होकर शराब पीता है ? इसका कोई सबूत है ?"

पुरोहित—"हा वह सभा मे मुख पर कपडा बाधकर इसलिए आता है कि आप तक शराब की दुर्गन्ध न पहुच जाए।"

दूसरे दिन वह गरीब ब्राह्मण मुख पर कपडा बाधे हुए सभा मे आया। नृप की दृष्टि उस पर पडी। नृप को बहुत दुःख हुआ। हाय ! यह ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होकर शराब पीता है। उसी समय राजा ने एक पत्र (रुक्का) लिखकर उसे दिया और कहा—"जाओ ! भण्डारी के पास जो मिलता है, यहा मिल जायेगा।" पत्र लेकर वह चला। साथ-साथ राजपुरोहित चला। बाहर आते ही उससे कहा—"भाई ! आज जो तुझे यह पत्र मिला है, यह मेरा ही तो प्रताप है। लाओ, यह पत्र मुझे दे दो। बदले मे ये लो पच्चीस रुपये।" वह बेचारा गरीब था। उसने सोचा—जितना आए उतना ही अच्छा। पच्चीस रुपये ले लिए और वह पत्र उसको दे दिया। पुरोहित पत्र लेकर भडारी के पास पहुचा। भण्डारी ने पत्र पढा। उसमे लिखा था—

रुपया दीज्यो रोकडा, मत दीज्यो सौलाक।
घर मे आघो घालने, काटी लीज्यो नाक।

भण्डारी ने कहा—"पुरोहित जी ! विराजिए, अभी मैं आपका बिल पेमेण्ट करता हू।" पुरोहित मन ही मन मे बडा खुश हो रहा था। आज तो इच्छित मिलेगा। भण्डारी एक हाथ मे सौ रुपया और एक हाथ मे चाकू लेकर आया और बोला—'यह लीजिए रुपये' पर बदले मे नाक दीजिए।" यह सुनते ही पुरोहित घबराया और जोर से बोला—"यह पत्र मेरा नही है, एक ब्राह्मण का है।"

भण्डारी बोला—"आप लाए हैं, तो हम आपका ही समझेगे।"

पुरोहित थर-थर काप रहा था। भण्डारी ने शीघ्र चाकू से नाक काट ली।

उस गरीब ब्राह्मण को जब यह पता लगा कि पुरोहित का तो नाक कट गया है। वह पढा-लिखा तो था ही, उसने सब जानकारी की और पुरोहित की धूर्तता को प्रकट करने के लिए वह राजसभा मे पहुचा। प्रतिदिन की भाति "धर्म जय, पापे क्षय" इतना कह वह और बोला—"भले भलो, बुरे बुरो।"

राजा ने आश्चर्य से पूछा—"क्या तू भण्डारी के पास नही गया ?" उसने नम्र भाव से आदि से अन्त तक समस्त वृतान्त राजा को सुना दिया। नृप के मुह से सहसा निकला—"बुरे का फल बुरा।"

एक व्यक्ति दूसरे का बुरा सोचता है तो बुरा स्वय का होता है। पर का अनिष्ट करके स्वय के भले की भावना रखना आकाश पुष्प की भाति बेकार है।

लत' भलाई न भी हो तो दूसरो की बुराई करके—पापार्जन कभी भी नहीं करना चाहिए।

बुरा पराया सोचकर, करो न कोई पाप।
करो भलाई हर समय, मिटे संकट संताप॥

भूखा जाट

देश में अकाल के काले-काले बादल उमड रहे थे। जीवन निर्वाह करना एक भयंकर समस्या बन गई थी। अनेको लोग अपना उदर-पोषण करने के लिए इधर-उधर भटक रहे थे। उस समय तीन दिन का भूखा एक जाट फिरता-फिरता एक महात्मा के मठ मे पहुचा। वहा बाबा का दर्शन करने के लिए सैकडो ही भक्तगण आते थे। और मुक्त कण्ठ से बाबा की प्रशसा करते थे। ये सब ठाट-बाट देखकर उस जाट का मन ललचा गया और सोचा, मैं महात्मा जी का चेला बन जाऊ, तो खाने-पीने की मेरी समस्या सहज ही हल हो जायेगी।

महात्मा जी को नमस्कार करते हुए उस जाट ने कहा—"महात्मा जी ! मैं आपका चेला बनना चाहता हू। यदि आपकी इच्छा हो तो मुझे मूड लीजिए।"

महात्मा जी चेले की प्रतीक्षा मे ही थे, चेले के लिए आखे फाड ही रहे थे। कोई आए, कोई आए, क्योंकि बुढापे मे सेवा-चाकरी करने वाला कोई न कोई तो चाहिए ही। शुभ मुहूर्त देखकर महात्मा जी ने उस जाट को मूड लिया। महात्मा जी की कामना सफल हुई। जाट भी अपने भाग्य की सराहना करने लगा। दोनो ही अपने-अपने मन मे बडे खुश थे। इतने मे भक्त आये और पूछा—"महाराज ! यह कौन है ?"

महात्मा—"यह नया चेला है, इसकी आज ही दीक्षा हुई है !

भक्त—"इनके लिए किसी चीज की आवश्यकता हो तो फरमाइए !"

महात्मा—"भोजन के लिए घी, खीचडा और सोने के लिए खटिया तथा बिछौना चाहिए।"

महात्मा जी के आदेशानुसार भक्तो ने एक थाली भर खीचडा, गाय का घी, कुछ सब्जी और बिछौना आदि सामान हाजिर कर दिया।

वह जाट भूखा तो था ही। सारा का सारा खीचडा सफाचट कर गया। अधिक मात्रा मे खाने से उसको नींद लग गई।

चेले ने कहा—"महाराज ! आपकी कृपा से भूख तो शान्त हो गई, किन्तु अब आखो मे नींद आ रही है।"

गुरु ने कहा—"चेला! कोई बात नही है। आराम करो, यह रजाई ओढकर सो जाओ।" सोते ही चेले को गहरी नीद आ गई। कई घण्टो के बाद जब आखे खुली तो चेला सोया हुआ ही विचार करने लगा—अहा! कैसी मौज बनी। चेला बनने मे बडा आनन्द है। मैंने सुना है जो भेष लेता है उसे मोक्ष मिलता है। वास्तव मे यह बात अक्षरश सत्य है। उससे रहा नही गया। खटिया पर लेटे-लेटे ही गुरु जी से प्रश्न करता हुआ बोला—

खावण मिलग्यो खीचडो, ओढण मिलगी सौड।
चेलो पूछे गुरुजी ने, मोक्ष यही है कि और॥

गुरु ने कहा—"मूर्ख! ऐसे मत बोल। यहा कहा मोक्ष है। मोक्ष बहुत दूर है। वहा तो अनन्त सुख है। उन सुखो के सामने ये भौतिक सुख तो कुछ भी नही है।"

चेले ने कहा—"गुरुजी! उस मोक्ष को आप अपने पास ही रखे, मुझे तो यही मोक्ष चाहिए।" यो कहते हुए अपने घर का रास्ता पकडा।

सयम की साधना वही कर सकता है, जिसके मन मे आन्तरिक वैराग्य हो, जिसने अपने मन को मार लिया हो, परन्तु जो पेटार्थी होगा अर्थात् रोटियो के लिये जो सयम लेगा वह कभी भी अपने त्याग-नियमो को नही निभा सकता।

सयम पालेगा वही, जिसके मन वैराग।
पेटार्थी, उस जाट सम, नही निभाते त्याग॥

पक्को पात्रणो

कचनपुर नगर मे रामलाल नाम का एक सेठ रहता था। कपडे की दूकान के साथ-साथ उसके लेन-देन का व्यापार भी चलता था। वसूली के लिए वह सेठ महीने मे दस-बीस बार घोडे पर चढकर एक छोटे से गाव मे जाया करता था। वहा महाजनो का एक ही घर सेठ किशनलाल का था। इससे वह रामलाल सीधा उसी किशनलाल के घर पहुचता था। किशनलाल रामलाल को अपना जाति-भाई समझकर उसका काफी आदर-सत्कार करता था। अपने आपको धन्य समझता था कि मेरे घर पर मेरे भाई का आगमन होता है। जितनी बार वह आता, उतनी ही बार उसको तरह-तरह का भोजन खिलाता, घोडे को भी चने देता।

एक दिन किशनलाल की स्त्री ने पूछा—"पतिदेव! जब कभी वह सेठ आता है आप उसके लिए विविध मिष्ठान्न बनवाते हैं। उसकी तन-मन-धन से सेवा करते हैं इतना बिना मतलब क्यो? आखिर क्या कोई मतलब है?" उसने

अत: भलाई न भी हो तो दूसरो की बुराई करके—पापार्जन कभी भी नहीं करना चाहिए।

बुरा पराया सोचकर, करो न कोई पाप।
करो भलाई हर समय, मिटे सकट सताप ।।

भूखा जाट

देश मे अकाल के काले-काले बादल उमड रहे थे। जीवन निर्वाह करना एक भयकर समस्या बन गई थी। अनेको लोग अपना उदर-पोषण करने के लिए इधर-उधर भटक रहे थे। उस समय तीन दिन का भूखा एक जाट फिरता-फिरता एक महात्मा के मठ मे पहुचा। वहा बाबा का दर्शन करने के लिए सैकडो ही भक्तगण आते थे। और मुक्त कण्ठ से बाबा की प्रशंसा करते थे। ये सब ठाट-बाट देखकर उस जाट का मन ललचा गया और सोचा, मैं महात्मा जी का चेला बन जाऊ, तो खाने-पीने की मेरी समस्या सहज ही हल हो जायेगी।

महात्मा जी को नमस्कार करते हुए उस जाट ने कहा—"महात्मा जी ! मैं आपका चेला बनना चाहता हू। यदि आपकी इच्छा हो तो मुझे मूड लीजिए।"

महात्मा जी चेले की प्रतीक्षा मे ही थे, चेले के लिए आखे फाड ही रहे थे। कोई आए, कोई आए, क्योकि बुढापे मे सेवा-चाकरी करने वाला कोई न कोई तो चाहिए ही। शुभ मुहूर्त्त देखकर महात्मा जी ने उस जाट को मूड लिया। महात्मा जी की कामना सफल हुई। जाट भी अपने भाग्य की सराहना करने लगा। दोनो ही अपने-अपने मन मे बडे खुश थे। इतने मे भक्त आये और पूछा—"महाराज ! यह कौन है ?"

महात्मा—"यह नया चेला है, इसकी आज ही दीक्षा हुई है !

भक्त—"इसके लिए किसी चीज की आवश्यकता हो तो फरमाइए !"

महात्मा—"भोजन के लिए घी, खीचडा और सोने के लिए खटिया तथा बिछौना चाहिए।"

महात्मा जी के आदेशानुसार भक्तो ने एक थाली भर खीचडा, गाय का घी, कुछ सब्जी और बिछौना आदि सामान हाजिर कर दिया।

वह जाट भूखा तो था ही। सारा का सारा खीचडा सफाचट कर गया। अधिक मात्रा मे खाने से उसको नीद लग गई।

चेले ने कहा—"महाराज ! आपकी कृपा से भूख तो शान्त हो गई, किन्तु अब आखो मे नीद आ रही है।"

गुरु ने कहा—"चेला ! कोई बात नही है । आराम करो, यह रजाई ओढकर सो जाओ ।" सोते ही चेले को गहरी नीद आ गई । कई घण्टो के बाद जब आखे खुली तो चेला सोया हुआ ही विचार करने लगा —अहा ! कैसी मौज बनी चेला बनने मे बडा आनन्द है । मैने सुना है जो भेष लेता है उसे मोक्ष मिलता है । वास्तव मे यह बात अक्षरश सत्य है । उससे रहा नही गया । खटिया पर बैठे-बैठे ही गुरु जी से प्रश्न करता हुआ बोला—

खावण मिलग्यो खीचडो, ओढण मिलगी सौड ।
चेलो पूछे गुरुजी ने, मोक्ष यही है कि और ॥

गुरु ने कहा—"मूर्ख ! ऐसे मत बोल । यहा कहा मोक्ष है । मोक्ष बहुत दूर है । वहा तो अनन्त सुख है । उन सुखो के सामने ये भौतिक सुख तो कुछ भी नही है ।"

चेले ने कहा—"गुरुजी ! उस मोक्ष को आप अपने पास ही रखे, मुझे तो यही मोक्ष चाहिए ।" यो कहते हुए अपने घर का रास्ता पकडा ।

सयम की साधना वही कर सकता है, जिसके मन मे आन्तरिक वैराग्य हो, जिसने अपने मन को मार लिया हो, परन्तु जो पेटार्थी होगा अर्थात् रोटियो के लिये जो सयम लेगा वह कभी भी अपने त्याग-नियमो को नही निभा सकता ।

सयम पालेगा वही, जिसके मन वैराग ।
पेटार्थी, उस जाट सम, नही निभाते त्याग ॥

पक्को पातणो

कचनपुर नगर मे रामलाल नाम का एक सेठ रहता था । कपडे की दूकान के साथ-साथ उसके लेन-देन का व्यापार भी चलता था । वसूली के लिए वह सेठ महीने मे दस-बीस बार घोडे पर चढकर एक छोटे से गाव मे जाया करता था । वहा महाजनो का एक ही घर सेठ किशनलाल का था । इससे वह रामलाल सीधा उसी किशनलाल के घर पहुचता था । किशनलाल रामलाल को अपना जाति-भाई समझकर उसका काफी आदर-सत्कार करता था । अपने आपको धन्य समझता था कि मेरे घर पर मेरे भाई का आगमन होता है । जितनी बार वह आता, उतनी ही बार उसको तरह-तरह का भोजन खिलाता, घोडे को भी चने देता ।

एक दिन किशनलाल की स्त्री ने पूछा—"पतिदेव ! जब कभी वह सेठ आता है आप उसके लिए विविध मिष्ठान्न बनवाते हैं । उसकी तन-मन-धन से सेवा करते हैं इतना बिना मतलब क्यो ? आखिर क्या कोई मतलब है ?" उसने

कहा—"यह तो परम्पर व्यवहार एव शिष्टाचार है। मैं कभी शहर जाऊगा, तो वे मुझे भोजन करायेगे।" स्त्री ने कहा—"कल आप शहर मे पधार कर इसकी परीक्षा तो करे। वे शहरवासी हैं।"

वह घोडे पर चढकर अनेको-अनेको आशाओ के बाध बाधता हुआ शहर गया। आखिर पूछता-पाछता सेठ की दुकान पर जा पहुचा। किन्तु रामलाल ने तो उसको आख उठाकर भी नही देखा। उसने सोचा—यह क्या ? सेठ तो देखते ही नही है। खैर अभी, काम मे व्यस्त है, फिर आऊगा। घण्टा दो घण्टा शहर मे चक्कर लगाकर वापस दुकान पर आया और जोर से बोला—"सेठा ! राम-राम" अब उसको खडा होकर बोलना ही पडा—"आओ सा ! विराजो सा !" घोडे को एक तरफ बधवा दिया, किन्तु घास का भी क्या काम था ? रामलाल ने मुनीम से कहा—"जाओ, घर पर कह दो, मेहमान आए हैं, रसोई जल्दी तैयार करे।" मुनीमजी शीघ्र घर गये और सेठानी को कह दिया। किन्तु सेठानी कहा भोजन बनाने वाली थी ? वह बडी चालाक एव धूर्त्ता थी। थोडी देर बाद सेठ ने घर आकर स्त्री से पूछा—"क्या खाना तैयार हो गया ?" वह बक-बक करती हुई बोली—"आपके तो दस जाते हैं और पन्द्रह आते हैं। किस-किस के लिए भोजन बनाऊ ? आप कोई गाव चले जाइए, मैं अपने पीहर चली जाती हू। मेहमान भूखा मरता स्वय अपने घर चला जायेगा।" सेठ को स्त्री का कहना मानना पडा।

उधर किशनलाल भी बडा चतुर था। वह घर आकर देखता है तो कोई नही। घर मे एक तरफ छिप गया। शाम के समय सेठ और सेठानी दोनो ही घर आये। सेठानी ने बादाम का हलवा बनाकर—ज्योही सेठजी की थाली मे परोसा त्योही किशनलाल आ धमका और बोला—"सेठ साहब ! राम-राम !" अब उसकी भी मनुहार करनी ही पडी। पधारो-पधारो ! भोजन करो !" अच्छी तरह से पेट भरकर सेठ किशनलाल अपने घर आ गया। स्त्री ने पूछा—"पतिदेव ! परीक्षा हो गई।" सेठ बोला—"तूने जो कहा था वह सब सच निकला। शहरवासी बडे दक्ष होते है, किन्तु मैं या "पक्को पावणो" बादाम का हलवा खाकर ही आया हू। अन्त मे दोनो के व्यवहारो मे खाई पड गई।

जब एक के व्यवहार मे रूक्षता आ जाती है तब भला दूसरे के व्यवहार मे स्निग्धता का सवाल ही क्या रहता है। पारस्परिक मित्रता तभी टिक सकती है जबकि व्यवहार मे सन्तुलन रखा जाए। एक हाथ मे ताली नही बजती।

सौहार्दता तब निभे, जब हो सम व्यवहार।
एक हाथ मे नही बजे, ताली कभी विचार॥

तब मानव, अब दानव

यूनान देश मे एक विलक्षण चित्रकार रहता था। उसकी हस्त-कला जन-जन के मन को मोहित करने वाली थी। उसका सुयश दिग्-दिगन्त मे फैल रहा था। चित्रकार ने एक सुन्दर, स्वस्थ बालक का चित्र बनाया। चित्र मे भगवान् की प्रार्थना करते हुए बालक का स्वाभाविक सुन्दर चित्रण किया हुआ था। बालक के मुखमण्डल पर सरलता व सौम्यता झलक रही थी और उसकी मुखाकृति मानव के मानस को आकर्षित करने वाली थी। अत वह चित्र सजीव सा प्रतीत होता था। ससार की समस्त कला मानो स्वय मूर्तिमान होकर चित्रकार की कला को परि-वर्धित कर रही हो। वह चित्र जन-जन को मत्र-मुग्ध कर रहा था। चित्रो की माग इतनी बढी कि हजारो चित्र स्वल्प समय मे ही समाप्त हो गये। मुहमागे पैसे मिलने से चित्रकार की दरिद्रता दूर हो गई और उस एक ही चित्र से लक्ष्मी के अधिनायको मे उसकी गणना होने लगी। कुछ ही वर्षो के बाद चित्रकार के मस्तिष्क मे नये विचारो की झनझनाहट पैदा हुई। मैने सुन्दर से सुन्दर मानव का चित्र बनाकर पुरस्कार प्राप्त किया। परन्तु अब मुझे एक भयानक दानव का भी चित्र बनाना चाहिए। अब वह चित्रकार कुरूप मानव की खोज करने लगा। उसकी प्राप्ति के लिए देश-विदेश मे भी भ्रमण किया, पर जैसा चाहिए था वैसा मानव नही मिला। आखिर अन्वेषण करते-करते वह बन्दीगृह मे जा पहुचा क्योकि वह दुष्ट मनुष्यो का निवास स्थान होता है। प्रयत्न करने पर एक विचित्र बन्दी उसकी नजर मे आया, जिसके शरीर का वर्ण काला था। बाहर आई हुई दन्ता-वली मानो किसी को खाने के लिए उत्सुक हो रही थी। बिखरी हुई केशराशि बीभत्स दृश्य उपस्थित कर रही थी। आखो की चमक प्राय लुप्त हो चुकी थी। शरीर पर दुर्बलता का आधिपत्य छाया हुआ था। हाथ और पैर भी बडे डरावने लग रहे थे। वह चित्रकार ऐसे ही भयानक मानव की खोज मे था। अत उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। उसने पेपर और तूलिका लेकर उस बीभत्स मानव का चित्र बनाना प्रारम्भ किया।

कैदी ने सोचा—क्या यह मेरा चित्र बना रहा है? उसने साश्चर्य पूछा—"मेरा चित्र क्यो बना रहे हो? कहा है मुझमे सुन्दरता? मैं चित्र के योग्य नही हू। आप अपना समय क्यो नष्ट कर रहे है? पेपर और रग का दुरुपयोग क्यो कर रहे हैं? कुरूप व्यक्ति का चित्र बनाकर आपको मिलेगा क्या? आपका परिश्रम राख मे घृताहुति देने के समान कभी भी फलदायी होने वाला नही है। फिर भी मेरा चित्र बनाने को लालायित क्यो हो रहे हैं?

चित्रकार—"भाई! इतने दिनो तक मैं तेरी खोज मे था। आज बहुत कठिनाई

से तेरे दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। क्योंकि मैंने कई वर्षों पूर्व एक भोले बालक का चित्र बनाया था। उस सजीव चित्र की सुकुमारता ने मानव के मानस को आलोडित कर दिया। सर्वत्र मेरी यशोगाथाओं का गान होने लगा। उस बालक के चित्र बेचकर मैं सम्पत्तिशाली बन गया। अब मैं उसके विपरीत दानव का रूप बनाना चाहता हू। दानव की खोज के लिए मैं जगह-जगह गया परन्तु कही मुझे दानव का योग नही मिला। अन्ततः यहा आना हुआ। मैं बन्दीगृह मे घूमा, लेकिन तुम्हारे जैसा कुरूप आकृति वाला, क्रूर प्रकृति वाला कोई कैदी नही मिला, अत. तुम्हारा ही चित्र बनाने का निश्चय किया है।" बन्दी ने कहा—"चित्रकार जी ! क्या आप उस बालक का चित्र दिखा सकते है ?" चित्रकार ने सहमा उस बालक के चित्र को उसके समक्ष रखा। चित्र देखते ही उसकी आखें आसुओ मे डब-डबा आई। वह दु ख के महासागर मे डूब गया। चेहरे पर उदासीनता झलकने लगी। चित्रकार ने पूछा—"बन्दी ! चित्र देखकर रुदन क्यो कर रहे हो ? क्या बात है ?"

बन्दी—"चित्रकारजी ! क्या कहू ? बालक का यह चित्र मेरे ही बचपन का है। कुसग के प्रभाव से मैं ऐसा बन गया। मैं पहले कैसा था और आज कैसा हू ? मेरी वह सुन्दरता और सहज-सरलता अब कहा चली गई ? मेरी वह स्वाभाविकता और सुकुमारता कैसे नष्ट हो गई ? दुनिया मुझे सत्कार की दृष्टि से देखा करती थी। मैं प्रशसा का पात्र था। आप लोगो की आखो मे मैं मानव था और आज आपकी ही आखो मे मैं दानव बन गया हू। इसलिए मेरा कलेजा फट रहा है, आखो से गर्म-गर्म पानी निकल रहा है कि ओह ! तब मैं मानव था और अब दानव हू।"

जिसको जैसा सग मिलता है, वह वैसा ही बन जाता है भले व्यक्ति की सगति से मनुष्य भला बन जाता है तथा बुरे के सग से बुरा, अत प्रत्येक व्यक्ति को सज्जनो की सत्सगति करनी चाहिए।

सग मिले जैसा जिसे, चढता वैसा रग।
मानव भी दानव बना, पाकर दुर्जन सग॥

मन की मन मे

एक सेठ था। उसके तीन पुत्र थे। तीनो ही बडे विनीत थे। लाखो रुपयो का व्यापार चलता था। सेठ ने एक नई फैशन का आलीशान भवन बनवाना शुरू किया। सारा काम सेठ की देख-रेख मे होता था। वह कल्पना के मुक्त अन्तरिक्ष

मे विहरण करने लगा कि बस, अब तो दीपमालिका तक भवन तैयार हो जाएगा। फिर अच्छा घर और अच्छी पढी-लिखी लडकिया देखकर पुत्रो का विवाह करूगा। एक पुत्र को बैरिस्टरी के लिए विलायत भेजूगा, आदि अनेको योजनाए उसके मस्तिष्क मे दौडती थी। एक दिन दूकान का काम समेटकर घर आया और सेठानी ने थाली मे खिचडी परोसी। सेठ बोला—"खिचडी काफी गर्म है, थोडी ठडी होने दो। इस बीच मे भवन देख आऊ कि आज कितना काम हुआ है।" यो कहता हुआ सेठ लम्बी डगे भरता हुआ भवन की ओर चला। कारीगर चारो तरफ काम मे लगे हुए थे। मजदूर गारा और ईंटें ढो रहे थे। सेठ को आता हुआ देखकर अपनी वफादारी दिखाने के लिए सभी कारीगर मजदूर अपना-अपना कार्य अधिक तत्परता से करने लगे। सेठ किसी को झिडकता, किसी को दुत्कारता, किसी को कहता काम तीव्रगति से करो नही तो आधे पैसे मिलेगे। ऐसे सारे भवन का निरीक्षण करता-करता द्वार पर पहुचा। बढई हाथ मे हथौडा लिए चौखटो मे कीलें ठोक रहा था।

सेठ ने खातियो को ललकारते हुए कहा—"देखो, दीपमालिका के मगल अवसर पर प्रवेश का शुभ-मुहूर्त है। समय नजदीक आ रहा है। मन्द गति से काम कैसे चल रहा है ? किवाड लगाने मे यदि इतनी देर करोगे तो मुहूर्त कैसे साधा जाएगा ?"

वे (खाती) बोले—"सेठ साहब ! आप बेफिक्र रहिए। मुहूर्त कभी भी नही टलने देंगे। कार्य तेजी से करेंगे। सुबह शीघ्र आएगे। और शाम को देरी से जाएगे।" ऐसे सब कह ही रहे थे, इतने मे एक बढई ने सेठ जी को अपनी कर्त्तव्य-परायणता दिखाने के लिए जोर-जोर से काम करना शुरू कर दिया और उसके हाथ का हथौडा अधिक तेजी से चलने लगा।

सेठ नीचे आया और अभी-अभी बने सुन्दर आगन को पुन पुन देखकर मन ही मन मे प्रफुल्लित हो रहा था। अचानक खाती के हाथ सेहथौडा छूट गया। खाती भवन की दूसरी मजिल पर बैठा-बैठा काम कर रहा था। वह हथौडा सीधा सेठ के मस्तक पर इतने वेग से गिरा कि गिरते ही उसका कपाल फट गया। रक्त की धार बह चली। मुख पर झाग आ गये और सेठ सदा के लिए ससार से विदा हो गया। जीवन के समस्त स्वप्नो पर पानी फिर गया और मन की मन मे ही रह गई। उसी समय किसी ने कहा—

छूट्यो हथौडो हाथ से, आय पड्यो कपाल।
झरोखा झूलता रह्या, बिच मे करग्यो काल॥

मनुष्य अपने जीवन मे अनेको कल्पनाए सजोता है, किन्तु कल्पनाए किसी की भी पूरी नही हो सकती। अचानक मौत आ जाती है और सब कल्पनाए, कल्पनाए

ही रह जाती हैं। अतः शुभकाम मे किसी को विलम्ब नही करना चाहिए।

स्वप्न अधूरे रह गये, श्रेष्ठी के अनपार।
नही कल्पना हो सकी, किसकी भी साकार॥

४ महात्मा शंखेश्वरदास

धोवी के घर एक गधा रहता था। जब वह रकता तब उसकी आवाज शख-ध्वनि जैसी होती थी। इसलिए धोवी ने उसका नाम 'शखेश्वरदास' रख दिया। काफी काम देता था। जिससे धोवी को वह बहुत ही अच्छा एव प्रिय लगता था। अचानक एक दिन गधा मर गया, इसलिए धोवी को बडा दु ख हुआ। चेहरे पर उदासी छा गई। हाय-हाय करने लगा और नाई को बुलाकर कहा—"भाई परम योगीराज महान् आत्मा श्री शखेश्वरदास का आज स्वर्गवास हो गया। अत. मुझे भद्र वना दो।" नाई ने उस्तरा लेकर धोवी का सिर मूड दिया। नाई अपने घर आया और सोचने लगा—धोवी भद्र बना है तो मुझे भी महात्मा जी के स्वर्गवास के उपलक्ष मे भद्र बनना चाहिए। नाई भद्र बनकर कोतवाल के घर किसी काम के लिए चला गया। कोतवाल ने पूछा—नाई! आज सिर क्यो मुडाया है? क्या बात है?"

नाई (आश्चर्य मे)—"क्या आपको अभी तक पता ही नही है?"

कोतवाल—"मुझे तो कुछ भी मालूम नही है। बताओ किसका स्वर्गवास हुआ?"

नाई—"सुप्रसिद्ध महात्मा शखेश्वर दास का आज देहावसान हो गया, अत मैं भद्र बना हू।"

कोतवाल—"क्या शखेश्वरदास कोई बडे महात्मा थे?"

नाई—"हा, बडे त्यागी तपस्वी महात्मा थे।"

कोतवाल—"तब तो अवश्य उनका शोक मनाना चाहिए। भाई! मुझे भी भद्र बना दो।"

कोतवाल सिर मुडाकर राज दरवार मे गया।

राजा ने पूछा—"कोतवाल! भद्र कैसे बना? क्या बात हुई?"

कोतवाल—"राजन्! आप नगर के स्वामी हैं। ऐसी दु खप्रद, हृदय-विदारक घटनाओ मे भी आप अज्ञात रहते हैं। परम तपस्वी महात्मा शखेश्वरदास का स्वर्गवास हो गया है इसलिए मैंने सिर मुडाया है।"

राजा ने भी नाई को बुलाकर सिर मुडा लिया और समस्त शहर मे घोषणा करवा दी—"महात्मा शखेश्वरदास के स्वर्गवास के उपलक्ष मे समस्त बाजार, स्कूले तथा सरकारी कार्यालय बन्द रखे। शाम को सात बजे राजा जी की अध्यक्षता मे एक शोक सभा मनाई जायेगी।" राजा की आज्ञा से सारे शहर मे शोक मनाया गया। लोगो मे भेडचाल होती ही है। अनेको अनुकरणप्रिय लोगो ने सिर मुडा लिया। लेकिन वास्तविक तथ्य की खोज किसी ने भी नही की। शाम को नृपति की अध्यक्षता मे शोक सभा हुई। हजारो महानुभावो ने भाग लिया। बाहर गया हुआ मन्त्री अचानक उसी सभा मे आ पहुचा। राजा आदि अनेको को भद्र देखकर मत्री सहम गया। यह क्या बात है? राजा आदि अनेको प्रतिष्ठित व्यक्ति सिर को मुडाकर कैसे बैठे है? राजा ने कहा—"मत्री! चौकने की कोई बात नही है। महात्मा शखेश्वरदास का स्वर्गवास हो गया, इसलिए हम भद्र बने है और उनकी शोक सभा मना रहे है।"

मत्री—"शखेश्वरदास कौन थे?"

राजा—"कोई महात्मा होगे।"

मत्री—"उन्होने कौन से शहर मे समाधि ली?"

राजा—"यह तो हमे पता नही। कोतवाल के कथनानुसार हमने यह सब किया है।" मत्री ने क्रमश. कोतवाल और नाई को बुलाया और उन्हे पूछा—"वह शखेश्वरदास कौन थे?" उन्होने कहा हमे पता नही, धोबी जानता है।" धोबी को बुलाकर पूछा गया। धोबी ने हाथ जोडकर कहा—मन्त्रीवर! शखेश्वरदास न कोई योगी थे और न कोई महात्मा। वह था मेरे काम आने वाला प्राणप्रिय 'गधा'। यह सुनते ही सबकी आखे खुल गई। दातो मे अगुलिया आ गई। सबके सिर नीचे झुक गये। हाय! बिना सोचे-विचारे भद्र बन गए। राजा भी पुन पुन पश्चात्ताप करने लगे। पर अब क्या था?

आज का युग भी भेडचाल की तरह आगे बढ रहा है। वास्तविक तथ्य का विचार किये बिना ही हर किसी का अनुसरण करने लग जाते है परन्तु जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे काम करते है उन्हे आखिर मे पश्चात्ताप करना पडता है।

बिना विचारे मत करो, कभी तनिक भी कार्य।
नरपति पछताता रहा, मुडित होकर आर्य॥

वचन-तीर

गाव-गाव मे नाटक करता हुआ एक नाटकिया लोभी नृप की नगरी मे आ पहुचा। राजा के बडा लोभी होने से उसका तनिक भी सत्कार नही हुआ। मन्त्री

ने कहा—"देना और मरना नृप ने तुल्य कर रखा है। अगर तुम्हारी इच्छा है तो राजमहल के नीचे नाटक भले ही करो। घोषणा मै करवा दूगा किन्तु कुछ पैदा होना नही होना तुम्हारी किस्मत पर निर्भर है।" नृप से मिलकर मन्त्री ने सारे शहर मे नाटक होने की सूचना करवा दी। हजारो लोग नाटक देखने के लिए एकत्रित हो गये। राजा भी सोने के सिंहासन पर आकर बैठ गया। नटी नाचती है। नटेश्वर बजाता है अच्छे-अच्छे खेल दिखाते-दिखाते अधिकतम रात्रि व्यतीत हो गई। उजाला होने लग गया। किसी ने भी पैसा नही निकाला क्योकि राजा के दिये बिना दूसरा पहले कौन दे सकता था? नटी हतोत्साह होकर बोली—"ओ मेरे नायक! नाचते-नाचते रात घडी भर रह गई। पिंजर थक गया है अब मेरे से नही नाचा जा सकता है।" नर बोला—

बहुत गई थोडी रही, थोडी भी अब जाय।
थोडी सी देर के कारण, ताल मे भग न थाय॥

यह जोशपूर्ण गीत सुनते ही नटी की हिम्मत दुगुनी हो गई जोर-जोर से नाचने लगी।

नट के इस अद्वितीय गीत को सुनकर तत्रस्थ ऋषि, राजकुमार, और राजकुमारी के विचार बदल गये। तीनो ही बडे खुश हुए। ऋषि ने अपनी सवा लाख मोहरो की कम्बल उतार कर नाटकिये को दान मे दे दी, राजकुमार ने अपने कुण्डल दिये और राजकुमारी ने मोतियो का हार दिया। अच्छी धनराशि एकत्रित हो गई। खेल खत्म हुआ, सब अपने-अपने घर गये। किन्तु राजा के दिल मे बडी हलचल पैदा हो गई। क्रोध का पार नही रहा। शीघ्र ही ऋषि को बुलाकर पूछा—"आपने बिना मतलब यह दान क्यो दिया?"

ऋषि बोले—"ये मेरे उपकारी है, मैं बहुत वर्षों से सयम पाल रहा था, किन्तु मन चचल हो जाने के कारण आज मैं घर जा रहा था। 'बहुत गई थोडी रही' नट की इस वाणी ने मेरा मन वापस सयम मे स्थिर हो गया इसी खुशी मे यह दान दिया है।"

नृप ने राजकुमार से यही प्रश्न किया। राजकुमार ने कहा—"पिताजी! राज्य के खातिर मेरा मन मैला हो गया था। आपका खून करने की तैयारी कर रहा था। किन्तु नट का भला हो। यह समय पर आ गया। उसका वचन-तीर 'बहुत गई थोडी रही' मेरे दिल मे चुभ गया। मुझे ज्ञान हुआ—पिताजी वृद्ध है, अब थोडे ही दिनो मे राज्य मिलने ही वाला है। फिर यह अन्याय क्यो करू? बस इसी खुशी मे कुण्डल दिये।"

नृप बोला—"पुत्र! बहुत अच्छा काम किया।" राजा का क्रोध शान्त हुआ। राजा ने फिर पुत्री से पूछा—'तूने मोती का हार क्यो दिया?'

पुत्री बोली—"मैं विवाह के योग्य हो गई। खर्च के लोभ मे आपने कुछ भी ध्यान नही दिया। तब मैंने रत्न चुराकर मन्त्री के पुत्र के साथ भागने की योजना बनाई थी। किन्तु नट की इस वाणी 'बहुत गई थोडी रही' से मेरे भाव बदल गये। मैंने सोचा, कुल को काला करना उचित नही है। पिताजी तो अब थोडे दिन के हैं। भाई पीछे से विवाह कर देगा। मन निर्मल होने के कारण मैंने मोतियो का हार दे दिया।"

यह सुनकर राजा बडा चकित हुआ। उस पर अच्छा असर ही नही पडा, किन्तु 'बहुत गई थोडी रही' इस अद्वितीय वाक्य-तीर ने नृप के हृदय को भी बीध दिया। राजा ने सारा राज्य भार छोडकर दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया।

वचन मे बहुत बडी शक्ति होती है। एक वचन ऐसा होता है जिससे गिरते हुए मानव का उत्थान हो जाता है, अत हर एक को तोल-तोल कर बोलना चाहिए।

चार जनो का वचन से, हुआ शीघ्र उत्थान।
वचन-शक्ति का विश्व मे, यह प्रत्यक्ष प्रमाण॥

दूध का दूध और पानी का पानी

एक छोटे गाव मे एक गूजरी रहती थी। उसके दो भैंस थी। वह प्रतिदिन शहर मे दूध बेचने के लिए जाती थी। एक दिन उसने सोचा—मार्ग मे तालाब तो पडता ही है यदि मैं पाच सेर दूध मे पाच सेर पानी मिला दू, तो मुझे दस सेर के पैसे मिलते रहेगे। और मेरी चालाकी को कोई पकड भी नही सकेगा। क्योकि दूध और पानी एक मेक हो जायेगे। उसने वैसा ही किया।

शहर के लोगो को गूजरी के प्रति विश्वास था कि यह बिल्कुल शुद्ध दूध लाती है, तनिक भी मिलावट नही करती है। इससे किसी ने भी ध्यान नही दिया। गूजरी का काम बनता रहा उसको अपनी निपुणता पर अपूर्व गर्व था कि ससार मे मेरी जैसी होशियार महिला कोई नही है। मैं बडे-बडे आदमियो की आखो मे धूल झोकने वाली हू।

चाहे कोई कितनी ही कपटाई करे, किन्तु एक दिन उसका भण्डाफोड हुए बिना नही रहता। पाप का घडा अवश्य फूटता है। 'सौ सुनार की एक लुहार की' भी चरितार्थ होकर रहती है। महीना समाप्त होते ही गूजरी ने दूध का सारा

हिसाब किया। जितने भी रुपये इकट्ठे हुए उन सबको कपड़े में बांध टोकरी में रख अपने गाँव की ओर प्रस्थान किया। दुगुनी कमाई को देख गूजरी मन ही मन में फूल रही थी और भविष्य में भी ऐसा क्रम चालू रखने की सोच रही थी। मार्ग में वही तालाब आया। टोकरी को एक वृक्ष के नीचे रख गूजरी पानी पीने के लिए तालाब में गई।

अचानक एक बन्दर आया। उसने रुपयों की थैली को खाद्य वस्तु समझ कर उठा लिया और वृक्ष के ऊपर जाकर बैठ गया। गूजरी वापस आई। रुपयों की थैली न दिखने के कारण अवाक् रह गई। चेहरे पर उदासी छा गई। इधर-उधर अन्वेषण करने पर उसकी नजर बंदर पर जा पड़ी। करुण आक्रन्दनपूर्वक जोर-जोर से वह पुकारने लगी—"अरे बन्दर भाई! यह थैली तेरे क्या काम आयेगी? इसमें तनिक भी खाद्य वस्तु नहीं है मुझ पर कृपा कर। मैं तेरा उपकार भी नहीं भूलूंगी। मेरी थैली मुझे मिल जानी चाहिए।"

बंदर स्वभावतः चंचल होता ही है। उसने अपने नाखूनों से थैली को फाड़ा और क्रमशः एक रुपया टोकरी में और एक तालाब में डालना प्रारम्भ कर दिया। रुपया ज्योंही पानी में गिरता त्योंही गूजरी का कलेजा कराह उठता। वह हाय-हाय करती पर उपाय क्या? आखिर आधे रुपये टोकरी में आये और आधे तालाब (पानी में) चले गये। इतने में एक कवि वहां पर आ गया। उसने पूछा—बहिन! रोती क्यों हो?"

गूजरी ने कहा—"अरे भाई! इस दुष्ट बन्दर ने मेरे आधे रुपये पानी में डाल दिये। इसी दुःख में विह्वल हो रही हूं।"

कवि बड़ा अनुभवी था। उसने कहा—"बहिन! तूने कभी दूध में पानी तो नहीं मिलाया? सच-सच बोल।" गूजरी—"मैंने अधिक तो नहीं मिलाया? किन्तु पांच सेर दूध में पांच सेर पानी अवश्य मिलाया था।" कवि—"तो फिर दुःख क्यों कर रही है? बन्दर ने यथोचित न्याय कर दिया। 'दूध का दूध, पानी का पानी' दूध के पैसे तुझे मिल गये और पानी के पैसे तालाब को मिल गये। जानती हो भगवान् के घर देर है, अन्धेर नहीं।" गूजरी हाथ मलती हुई अपने घर को चल पड़ी।

कई व्यक्ति अनैतिक कृत्यों द्वारा अर्थार्जन करते हैं। एक बार तो वे अवश्य प्रसन्न होते हैं किन्तु आखिर दूध का दूध पानी का पानी होकर ही रहता है। अतः हर क्षेत्र में नैतिकता का व्यवहार होना चाहिए।

अर्थार्जन करते कई, कर कर बड़े अनर्थ।
टिक नहीं पाता अर्थ वह, जाता सारा व्यर्थ॥

मै ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हूं

राजा भोज के राज्य मे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसकी माता, उसकी पत्नी और वह स्वय, घर मे तीन ही सदस्य थे, किन्तु जीवन का पालन-पोषण बडी मुश्किल से हो पाता था। सतोषी होने के साथ-साथ वह बडा स्वाभिमानी था। अधिक दैन्य दिखाना उसको अभीष्ट नही था। एक दिन की बात है उसको भिक्षा नही मिली, नगर मे पर्यटन करता-करता वह थक गया। आखिर अपने घर पहुचा। पत्नी ने पूछा—"आज रिक्त हाथ कैसे आ गये ?"

ब्राह्मण—"काफी यत्न किया, किन्तु कोई भी दाता नही मिला"

पत्नी—"तो आज उदर पूर्ति कैसे होगी ?"

ब्राह्मण—"क्या एक दिन का भोजन शेष नही है ? मैं तो रोजाना लाकर देता हू। क्या तू एक दिन का भी नही रखती ?"

पत्नी—"पतिदेव ! आप अधिक भोजन सामग्री लाते ही नही है प्रतिदिन कूंआ खोदना और प्रतिदिन पानी पीना, जहा यह हालत आपकी हो रही है, वहा फिर मैं कहा से लाऊ ?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसको क्रोध आ गया। इधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। परस्पर तनाव बढा गाली-गलौज होने लगा, मारपीट की नौबत आ गई। ब्राह्मण ब्राह्मणी को जोर-जोर से पीटने लगा उसके सिर से खून झरने लगा।

ब्राह्मणी चिल्लाई—"अरे कोई दौडो रे अरे कोई दौडो रे, मुझे मार रहे हैं।" इतने मे पुलिस वाले आ गये और ब्राह्मण को गिरफ्तार करके ले गये। राजसभा मे राजा के सामने उसको हाजिर किया गया। राजा भोज ने ब्राह्मण के विषय मे पूछा—"यह कौन है ? इसने क्या अपराध किया है ?"

आरक्षको ने कहा—"राजन् ! यह ब्राह्मण है। इसने अपनी पत्नी को इतना पीटा है कि उसके सिर से खून बह रहा है और इसकी स्त्री कहती थी कि यह ब्राह्मण खाद्य सामग्री तो लाकर देता नही है पर खाने को मागता है। राजन् ! क्षुधातुर इस ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को घायल कर दिया।"

राजा ने पूछा—" अरे विप्र ! क्या यह सच्ची बात है ?"

ब्राह्मण—"महाराज ! और सब बात सत्य है पर एक बात गलत है। ये लोग मुझे ब्राह्मण बता रहे हैं, किन्तु मैं ब्राह्मण नही, चाण्डाल हू। राजन् ! जिसमे सत्य, सतोष, धैर्य आदि सद्गुण होते हैं, वही ब्राह्मण कहलाता है। मेरे मे इन सब गुणो का अभाव है। राजन् ! किसी का दोष नही है, दोष मेरा है।"

राजा—"विप्र ! तुम चाहे चाण्डाल हो चाहे ब्राह्मण हो, किन्तु स्त्री को किस लिए पीटा ?"

ब्राह्मण—"महाराज! उदरपूर्ति के अभाव मे मारपीट की नौबत आ गई। हम घर मे तीन सदस्य है—मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी। किन्तु धनाभाव मे बडे दुखित हैं।"

राजा ने सोचा—ऐसा आत्मद्रष्टा एव निज की भूल बताने वाला व्यक्ति ससार मे कोई-कोई होता है। उसकी सहज सरलता पर राजा का हृदय पिघल गया। उसी समय राजा ने भण्डारी को आदेश देते हुए कहा—

"इस ब्राह्मण को एक हजार मोहरे दे दो।"

मोहरो की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर आया। घर मे सास और बहू मे परस्पर लडाई हो रही थी। अचानक ब्राह्मण ने घर मे प्रवेश किया। थैली खोली—चमकती हुई मोहरे देखकर सास-बहू दोनो के आश्चर्य का पार न रहा। मुखाकृति कमल की भाति खिल उठी। घर मे शान्ति की लहर दौड गई।

हर एक को आत्मद्रष्टा बनना चाहिए। आत्मनिरीक्षणता का दूसरो पर बहुत प्रभाव पडता है। आत्म आलोचना ही विकास की पहली मजिल है।

आत्मालोचक मनुज ही, जग मे सच्चा विप्र।
इन्द्रिय निग्रह कर वरो, शिव लक्ष्मी को क्षिप्र॥

संपत्ति और विपत्ति

राजा भोज सभा मे बैठा था। अनेको सभासदो मे सभा सुशोभित हो रही थी। उस समय एक पण्डित आया। पहरेदार ने उसको रोक लिया। पडित ने कहा—भाई! मैं राजा भोज से मिलना चाहता हू।

पहरेदार—"अभी नही मिल सकते हो, राजा जी कुछ कार्य मे व्यस्त है।"

पण्डित—"भाई! आज नही मिलने दोगे तो कल मिलूगा कल नही तो दो दिन बाद मिलूगा, किन्तु राजा जी को यह मालूम हो जाना चाहिए कि आपका भाई द्वार पर खडा है। अगर वे अपना भाई बतलाए और मिलन के लिए आदेश फरमाए तब तो सभा मे जाने देगे।"

पहरेदार सभा मे पहुचा हाथ जोडकर नम्र शब्दो मे राजा को निवेदन करते हुए उसने कहा—'महाराज! द्वार पर एक आदमी खडा है और कहता है कि वह आपका भाई है अत आपसे मिलना चाहता है। फरमाइए, क्या आदेश है?"

राजा भोज के मस्तिष्क मे कुछ चिन्तन चला। कुछ ही समय के पश्चात्

राजा ने कहा—"पहरेदार ! मेरे एक भाई है तो सही। सम्भवत वही आया होगा। उसको रोको मत आने दो।"

द्वारपाल वापस लौटा और उससे कहा—"विद्वद्वर ! आप सभा मे पधारिए। आपके लिए कोई रोक-थाम नही है।"

पडित राज-सभा मे पहुचा। राजा ने खडे होकर उसका स्वागत किया। सभासदो को उठना पडा। सब अवाक् रह गये, सोचने लगे। यह कौन आ गया ?

राजा ने अपने साथ सिंहासन पर बैठाकर प्रश्न किया—'क्या मौसीजी सकुशल है ?"

पडित—"हा, अब तक तो सकुशल थी, किन्तु आपके दर्शन होते ही वह मर गई है।" राजा—"जीना-मरना तो प्रकृति का नियम है। किन्तु उसका दाह-सस्कार अच्छी तरह करना।"

पडित—"मैं मेरी स्थिति के अनुसार करूगा। मेरे पास और कुछ नही है, केवल एक धोती पहिने हुए हू। इसका आधा फाडकर उसके शव पर डाल दूगा।"

उसी वक्त भण्डारी को बुलाकर राजा ने कहा—"मेरी मौसी का अन्तिम सस्कार करना है इसलिए मरे नाम लिखकर इसे एक हजार मोहरे दे दो।"

पण्डित मोहरे लेकर अपने घर गया। थाडी देर बाद एक सभासद ने साहस कर राजा से पूछा—"आपका यह भाई कहा रहता है ? अभी कौन सी मौसी की बात हो रही थी ? इस भाई को तो पहले कभी नही देखा था।"

राजा—"वह केवल मेरा भाई नही है, आप लोगो का भी भाई है, तनिक गहराई से चिन्तन करो। आप लोग मुझे सम्पत्ति का पुत्र मानते है। सपत्ति की छोटी बहन का नाम विपत्ति है। अभी जो आया था वह विपत्ति का पुत्र था। उसकी आकृति से यह आभास होता ही था कि वह कितने गरीब घर का था। मै सम्पत्ति का पुत्र और वह विपत्ति का। इस अपेक्षा से वह मेरा भाई हो गया।"

सभासद ने फिर पूछा—"राजन ! 'आपके दर्शन होते ही मौसीजी मर गई' इस वाक्य का क्या रहस्य है ?"

राजा—"मेरे दर्शन से ब्राह्मण को विपत्ति दूर हो गई अर्थात् मेरी मौसी मर गई।"

यह गूढार्थ सुनकर सभी सभासदो के हृदय मे आश्चर्य का पार नही रहा और वे मुक्त-कठ से राजा भोज की प्रशसा करने लगे—"यह है राजा भोज की विवेकशीलता और उदारता। राजा भोज ही ऐसा है जो कि सपत्ति मे फूलता

नही है और विपत्ति मे घबराता नही है। सपत्ति और विपत्ति दोनो को बहिन मानता है और अपने भाई को सिहासन पर बैठाता है।"

सपत्ति को देखकर फूलना नही चाहिए और विपत्ति को देखकर घबराना नही चाहिए। सपत्ति विपत्ति मे समभाव अर्थात् दोनो को अपनी बहिन समझने वाला ही महापुरुषो की कोटि मे आता है।

सपत्ति और विपत्ति मे, रहना एक समान।
न्यायी भोज नरेश का, याद करो आख्यान ॥

सन्तोषी सदा सुखी

एक किसान था। उसके पैदावार अच्छी होती थी। फसल का समय होने के कारण रात्रि मे वह घर नही जाता था। खेत मे ही मचान पर सोया करता था। एक दिन चार चोर शहर मे चोरी करके माल का बटवारा करने के लिए वहा आ पहुचे। चोरो की आवाज से किसान की आखे खुल गयी। उसने मचान पर लेटे हुए ही जोर से शख बजाया। चारो चोरो ने सोचा—पुलिस वाले घोडे पर सवार होकर आ रहे है। चारो ही भयभीत होकर धडा-धड भाग गए और धन को वही छोड गए।

कुछ ही देर बाद किसान उठा। सोने के आभूषणो को देखकर मयूर की तरह नाचने लगा। हृदय मे खुशी का पार नही रहा पुन-पुन अपनी किस्मत की सराहना करने लगा। स्त्री बोली—"पतिदेव! इस धन को यहा पर रखना ठीक नही घर ले चलो, वहा सुरक्षित रहेगा।"

किसान बोला—"जहा मैं रहूगा, वही सोना भी रहेगा।" उसने सारा सोना मचान के नीचे गाड दिया।

दो तीन महीने बाद वे ही चोर चोरी करके उसी खेत मे आए और बटवारा करने लगे। किसान मचान पर सोया हुआ था। आँखे खुलते ही उसने सोचा—"इस बार शख और जोर से बजाऊगा तो धन पहले से भी दुगुना हो जाएगा। लोभाकुल होकर उसने जोर-जोर से शख बजाना प्रारम्भ कर दिया। चोरो ने सोचा—पुलिस वाले है अथवा कोई और शख बजा रहा है। चारो ही उठकर इधर-उधर देखने लगे। किसान पर नजर पडी कि चारो ही उसपर टूट पडे। हाथो, लातो और घूसो से उसको खूब पीटा। किसान विलाप करता हुआ बोला—'कृपा करके मुझे मारना मत, मैं आपकी गरीब गाय हू।"

चोर बोले—"पहले वाला धन कहा छुपाया है ? सच-सच बतलाओ अन्यथा मारे बिना नही छोडेगे।"

किसान को सारा धन बतलाना पडा। चोर सारा धन लेकर दौड गए।

किसान मन ही मन दु ख करने लगा—हाय ! धन गया सो गया व्याज मे मार खानी पडी। यदि उसी धन पर सन्तोष कर लेता तो आज मुझे मार क्यो खानी पडती ?

मन की असतोष वृत्ति ही दु ख का कारण बनती है और सतोष वृत्ति सुख का कारण। वास्तव मे 'सतोषी सदा सुखी' उक्ति को अपना लेता तो रोना क्यो पडता ? अति लोभ किसी भी स्थिति मे सुखद नही होता। अन्ततोगत्वा वह दु ख का ही कारण बनता है। सतोषामृत से जिसकी आत्मा तृप्त होती है, वही व्यक्ति सुख का आस्वादन कर सकता है।

स्वल्प लोभ के योग से, दु:खी बना कृषिकार।
सतोषी होता सुखी, कहते जग करतार॥

मैने देख लिया

सेठ बलिराम का लडका विजयकुमार बुरी सगति से काफी बिगड गया था। सातो ही दुर्व्यसनो का वह गुलाम बन चुका था। इससे सेठजी काफी दु खी थे। समय-समय पर शिक्षा भी देते थे, किन्तु उसका कुछ भी असर नही होता था। एक दिन उस नगर मे मुनिजनो का आगमन हुआ। हजारो मानव दर्शनार्थ तथा उनकी अमृतमयी वाणी सुनने के लिए गये। सेठ ने अपने प्रिय पुत्र से कहा, "विजय ! चलो महाराज का व्याख्यान सुने।"

विजय—"पिताजी ! आप ही पधारें, अभी मुझे समय नही है।"

सेठ—"पुत्र ! आज जो मुनिजी पधारे है, वे बडे विद्वान हैं, ज्योतिष शास्त्र के भी ज्ञाता है, बहुत अच्छी-अच्छी शिक्षा फरमाते है, जरूर चलो।"

पिता के अत्याग्रह से बिना मन विजय मुनिजी के व्याख्यान मे गया और सबके पीछे जाकर बैठ गया। सेठ ने अपने पुत्र के बारे मे मुनिजी को पहले ही सकेत कर रखा था। व्याख्यान के पश्चात् मुनिजी ने विजय से पूछा—"भाई ! व्याख्यान मे क्या-क्या बातें आई ?"

विजय ने कहा—"मुनिजी ! व्याख्यान मे मेरा ध्यान ही नही था। मै तो अपने ही विचारो मे मग्न था।" मुनिजी पहुचे हुए सन्त थे। जिस विषय मे रुचि

थी, उसी विषय पर बातचीत प्रारम्भ कर दी। मुनिजी की [illegible] का उस पर अच्छा प्रभाव पड़ा। चरणों में सिर झुक गया। हाथ जोड़कर बोला—"आपके [illegible] से मैं प्रभावित हूं।" मुनिजी ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"जीवन में नियम की बहुत आवश्यकता है।" विजय ने कहा—"मुनिवर! अधिक नियम तो मैं ले नहीं सकता, किन्तु एक नियम आप अवश्य दिलाइए।" मुनि ने कहा—'सन्तों के दर्शन किये बिना कुछ नहीं खाना' यह नियम ले लो क्योंकि प्रात उठते ही सबसे पहले त्यागी मुनियों के दर्शन करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं।"

विजय बोला—"मुनिवर! सन्त तो बहुत दूर रहते हैं किन्तु मेरे पड़ोस में एक कुम्हार है, उसके दर्शन किये बिना कुछ भी नहीं खाऊंगा। बस यह नियम करा दीजिए।" मुनि जी ने सोचा—नियम लेने के प्रति भावना तो जागृत हुई है। इस भावना को नहीं ठुकराना चाहिए। अत उसे वही नियम दिला दिया।

विजय घर गया। कुछ दिनों तक तो उस नियम को पालता रहा। एक दिन [illegible] कुम्हार मिट्टी खोदने के लिए सुबह जल्दी ही चला गया था। विजय [illegible]। वह [illegible] गांव के बाहर पहुंचा। इधर कुम्हार को [illegible] एक स्वर्णकलश मिला। वह सोच ही रहा था कि [illegible] गया जमीन का धन राजा को देना पड़ेगा। इतने में [illegible] वापस लौटने लगा। कुम्हार ने उसे देख [illegible]—"भाई! ठहर जा, ठहर जा।"

कुम्हार घबराया और दौड़ा-दौड़ा आया उसके चरणों में गिरकर बोला—"[illegible]। राजा को मत कहना।" विजय तो [illegible]। वह होशियार तो था ही, उसने सारी बात सुनी, आखिर [illegible] घर पहुंचा और दौड़ा-दौड़ा मुनि जी के स्थान पर [illegible] बोला—"मुनिवर! मैं आपके उपकार से कभी [illegible]। आपने मुझे छोटा-सा जो एक नियम दिलाया था, उससे [illegible]। अब तो [illegible] सभी नियम लेने को तैयार हूं।" [illegible] अणुव्रत के सभी नियम [illegible] करने लग गया।

[illegible] नियम से विजयकुमार का जीवन बहुत ही उज्ज्वल एवं सुखी [illegible], [illegible] के लिए नियम [illegible] है।

नियम [illegible] से विजय के, [illegible] दूर।
'मुनि [illegible]' नियम से, [illegible] ॥

कष्टों में भी धैर्य

वनारस के एक श्रीमन्त ब्राह्मण का लडका राजेन्द्र तक्षशिला मे विद्याध्ययन करने के लिए गया। कई वर्षों बाद जब वह तक्षशिला से पढकर घर पहुचा तो उसे पता लगा कि पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। उसने सोचा—जब मेरे पिताजी भी अपने सारे धन को छोडकर ससार से विदा हो गए हैं, तो फिर मैं भी धन राशि को साथ कैसे ले जाऊगा? ऐसा सोच उसने धन का परित्याग कर दिया और वह एक वैरागी महात्मा बन गया। ग्रामानुग्राम परिभ्रमण करता हुआ वह एक ऐसे गाव मे पहुचा, जहा का राजा विलासी और अधर्मी था। लेकिन राजा का प्रधानमन्त्री बड़ा धार्मिक था। वह चाहता था कि राजा को किसी महात्मा का योग मिल जाय तो इसका कुछ न कुछ सुधार हो जाय। मत्री ने उस साधु को जाते हुए देखा तो उसने राजा के बगीचे मे ठहरने का निवेदन किया। महात्मा जी उस बगीचे मे ठहर गए और अपनी दिनचर्या करने लगे। एक दिन राजा अपनी रानियो को लेकर उस बगीचे मे आया और हसी मजाक करता हुआ एक स्थान पर बैठ गया। वृक्षो की शीतल और सुगन्धित वायु से नीद आ गई। रानिया उठ कर इधर-उधर फिरने लगी। अचानक उन सबकी दृष्टि उस साधु पर जा पडी। रानिया राजा से कुछ समझदार थी। वे योगी के पास गयी और बोली—"महाराज! हमे कुछ धर्म की बात बताओ।" रनियो की विनम्र प्रार्थना पर साधु ने कुछ धार्मिक उपदेश देना शुरू किया।

महात्मा जी की आवाज राजा के कानो मे पडते ही राजा की आखे खुल गयी। उसने सोचा—यह कौन दुष्ट पुरुष है, जो मेरी रानियो के साथ मीठी-मीठी बातें कर रहा है? राजा क्रुद्ध होकर साधु के पास आया और बोला—"तेरा धर्म क्या है?" साधु ने कहा—"राजन्! मेरा धर्म क्षमा और प्रेम है।" राजा ने पुन उसकी नाक कटवा दी और फिर पूछा—"बोल तेरा शास्त्र क्या है?"

साधु ने कहा—"मेरा शास्त्र है अहिंसा और मैत्री।" राजा ने उसके पाव भी कटवा डाले और पूछा—"बोल, तेरा शास्त्र क्या है?" साधु ने शान्ति से उत्तर दिया कि मेरा शास्त्र अहिंसा और मैत्री है। मनुष्य जब किसी पर क्रोध करता है और सामने वाला उसे हजम करता हुआ क्षमा रखता है तो आखिर मे क्रोधी को परास्त होना ही पडता। राजा भी आखिर महात्मा की क्षमा के आगे हैरान हो गया और उसके एक लात मार कर चल दिया। इस हृदय विदारक घटना को देख रानिया बडी दुखित हुईं—हाय! हमारे निमित्त से महात्मा जी को कितना कष्ट सहन करना पडा। मन्त्री को पता लगते ही वह दौडा-दौडा आया और माहात्मा जी से क्षमा याचना करने लगा। महात्मा जी अन्तिम श्वास ले रहे

है। महात्मा जी ने कहा—'मन्त्री! घबराओ मत। तन नश्वर है एक दिन तो जाना ही था। आज नहीं तो कल जाता। यह शरीर मेरा नहीं है, मेरे ज्ञान दर्शन आदि शाश्वत गुण हैं। अन्त में महात्मा जी के मुख से ये शब्द निकले—'चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।' अर्थात् शरीर को छोड़ दो, पर धर्मशासन को मत छोड़ो। शत्रु से भी मित्रता का व्यवहार करो। कष्टों में भी धैर्य रखो तुम्हारी विजय होगी।

'क्षमा खड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति' अर्थात् जिस के हाथ में क्षमा रूपी खड्ग है उसका बिगाड़ दुर्जन भी नहीं कर सकता। समय पर क्षमा वही रख सकता है जिसमें आत्मिक शक्ति का प्राबल्य हो। कष्टों में भी क्षमाधर्म को नहीं छोड़ना, आत्म-विजयी के लक्षण हैं।

क्षमा धर्म को नहीं तजे, कष्टों में भी वीर।
आत्म-जयी बनकर वही, पाते भव जल तीर॥

यह तो मैं ही जानती हूँ

[illegible] ने राजकुमार से कहा—"पतिदेव! मैं नाग के साथ [illegible]। [illegible] आग हो जाऊंगा।"

[illegible] कहा—"आज [illegible] युग में अलग [illegible] है। [illegible] हो जाती है। [illegible]।"

[illegible]—[illegible] नहीं है। यह बात-बात पर [illegible] है। [illegible] नहीं होता था [illegible] युग में मैं भी [illegible]

[illegible]—[illegible] है प्रकृति से [illegible]। [illegible] प्रकृति [illegible]। सब काम अच्छा होगा। अलग [illegible] है।'

[illegible]—[illegible] मैं [illegible] नहीं। आप किसी भी प्रकार की [illegible]। [illegible] मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है।'

[illegible] होते हुए भी [illegible] से अलग होना पड़ा। [illegible] हो गया। उसने [illegible] नहीं। [illegible] हो गए।

रामकुमार ने दर्शना से कहा—"पापड बना लेना।"

दर्शना दौडी-दौडी सास के पास आई और नम्र भाव से बोली—सास जी ! पापड किसके बनाए जाते हैं।"

सास—"मोठ या मूग के प्राय पापड बनते हैं।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हू। फिर क्या करना पडता है ?"

सास—"उसकी दाल बनाकर उसे धोकर फिर उसका आटा बनाया जाता है।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हू। यो कहकर वह अपने घर गई और सब सामग्री जुटाकर फिर सास से पूछा—आगे क्या करना पडता हैं ?"

सास—"उस आटे को सज्जी के पानी मे मिलकर गूदना। फिर उसके लोये बनाना।"

बहू—"यह तो मै ही जानती हू। फिर क्या करना पडता है ?"

सास—"चकले वेलन से बटकर पापडो को सुखा देना। थोडे गीले रहने पर उन सबको इकट्ठे करके एक कोठी मे रख देना।

बहू—"यह तो मैं ही जानती हू।" यो ठहाका मारकर वह घर गई और उसने सारा काम वैसे ही किया फिर दौडी दौडी आकर बोली—"सास जी ! अब क्या करना है ?" सास गुस्से मे आकर बोली—"अब उस कोठी मे पाच सेर पानी डाल देना।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हू" वह घर गई और उसमे पानी डालते ही वापस आटा हो गया।

रामकुमार जब दुकान से घर आया तब उसको इस घटना चक्र का सही तथ्य मालूम होते ही वह कडक कर बोला—"दर्शना ! मैंने पहले ही कहा था कि अलग होने मे लाभ नही है। बन गये पापड ?"

दर्शना की अक्ल ठिकाने आ गई और सास के साथ आनन्द से रहने लग गई। जो सुख-सुविधाए एकता मे निहित है, अलगाव मे नही हैं, अत हर एक को एकता की छाया मे निवास करना चाहिए।

अमिट शक्ति है सघ मे, रखो प्रेम व्यवहार।
हाथी को भी बाधते, मिलकर कच्चे तार॥

विश्व का स्वामी

एक दिन एक सम्पत्तिशाली सम्राट अनेक नगरो पर विजय प्राप्त करके बडे ठाठ बाट से अपने शहर मे प्रवेश कर रहा था। हजारो व्यक्ति नृप की चरण-धूलि

का स्पर्श करते हुए जय-विजय के घोपो से आकाश-पाताल एक कर रहे थे। मार्ग मे राजा की दृष्टि एक त्यागी फकीर पर जा पहुची। पर उसने न तो राजा को नमस्कार किया और न ही राजा को आदर सम्मान किया।

राजा आश्चर्य के सागर मे डूबने लगा—अरे—यह फकीर मेरे आगे भी नत-मस्तक नही हो रहा है। सैनिको को आदेश मिला—"उसको बुलाकर लाओ।" पर वह फकीर कहा आने वाला था। उसने ओज भरी वाणी मे कहा—"सैनिको! मैं उस स्वार्थी और नीच पुरुप के निकट जाना नही चाहता? यदि उसे मिलने की अभिलाषा हो तो यहा आ सकता है।"

आखिर वह महीपति उस फकीर के पास पहुचा। नेत्रो को लाल बनाकर समुद्र की भाति गर्जन करता हुआ राजा वोला—"रे फकीर! तू बहुत अभिमानी है। तूने न तो मुझे नमस्कार किया और न आदर सत्कार ही दिया। क्या तू मुझसे वडा है? क्या तूने अपने आपको मुझसे भी अधिक सम्पत्ति शाली और वलवान समझ रखा है?"

शान्त रस का आस्वादन करते हुए फकीर ने कहा—"राजन्! तूने जो कहा वह अक्षरश सत्य है। मैं तुझसे वडा हू। अधिक सम्पत्तिशाली हू। तू तो एक देश का स्वामी है, मैं सारे विश्व का स्वामी हू।"

उपहास करता हुआ राजा वोला—"अरे भिक्षुक! क्यो वृथा वितण्डावाद कर रहा है? क्यो अहकार के शिखर पर चढ रहा है? वोल, तू कैसे विश्व का स्वामी है?"

भिक्षु ने मुस्कराकर कहा—"राजन्! इतना क्रोध क्यो कर रहे हो? तनिक शान्त चित्त से सुनो—मेरे पास सोना चादी, जवाहरात आदि कुछ भी वैभव नही है क्योकि मैं उन सवको धूल के समान समझता हू। मैं ससार से पूर्णतया विरक्त हू मेरा खजाना त्याग और चारित्र-रूपी अमूल्य सम्पत्ति से भरा हुआ है, अत मैं सम्पत्तिशाली हू। मैं तेरी तरह इन्द्रियो का गुलाम नही हू। मैंने मेरी इन्द्रियो तथा मन पर नियत्रण करना सीखा है। मैं किसी का भी दास नहीं हू। जिसने मन को जीता उसने जग को जीता, इसी सत्योक्ति की अपेक्षा मैं विश्व का स्वामी हू।"

यह सुनते ही राजा का गर्व समाप्त हो गया। लज्जावश उसका उत्तमाग झुक गया। योगी के चरणो का स्पर्श करता हुआ वोला—"योगीराज! आप वडे हैं। मैं छोटा हू। आप सपत्तिशाली हैं, मैं भिखारी हू। वस्तुत. आप ही विश्व के अधिनायक हैं। आपने मुझे वहुत ही अच्छा ज्ञान दिया। कोटि-कोटि अभिनन्दन।"

धन सम्पत्ति से कोई वडा नही वन सकता। वडा वही है जिसके पास सयम,

त्याग एव तप रूपी वैभव है, अतः हर एक व्यक्ति को सयम के सन्मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए।

मनोविजेता विश्व मे, है सच्चा वलवान्।
सयम धन सयुक्त नर, वास्तव मे धनवान॥

काम-भोग को धिक्कार

भर्तृहरि एक न्यायप्रिय राजा थे। उनकी प्रतिष्ठा सुनकर एक दिन एक योगी आया और बोला—"राजन्! यह 'अमर फल' आप खा लीजिए। जिससे आपको कभी भी बुढापा नही सताएगा। सदा ही युवा रहेगे, जिससे राज्य की प्रतिपालना करने मे आपको किसी भी तरह की कठिनाई का सामना नही करना पडेगा। आप जैसे नीतिज्ञ नृप मिलने मुश्किल हैं।"

आखिर राजा को वह 'अमरफल' देकर योगी चला गया।

राजा ने सोचा—यह 'अमरफल' मै न खाकर मेरे प्राणप्रिया महारानी को दे दू, जिससे वह वृद्धा न वने। राजा गया और रानी को वह फल देते हुए बोला—"इस फल को खाने से तू कभी वृद्धा न वनेगी।

महारानी ने सोचा—यह 'अमरफल' मै न खाकर मेरे प्राण वल्लभ महावत (हाथी को चलाने वाला) को दूगी। उसने वैसा ही किया। महावत को देती हुई महारानी बोली—"प्राणेश्वर! यह 'अमरफल' है इसे आप खा लेना, इसके प्रभाव से आप कभी भी वृद्ध नही बनेगे और मेरी मनोकामना पूर्ण होती रहेगी।"

महावत वेश्या से लगा हुआ था। वह उसको सर्वेसर्वा समझता था। दौडा-दौडा वहा गया और बोला—"प्रिये! इस 'अमरफल' को खा लेना, जिससे तू कभी भी वृद्धात्व को प्राप्त नही होगी और मेरी मनोभावना पूर्ण करती रहेगी।"

वेश्या ज्योही उस फल को खाने के लिए उद्यत हुई त्योही उसके मन मे सद् विचारो का आविर्भाव हुआ—हाय! मेरे खाने मे क्या लाभ है? प्रत्युत व्यभिचार वढेगा। यह फल यदि राजा के पास पहुचाया जाय तो अच्छा है क्योकि वे खाएगे तो कभी भी बुढापे मे ग्रस्त नही होंगे जिससे वे अनेको वर्षो तक प्रजा का पालन भी अच्छी तरह करते रहेंगे, जनता का भी भला होगा 'अमरफल' भी सार्थक हो जाएगा।

वेश्या राजा के पास पहुची और वह फल देती हुई वोली—"नाथ! यह 'अमरफल' है। इसके खाने से आप कभी भी वृद्ध नही वनेंगे।"

राजा ने फल को पहचान लिया। तलवार लेकर शीघ्र महलो मे पहुचा और

रानी से पूछा—बोल वह फल कहा है ? यदि झूठ बोलेगी तो इस तलवार मे तेरा गला काट दूगा ? रानी घबराती हुई बोली "हाय ! मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी मैंने महावत को दे दिया।"

नृप ने महावत से पूछा, तो उसने कहा—मैंने वह फल वेश्या को दे दिया। ऐसे ससार के स्वरूप को देखकर उसी समय राजा बोला—

या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जन स जनोन्यसक्त ।
अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिदन्या
धिक् ता च त च मदनं च इमा च मा च ॥

"मैं जिस रानी को अपनी समझता था वह मेरे से विरक्त होकर अन्यजन की इच्छा करती है, फिर वह भी अन्य मे आसक्त है। धिक्कार है उस रानी को, महावत को, वेश्या को, इस काम-भोग को।"

उसी समय राजा भर्तृहरि ने सन्यास ले लिया।

कामदेव की अद्वितीय विडम्बना से सारा ससार पराभूत है। इसके आगे परम विश्वासी का भी विश्वास विलय हो जाता है, किन्तु महान वही है जो भर्तृहरि की भाति ससार से विरक्त होकर सन्यास अवस्था मे रमण करने लग जाता है।

नही किसी का भी तनिक, दुनिया मे विश्वास।
भर्तृहरि के हो गया, दिल मे दिव्य प्रकाश॥

नकटापन्थ

✓ ×

एक गाव मे एक नकटा रहता था। लोग उसे देखकर हसते थे। उसके साथ मखौल भी किया करते थे। उसे चिढाने के लिये तरह-तरह के शब्दो का प्रयोग भी करते थे। "नकटा जीवै बुरे हवाल।" वच्चो के लिए तो वह खिलौना था। जव वह वाजार से गुजरता था तो वच्चो की टोली पीछे हो जाती। एक दिन उस नकटे ने सोचा—गाव मे मैं अकेला ही नकटा हू इसलिए लोग मुझे चिढाते हैं। यदि दस-वीस मेरे साथी हो जाए तो बिना मतलव चिढाना, मखौल करना सव वन्द हो जाएगा। इसलिए कुछ न कुछ प्रयास करना चाहिए लोगो को नकटा वनाने के लिए वह वाजारो मे कहता फिरता था। "मुझे आसमान की परिया नजर आती हैं।"

"कई लोग उसके पीछे पड गये, और कहने लगा—"हमे भी परिया दिखाओ।"

नकटा वोला—"एक साथ मे पाच आदमी देख सकते हैं। दिन को नही, रात को वारह वजे, शहर मे नही समुद्र के किनारे पर।"

पाच आदमियो को साथ लेकर वह नकटा सागर के तट पर जा पहुचा। पाचो ने कहा—"परिया दिखाओ।"

नकटे ने कहा—"पहले मुझे परियो के साथ नाचने दो।"

उन्होंने कहा—"परिया हैं कहा ? हमे तो दिखती ही नही।"

नकटा जरा हसकर वोला—"आख्या आगे नाक, सूझै काई खाक" तुम्हारी आखो के सामने नाक आया हुआ है परिया दिखेगी कैसे ? यदि तुमको परियो के दर्शन करने हैं तो यह लो चाकू नाक काट लो।"

पाचो महानुभाव उसकी चालाकी को समझ नही सके। उसके माया के जाल मे फसकर नाक काटकर पाचो नकटे वन गये। फिर भी परिया नजर नही आई। तव वे वोले—अरे मूर्ख ! परिया तो दिखती ही नही है।

नकटा वोला—"मूर्ख मैं हू या तुम हो, परिया पडी कहा है ? विना सोचे-समझे नकटे वन गये। मैंने तो अपना पथ वढाने के लिए यह उपाय सोचा था।"

पाचो के मुख पर कालिमा छा गई। उसको ललकारते हुए वे वोले— वेवकूफ ! तेरे जैसा ढोगी व कपटी इस दुनिया मे कोई नही है। यो कहकर उस नकटे को जोर-जोर से पीटने लगे।

नकटा वोला—"अव मुझे पीटने मे क्या होगा ? दुनिया तुम्हारी वेवकूफी पर हसेगी। अव तो यही श्रेयस्कर है कि तुम पाचो मेरी तान मे तान मिलाओ। खुलेआम इसका प्रचार करो कि समुद्र के किनारे पर परिया दिखती हैं इससे अपना नया नकटा पथ खडा हो जाएगा। फिर कोई भी अपने को नही चिढाएगा।" फलस्वरूप कई लोग उसके चक्कर मे पडकर नकटे वन गये और उन्होंने अपना एक नकटा-पथ खडा कर ही दिया।

ऐसे ढोगी आदमी अपने पथ का प्रसार करते हुए दुनिया को जो धोखा देते है वे अपना तथा दूसरो का अहित करते है।

जो मानव लाभ-अलाभ को नही देखकर केवल—अपने सम्प्रदाय को ही वढावा देना चाहते है वे कभी भी महान नही वन सकते है। महान वही वनेगे, जो जन कल्याण मे जीवन खपाएगे।

ढोगी अपने पन्थ का, करते नित्य प्रसार।
धोखा देकर ठग रहे, दुनिया को हर वार॥

विचारों मे परिवर्तन क्यों ?

एक चन्दन नाम का सेठ था। उसके कारोबार भी चन्दन का चलता था। दीपावली के मगल अवसर पर अनेको सेठ साहूकार नृप मे मिलने के लिए राजभवन मे आए। चन्दन सेठ को देखकर नृप की नस-नस मे क्रोध छा गया और मन ही मन मे विचार आया कि इसको मरवा दू।

नृप ने मन्त्री से पूछा—"आज मेरी वृत्ति क्यो बदल रही है ? इस चन्दन सेठ ने मेरा क्या बिगाडा ? फिर भी इसके प्रति द्वेष जागृत हो रहा है। इसे मरवाने की कुबुद्धि उत्पन्न हो रही है । क्या कारण है ?"

मन्त्री ने कहा—"इसके पीछे कोई रहस्य छिपा हुआ है। मैं अवश्य पता लगाऊगा।"

मन्त्री अब प्रतिदिन चन्दन सेठ की दुकान पर आने-जाने लगा और मधुर व्यवहार के साथ मीठी-मीठी बाते भी दिल खोलकर करने लगा। एक दिन मन्त्री ने सेठ को उदास देखकर पूछा—"सेठजी ! आज इतने उदास क्यो हैं ?"

सेठ ने कहा—"कारोबार मे बडी मन्दी आ रही है, माल बहुत पडा है। इन दिनो मे राजा के घर भी किसी की मृत्यु नही हुई। यदि हो जाए तो मेरा सारा माल खप जाये।" मन्त्री समझ गया। शीघ्र राजमहल मे आकर नृप को कहे-सुने बिना नौकर को आदेश दिया—"प्रतिदिन राजमहल मे चन्दन का एक भारा आना चाहिए। उससे नृप के लिए अलग भोजन बनेगा।"

चन्दन से अलग भोजन पकने लगा। पता लगते ही नृप ने पूछा—"मत्री ! आजकल चन्दन की लकडियो से भोजन क्यो बन रहा है ?"

मत्री ने उत्तर दिया—"राजन् ! डाक्टर साहब ने मुझे कहा था नृप के लिए लकडी का धूम्र हितकर नही है। उसी दिन से पैसो की परवाह नही करते हुए मैंने चन्दन मगाना शुरू कर दिया। इससे अलग खाना पकवाता हू।" राजा सुनकर मन ही मन मे बडा खुश हुआ।

व्यापार ठीक चलने के कारण सेठ के भाव बदल गये। मन ही मन मे विचार करने लगा—राजा अमर रहे। उनका शरीर नीरोग रहे तो बहुत अच्छा। पर्व प्रसग आने पर फिर वह सेठ राजभवन मे गया। रुपये नजर किये। भूपति ने हर्षित होकर सेठ को शहर की नाक समझकर नगरसेठ की पदवी से अलकृत किया। सेठ अपने घर गया।

नृप ने मत्री से पूछा—"मेरे विचारो मे इतना परिवर्तन क्यो ?"

मत्री बोला—"राजन् ! चन्दन नही बिकने से यह सेठ निरतर आपका मरना चाहता था। इधर आपके दिल मे भी वैसे ही भाव चमकते थे। खाना पकाने के

बहाने इसका चन्दन बिकवाया। उस सेठ के विचार भी बदल गये। अब वह प्रतिदिन यही भावना भाता है कि महाराज चिरजीवी रहे। अमर रहे। राज दरबार मे कभी किसी की मौत न हो। उसकी वृत्ति मे परिवर्तन आते ही इधर आपके विचारो मे भी परिवर्तन आ गया।"

हर व्यक्ति को अपने विचार स्वच्छ एव गगाजल की भाति निर्मल रखने चाहिए। चूकि विचारो का प्रभाव दूसरो पर बहुत पडता है। कुत्सित विचार एव कुत्सित भाव सर्वथा त्याज्य माने गये हैं।

चन्दन बिकने से त्वरित, बदले चन्दन भाव।
उसके स्वच्छ विचार का, नृप पर पडा प्रभाव॥

कर्तव्यों पर अटल

बुढिया चन्दा का स्वभाव बडा सरल था। छोटे-बडे सभी व्यक्तियो के साथ वह सद्व्यवहार रखती थी। वचन की मीठी थी। उसकी झोपडी रेलवे पुल के पास थी। रात्रि के समय मे बुढिया और उसकी लडकी दोनो सो रही थी। अचानक मूसलाधार पानी बरसने लगा, इससे वह पुल टूट गया। रात अधियारी थी और हवा खूब जोरो से चल रही थी। सहसा लडकी की नीद टूट गई। उसने खिडकी से बाहर देखा, तो पुल टूटा हुआ नजर आया। गाडी आने का समय हो रहा था। उसने अपनी अम्मा को जगाकर कहा—"माताजी जल्दी उठो, पुल टूट गया है, गाडी आने का समय हो गया है। हजारो मनुष्यो की जान बचाने के लिए अपने को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए।" एक तरफ तो वर्षा और तूफान चालू था, घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो रहा था और दूसरी तरफ लडकी कहती है—"माताजी! हजारो मनुष्यो की रक्षा करने के लिए हमे कोई उपाय करना ही चाहिए।" यह है कर्तव्यपरायणता की पराकाष्ठा। लडकी बडी होशियार थी। उसने अपने हाथ मे टूटे हुए खाट का डण्डा लिया, उस पर कपडा लपेटा और उसे जला दिया दूसरे हाथ मे अपनी लाल साडी का फटा हुआ कपडा लिया और वह बोली—"माताजी! चलो अब रेल के सामने खडे हो जाए। ड्राइवर जब यह लाल कपडा देखेगा तो गाडी खडी कर देगा।" मा और बेटी दोनो अपनी झोपडी से बाहर आकर उस भयकर झझावात मे भी पुल के पास खडी हो गई। गाडी ठीक समय पर आ गई। ड्राइवर ने जब आग की रोशनी मे जब लाल कपडा देखा, तो कोई खतरा समझकर गाडी को रोक दिया। चारो तरफ भयानक जगल

था मौसम बडा खराब था। ऐसी विकट वेला मे गाडी का रुकना देखकर सब मुसाफिर आश्चर्य मे पड गये और नीचे उतर कर देखने लगे कि गाडी को क्यो रोकी गई है ? ड्राइवर नीचे उतरा शीघ्र लडकी के पास आकर पूछा—"बहिन ! तुमने यह लाल कपडा किस लिए दिखाया ? क्या गाडी मे बैठना चाहती हो ? बताओ सही बात क्या है ?"

लडकी ने कहा—"ड्राईवर जी ! इसमे मेरा कोई भी स्वार्थ नही है। निस्वार्थ भाव से ही यह काम किया है।"

ड्राइवर —"क्या है निस्वार्थ भावना ? बताओ तो सही।"

लडकी—"भयकर बरसात से यह पास का पुल टूट गया है। हजारो मनुष्यो को जिन्दगी से हाथ धोना न पडे, इसलिए मैंने लाल कपडा दिखाया है।"

ड्राइवर—"क्या यह सही घटना है ? चलो मेरे साथ कहा से पुल टूटा है ?"

लडकी—"ड्राइवर साहब ! यदि आपको मुझ पर विश्वास नही है, तो चलिए।"

लडकी के साथ वह चल पडा। ड्राइवर ने जब पुल को टूटा हुआ देखा, तो उसके हर्ष का पार न रहा। गाडी के मुसाफिरो को जब पता लगा, तो सभी उस पुल को देखने गये और पुन पुनः उस लडकी की सराहना करने लगे। रेलवे ने उसको इनाम देने की घोषणा की। समय पर अपने कर्तव्य पर अटल रहना ही सच्ची ईमानदारी है, प्रामाणिकता है।

प्रत्येक को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही अपने साध्य को प्राप्त कर सकते हैं। कर्तव्य का परित्याग करना दानवता है।

अटल रहे कर्तव्य पर, जो मानव सर्वत्र।
वही मनुज इस विश्व का, चमकीला नक्षत्र ॥

बिना विचारे जो करे ...

एक कैप्टेन साहब थे। उनकी माता देहात मे रहती थी। वह रोगग्रस्त हो गई। घर वालो ने कैप्टेन साहब को घर आने के लिए लिखा—"आपकी अम्मा बहुत बीमार है, आप शीघ्र ही घर आए।" कैप्टेन साहब के पास समाचार पहुचते ही उन्होंने सोचा—पाच दस दिन के लिए दौरे पर जाना अत्यावश्यक है अतः वहा से लौटकर ही गाव जाऊगा। साहब अपने कार्यक्रम के अनुसार दौरे पर चले गये। इधर साहब का जो चपरासी था उसकी मा भी काफी दिनो से बीमार थी, उसका अचानक देहावसान हो गया। घरवालो का उसके पास तार पहुचा।

'योर मदर डाइड कम सून' (Your Mother died come soon) तुम्हारी मा का देहावसान हो गया, शीघ्र आओ।

चपरासी ने सोचा साहब को दौरे पर गये दस दिन हो गये, कौन जाने कब आएगे। माताजी का स्वर्गवास हो गया है, अत घर जाना आवश्यक है। आखिर कैप्टेन साहब के कार्यालय मे टेबिल पर उस तार को रख दिया और भद्र बन वह घर के लिए रवाना हो गया। उसने सोचा—कैप्टेन साहब तार पढेगे तो स्वय समझ लेगे कि मैं छुट्टी पर गया हू।

चपरासी ज्योही स्टेशन पर पहुचा त्योही कैप्टेन साहब भी दौरा समाप्त कर आ गये। बाहर से आई हुई डाक को सम्भालने के लिए साहब कार्यालय मे पहुचे। सबसे पहले उन्होंने उस तार को देखा। ऊपर नीचे तो कुछ पढा नही केवल बीच वाले समाचार के शब्द पढकर उसने निश्चय कर लिया कि माताजी का तो देहावसान हो गया क्योकि असाध्य रोग से पीडित होने को समाचार तो पहले आ ही चुके थे। साहब ने नाई को बुलाया और भद्र हो गये, ड्राइवर को कहा—"मोटर शीघ्र लाओ, इसी रेल से घर जाना है।"

कैप्टेन साहब स्टेशन पर पहुचे इधर वह चपरासी रेल मे बैठा ही था। उसकी नजर साहब पर पडी, मन ही मन मे सोचने लगा—मेरी मा का स्वर्गवास हुआ तो हुआ, साहब की मा का भी स्वर्गवास हो गया, ऐसा प्रतीत हो रहा है। शीघ्र बेचारा गाडी से उतरा और साहब को नमस्कार किया। साहब ने चपरासी को पूछा—"अरे! भद्र कैसे हुआ?"

चपरासी ने कहा—"मेरी मा का अचानक देहावसान हो गया।"

साहब—"क्या घर से कोई समाचार आया था?" चपरासी—हा, तार आया था किन्तु आप भद्र कैसे बने हैं?"

साहब—"मैं अभी अभी दौरे से आया हू। टेबिल पर मेरा तार पडा था। उसमे लिखा था कि माताजी का स्वर्गवास हो गया है, इसलिए भद्र बना हू और घर जा रहा हू।"

चपरासी—"वह तार तो मेरा था, आपका नही। टेबिल पर मैंने ही रखा था। मेरी मा मरी है, आपकी नही।"

यह सुनते ही कैप्टेन साहब अवाक् रह गये। तार मगाया और उसे अच्छी तरह से पढा। चपरासी का कथन सत्य होने पर साहब का चेहरा उतर गया और बिना विचारे किए हुए कार्य का पश्चात्ताप करने लगे।

छोटे से छोटा कार्य भी विवेक एव विचारपूर्वक करना चाहिए। जो व्यक्ति सोचे बिना कदम उठाता है, उसको कैप्टेन की भाति पश्चात्ताप करना ही पडता है।

बिना विचारे जो करे, वह पछताता नित्य।
साहब दुःख करता रहा, प्रकट हुआ जब सत्य॥

सबसे मीठी चुप

रामलाल नाम का एक आदमी था। वह स्वभाव से वडा सरल एव भद्र था। छोटे गाव मे उसकी दुकान थी। घी, गुड, शक्कर, आदि का व्यापार था। अपनी स्वल्प कमाई मे वह घर का खर्च निकाल लेता था। उसकी लडकी का नाम शोभा था वह वडी हो गई। पिता ने समीपस्थ शहर मे अच्छा लडका देखकर विवाह कर दिया। शोभा वडी चतुर थी। थोडे ही दिनो मे शहर के समस्त रीति रिवाजो मे वह निपुण हो गई। एक दिन रामलाल पुत्री से मिलने के लिए शहर मे आया। पुत्री ने पिता के लिए तरह-तरह के पकवान वनाए। पुत्री अपने हाथो से पिता को भोजन कराने लगी। दामाद कुछ ही दूर उनकी हाजरी मे खडा था। थाली मे पतले-पतले और छोटे-छोटे फुलके परोसे गये। वह एक-एक फुलके का एक-एक ग्रास करने लगा। पुत्री ने घूघट की ओट मे दो अगुली उठाकर इशारा करते हुए कहा—"एक रोटी के कम से कम दो ग्रास तो अवश्य करे।" रामलाल उल्टा समझ गया। उसने सोचा—पुत्री कहती है कि दो-दो रोटी का एक-एक ग्रास करो अन्यथा पेट कैसे भरेगा। उसने वैसा ही किया। पुत्री वडी लज्जित हुई। थोडी देर वाद रसगुल्ले परोसे गये। उसने सोचा ये धोले-धोले (सफेद-सफेद) अडे जैसा क्या हैं? पुत्री ने धीमे स्वर से कहा—"रो वोल (वोलो मत)"। उसने सोचा इनका नाम रो वोला है। फिर मीठी-मीठी जलेविया परोसी गयी। वह वोला—"यह सर्प की भाति आटेदार क्या है?" शर्म से पुत्री का सिर झुक गया। दूसरे सुनने वाले पिताजी को क्या समझेंगे? फिर वेचारी पिताजी की ओर इशारा करती हुई वोली—"चुप-चुप।" उसने जलेवियो का नाम 'चुप' समझ लिया। भोजन समाप्त होते ही हाथ धोकर वाहर आया। मन ही मन मे विचार करने लगा—मैंने अपने घर दूध, दही, घी, खूव खाया किन्तु आज जैसे रोवोले (रसगुल्ले) और मीठी-मीठी चुप (जलेविया) कभी नही खायी। वह अपने मन मे एक ही रटन लगाता रहा कि—

दोय चार रो वोला खाया, थाली ऊपर झुप्प।
घी तो घर मे घणोई खायो, सवस्यू मीठी चुप॥

दामाद ने रामलाल से कहा—"आपकी इच्छा हो तो दुकान पर पधारें।" दोनो ही दुकान गये। इतने मे एक कृषिकार आया। उसके हिसाव-किताव मे काफी उलझन पैदा हो रही थी। किसान ने रामलाल की ओर इशारा करते हुए पूछा—"ये कौन है?" दामाद ने कहा—"ये मेरे श्वसुर हैं। किसान ने कहा—"मैं आपके श्वसुर को पच मानता हू। ये जो फैसला देंगे, मुझे मान्य है।" इसमे वह दामाद इनकार कैसे हो सकता था। दोनो ने अपनी-अपनी वात सुनाई। रामलाल

को और कुछ आता नही था, उसने वही दोहा सुनाया। दोहे के तीन पद तो कुछ सूक्ष्म स्वर से बोला—चौथा जोर से बोला—"सबस्यू मीठी चुप, बस मै तो यही फैसला जानता हू।" दोनो को यह फैसला मानना पडा। दोनो के चुप (मौन) होते ही वर्षो का झगडा समाप्त हो गया।

दुनिया मे सबसे मीठी चुप (मौन) है। अगर किसी के परस्पर झगडा हो जाए, कोई परस्पर गाली गलौज करे उस समय एक व्यक्ति अगर मौन रख ले तो वातावरण मे शान्ति की लहर दौड जायेगी। 'मौनेन कलहो नास्ति।' अत समय पर हर एक को मौन रखना ही चाहिए।

मौन रखे जो समय पर, (तो) मिट जाए दु ख द्वन्द्व।
शान्त बने नर क्रुद्ध भी, छा जाए आनन्द॥

मूर्ख से दूर

एक मुशी के पास एक नौकर रहता था। वह बडा बेवकूफ था। काला अक्षर उसके लिए भैस बराबर था। कम वेतन के कारण मुशी उसे छोडना नही चाहता था। एक दिन मुशी ने नौकर को कहा—"जाओ, पोस्टकार्ड लैटर बाक्स मे डाल देना।" नौकर ने पूछा—"वह कहा और कैसी है?" मुशी ने लेटर बाक्स की निशानी बता दी। नौकर बाजार मे गया। सामने से एक काजी आ रहा था। उसके सिर पर लाल टोपी थी। काली-काली उसकी दाढी थी। नौकर ने सोचा—यह बाक्स आ गया है क्योकि मुशी जी के बताए हुए सभी चिह्न इसमे मौजूद हैं। उसने शीघ्र काजी की दाढी जा पकडी। परस्पर झगडा हो गया। सैकडो लोग एकत्रित हो गये। लोगो ने पूछा—"भाई! तूने काजी की दाढी क्यो पकडी?" नौकर ने सारी घटना कह डाली। लोगो ने उसे अच्छी शिक्षा देकर कहा—"झगडा मत करो। वह सामने लेटरबाक्स है, उसमे पत्र डाल दो।"

मुशी को जब उसकी मूर्खता का परिचय मिला तब बडा गुस्सा आया। ज्यो ही वह नौकर वापस पहुचा त्योही उसे काफी कठोर शब्दो की तर्जना सुननी पडी। नौकर हाथ जोडकर बोला—"मुशीजी! भविष्य मे ध्यान रखूगा, कभी ऐसी गलती नही करूगा।"

एक दिन अचानक मुशी को बुखार आ गया। वैद्य को बुलाया गया। वैद्य ने रोग का निदान करके औषधि की एक खुराक तो उसी समय पिला दी और शेष तीन खुराक बोतल मे डालकर पास वाले ताक मे रख दी और कहा—तीनो खुराक ले लेना, बुखार ठीक हो जाएगा।"

घडी मे एक वजते ही चारपाई पर लेटे-लेटे मुशी ने नौकर को आवाज दी। नौकर वोला—"फरमाइए, आपकी सेवा मे हाजिर हू।" मुशी ने कहा—"अरे भाई! ताक मे दवाई की वोतल है, उसमे से एक खुराक प्याली मे डालकर मुझे दे दे।" ताक मे चार-पाच वोतले रखी थी। एक वोतल से प्याले मे कुछ दवा डालकर नौकर ने मुशी को दे दी। मुशी लेटे-लेटे ही कुछ उठाकर दवा पी गया। दवा का स्वाद कुछ भिन्न होने से मुशी वोला—"पहले जो दवा ली थी उसका स्वाद और था मगर इसका स्वाद और है। कौन सी दवा पिलाई तुमने ?" नौकर ने वह वडी वोतल लाकर सामने रख दी। "अरे उल्लू! यह तो स्याही की वोतल है"—मुशी ने कहा। नौकर घवराया। वेचारा दौडा-दौडा मेज पर से स्याही सोख लाकर वोला—"मालिक! वहुत गलती हो गई। भविष्य मे ऐसी त्रुटि नही करूगा। दवा के वदले मे स्याही पी गये किन्तु अव आप कृपया स्याही सोख खा लीजिए ताकि पेट मे गई स्याही को सोख सके।" उसकी मूर्खता पर मुशी को वडा गुस्सा आया, उसी समय उसे छोड दिया।

मूर्ख का ससर्ग कभी भी लाभप्रद नही हो सकता। अत वुरे एव मूर्ख मनुष्य से सर्वदा दूर ही रहना चाहिए।

मूर्ख मनुज से सर्वदा, रहना सवको दूर।
मुशी जी के भृत्य का, उपनय सुनो जरूर।।

सच्चा भिखारी

एक मस्त योगी था। सेवा-चाकरी करने अनेको भक्त आते थे। योगी के फक्कड एव निर्लोभी होने के कारण आस-पास के क्षेत्रो मे भी उसका अच्छा प्रभाव था। एक दिन एक धनाढ्य ने योगी के चरणो मे एक-एक सोने की मोहर चढाई। योगी ने चेले को सम्वोधित करते हुए कहा—"चेले! यह मोहर अपने को नही चाहिए। तुम जाओ किसी भिखारी को दे आओ।" चेला मोहरे लेकर चला। वह इधर-उधर भिखारी की खोज कर ही रहा था कि हजारो सैनिको सहित एक राजा आता हुआ दिखाई दिया। किसी अन्य व्यक्ति से पूछने पर उसे यह ज्ञात हुआ कि राजा किसी शत्रु का राज्य छीनने को जा रहा है। क्योकि वह अपने राज्य का क्षेत्रफल वढाने के प्रयत्न मे है।

चेले ने सोचा—राजा के इतना वैभवशाली होते हुए भी इसकी तृष्णा शान्त नही हुई है। वास्तव मे यह सच्चा भिखारी है। ज्योही राजा की शिविका के निकट

आई। चेले ने उसके रथ पर मोहर फैंक दी। राजा ने रथ रुकवा, उससे पूछा—"भाई! मेरे रथ मे मोहर क्यो डाली?"

चेला—"राजन्! मुझे गुरुवर का यह आदेश मिला है कि किसी भिखारी को यह मोहर दे आओ।"

राजा (क्रुद्ध होकर) "रे मूर्ख! क्या तूने मुझे भिखारी समझा है?"

चेला—"भिखारी की खोज करते-करते मुझे कोई नही मिला, मुझे तो आप ही मिले हैं।" राजा को वैभव का नशा चढा हुआ था। कडककर बोला—"कहा है ऐसी शिक्षा देनेवाला तेरा गुरु?" चेले के साथ राजा योगी के पास जा पहुचा और गुस्से से लाल होकर बोला—ऐसे मूर्ख चेले को क्यो मूड रखा है? इसने मुझे भिखारी समझा है।

समता झूले मे झूलता हुआ योगी बोला—"राजन्! शान्त हो, मेरे प्रश्न का उत्तर दो। अभी तुम्हारी राज्य की कितनी आय है?"

राजा—"अच्छी तरह तो मुझे याद नही है किन्तु सात करोड की अवश्य है।"

योगी—"इतनी सशस्त्र सेना लेकर अभी तुम कहा जा रहे हो?"

राजा—"दूसरो के राज्यो को अपने अधीन करने अर्थात् जीतने के लिए।"

योगी—"राजन्! तुम्हारे राज्य मे इतनी आय होते हुए भी तुम्हारी तृष्णा शान्त नही हुई। भिखारियो की भाति भटकते रहते हो। धन का गुलाम बन दूसरो का धन हडपने की कामना रखते हो, फिर भी तुम भिखारी नही हो?" योगी की रहस्यमयी वाणी सुनते ही राजा का क्रोध शान्त हो गया और योगी के चरणो मे झुककर बोला—"महात्मन्! मैं सच्चा भिखारी हू। क्योकि मेरे हृदय मे तृष्णा का पार नही है। आज आपने मेरे मन मे ज्ञान की लौ जला दी। अन्धकार दूर हो गया है। धन्य है आपकी बुद्धि को।"

जिसके हृदय मे तृष्णा का प्राबल्य होता है। वही इस दुनिया मे सच्चा भिखारी है। रात-दिन वह इधर-उधर भटकता रहता है। वह न सुख से खा सकता है और न ही सो सकता है, अत तृष्णा को त्याज्य ही समझना चाहिए।

वही भिखारी जगत मे, जिनके मन अति आश।
आशा को जो मारता, उसे नही है त्रास॥

ईर्ष्या का त्याग

यूरोप मे माइकेल एंजिलो नामक एक चित्रकार था। उसकी चित्रकला बडी लोकप्रिय थी। उसकी लोकप्रियता देखकर एक दूसरे चित्रकार को उससे ईर्ष्या

हुई। उसने सोचा—लोग मेरे गुणगान क्यो नही करते ? क्या मैं चित्रकार नही हू ? एक ऐसा चित्र बनाऊ, जिससे लोग माइकेल एंजिलो को तो भूल जाए और केवल मैं ही लोगो के जबान पर चढ जाऊ। यह सोच उसने एक स्त्री का चित्र बनाना शुरू किया। जब चित्र पूरा हो गया तो वह उसकी सुन्दरता का परीक्षण करने के लिए कुछ दूर जाकर चित्र को देखने लगा। चित्र मे उसे कुछ कमी दिखाई देने लगी। लेकिन कमी क्या थी ? वह समझ नही पा रहा था। एक दिन माइकेल उसी मार्ग से जा रहा था। जब उसकी नजर उस चित्र पर पडी, तो उसे वह चित्र बहुत सुन्दर लगा। लेकिन उसमे जो कमी रह गई थी वह उसे तत्काल मालूम हो गई, इसलिए वह उस चित्रकार के घर मे गया और उससे कहा "भाई ! तुम्हारा चित्र तो बहुत सुन्दर है, पर इसमे जो एक कमी रह गई है वह आँखो मे खटक रही है।"

चित्रकार ने कहा—"कमी तो मुझे भी लगती है।"

माइकेल ने कहा—"तुम तनिक अपनी तूलिका देना मैं ठीक कर दूगा।"

चित्रकार—"भाई ! क्या तुम इस कला मे प्रवीण हो ? कही मेरे चित्र को बिगाड तो नही दोगे ? कही मेरी मेहनत बेकार न हो जाए ? यही भय है।"

माइकेल—"तुम इतने क्यो घबडा रहे हो ? मैं तुम्हारा चित्र खराब नही होने दूगा।"

तूलिका मिलते ही माइकेल ने दोनो ही आखो मे दो काली बिन्दिया लगा दी। फिर तो वह चित्र बोलता हुआ नजर आने लगा। तब उस चित्रकार ने माइकेल से कहा—"भाई ! धन्य है तुम्हारी बुद्धि को, सोने मे सुगन्ध का काम कर दिया। मेरे चित्र की शोभा बढाने वाले तुम ही हो, कृपया बताओ, तुम्हारा क्या नाम है ? कहा रहते हो ? क्या कारोबार है ?" माइकेल ने कहा—"भाई चित्रकार ! मेरा नाम तो माइकेल है।" यह नाम सुनते ही चित्रकार चौंका, हृदय मे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा और वह हाथ जोडकर बोला—"भाई माइकेल ! तुम्हारी उन्नति को देख मेरा हृदय निरतर जलता था, तुमको परास्त करने के लिए मैंने इस सुन्दर चित्र का निर्माण किया है, किन्तु आज तुम्हारी सहानुभूति और सज्जनता देख मेरे विचार बदल गये हैं। अब मैं ईर्ष्या के निम्न विचारो का परित्याग कर उच्च विचारो के साचे मे अपने जीवन को ढालने का प्रयास करूगा।"

दूसरो की बढती को देख जलना हीनता है। खुश होना उच्चता का अभिद्योतक है। ईर्ष्यालु जीवन विकास की अपेक्षा अपना ह्रास ही करते हैं, अत ईर्ष्या-

क्षणिक मन-मुटाव

एक जाट था। उसकी पत्नी वडी पति-भक्ता थी। वह जाट की आज्ञा का प्रतिदिन ध्यान रखती थी। जाट का स्वभाव भी अच्छा था। वह कलह कदाग्रह से दूर रहता था। दोनो का जीवन वडा मस्त एव सुखी था। खेत मे सैकडो मन अनाज होता था। दो गाडी, चार बैल और वीसे-तीस गाए थी। दोनो दूध, दही और घी खाकर हृष्ट-पुष्ट रहते थे। किसी भी तरह की चिन्ता नही थी।

एक दिन किसी वात को लेकर जाट जाटनी मे मन-मुटाव हो गया। झगडा इतना वढा कि एक दूसरे का मुह देखना भी वे नही चाहते थे। बोल-चाल भी वन्द हो गई। आषाढ का महीना आया। वर्षा होने लगी। अनेको कृषिकार खेतो मे जाने लगे। जाटनी ने सोचा—खेत का समय आ गया। वह मुह फेरकर वोली—

"लोक चाल्या लावणी, लोक क्यू नी जाय।"

जाट भी वहुत चतुर था और खुशमिजाज भी। वह भी मुह फेर कर वोला—

"लोक चाल्या खाय पो, लोक किनै खाय।"

जाटनी वोली—

"छीको पडी रावडी, उतार क्यू नी लै।"

जाट वोला—

"आवै आपा वोल्या चाल्या, घाल क्यू नी दै।"

वस, उसी वक्त दोनो का मनमुटाव मिट गया और परस्पर प्रेम उमड आया।

सह जीवन मे मनमुटाव होना कोई विशेष वात नही है किन्तु विशेपता यह है कि क्षणिक तनाव भी पुन प्रेम मे परिणत हो जाए। जीवन का वास्तविक तथ्य सौहार्दपूर्ण व्यवहार ही माना गया है।

सह जीवन मे कठिन क्या, होना तनिक तनाव।
जाट जाटनी के सदृश, करना है सुलझाव॥

गुणों की इज्जत

एक आदमी हलवाई की दुकान पर गया और दोने मे गुलाब-जामुन लेकर चला। उसको रेशमी रूमाल से ढक लिया। दोना मन ही मन मे सोचने लगा—इस दुनिया मे मेरे जैसा भाग्यशाली कोई नही है। मुझे रेशमी वस्त्र से ढका गया है। वह आदमी अपनी हवेली मे पहुचा। चौथी मजिल मे एक सुन्दर टेबिल पर उस दोने को रखा। दोना फूल गया, अभिमान करने लगा—अहो! मेरी कैसी इज्जत हो रही है। मुझे बैठने के लिए कैसा सुन्दर आसन मिला है। राजा-महाराजाओ की भाति मेरा स्वागत हो रहा है। सभी लोग मुझे उच्च दृष्टि से निहार रहे हैं। प्रिय बच्चो की तरह मुझे यहा हाथो मे लाया गया है।

किन्तु उस अभिमानी दाने को यह क्या पता था कि यह इज्जत प्रतिष्ठा व स्वागत उसका हो रहा है अथवा गुलाव-जामुन का। गुलाव-जामुन के बिना दोने की क्या कीमत है। कुछ ही देर वाद दोने मे से गुलाव-जामुन तश्तरी मे लिए गये। दोना वेकार होते ही उस व्यक्ति ने दोने को नीचे फेंक दिया और उसे कुत्ते चाटने लगे।

दोनो को भान हुआ, आँखें खुली, अहकार का नशा उतरा। वास्तव मे शरीर की कोई इज्जत नही है। यदि शरीर रूपी दोने मे सद्‌गुण रूपी गुलाव-जामुन होगे, तो उसकी पूछ होगी, इज्जत होगी एव प्रतिष्ठा होगी। जहाँ वह जायेगा, वहाँ उसका सत्कार होगा।

गुणवानो का सर्वदा, आदर है साक्षात्।
'मुनि कन्हैया' गुण विना, कोई न पूछे वात ॥

द्रोणाचार्य की दक्षता

एक दिन पाण्डव और कौरव गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते गेद कुए मे जा गिरी, सारे राजकुमार हताश हो गये। उनकी आकृति निस्तेज बन गई। मन ही मन सोचने लगे—कौन इस अधकूप मे उतरकर गेंद को वाहर निकालेगा? क्योंकि गेंद के विना खेल, बिना नमक के भोजन जैसा है। आखिर यह निर्णय हुआ कि जिसने कुए मे गेंद डाली है, उसको ही निकालनी पडेगी।

गेंद डालने वाले ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—"भाइयो! भूल होना कोई वात नही है किन्तु भूल को सुधारना विशेषता है। तुम सव तो मेरे

भाई हो। मेरी सहायता करनी चाहिए। जिससे गेद भी बाहर निकल आएगी और पारस्परिक सदव्यवहार मे भी वृद्धि होगी।

इस प्रकार परस्पर चिन्तन चल ही रहा था। इतने मे वहा पर द्रोणाचार्य आ पहुचे। उनका श्याम शरीर, वीरतायुक्त मुखाकृति, चमकदार आखो का तेज देखकर राजकुमार सोचने लगे—ये कोई महापुरुष हैं, अवश्य ही अपनी समस्या का समाधान इनके पास मिल सकेगा। सभी राजकुमार द्रोणाचार्य के पास आये और विनम्र शब्दो मे बोले "महात्मन! हमारी गेद कुए मे गिर पडी है। हम सब चिन्तन कर रहे हैं कि उनको कैसे निकाले ?"

द्रोणाचार्य—"राजकुमारो! बडे आश्चर्य की बात है। आज तो गेद पडी है, कल राजलक्ष्मी सकट मे पड जाएगी तो कैसे निकालोगे ? तुम सबने राजकुल मे जन्म लिया है। कुछ दक्षता की आवश्यकता है।"

राजकुमार—"महामानव! आप जो कहते हैं सब ठीक है। कृपया गेद निकालने का कोई उपाय बताएँ।"

द्रोणाचार्य—"मैं कोई यन्त्र मन्त्र नही जानता, किन्तु विद्या से तुम्हारी गेद बाहर आ जायेगी। द्रोणाचार्य ने एक बाण बनाया उसका अग्र भाग नुकीला कर लिया और उसको धीरे से छोडा। वह बाण गेंद मे लगा। और उसमे चुभ गया। उसके बाद दूसरा-तीसरा बाण चलाया। इस तरह उन्होने कई बाण एक दूसरे मे छेद दिये। बाणो से कुआ भर गया अन्त मे ऊपर वाले बाण को पकडकर उठाया तो धीरे-धीरे वह गेंद बाहर आ गई।

द्रोणाचार्य की करामात एव चतुरता देखकर सभी राजकुमारो के हृदय मे आश्चर्य का पार न रहा। सभी उनके सामने नतमस्तक हो गये और मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

चतुर एव निपुण व्यक्ति की हर एक क्रिया सफल होती है।

चतुर मनुज होता सफल, हर कामो मे सद्य।
'मुनि कन्हैया' चतुर की, पूछताछ है अद्य॥

युक्ति का महत्त्व

एक बार बादशाह अकबर ने सोचा बीरबल इतना दक्ष व होशियार है, इसका पिता तो न जाने कितना होशियार होगा क्योकि पुत्र की अपेक्षा पिता के नैपुण्य मे बाहुल्य होना ही चाहिए। बादशाह से रहा नही गया। एक दिन समय देखकर उन्होने बीरबल से कहा—"अरे बीरबल! जब तुम इतने बुद्धिमान हो

तव तुम्हारे पिता तो तुमसे सौ गुने वुद्धिमान होंगे । कल तुम्हारे पिता को मेरे पास भेजना, परीक्षा करूगा ।"

वीरवल घर गया । मन ही मन सोचने लगा—पिताजी को ऐसा समझाऊ कि वादशाह के मुह मे लड्डू आ जाए, लज्जित होना ही पडे । वीरवल ने विनयपूर्वक कहा—"पिताजी ! कल आपको वादशाह के पास जाना है । कुछ सजगता की जरूरत है । वादशाह आपको कई तरह के टेढे-मेढे प्रश्न पूछेंगे । कृपा करके आप कुछ भी उत्तर मत देना, चुपचाप खडे रहना । इसी मे आपको सफलता मिलेगी और राजा भी आपकी वुद्धि पर चकित हो जायेगा ।"

पिता वोला—"पुत्र तुमने जैसा कहा वैसा ही करूगा" दूसरे दिन वे वादशाह के पास पहुचे । वादशाह ने कई तरह की वातें पूछी । प्रश्न भी टेढे-मेढे पूछे, किन्तु वीरवल के पिता ने कुछ भी उत्तर नही दिया । मौन रहे । वादशाह के आश्चर्य का पार नही रहा । यह क्या वोलते ही नही हैं । मूर्ति की भाति निरुत्तर खडे हैं । वादशाह पूछता-पूछता थक गया । आखिर मे वादशाह ने कहा—"क्या करू परीक्षा ? वोलते ही नही हो । चले जाओ ।"

वीरवल का पिता घर गया और जव वीरवल दरवार मे पहुचा तव वादशाह ने कहा —"अरे वीरवल ! मूर्ख के सामने क्या करना चाहिए । वीरवल ने वडी युक्ति से कहा—"जहापनाह ! मौन रहना चाहिए ।"

वीरवल का उत्तर सुनते ही वादशाह निरुत्तर हो गया और मन ही मन पश्चाताप करने लगा—हाय ! ऐसा पता होता तो क्यो मैं वीरवल के पिता को वुलाता और क्यो मुझे लज्जित होना पडता ?

वुद्धिमान मनुष्य अपनी वुद्धि के वल से हर एक को पराभूत कर सकता है । वुद्धिमान के सामने वडे-वडे वादशाह भी लज्जित हो जाते हैं ।

वुद्धिमान के सामने, सव खाते है हार।
वादशाह भी देख लो, लज्जित हुआ अपार ॥

बड़े का बड़प्पन

एक धनाढ्य सेठ थे । एक दिन वे अपने वाहर के कमरे मे प्रमुदितमना वैठे हुए थे । अचानक वहा एक मुसाफिर आ पहुचा । मुसाफिर की नजर सेठजी की अंगुलियो पर पडी । उससे रहा नही गया । अपनी शका को समाहित करने के लिए उसने सेठ से पूछा—"श्रेष्ठिन् ! दाहिना हाथ वडा होता है या वाया ?"

सेठ—"भाई ! जो हाथ अधिक काम आता है मेरी दृष्टि मे तो वही वडा

कहलाता है।"

मुसाफिर—"तो फिर बतलाइए आपने यह अगूठी बाए हाथ मे क्यो पहन रखी है ? दाहिने हाथ को क्यो नही पहनाई।"

सेठ—"पथिक ! एक दृष्टि से तुम्हारा कहना सत्य हो सकता है, किन्तु तनिक गहराई से सोचो और मेरी अन्तस्तल की भावना को पहचानो। मैंने पहले ही कहा था, जो ज्यादा काम करे वही बडा है। जो छोटे से काम कराता है, वह बडा नही है। मैने बाए हाथ मे अगूठी पहिन रखी है, इससे दाहिने हाथ का बडप्पन अपने आप सिद्ध हो जाता है। छोटे को महत्त्व देना ही बडे का बडप्पन है। छोटे को मान देना बडो का गौरव है।"

मुसाफिर—"सेठ साहब ! यह अगूठी बडी अगुली को न पहिनाकर सबसे छोटी अगुली को पहिनाई। क्या इसमे भी कोई रहस्य है ?"

सेठ—"मुसाफिर ! जो सबसे छोटा होता है, उसका लाड प्यार अधिक होता ही है। मैंने भी छोटी अगुली को अगूठी पहिनाई है। छोटे की सार-सम्भाल करने वाला मनुष्य ही ससार मे पूजनीय कहलाता है और उसका मान भी बढता है।"

मुसाफिर—"श्रेष्ठिन् ! आपके विचार बहुत ही प्रशसनीय एव अनुकरणीय है। आप जैसे महापुरुष ही विश्व विकास मे सहायक बन सकते है। धन्य है आपकी कल्पना और धन्य है आपकी विचक्षणता।"

दुनिया मे बडा मनुष्य वह है, जिसने छोटे को मान देना सीखा है। बडा गुणो से बनता है, उच्च सिंहासन पर आरूढ होने से नही।

स्तुत्य वही ससार मे, जो नर है गुणवान्।
बडा वही जो तुच्छ को, देता है सम्मान॥

परावलम्बन से दुःख

एक शहर मे एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसकी आखे मोतियाबिन्द से आच्छादित थी। उस ब्राह्मण के आठ पुत्र थे। आठो ही पिता के आज्ञाकारी थे। पुत्रो ने हाथ जोडकर विनय से कहा—"पिताजी ! सभी अवयवो मे आखो को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आखो के अभाव मे सर्वत्र अधेरा है। आखो की सुरक्षा जीवन की सुरक्षा है अत आपको आखो का इलाज अवश्य ही कराना चाहिए।"

वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—"पुत्रो ! तुम्हारा कथन अक्षरश सत्य है कि आखो के विना कुछ नही है, किन्तु मुझे आखो की आवश्यकता नही। तुम मेरे आठ पुत्र हो, मेरे आठ पुत्रवधुए हैं, तुम्हारी मा है, मैं कितना किस्मत वाला हू।

मुझे चौतीस आखे उपलब्ध हैं। मुझे किसी भी बात की चिन्ता नही है। तुम लोग सब विनीत हो, सुशील हो, सेवा-सुश्रूषा मे उद्यत रहते हो। फिर यदि दो आखें न हो तो क्या बात है ?"

पिता ने पुत्रो का सुझाव स्वीकार नही किया। क्रमश मोतियाबिन्द बढता गया। कुछ ही दिनो मे उसकी आखो से अधियारा छा गया। प्रत्येक शारीरिक क्रिया मे वह परावलम्बी बन गया। एक दिन की बात है कि घर में अचानक आग लग गई। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से आगे भाग गए। किन्तु उस वृद्ध को किसी ने भी याद नही किया। वह उस धधकती हुई ज्वाला मे भस्म हो गया। न तो पुत्र काम आये और नही अपनी पत्नी काम आई।

स्वावलम्बन से व्यक्ति परमुखापेक्षी नही रहता। जो परावलम्बी रहता है उसको वृद्ध विप्र की भाति मौत के घाट उतरना पडता है।

परवशता से वृद्ध द्विज, चला गया यमधाम।
स्वावलम्बी हर जगह, करता इच्छित काम॥

मौन व्रत

वचक नाम का एक महाजन था। उसका स्वभाव बहुत ही खराब था। वह झगडा करने को हर समय तत्पर रहता था। उसकी पत्नी भी बडी कलहकारिणी थी। घर मे परस्पर झगडे चलते ही रहते थे। स्त्री उसको पाच गालिया सुनाती, तो वचक उसको दस गालिया सुनाता था। आपस मे क्रोधानल के अगारे उछलते थे। कभी-कभी क्रोध के वशीभूत हो वचक स्त्री को पीट भी देता था। स्त्री मार खाती-खाती हैरान हो गई। वह मन ही मन सोचती कि मेरा पति क्या है? साक्षात यम है। सुख मे नीद भी नही लेने देता है। कब मिलेगी इससे मुक्ति ?

उसी नगर मे एक दिन योग-क्रिया के विशेषज्ञ एक योगीश्वर पधारे। वे विद्वान होने के साथ-साथ मत्र-तत्र करने मे भी बड़े प्रवीण थे। अनेको व्यक्ति उनके सत्सग मे आते थे। जटिल से जटिल प्रश्नो का भी उचित समाधान पा, सभी योगी के गुण गाने लगे। सारे शहर मे उनकी प्रसिद्धि हो गई कि योगी तो कोई सिद्ध पुरुष है। शहर की कई स्त्रिया धन, पुत्र की आशा ले योगी के पास आने लगी। वचक की स्त्री भी दौडी-दौडी योगी के पास आ बोली—"गुरुवर ! मेरा एक-एक दिन दु ख मे जा रहा है। प्रतिदिन मुझे जूतो की मार खानी पडती है। आप बडे उपकारी है। सबके सकट हरने वाले हैं। कृपया मुझे भी कोई ऐसा मत्र दीजिए जिससे मेरे दु ख के द्वार बन्द हो जाए।"

योगी ने उससे सब पूछताछ कर कहा—"बेटी ! ये लो मन्त्रित चावल, तेरा पति जब कभी घर आए तब इन चावलो को मुख मे डाल लेना। फिर चाहे तेरा पति तुझे गालिया दे तुझ पर प्रहार भी करे, तो भी तू मौन रहना। एक शब्द भी प्रत्युत्तर मे मत बोलना। यदि इस मत्र की एक महीने तक भी साधना कर लेगी, तो सारा सकट टल जाएगा।" वह चावल ले, खुशी-खुशी अपने घर गई।

इधर वचक घर आया और जोर-जोर से बक-बक करता हुआ स्त्री को गालिया देने लगा—"निकल मेरे घर से पापिनी !" स्त्री ने शीघ्र मुह मे चावल डाल लिए। मौन धारण कर बैठ गई। पाच सात दिनो मे ही सब झगडे बन्द हो गए। आपस मे प्रेम का द्वार खुल गया।

दोनो का जीवन सुखी हो गया और आनन्द से रहने लगे।

'मौनेन कलहो नास्ति' मौन रखने से कलह शान्त हो जाता है। वर्षों का मन-मुटाव भी शान्त हो जाता है और परस्पर सौहार्द का सागर उमडने लग जाता है, अत: समय पर मौन रखना अत्यन्त आवश्यक है।

अवसर पर जो मौन की, करे साधना सत्य।
उसे प्रेम मिल जाएगा, जीवन का जो पथ्य ॥

प्रेम के वश लक्ष्मी

लक्ष्मी ने अर्द्ध रात्रि मे सेठ लक्ष्मीधर से कहा—"श्रेष्ठिन ! मुझे आपके घर मे निवास करते हुए काफी समय हो गया है। अब मैं यहा से जाना चाहती हू। मेरे प्रभाव मे सारे ससार मे आपकी कीर्ति-ध्वजा लहरा रही है। आपका सर्वत्र सम्मान एव सत्कार हो रहा है। अन्त मे मैं आपको वर देना चाहती हू। आप यथेच्छित माग सकते हैं।"

यह सुनते ही श्रेष्ठी के हृदय मे चिन्तन चला और नम्र शब्दो मे कहा—"देवी ! क्या मागू ? कुछ समझ मे नही आ रहा है।"

तब लक्ष्मी ने कहा—"खैर, आज नही तो कल माग लेना।" इतना कह लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई।

सुबह होते ही सेठ ने अपने समस्त परिवार को एकत्रित किया और लक्ष्मी से हुए रात्रिकालीन वार्तालाप को सबसे सम्मुख रखते हुए सुझाव मागे। सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार रखे।

अन्त मे सेठ की पुत्रवधू ने कहा—'पिताजी ! अपने को न तो धन चाहिए और न परिवार चाहिए। अपने को चाहिए प्रेम, मित्रता, सद्व्यवहार और कलह

का प्रतिकार। अत लक्ष्मी के आगे आप यही याचना कर।" दूसरे दिन लक्ष्मी का आगमन होते ही सेठ ने कहा—"हे जगदम्बे! लक्ष्मी! मुझे और कुछ नही चाहिए। मुझे तो केवल परस्पर प्रेम, और मैत्री-व्यवहार चाहिए।"

यह सुनते ही लक्ष्मी के मुह से सहसा ये शब्द निकले—"सेठ! आज तुम्हारी बहुत बडी विजय हुई है। तुमने प्रेम का वर माग लिया। मुझे यह कल्पना नही थी कि तुम ऐसे अकाट्य वर की याचना करोगे किन्तु अब तो मुझे अपना वचन निभाना ही पडेगा। अब मैं तुम्हारे घर से नही जा सकती। क्योंकि जहा प्रेम है, मैत्री का व्यवहार है वही मैं रहती हू। अब यदि मुझे कोई यहा से बलात् निकालना भी चाहे तो भी नही जाऊगी। सदा तुम्हारे घर पर ही रहूगी। जहा फूट है, कलह-कदाग्रह है वहा हजारो आग्रह होने पर भी मैं नही जाती क्योकि मुझे एकता से प्यार है।"

सेठ सुखी हो गया और अपनी पुत्रवधू के परामर्श की मुक्तकठ से प्रशसा करने लगा। अत मित्रो! फूट को कभी भी प्रश्रय मत दो। परस्पर मित्रता और सच्चे प्रेम का व्यवहार करो। सर्वत्र विजय होगी।

जहा परस्पर प्रेम है, वहा लक्ष्मी का वास।
लक्ष्मीधर की बात से, होता यह आभास॥

भाग्य परीक्षा

एक गरीब ब्राह्मण था। जीवन निर्वाह के लिए वह इधर-उधर भटकता रहता था। किन्तु किस्मत के अभाव मे कुछ भी उपलब्ध नही होता था। वह एक दिन जगल मे शौच आदि कामो से निवृत्त होकर वापिस लौट रहा था। मार्ग मे एक चमकीला पत्थर उसकी नजर मे आ गया। पत्थर का आकार सुन्दर एव आकर्षण होने के कारण ब्राह्मण ने उठा लिया। वह विशाल वट-वृक्ष के नीचे छाया मे बैठा-बैठा चिन्तन करने लगा—वह दिन मेरा भी धन्य होगा जब आज जैसे ठण्डे दिन मे खीर-मालपुए खाने को मिलेंगे। मिष्ठान की इच्छा करते ही उस ककर के प्रभाव से एक थाल भर खीर-मालपुए उसके सामने हाजिर हो गये। वह तीन दिनो का भूखा तो था ही। इतना डटकर खाया कि खाते-खाते पेट फटने की नौबत आ गई। फिर भी दैविक शक्ति के कारण वह थाल खाली नही हुआ। अधिक खाने से नीद आना स्वाभाविक था। ब्राह्मण ने सोचा—अब तो यदि सात मजिल का महल मिल जाय तो उसमे आराम से सोऊ।

उस ककर (चितामणि रत्न) के प्रभाव से ब्राह्मण की भावना सफल हुई। भयकर जगल मे भी आलीशान प्रासाद खडा हो गया। ब्राह्मण मन ही मन फूलने लगा—मुझ-सा भाग्यशाली इस दुनिया मे कोई नही है। सब मन वाछित पूर्ण हो रहे है अब तो मखमली शय्या चाहिए। वह भी हो गई। ऊपर की मजिल मे शीतल पवन बह रही थी। वह सो गया।

रत्न अधिष्ठित देवी ने सोचा—यह ब्राह्मण कभी कुछ मागता है कभी कुछ। किन्तु अब इसकी भाग्य परीक्षा करनी चाहिए। देवी ने कौए का रूप बनाया। जहा वह ब्राह्मण सोया हुआ था वहा आकर वह कौआ बैठ गया और जोर-जोर मे काव-काव करने लगा। इधर उस ब्राह्मण को नीद आ रही थी। कौए के कर्कश कोलाहल से उसकी नीद टूट गई। नीचे से ऊपर तक आग बबूला हो गया। रग मे भग करने वाला यह कौआ कहा से आ गया ? कोवे को उडाने के लिए उसने दो-तीन बार वहा से ही हाथो से प्रयास किया। फिर भी वह नही उडा। ब्राह्मण आलसी तो था ही पलग पर लेटे-लेटे ही उसने उस ककर को कौवे पर फेका। देवी रत्न लेकर चली गई। पीछे से ब्राह्मण मूल अवस्था मे रह गया। फूट-फूटकर रोने लगा—हाय ! ऐसा मुझे पता होता कि वह चिन्तामणि रत्न था तो मै उसे क्यो फैंकता ? मैं स्वय उठकर कौवे को उडा देता। किन्तु अब क्या ?

मनुष्य का जन्म चिन्तामणि रत्न के समान है। जसे खोया हुआ रत्न मिलना कठिन है, वैसे ही मनुष्य का जन्म दुष्प्राप्य है। अज्ञानी मनुष्य आलस्य एव प्रमाद वश रत्न को गवा देते हैं, किन्तु ज्ञानीजन इस रत्न का पूरा-पूरा लाभ उठाते है।

सुरमणि सम अनमोल यह, मानव का अवतार।
लाभ कमाते विज्ञ जन, नही खोते बेकार ॥

धन से अनर्थ

एक दिन सरस्वती ने कहा—"लक्ष्मी ! दुनिया मे मैं सबसे बड़ी हू। मेरा सर्वत्र स्वागत होताहै। मेरे आगे तू निस्तेज हो जाती है। 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' इस कहावत को सब जानते हैं।" लक्ष्मी को यह सब कब सहन था। वह तमककर बोली—"बहन सरस्वती ! तेरा वाग्-प्रलाप कानन कुसुम की भाति बेकार है। मुझे देखकर दुनिया पागल बन जाती है। कृत्य-अकृत्य को भूल जाती है। अत सबसे बडी मैं हू। इसका साक्षात प्रमाण देकर बताती हू।" लक्ष्मी ने दैविक शक्ति से मार्ग के पास जगल मे एक बहुत बडी सोने की पाट (शिला) रखी। इतने मे दो

राजपूत वहा आ गये। एक ने कहा—"यह सोने का पाट मेरा है, मैंने पहले देखा है।" दूसरे ने कहा—"मैं इसका हिस्सा लेकर रहूगा।" इस तरह दोनो मे परस्पर झगडा हुआ। तलवारे खिची। दोनो ही यमराज के अतिथि बन गये।

उसी जगल मे एक बाबा की झोपडी थी। बाबा भिक्षा लेकर आ रहा था। उसकी नजर सोने की पाट पर पडी। दिल ललचाया। खाना-पीना सब भूल गया। सोचने लगा क्या करू? पाट बडी बहुत है, झोपडी मे कैसे ले जाऊ? ऐसा विचार कर वह वही बैठ गया। अधेरा छा गया। उसी मार्ग से ६ चोर चोरी करने जा रहे थे। सबके पास अस्त्र-शस्त्र थे। सोने की चमक देखकर वे सब उसके पास आये। वहा बाबा बैठा था। चोरो ने पूछा—बाबाजी, यहा कैसे बैठे हो? बाबा बोला—इसी झोपडी मे रहता हू। यह मेरी शिला है। इसकी रक्षा के लिए बैठा हू।

चोरो ने पूछा—तुम्हारे पास सोने की पाट कहा से आई? बाबा बोला—भगवान् की भक्ति करते हुए २० वर्ष हो गये। भगवान् मेरे पर प्रसन्न हुए और उन्होने यह भेंट भेजी है। चोरो ने बाबा को ललकारते हुए कहा—अरे ढोंगी! तू साधु कहलाता है। तू सोने की पाट का क्या करेगा? इसे तो हम लेगे। जिदगी प्रिय है तो यहा मत ठहर।

"तुम कैसे ले जाओगे? इस पाट का मालिक तो मैं हू। किसी भी स्थिति मे यह पाट नही मिलेगा।"

बस फिर क्या···चोरो ने बाबा पर तलवार चलाई। बाबा परम धाम पहुच गया। सभी चोरो की आकृति प्रफुल्लित हो रही थी। सबने सोचा अब चोरी करने की आवश्यकता ही नही है। क्योकि यह धन इतना है कि जीवनपर्यन्त खाए फिर भी यह खत्म होने वाला नही है। लेकिन पाट को किस तरह ले जाए। टुकडे किये बिना तो ले जाना असम्भव है। अतः पाट के छ टुकडे कर लें। पर साधन के अभाव मे टुकडे कैसे हो? इतने मे उनको गाँव मे रहने वाला सुनार याद आ गया। वह अपना मित्र है। हर कार्य मे अपने को सहायता देता है तो इस कार्य में भी अवश्य सहायक बनेगा।

चार चोर तो पाट की रक्षा मे रहे। दो चोर सुनार के घर पहुँचे। सुनार को जगाकर बोले—"मित्र! छैनी हथौडा आदि लेकर चलो। सोने की पाट को टुकडे करना है।" चोरो ने आदि से लेकर अन्त तक की कहानी सुना दी।

सुनार बोला—मुझे क्या मिलेगा? चोर बोले—छः हम हैं, सातवा तू है। बराबर बटवारा कर लेंगे। सुनार बडा चालाक था, धूर्त था। उसने सोचा अवसर का लाभ उठाना ही चाहिए। सुनार जरा मुस्करा कर बोला—मित्रो! यह काम मेहनत का है। मुझे लग रही है भूख। पेट भरे बिना श्रम का काम हो नही सकता। अत जरा ठहरो, खाना बनालू। मैं खा लूगा। तुम भी खा लेना।

सुनार रसोई मे गया। सात लड्डू तैयार किये छ तो बडे और सातवा छोटा। सातवे के अतिरिक्त छ. ही मोदको मे जहर मिला दिया।

सुनार जगल मे चोरो के साथ पहुचा। पाट को देखकर बहुत खुश हुआ। सुनार बोला—मित्रो ! काम बहुत वडा है। तुम्हे भी भूख लगा होगी। अत पहले पेट पूजा, फिर काम दूजा। पहले कुछ खा ले फिर काम शुरू करे। यह बात चोरो के मन मे भी जच गई। सुनार ने झट सातो लड्डू निकाले। वडे-वड़े लड्डू चोरो को दिए और स्वय ने छोटा रखा। चोरो को सन्देह उत्पन्न हुआ और सुनार से पूछा—मित्र ! हम सबको वडा और खुद के लिए छोटा लड्डू। क्या इसमे कोई रहस्य है ?

सुनार ने कहा—मैं सग्रहणी के रोग से सगस्त रहता हू। अत मैं अधिक नही खा सकता। चोरो की शका दूर हुई। लड्डू वडे प्रेम से खाए। स्वादिष्ट होने के नाते चारो ने सुनार को धन्यवाद दिया। सुनार ने सोचा—जहर चढने मे कुछ समय लगेगा। अत अधिक समय यहाँ ठहरना मेरे लिए श्रेयस्कर नही है। शौच के बहाने चोरो से पूछकर वह झाडी जाकर छिप गया।

इधर चोरो के मन मे विकृति आ गई। उन्होंने सोचा—पाट को तोडने का तो सारा सामान पडा ही है। स्वत ही तोड लेंगे सुनार को हिस्सा क्यो दिया जाय ? उसे मारने की योजना बनाने लगे। उधर छुपा हुआ सुनार चोरो की मत्यु की इन्तजार मे था। चोरो को बेहोश जैसा देखकर सुनार आया। चोर बोले—मित्र ! इतनी देर से कहा गया था ? हमे तो प्यास लग रही है। पानी पिला। सुनार ने सोचा वस पानी पीते ही सबके प्राण पखेरू उड जाएगे। सुनार लोटा-डोर लेकर कुए पर गया झुककर पानी निकालने लगा कि चोरो ने धक्का मार-कर उसे कुए मे डाल दिया। चोर पाट के पास आये। तोडने की तैयारी करने लगे। शरीर में जहर फैल गया। छ ही चोरो ने सदा के लिए आँखे मूद ली। इस तरह सोने की पाट ने दस व्यक्तियो के प्राण ले लिए। परन्तु वह किसी के काम नही आई। लक्ष्मी ने कहा—बहन सरस्वती ! देखी मेरी करामात। सारा ससार मेरे पीछे पागल बन रहा है। मुझे प्राप्त करने के लिए लडते हैं, स्वय नष्ट हो जाते है फिर भी उनकी लालसा शात नही होती।

सरस्वती ने कहा—बहिन लक्ष्मी ! अज्ञान के वश मे दुनिया तेरे पीछे पागल बन रही है। प्राणो की आहुति देती है। किन्तु जो ज्ञानी है, जिनका विवेक जागृत है, वे धन को अनर्थ का मूल मानते हैं। नाशवान मानते हैं। अत तू तेरी माया को समेट ले अन्यथा न जाने कितने अज्ञानी लोग अपने प्राणो से हाथ धो बैठेंगे।

सिद्धातो मे परिग्रह को दु ख की खान बताया गया है। परिग्रह को पाप

बताया गया है। धन के चक्र मे फसकर इन्सान कृत्याकृत्य को भूल जाता है। अत महापुरुषो को इस चक्र मे निरन्तर दूर रहना चाहिए।

इस दुनिया मे अर्थ हित, होते बडे अनर्थ।
अर्थार्जन मे जिन्दगी, फिर क्यो खोते व्यर्थ ॥

सच्चे मित्रों का संग

एक भोला बनिया था। वह कई वर्षों से रोगग्रस्त रहता था। एक दिन एक अच्छे वैद्य का योग मिल गया। बनिया बोला—वैद्यराज जी! आप मुझे कोई ऐसी औषधि बताइये जिससे मैं स्वस्थ हो जाऊ। वैद्य ने उसे अच्छी तरह देखकर कहा—आपको ४० दिन तक केवल गाय के दूध पर रहना पडेगा निश्चित ही आपकी बीमारी जड से कट जाएगी। क्योकि गाय का दूध हल्का और पाचक होता है।

बनिया घर गया और सोचने लगा—अब तो प्रतिदिन ६-७ सेर दूध चाहिए। अत गाय लेनी चाहिए। वह पशुओ के बाजार मे गया। अनेको गाये देखी। कई दुबली पतली थी। कई रग-बिरगी थी उन सब मे एक हृष्ट-पुष्ट गाय थी जिसके गले मे घटी बधी हुई थी। उसने सोचा—यह गाय अच्छी होनी चाहिए। क्योकि अन्य किसी के गले मे घण्टी नही है। हृष्ट-पुष्ट होने के नाते दूध भी अच्छा होना चाहिए। बस, किसी से सलाह भी नही की और उसने मुहमागी कीमत देकर गाय को खरीदकर घर ले आया। उस बनिये की स्त्री बडी चतुर थी। उसने गाय को देखते ही पति से पूछा—यह गाय कितनी बार ब्याई है? बनिया—यह तो मैंने नही पूछा।

स्त्री—यह दूध कितना देती है?

बनिया—यही भी मैंने नही पूछा।

स्त्री—क्या इसे दुह कर देख लिया था?

बनिया—शरीर मे यह गाय हृष्ट-पुष्ट है, गले मे सुन्दर घण्टी है। यही सोचकर खरीदी।

स्त्री—आपके पैसे पानी मे गये। यह गाय बाझनी है। दूध बिलकुल भी नही देगी। केवल शारीरिक पुष्टता क्या काम आयेगी?

बनिया—अगर ऐसी बात है तो घबडाने की कोई बात नही है। गाय किसी और को बेच दूगा। कीमत आ जायेगी फिर अच्छी दूध वाली गाय ले आऊगा। दूध पीता रहूगा।

स्त्री—पतिदेव ! सारी दुनिया आप जैसी भोली नही है। परीक्षा किये विना कौन लेगा ? इसलिए चुप रहना ही अच्छा है। दूसरो को बताने से खुद की मजाक होगी।

गाय उसी के गले मे बध गई और पैसे सब पानी मे चले गये।

बाह्य आडम्बर और झूठे ढोग दिखाने वाले साधुओ के सग से आत्म-ज्ञान रूपी दूध कभी भी नही मिल सकता। अगर किसी को आत्मा का ज्ञान करना है, जीवन का कल्याण करना है तो त्यागी वैरागी एव सच्चे साधुओ का सत्सग करना चाहिए।

आत्मज्ञान के दूध का, करना है यदि पान।
(तो) त्यागी सच्चे सत का, करो सग अम्लान॥

ढोंगी बाबा

एक बावाजी अपने चेले के साथ किसी गाव की ओर जा रहे थे। मार्ग मे एक गन्ने का खेत आया। उसे देखकर बाबा जी के मुह मे पानी आ गया और चेले से कहा—यह थैला लेकर जाओ, इसमे जितने समा सके उतने गन्ने भर कर ले आओ। चेला होशियार था। खेत मे घुसा अपना काम करने लगा। बाबा जी बाहर खडे पहरा दे रहे थे। इतने मे चार किसान आये। चारो के हाथ मे भाले थे। गुरुजी घवडाये अगर चेला गन्ने तोडता हुआ पकडा गया तो पीटा जायेगा। अब तो कोई न कोई कला चलानी चाहिए।

गुरु ने मधुर स्वर मे गाना शुरू किया—"संत पकड लो सत पकड लो आ गये गर्भ धारी।" गाने की कला से किसानो का मन आकर्षित हो गया। पद सुनने मे वे लीन हो गये। इस गाने मे युक्ति यह थी किसान एक अर्थ समझे और चेला दूसरा अर्थ समझे। इस पक्ति से किसानो को कहा गया कि ससार से यदि छुटकारा पाना हो तो सत को पकड लो अर्थात् सत समागम करो। गर्भाधारी अर्थात् यम के दूत आने वाले है। चेले से कहा—खेत के मालिक आ गये हैं। अत गन्ने जल्दी-जल्दी भरो।

बावाजी ने दूसरी पक्ति फिर वोली—लम्बे हो तो छोटे कर लो, करलो गुप्ता धारी। किसानो को समझाते हुए वोले—तुम्हारे जन्मातर का मार्ग लम्बा है सन्त समागम से छोटा कर लो। दूसरे अर्थ मे चेले से कहा—गन्ने यदि वडे हो तो छोटे कर थैले मे छिपा लो। भजन के तीसरे पद्य मे कहा—"चरमदास की मार पडेगी, पूजा होसी भारी।" किसानो से कहा—यदि तुम सत समागम

नही करोगे तो जानवरो का जन्म धारण करना पडेगा और चाबुक आदि की मार खानी पडेगी। शिष्य को चेतावनी देते हुए कहा—अगर ज्यादा देर करोगे तो तुझे जूते की मार खानी पडेगी। बाबा ने सोचा—चेला अभी तक तो आया ही नही, उसे समझाने के लिए चौथे पद्य मे कहा—"अन्दर पूजा होसी थारी बाहर होसी म्हारी।" इस पद्य मे किसानो को कहा गया—यदि भगवान् की भक्ति नही करोगे तो नरक मे तुम्हारी मरम्मत होगी, और बाहर भी। चेले से कहा—समय बहुत हो गया है किसान लोग अन्दर तुझे मारेंगे। बाहर मुझे भी मार खानी पडेगी।

चेला बडा विचक्षण था। उसने दस बारह गन्ने उखाडे थे। उनके टुकडे थैले मे भर रहा था। बाहर निकलने की तैयारी थी। चेले की प्रतीक्षा मे बाबा ऊब गया। क्या हुआ अभी तक चेला नही आया? उससे रहा नही गया जोर से फिर पाचवे पद्य मे कहा—"राम नाम को रटकर चेले टप जा परली क्यारी।" इस पद्य मे किसानो को कहा—तुम राम नाम लेकर ससार-समुद्र से पार पहुच जाओ। शिष्य को चेतावनी थी कि अब खतरा बहुत बढ गया है इसलिए राम का नाम लेता हुआ परली तरफ की क्यारी से बाहर निकल जा। इस तरफ आयेगा तो किसान पकड लेगे।

चेला थैला लेकर बडी चतुरता से बाहर आ गया। किसान भजन सुनने मे इतने लीन थे कि किसी को तनिक भी पता नही लगा। बाबा की करामात पर चेला बहुत खुश हुआ।

साधुओ का चोला पहनकर जो हिंसा करते हैं, झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, कराते हैं उनका कभी कल्याण नही हो सकता और न ही दूसरो का कल्याण भी कर सकते हैं। स्वय भी डूबते हैं और दूसरो को भी डूबने का मार्ग बताते हैं। अत ढोगी साधुओ से दूर रहकर सच्चे त्यागी साधुओ का समागम करना चाहिए।

ढोगी सतो का नही, हितकर होता सग।
त्यागी सतो का सतत, सुखकारी है सग॥

प्रामाणिकता

एक वैभवशाली सेठ बगीचे मे घूमने के लिये जा रहा था। मार्ग मे एक गरीब लडका रमेश मिल गया। उसने कुछ पैसो की याचना की। सेठ ने जेब से एक चवन्नी निकाल उसे देते हुए कहा—"एक आना तुम ले लो, तीन आने मुझे

वापस दे दो।" खुले पैसे नही होने के कारण उसने कहा—"मैं चवन्नी भजाकर लाता हू। आप यहा ठहरिये।" वह दौडा-दौडा गया, अधिक समय लगने से सेठ तो वहा से चला गया। जब रमेश चवन्नी भजाकर लौटा तो सेठ के न मिलने पर उसने यह निश्चय कर लिया कि अब कभी सेठ साहब इधर से गुजरेंगे तो तीन आने वापस दे दूगा।

रमेश भीख माग-माग कर अपना जीवन निर्वाह करता ही था किन्तु उन तीन आनो के वह कभी भी हाथ नही लगाता था। एक सप्ताह पश्चात् उसी मार्ग मे उसी सेठ को देखकर रमेश दौडा और पास आकर बोला—"सेठ साहब! नमस्ते। ये लीजिए आपके तीन आने। बहुत अच्छा हुआ आपके पुन दर्शन हो गये। अन्यथा इन तीन आनो का मेरे सिर पर बहुत भार था। सेठ को तनिक भी याद नही था। उसके आश्चर्य का पार नही रहा। बालक की ईमानदारी पर वह प्रसन्न हो पुन पुन उसे निहारने लगा। सेठ रमेश को अपने घर ले गया और उसे स्कूल मे भर्ती करवा दिया। रमेश की बुद्धि तीक्ष्ण होने से प्रत्येक कक्षा मे प्रथम आता था। कुछ ही वर्षो मे वह विद्वान हो गया और आगे जाकर एक अफसर बना। प्रामाणिकता और ईमानदारी के योग से रमेश का जीवन सुखी हो गया।

सच्चाई और ईमानदारी से ही मनुष्यत्व का मूल्याकन होता है। प्रामाणिक व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है। प्रामाणिकता जीवन की उच्चतम निधि है, इसकी रक्षा अवश्य ही करनी चाहिए।

सच्चाई के योग से, उन्नति हुई अगम्य।
"मुनि कन्हैया" नीति का, फल है सतत सुरम्य॥

सच्चे सुख कौन से



एक सेठ था। वह अपनी ससुराल जा रहा था। मार्ग मे थकावट उत्पन्न हो गई। उसी मार्ग से एक जाट गाडी मे जा रहा था। सेठ ने पूछा कहा जा रहे हो? जाट ने कहा—अगले गाव मे। सेठ बोला—मुझे भी उसी गाव मे जाना है। पैरो मे थकावट आ गई है। गाडी मे बैठने दोगे? जाट बोला—मुझे क्या दोगे? सेठ ने कहा—मीठे-मीठे पकवान खिलाऊगा। जाट बोला—मुझे तो और कुछ नही चाहिए। गुड-राब दो तो ले चलू।

सेठ साहब—गुड-राब से भी अच्छा खाना देगे।

जाट—सेठ साहब! इस जगत मे उससे अच्छा कुछ नही है। मुझे गुड-राब चाहिए। अगर इसके लिए तैयार हैं तो बैठ जाइए, अन्यथा नही।

सेठ ने सोचा—ससुराल मे तो बरफी पेडे आदि अच्छे-अच्छे पकवान मिलेगे

गुड-राव की तो बात ही क्या है ? जाट की शर्त स्वीकार कर ली। गाड़ी में बैठा। ससुराल पहुचा। सेठ के आदर-सत्कार के साथ-साथ जाट का भी होने लगा। दोनो भोजन के लिए बैठे। बर्फी पेडे और दूसरे अनेक प्रकार के व्यजन परोसे गये। किन्तु गुड-राव नही आई। जाट से रहा नही गया। इशारे से सेठ साहब को कहा—गुड-राव कहा है ? सेठ ने इशारे से कहा—थोडी देर बाद आयेगी। खाना तो शुरू करो।

जाट मन ही मन खीझने लगा। आखे लाल हो गई। आकृति बदल गई। सेठ पर हमला करने की सोचने लगा। बारह बजे तक तो भूखा रखा और अब यह धूल और ढेले देता है। गुड-राव की शर्त को तो भूल ही गया पर अन्य व्यक्तियो की शर्म से वह कुछ भी बोल नही सका।

सेठ ने भोजन करना शुरू किया। यह देखकर जाट का सिर फिर गया। जाट तो जाट ही होता है। उसने फेंट बाधी। हाथ मे लाठी ली। सेठ के पास जाकर बोला—वायदे को भूल गया और खाना खाने लग गया। अब इसका प्रतिफल भोगना पडेगा। तैयार हो जा।

सेठ ने सोचा—इस गवार ने अभी तक बर्फी पेडे का स्वाद नही लिया है। इसलिए 'गुडराव-गुडराव' की रटन लगा रहा है। अगर एक बार उनका स्वाद चख लेगा तो और सब भूल जायगा। कमरे मे अन्य कोई भी व्यक्ति नही था। तब सेठ उठा और जाट की थाली मे बर्फी का एक बडा टुकडा लेकर जाट की गरदन पकडकर उसके मुह मे ठूस दिया। जीभ को आस्वाद मिलते ही जाट का गुस्सा शान्त हो गया। बर्फी और पेडे दबादब खाने लगा। सेठ तो धीमे-धीमे भोजन कर रहा था। इस तरह सेठ ने जब तक भोजन किया तब तक वह जाट चार थाली भरकर मिठाई सफाचट कर गया। जाट का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा और सेठ को कहने लगा—सेठ साहब जब कभी भी आपको ससुराल आना पडे तो मुझे बुला लेना। मैं आपको गाडी मे बैठाकर ससुराल पहुचा दूगा। आज के खाये हुए पकवान तो याद आएगे। आपने मेरे पर बडी कृपा की। ऐसे मिष्ठान जिन्दगी मे कभी नही खाये। सेठ बोला—क्या गुड-राब मगाऊ ? जाट बोला—मैं मूर्ख थोडा ही हू। गुडराब मे कौन माथा लगाए।

इन्द्रियो के सुख गुडराव के समान हैं। आत्मिक सुख बर्फी-पेडे है। जब तक बर्फी पेडे के स्वाद का पता नही होता तब तक गुडराब खाने की इच्छा होती है। बर्फी आदि की रसानुभूति होते ही गुडराव को कोई भी नही खाता है। अत आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मिक सुख के स्वाद का, नही जहा तक ज्ञान।
तब तक इन्द्रिय-सौख्य मे, फसे अज्ञ इन्सान ॥

विजय का द्वार–पुरुषार्थ

छोटा गाव। दिन का समय। कडकडाती हुई धूप। धरातल गर्म। भिखारी भिखुराम, हाथ मे मिट्टी का खण्डित वर्तन, विश्राम के लिए कुए पर जा पहुचा। रुखी-सूखी रोटिया ही उसकी उदर-पूर्ति का साधन थी। वडी कठिनता से सप्राप्त खाना खाया। ठण्डा पानी पीया। अधिक थकान से शरीर मे शिथिलता। आखो मे अलसाई। विछौने के अभाव मे उसने कुए की चट्टान को शय्या मान लिया। तकिया कहा था? हाथो का ही आधार लेना पडा। खभे की छाया मे लेटते ही निद्रा देवी का अतिथि वन गया।

सन्ध्या का समय। दिनकर का अपने घर प्रस्थान। पश्चिम दिशा की अरुणिमा। लोगो का आवागमन। वैल आदि पशुओ की खनखनाहट ने भिखुराम को जगा दिया। आखे खुली। सुहावने दृश्य का अवलोकन। कुए पर दृष्टिपात होते ही उसके मस्तिष्क मे चिन्तन का प्रवाह प्रवाहित होने लगा—नवनीत-सी कोमल रस्सी। कुए मे जाती है, वाहर आती है। इस उपक्रम से कठोर हृदयी पाषाण भी कोमल व समतल वन गया। घिस गया। 'रसरी आवत जात है, सिल पर परत निशान।'

वुद्धि-मथन। गहन चिन्तन। अनुशीलन करने से तत्व की सप्राप्ति हुई कि यह सव उद्यम का फलित है। क्या उद्यम से मेरे जीवन मे परिवर्तन नही आ सकता? क्या मैं दुखद इस रक-अवस्था को देश-निकाला नही दे सकता? राजलक्ष्मी का अधिस्वामी वनना क्या कठिन है? नृप की कन्या के साथ विवाह का सयोग, क्या आकाश-कुसुम की भाति असम्भव? नही, कदापि नही। क्रमश उद्यम से सव।

उद्यम जीवन का अमर पाथेय। निराशा मे आशा की किरण। मूर्च्छित मानस मे सजीवनी। कार्य-सिद्धि का सफल आयुध।

भिखुराम उठा। चेहरे पर भिन-भिनाती मक्खिया। तन पर फटा आवरण। हाथ मे मिट्टी का खण्डित वर्तन। किन्तु हृदय मे हिम्मत का उफान था। नस-नस मे साहस की सरिता सचालित थी। पैरो की गति की शिथिलता का अवमूल्यन। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास से वेपरवाह। चला। तेजी से चला। अनेको गावो व नगरो मे सैर करता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुचा। लक्ष्य था—दिल्ली का।

सदर वाजार मे उसने लोगो से पूछा—"राजमहल किधर है?"

"क्या काम है राजमहलो से?"

"मुझे राजकन्या के साथ शादी करनी है।"

"पागल कही का, फिजूल वकवास क्यो कर रहा है?"

"फिजूल कैसे? आप तो शादीशुदा हैं और मुझे पागल वताकर टालमटोल करना, कहा की सस्कृति का न्याय?"

"रे मूर्ख ! शादी के लिए कई साधनो की अपेक्षा है।"

"देखिए, जुबान पर नियन्त्रण। जैसे आपके पास साधन, वैसे मेरे पास भी मौजूद है। हाथ, कान, आख आदि सभी इन्द्रियो मे परिपूर्ण हू। किसी मे भी क्षताग नही हू। तो फिर ?"

"आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज मे लडकी उसी को मिलती है, जिसके पास कुछ न कुछ धनराशि हो। तुझ से गरीब को पूछेगा कौन ? जिसमे राजा ।"

"वर्तमान मे तो लडकियो की कमी नही है, कमी है लडको की। लडके वाले मुह बाये बैठे है। तीस, चालीस, पचास-पचास के आग्रह होते हैं। फिर भी उनका सिर ठनकता रहता है। उनके पीछे-पीछे भटकना पडता है, तब कही बडी मुश्किल से सबध । मुझे क्या फिक्र। मैं तो प्रत्युत तीस-चालीस का दहेज लेकर ही शादी करूगा, वह भी राज-कन्या से।"

आखिर पूछताछ करता हुआ राजमहल के दरवाजे पर जा पहुचा। द्वारपाल ने रोका—"राजा के निर्देश बिना कोई भी अन्दर नही जा सकता। ठहर जाओ। कौन हो तुम ?"

"मै मानव हू। पदयात्रा करता हुआ बहुत दूर से आया हू। राजा से मिलना है। बहुत जरूरी काम है। एक पथिक को निराश करना, क्या तेरे लिए शोभास्पद है ? मन की हविस को पूरी करने दो।"

राजा उच्च सिंहासन पर बैठा था। अनेको योजनाए घडने मे सलग्न था। मत्री आदि बडे-बडे विशेषज्ञो की सलाह मे तल्लीन था। अचानक भिखुराम पहुचा। वाणी का बाध टूटा। हृदयस्थ विचारो को व्यक्त करने मे वाचाल बना "मुझे और किसी की हविस नही है। हविस है—आपकी लडकी से शादी करने की। इसीलिए बहुत दूर से आया हू। दिल मे हिम्मत है। आशावादी हू। विचारो को क्रियान्वित करने के लिए आपके सन्मुख खडा हू।"

कर्कश शब्दावलि से कानो मे खनखनाहट। आखो मे शोणित का स्रोत। अधरावलि मे प्रकम्पन। मुखाकृति परिवर्तन। राजा भन्ना उठा—"यह क्या मामला ? समझ मे नही आ रहा है कुछ। कौन है यह दरिद्री ? क्यो कर रहा है वृथा बकवास ? इसे मत रहने दो मेरी दृष्टि के सामने।"

दिल मे जोश। आखो मे रोष। उद्घोष करता हुआ भिखुराम बोला, "राजन् ! यह व्यक्ति अपनी हविस को पूरी करके जाने वाला है, अन्यथा नही। निश्चय पर अडिग है हिमालय की भाति। किन्ही भी झझावतो से विचलित होने वाला नही है। राजकन्या से शादी और कुछ भी तमन्ना नही है।"

उसके अभूतपूर्व साहस से तत्रस्थित सभा के वरिष्ठ सदस्यो मे तहलका मच गया, सन्नाटा छा गया। यह कौन है ? राजा के आगे भी निर्भय निस्सकोच, हिम्मती

साहस की पराकाष्ठा जिसमे। राजा और रक मे परस्पर तना-तनी, गर्मा-गर्मी, अनर्गल शब्दो का अद्वितीय प्रयोग। "मैं तेरे जैसे भिखारी को कन्या नही दूगा, नही दूगा। दरिद्री कही का। मत ठहर यहा पर" क्रोधाकुल राजा ने कहा।

वह कहा इधर से उधर होने वाला था? मन्त्री ने उसे निकालने के लिए मार्ग ढूढा और कहा, "भाई! मै जैसा कहू, अगर तू वैसा करेगा, तो तुझे अवश्य ही राजकन्या मिल जायेगी।"

"विलम्ब न करें, फरमाइये क्या काम है? कठिन असाध्य कार्य करने की भी क्षमता है।"

"एक मन खरे मोती चाहिए," मन्त्री बोला। "और कुछ नही।"

वीरतापूर्वक आखो की लालिमा को द्विगुणित करता हुआ भिखु गरजा, "मत्रीवर! आप अपने वादे पर अटल रहे, अभी जाता हू।"

भिखुराम चला। दिल्ली के बाजार मे। उच्च स्वर से रटन लगाने लगा "एक मन मोती मुझे मिलने चाहिए। राजकन्या से विवाह करूगा।" सर्वत्र यही रट, यही धुन, यही आवाज। पर, सुने कौन? आखिर एक सज्जन मिला, समग्र वृत्तान्त से अवगत हुआ। उसने उसकी आखो का तेज देखा। ललाट की रेखा देखी। चमकता चेहरा देखा। हिम्मत का अजब नजारा देखा। शौर्य की पराकाष्ठा देखी। वह बोला, "महाभाग! यहा भटकने मे कुछ भी लाभ नही है। जहा समुद्र है, वहा जाओ। पानी निकालकर खाली कर दो। एक मन क्या, मोती ही मोती मिल जाएगे।"

जीवन का नया निर्माण करने समुद्र की ओर प्रस्थान। मार्ग मे कष्टो के अनेक भूचाल। सर्दी व गर्मी की प्रताडना। भूख प्यास की समवेदना। स्थान-स्थान पर दुत्कार एव तिरस्कार-दृष्टि से स्वागत। गालियो से अभिनन्दन। फिर भी भिखुराम ने साहस नही खोया। वह कायल नही बना। सबको पी गया। पुरुपार्थ मे आगे बढता गया। पुरुषार्थ ही सत्य-साधना की अमर लौ है। जीवन उन्नति का सोपान है। भाग्य-निर्माता है। त्राता है। पहुचा समुद्र के तट पर। देखा अनन्त पयोराशि को। घबराहट नही, मुस्कराहट। विषाद नही, प्रसाद। मन्थरता नही, त्वरता। मन अलसाया नही, विकसाया। कुण्ठा नही, निष्ठा। समुद्र मे पैर रखा। हाथ मे वह मिट्टी का खण्डित पात्र था ही। उससे पानी बाहर निकाल रहा है। बारह महीने बीते। पयोनिधि रिक्त नही हुआ। तथापि भिखुराम ने क्रिया नही छोडी। सलग्नता जारी रखी। उसने सोचा, आशा जीवन है, निराशा मृत्यु। आशा अमृत है, निराशा गरल। आशा गति है, निराशा कुण्ठा। अवश्य ही लक्ष्य साकार बनेगा।

उदधि अधिष्ठित देव ने इस विचित्र दृश्य को देखा। दौडा-दौडा वहा आया।

भिखुराम को ललकारते हुए कहा, "पागल! पानी बाहर क्यों डाल रहा है वृथा? क्या और कोई काम नहीं है? समय गंवाना क्या बुद्धिमत्ता है?"

"बिना प्रयोजन कोई काम नहीं होता है। हर कार्य की पृष्ठभूमि अवश्य होती है।"

"क्या प्रयोजन है? किस हेतु यह क्रिया?"

"मुझे एक मन मोती की आवश्यकता है, इसके लिए ही यह उपक्रम है।"

"अगर मोती नहीं मिलेंगे तो?"

"यह क्रिया चालू रहेगी। क्या है? बारह महीने ही हुए हैं। बारह वर्ष भी बीत जाए तो कोई परवाह नहीं। मैं अपने लक्ष्य पर अटल हूं। मुझे किसी का डर नहीं। मैं आशावादी हूं। अवश्य ही एक-न-एक दिन समुद्र खाली होगा। मन मोती मुझे मिल जायेंगे। तब होगा, मेरा यहां से प्रस्थान। पर मन मोती बिना नहीं।"

देव ने देखा, उसका साहस भरा हृदय। सुनी, उसकी ओज भरी वाणी। दिल पिघला। नवनीत की भांति पिघला। सिर झुका। विनीत शिष्य की भांति झुका। श्रद्धानत उस देव ने कहा, "पुरुष-पुंगव! धन्य है तुम्हारी कष्ट-सहिष्णुता को। धन्य है तुम्हारी हिम्मत की पराकाष्ठा को। आशापुंज! चेहरे पर निराशा की रेखा नहीं। कायरता नहीं। घबराहट नहीं। तुम्हारी निर्भयता पर, लक्ष्य-निश्चलता पर, धीरजता पर प्रसन्न हूं। बहुत प्रसन्न हूं। लीजिए एक मन मोती। कीजिए अपना काम। पीजिए शान्ति का अमृत।"

भिखुराम चला। राजमहल की ओर चला। कंधे पर मन मोती का भार। आकृति पर आह्लाद की लहर। पैरों में स्फूर्ति का संचार। आंखों में अभिनव उन्मेष। हृदय में नई चौख। डग भरता हुआ राजमहल में मंत्री के पास पहुंचा और बोला, "मंत्रीवर! मन मोती हाजिर है। पूरी कीजिए मेरे मन की हविस। राजकन्या के साथ शादी।"

मंत्री भौंचक्का-सा रह गया। आंखें जमीं में गड़ गईं। कान टूटकर हाथों में आ गए। सिर पर पसीना आ गया। विवेक दब गया। क्रोध उभर आया। जोर से बोला, "होश में बात करो। क्या नशे में चूर हो? पागलों के सिर सींग नहीं होते, बुद्धि नहीं होती। क्या दिमाग खराब है? क्यों वृथा बकवास?"

"आप मंत्री हैं। अपने वचन को निभाएं। वादे को याद करें। महापुरुष अपने वचन के लिए प्राणार्पण कर देते हैं। बदलते नहीं हैं। अडिग रहते हैं। मेरी कामना क्रियान्वित करें"—भिखुराम ने कहा।

मंत्री तिटपिटाता हुआ राजा के पास गया। समग्र घटना चक्र से राजा को अवगत किया। नृप ने कहा, "मंत्री! चिन्ता की क्या बात है? पुत्री का विवाह तो करना ही है। जैसा तुम चाहोगे वैसा हो जाएगा।"

मुस्कराते हुए मत्री ने कहा, "राजन् ! ससार मे मैने अनेको बुद्धिशील एव दक्ष व्यक्तियो को देखा, किन्तु ऐसा पुरुषार्थवादी, प्रियवादी, उद्यमी, साहसिक, निर्भीक और भाग्यशाली व्यक्ति नही देखा।"

"अवसर का लाभ उठाये। ऐसा सुन्दरतम समय पुन -पुन मिलना असभव। गहराई से चिन्तन करे। कन्या शादी योग्य हो रही है। भिखुराम का घर बैठे ही सयोग। मेरा सहयोग। ऐसा उपयुक्त अनुयोग। प्रयोग मे विलम्ब क्यो····?"
बस, फिर··· क्या था···?

विजय प्राप्त होती उसे, जो करता पुरुषार्थ।
भिक्खुराम का रम्यतर, है दृष्टान्त यथार्थ॥

होनहार

दुख ही दुख।

एक अनाथ बच्चा अनिल।

जीवन नौका डगमगाने लगी। दीपक बुझने लगा। माता-पिता ससार से चल बसे। व्यापार मे घाटा लगा। भरपूर घाटा लगा। जमीन-जायदाद सब हाथो से चली गई। रहने वाले प्रासाद को भी लोगो ने छीन लिया। लाखो की सम्पदा असम्पदा मे परिणत हो गई। खाने को अनाज नही। पहिनने को कपडे नही। रहने को मकान नही। बडी समस्या, भयकर समस्या, परिजन दूर। अब किसका आधार? अब किसका आश्रय? अनिल सकट मे पड गया। किसी ने भी सहयोग नही दिया?

बेचारा अनिल दर-दर भटकता है। उदर-पूर्ति एक पहेली बन गई। गालियो की बौछार को स्वर्ण की बौछार, अपमान को सम्मान, दुत्कार को सत्कार, तीक्ष्ण शूलो की चुभन को कोमल फूलो की शय्या समझने लगा। हृदय मे निश्छल, वाणी मे मधुर, व्यवहार मे सज्जन, प्रकृति मे भद्र, आकृति मे सुन्दर, अनिलकुमार फिरता-फिरता करोडपति सेठ सागरचन्द के भवन पर जा पहुचा। दरवाजे पर खडा-खडा रोटियो की याचना करने लगा। पर, सुने कौन? सेठ अपने कार्य मे व्यस्त था। हाल मे मस्त था। नही किसी की फिक्र करता, नही किसी का जिक्र सुनता। घर-घर मे भिक्षा लेते-लेते अचानक एक गुरु और शिष्य का वहा आगमन। हाथ मे झोली पात्र। सेठ ने देखा, कमरे से बाहर आया। बद्धाजलि वदन किया। चरणो मे सिर रखा। गुरु के साथ-साथ वह अन्दर गया। भक्ति से दान दिया। गुरु वापस मुडे। अनिल को देखा। गुरु ज्ञानी थे। रहा नही गया। सहसा मुह से आवाज निकली 'शिष्य! द्वार पर जो यह लडका खडा है। रोटियो के लिए

तड़प रहा है। हाय-हाय करता है। करुणा-भरी चीख भरता है, सिसकियां लेता है, फिर भी इसे कोई नहीं पूछता, किन्तु कुछ ही वर्षों बाद यह अनाथ बच्चा इसी घर का मालिक, सर्वेसर्वा बनेगा।"

यह शब्दावलि सेठ के कानों में टकराई। शरीर में विद्युत, आंखों में शोणित, होंठों में कम्पन, चेहरे पर अवसाद। क्या यह भिखारी मेरे घर का आधिपत्य करेगा? नहीं करने दूंगा? नहीं करने दूंगा। अभी इसे यमराज का अतिथि बना दूं। फिर क्या··· ··? सेठ कमरे में गया, योजना घड़ने लगा, कल्पना उभरने लगी। चुपके से दो चाण्डालों को बुलवाया गया।

चाण्डाल आए। बोले, "सेठ साहब! हाजिर है आपकी सेवा में, फरमाइए हमारे लायक कोई काम-काज।" गुप्त कमरे के एकान्त में ले जाकर सेठ ने कहा, "चाण्डालो! मैं तुमको विश्वासी मानकर एक बात कह रहा हूं। किसी के भी सामने व्यक्त मत करना।"

"आप हम पर विश्वास रखें। कोई भी बात इधर-उधर नहीं होगी," चाण्डालों ने कहा, "जो कार्य करवाना है अविलम्ब फरमाइए।"

सेठ ने अनिल की ओर इशारा करते हुए कहा, "यह भिखारी मेरा दुश्मन है। इसे मैं जीवित देखना नहीं चाहता। अतः दूर जंगल में या श्मशान-भूमि में इसे ले जाओ और मार दो। वापस निशानी के रूप में इसकी अंगुली ले आना। इस कार्य की प्रसन्नता पर मैं तुमको कोटि-कोटि बधाइयां दूंगा। एक-एक हजार रुपये भी इनाम के रूप में दूंगा। जल्दी जाओ। सावधानी रखना। काम पटुता से करना।"

रुपयों की चमक में बड़ी शक्ति होती है। आकर्षण होता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी इस चिकनी घाटी पर फिसल जाते हैं। कृत्याकृत्य भूल जाते हैं। चाण्डाल चले। अनिल के पास आए और बोले, "यहां तुमको कुछ भी नहीं मिलेगा। चलो बाजार में। अगर मिठाइयों से मुंह मीठा करना हो तो।" भूख से व्याकुल, दुःख से आकुल, भोला बालक उन यमदूतों के साथ चला। पर कहां थी मिठाई? थी केवल ऊपर की सफाई। श्मशान-भूमि में पहुंचे। अनिल का विवेक जागृत हुआ। अरे! यहां कहां बाजार? यहां कहां पकवानों का मौका? यह तो निरा धोखा है।

चाण्डालों के दिल में दया के भाव कहां थे। चाकू निकाला गया। कत्ल के लिए उद्यत हुए। अनिल के वक्ष-स्थल पर जा बैठे। अनिल चिल्ला उठा। आंखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई। जल-विहीन मछली की तरह तड़पने लगा। वचन-वीणा के तार झनझना उठे। "महानुभावो! मैं निर्दोष हूं। अनाथ बच्चा हूं, मुझे बचाइये। आपका सहारा है, उपकार नहीं भूलूंगा।"

उसकी करुणार्द्र चीत्कार से चाण्डालों के दिल डोल उठे। आत्म-ग्लानि से

मन भर गए, अनिश्चितता के सागर मे गोते खाने लगे। क्या करे ! दुधमुहे बच्चे की हत्या करना भयकर पाप है। इसके चमकीले चेहरे से आभास होता है, यह पुण्यवान् है। किस्मत वाला है, कैसे मारा जाए ? परस्पर चिन्तन चला। विचारो मे परिवर्तन आया।

चाण्डाल बोले, "भाई ! डर मत, मारेगे नही। पर अगुली काटकर अवश्य लेंगे। हम तुझे जीवित छोड देगे। पर इस नगर मे कभी मत आना। अन्यत्र जहा इच्छा हो, तैयार हो जाओ, चाकू आ रहा है।"

अनिल की आत्मा कराह उठी, कौन सुने, बालक की हृदय-विदारक, दारुण पुकार ? चाकू चला, अगुली कटी, खून की धारा बह चली।

चाण्डाल सेठ के घर आए और बोले, "आपने जैसा कहा था, वैसा ही करके आए है। यह लीजिए उसकी अगुली, दीजिए इनाम।"

सेठ बहुत खुश हुआ। चेहरा खिल उठा, कमल की भाति। कामना साकार हुई। आएगी सुख से नीद। "चाण्डालो ! तुम्हे कोटि-कोटि धन्यवाद, यह लो पुरस्कार।"

अनिल उष्ण सिसकिया लेता हुआ इधर-उधर भटक रहा था। सेठ शान्तिलाल कही जा रहे थे। उनका योग मिला, हृदय की तडप रखी। निराधार को आधार। बुझते दीपक को तेल, डगमगाती नैया को पतवार, गिरते महल को खम्भा, बस, यही चाहिए, और कुछ नही ।

शान्तिलाल ने उसे भाग्यशाली समझा। आश्वासन दिया, अपना पुत्र मानकर उसे घर ले गए। अब उसका पालन-पोषण वही होने लगा। अनिल का जीवन शान्ति के सौम्य वातावरण मे व्यतीत होने लगा। माता-पिता के दुख को भूल गया। सेठजी के पुत्रो मे वह दूध और शक्कर की भाति एक रस हो गया। अनिल को कोई कह नही सकता कि यह सेठजी का पुत्र नही है। सेठजी ने पढाई की व्यवस्था की। कुछ ही वर्षो मे अनिल पढ-लिखकर दक्ष बन गया। हर कला मे निपुण। प्रकृति मे सौम्य। वाणी मे अमृत। वह किसकी मनोभूमि को आकर्षित नही कर सकता था। अडोसी-पडोसी भी उससे प्यार करते, घरो मे बुलाते, मोहल्ले के लिए वह जादू बना। श्रद्धा-पात्र बना। उसकी महिमा, उसकी गरिमा, उसकी वरिमा, सर्वत्र फैलने लगी। कुसुम-पराग की भाति। व्यापार मे कुशल। व्यवहार मे कुशल। आचार मे कुशल। आस-पास के गावो व नगरो मे अनिल की कीर्ति-पताका अनिल की भाति फहराने लगी।

अनिल शादी योग्य हुआ। बडे-बडे सेठ साहूकार उससे सम्बन्ध के लिए आने लगे। वह सेठ (सागरचन्द) भी आया। शान्तिलाल से मिला और बोला, "मेरी लडकी सरलेश को आप देखे। मैं चाहता हू, आपके सुपुत्र अनिलकुमारजी के साथ

सम्बन्ध हो जाए।"

सागरचन्द के उत्कट प्रयत्नो पर अनिल का सबध निश्चित हो गया। विवाह की तैयारिया होने लगी। विभिन्न मिठाइयो की सुन्दर परिमल से सारा मोहल्ला महकने लगा। घर की अभूतपूर्व सजावट के आगे इन्द्रसभा का सौन्दर्य भी मन्द-सा प्रतीत होने लगा। बारातियो को ठहराने नई डिजाइन का नया गेस्ट हाऊस। उनकी दैनिक आवश्यकताओ का अनुपम इतजाम, दूल्हे के लिए अलग आलीशान कमरा। जिसकी चमक-दमक मानो शीशमहल को भी परास्त कर रही हो। सेठ के दिल मे आकाश की भाति उल्लास। घर मे लक्ष्मी का निवास। व्यापार मे दिनो-दिन विकास। एक ही प्रकाश 'सरलेश' खूब ठाठ-बाट से ब्याह। दिल खोलकर खर्च करूगा।

शान्तिलाल ने भी अच्छी-खासी तैयारी की। दूल्हे को आलीशान कपड़ो व बहुमूल्य आभूषणो से सजाया गया। बारात पहुची। अपूर्व स्वागत। अपूर्व प्रबन्ध, अपूर्व साज-सज्जा। हर बाराती का दिल उल्लास के महासरोवर मे डुबकिया खाने लगा। सबकी जबान पर "बहुत अच्छा-बहुत अच्छा, धन्यवाद-धन्यवाद" के सुनहले उद्घोष। शुभ-मुहूर्त मे अनिलकुमार की शादी सरलेश के साथ सम्पन्न हुई। सेठ सागरचन्द की कली-कली खिल उठी। दिल मे नई उमग। नई तरग। नया रग। सरलेश को सुखद सग मिला। धन्य है मेरी तकदीर को। धन्य है मेरी तदबीर को, धन्य है मेरे पीर को।

सेठ सागर ने सेठ शान्ति से कहा, मै जवाई को घरजवाई बनाना चाहता हू। मेरे लड़का नही। एक ही सन्तान यह सरलेश। उससे बड़ा मोह है, प्यार है। उसका विरह एक क्षण भी सह नही सकता। घर की देख-रेख। घर की जिम्मेवारी। लाखो का कारोबार। अनिलकुमारजी को ही सभालना पड़ेगा। मै वृद्ध······।"

अनिलकुमार ससुराल मे रहने लगा। जीवन की दुखद घड़िया सुखद मे परिणत हो गई। नुकीले काटो का समय फूलो की कोमलता मे परिवर्तित हो गया। पतझड़ का अवसान हुआ। नया बसन्त खिला। नया रग मिला। सरलेश का सुहावना सग।

परस्पर क्रीड़ा का उपक्रम चालू था। सहसा सरलेश की नजर अपने प्रिय पतिदेव की कटी हुई अगुली पर पड़ी। नम्र शब्दो मे पूछा, "यह अगुली कैसे कटी?"

अनिल कुछ टालमटोल करता रहा। आखिर त्रिया-हठ के सामने उसे अपना पिटारा खोलना ही पड़ा। आदि से अन्त तक की घटना बतानी ही पड़ी। अतीत की स्मृतिया ताजा हो उठी। हाय! एक दिन वह······, एक दिन यह······। आकाश और पाताल जितना अन्तर······।

पुत्री पिता के पास पहुची। सहज भाषा मे बोली, "पिताजी ! बाल्यावस्था से ही उनकी एक अगुली कटी हुई है। दिखने मे वह अच्छी नही लगती। अत कोई कृत्रिम अगुली लगवा दीजिए, जिससे हाथ की शोभा····· ·।

सेठ चौका। अनेको कल्पनाओ व आशकाओ से दिल भर उठा। वहम सताने लगा। "पुत्री ! अगुली स्वत ही कटी थी अथवा किसी के द्वारा कटवाई गई थी ? क्या तुझे समग्र वृत्तान्त की जानकारी है ? " सेठ ने पूछा।

पुत्री ने कहा, "हा, पिताजी ! सुनिये आदि से अन्त तक की कहानी।" उतावला होता हुआ सेठ बोला, "बेटी ! क्या घटना है ? जल्दी बोलो।"

पुत्री द्वारा समग्र वृत्तान्त की जानकारी प्राप्त होते ही सेठ अवाक् रह गया। दुःख का पहाड टूट पडा। शरीर मे बिजली कौध गई। पसीने से तर हो गया। पागल मानव की भाति हक्का-बक्का-सा वह बोल पडा, "क्या यह ·······वह ·· भिखारी ? हैं · ?" इसी आवाज के साथ सेठ की आखे सदा के लिए बन्द ·· । घोर अन्धकार अन्धकार ही·· ·· ।

लिखित लेख टलता नही, होनहार बलवान।
'मुनि कन्हैया' जगत मे, सुख दुख कर्म प्रमाण॥

सच्चाई का सम्मान

मुअत्तिल एम० पी० बशीधर गुप्त ने कहा—"लक्ष्मण सिंह ! आज के जमाने मे झूठ का सहारा लिए बिना किसी भी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त नही की जा सकती। जो जितना चापलूस एव दगाबाज होगा उतना ही वह सफल होगा। आदर्श और ईमान सिर्फ मुह से कहने की बाते है। जीवन चलाने के लिए कदम-कदम पर रुपये-पैसो की जरूरत पडती रहती है। अत अर्थार्जन के लिए समय-समय पर अन्याय का सहारा लिए बिना भी काम नही चल सकता। तुमको भी अधिक आदर्श एव ईमानदारी की बाते छोड देनी चाहिए। अवसर पर न्यायान्याय को नही देखकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने के लिए जागरूक रहना चाहिए।"

लक्ष्मणसिंह बोला—(जरा चौककर) "साहब ! आप ऐसे कैसे फरमा रहे है ? आप पर तो सरक्षण का बहुत बडा उत्तरदायित्व है। रक्षक ही जब भक्षक बन जायेगे, तब भला सुरक्षा करेगा ही कौन ? आपको ऐसे घृणित विचार व्यक्त नही करने चाहिए। झूठ को चाहे जितना दबाकर रखा जाय, पर वह दब नही सकती। आखिर मे दूध का दूध और पानी का पानी होकर ही रहता है। जालसाजी करना व धोखा देना बहुत बडा अन्याय है। जो कार्य सत्य के बल से हो सकता है, वह असत्य के बल से नही हो सकता। ऐसी मेरी आत्म-निष्ठा है।"

बंशीधर ने कड़क कर कहा—"लक्ष्मण ! तुम बहुत आदर्शवादी बन रहे हो, आदर्श के चक्कर मे कहीं भूखा न मरना पड़े ? तुम जानते ही हो कि मुझपर रिश्वत लेने का जो मुकदमा चल रहा है, उसमे तुम्हे मेरे पक्ष मे गवाह बनना है, तुम्हारा झूठ मुझे बचा लेगा और मैं वापस एस० पी० के स्थान पर बहाल होते ही तुम्हे मालामाल कर दूगा। सिपाही से तुम्हे थानेदार बना दिया जायेगा। क्या मैं जो कह रहा हू, उस बात को तुम गहराई मे सोचोगे ? तुम्हे स्वीकार है ?"

एस०पी० की बाते सुनकर लक्ष्मणसिंह के हृदय के भाव बदल गए, मन ही मन सोचने लगा—'वस्तुतः एस० पी० साहब ठीक कहते है। क्योकि जो जितना सदाचारी है, वह उतना ही दुखी है और जो जितना दुराचारी है, वह उतना ही सुखी है। तो फिर क्यो नही अवसर का लाभ उठाऊ ? घरवाली भी निरन्तर कान खाया करती है कि इतने कम वेतन मे घरेलू खर्च भविष्य मे कैसे चलेगा ? पुत्री विद्या भी विवाह योग्य हो रही है, क्या करना चाहिए ?'

उसके मुख को एक-टक देखता हुआ बंशीधर बोला—"मै नही समझ पा रहा हू कि तुम इतनी गहराई मे क्या सोच रहे हो ? तुम्हारी गवाही से मेरा पक्ष सबल हो जायगा और साथ-साथ तुम्हारी उन्नति का द्वार भी खुल जायगा।"

लक्ष्मणसिंह—"तनिक सोचकर ही जवाब दूगा क्योकि यह सवाल ही ऐसा है।"

बंशीधर—(कुछ गंभीर होकर) "लक्ष्मण ! क्या अभी तक सोचना बाकी पड़ा है ? कल की तो तारीख है। ध्यान रखना, सब बयान मेरे पक्ष मे ही होना चाहिए, अन्यथा तुम जानते हो, मैं तुम्हारा अफसर हू। जैसा चाहू वैसा कर सकता हू।"

बंशीधर की धमकी सुनते ही वह घबरा गया। मन ही मन सोचा—'क्या करू ? अब इधर खाई और उधर कुआ। ईमानदारी और सच्चाई रखू तो ये साहब नाराज हो जायेगे और यदि इनके कहे अनुसार करू तो सच्चाई से हाथ धोना पड़ेगा।' इसी उधेड़-बुन मे उसने अपने घर की राह ली। विचलित एवं व्यथित-सा होकर घर मे एक तरफ जाकर बैठ गया। उसका अन्तर्द्वन्द्व उसको कही टिकने नही देता था।

उसकी पत्नी ऊषा ने कहा—"आज ऐसे कैसे उदास होकर बैठे है ? लगता है आप किसी चिन्ता मे है ?"

लक्ष्मण—"मुझे कोई मार्ग नही दिख रहा है।"

ऊषा—"मै भी तो सुनू, क्या समस्या है ?"

लक्ष्मणसिंह—'क्या कहू ? एस० पी० साहब जनता का कोई भी काम बिना रिश्वत के नही करते। किसी का छोटे से छोटा काम भी निकालना होता है, तो वे पहले अपनी जेब का मुह खोल देते है। एक दिन वे रंगे हाथो पकड़े गये। कोर्ट मे

उनका केस चल रहा है। कल तारीख है। मुझे गवाह के लिए एस० पी० साहब मजबूर कर रहे है और साथ-साथ प्रलोभन भी दे रहे हैं कि तुझे थानेदार बना दूगा। अब मैं सत्य साक्षी दू या असत्य ? इसी समस्या का समाधान नही पा रहा हू कि मुझे क्या करना चाहिए ?"

ऊषा—"मै अणुव्रत-परिवार की सदस्या हू। अणुव्रत जन-जन को नैतिकता का पाठ पढाता है। उनका आधार आत्म-सयम है। अणुव्रत मे यह नियम है कि असत्य साक्षी नही देना। अत मेरी तो अपको यही सलाह है कि आप प्रलोभन के चक्र मे न फसकर सच्चाई और ईमानदारी पर अटल रहे। नैतिकता जीवन है। नैतिकता के अभाव मे कोई भी अपना विकास नही कर सकता है।" ऊषा का यह सत्परामर्श सुन लक्ष्मणसिंह ने यह निश्चय कर लिया कि मैं असत्य साक्षी नही दूगा।

दूसरे ही दिन कोर्ट के समय सभी वहा उपस्थित हुए। एस० पी० साहब ने लक्ष्मण को एक तरफ ले जाकर उसके कान मे धीरे से कहा—"मेरी बात याद है ना ?"

न्यायाधीश के समक्ष केस की बहस प्रारम्भ हुई। प्रतिपक्षी वकील परस्पर अपने-अपने दाव-पेच लगाने लगे। गवाही के कटघरे मे जब लक्ष्मणसिंह को खडा किया गया, तब एस० पी० को यह दृढ विश्वास था कि लक्ष्मण मेरे पक्ष मे ही गवाही देगा और अवश्य ही मै बरी हो जाऊगा, परन्तु लक्ष्मणसिंह ने अपने बयान मे वही कहा, जो सत्य था।

न्यायाधीश ने बहस समाप्त होने पर अपना निर्णय देते हुए श्री गुप्ता को रिश्वत लेने के अपराध मे सात साल की कडी कैद और चार हजार रुपये दण्ड के सुना दिये।

सजा सुनते ही एस० पी० साहब का मुह उतर गया और आखो मे अधेरा छा गया। मन ही मन अनुताप करने लगे—"हाय ! यदि मैं भी अणुव्रत-परिवार का सदस्य होता और रिश्वत ले-लेकर घर नही भरता तो आज मेरी इज्जत और प्रतिष्ठा धूलिमात् क्यो होती और क्यो ऐसी दुर्दशा का शिकार बनता ? इतना पैसा, जो मैंने रिश्वत से बटोरा, मेरे क्या काम आया ? मुझे तो अपने जीवन के अमूल्य भाग को जेल के सीखचो मे रहकर सडाना पडेगा और मेरे इस दुख मे कोई साझेदार भी नही बनेगा।"

डी० आई० जी० श्री रामेश्वरलाल शर्मा ने लक्ष्मणसिंह की सच्चाई और ईमानदारी पर खुश होकर उसे पुलिस-सब-इन्सपेक्टर बना दिया।

वार्षिक पारितोषिक के अवसर पर स्वय राष्ट्रपति द्वारा उसकी प्रामाणिकता और सच्चाई की सराहना की गई और उसे पुलिस की 'विशिष्ट सेवा का पदक

प्रदान किया गया।

> सत्य सार संसार मे, सत्य बड़ा बलवान
> 'मुनि कन्हैया' सत्य से, मिलता अति सम्मान ॥

धन और मन

घड़ी मे दस बजे थे। महेश ने अपने परम मित्र सुरेश से कहा—"कल मुहुर्त अच्छा है, कमाने-खाने के लिए परदेश जाने की सोचता हू।" सुरेश ने कहा—"महेश! मैं भी तेरे साथ चलूगा, मुझे भी व्यवसाय करना है।"

दोनो ही बीकानेर-मेल मे दूसरे दिन रवाना हो गये। पूर्व निर्णीत नगर मे पहुचे। दोनो ने अलग-अलग व्यापार किया। महेश भाग्यशाली था, स्वल्प समय मे ही लाखो रुपये कमा लिए। सुरेश ने भी धनोपार्जन करने के लिए काफी उद्योग किये, किन्तु सफलता नही मिली। व्यापार करते-करते थक गया। आखिर निराश हो उसने स्वदेश वापस जाना ही श्रेयस्कर समझा। ऐसा विचार कर वह महेश के पास गया और बोला—"महेश! मैं तो कल घर जा रहा हू। भाभी के लिए कुछ भेजना हो, तो भेज दो।"

महेश—"मित्र! घर पर कुशल समाचार कह देना कि मै अभी देश नही आ सकूगा। व्यापार मे उलझा हुआ हू, कमाई भी अच्छी हो रही है। यह एक हीरा तुम्हारी भाभी के लिए भेज रहा हू, उन्हे दे देना और कह देना कि उसे सम्हाल कर रखे। व्यापार समेट कर मैं भी शीघ्रातिशीघ्र आने का प्रयास करूगा।"

मित्र का सन्देश व हीरा लेकर सुरेश ने अपने देश की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे उसके मन मे लोभ जागा और हीरे को हजम करने की कुबुद्धि उत्पन्न हो गई। मन ही मन सोचने लगा—'हीरा बहुत कीमती है, इसको दबाकर रख लूगा तो जीवन सुखी बन जायेगा। मित्र ने जब हीरा दिया था, तब कोई भी नही था, किसी की भी गवाह साक्ष नही है। इस अवसर का लाभ उठाना ही चाहिए।' आखिर घर पहुचा। उस कीमती हीरे को अपनी तिजोरी मे रख दिया। महेश की धर्म-पत्नी को पता लगा कि सुरेशजी परदेश से आ गये हैं, अत वह कुशल-संवाद लेने के लिए उनके घर आई और कहा—"आप अकेले ही कैसे आ गये? अपने मित्र को साथ नही लाए?"

सुरेश ने कहा—"भाभी जी! वह बड़ा ही लोभी है, कमाई बहुत ही अच्छी हो रही है, फिर भी उसकी लालसा दिनोदिन बढती ही जाती है।"

महेश की धर्मपत्नी ने पूछा—"अच्छा, यह तो बताइये उन्होने मेरे लिए क्या भेजा है?"

सुरेश—"क्या कहू ? वह लोभी आपको क्या भेजेगा ? कुछ भी नही भेजा है उसने।"

महेश की पत्नी शकुन्तला अपने पति के कुशल समाचार सुनकर घर चली गई। इधर कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् महेश व्यापार समेटकर घर पहुचा। शकुन्तला को बहुत प्रसन्नता हुई। हाथ जोडकर विनय-भाव से वोली—"प्राणेश ! वहुत दिनो वाद आपका आना हुआ, आपने तो मुझे एकदम ही भुला दिया। अपने मित्र के साथ भी आपने मेरे लिए कुछ नही भेजा।"

महेश ने कहा—"तुम्हारे लिए सुरेश के साथ हीरा भेजा था न ?"

शकुन्तला—(आश्चर्य से) "कौन-सा हीरा ? मुझे तो नही मिला।"

महेश—"क्या सुरेश मिलने के लिए घर नही आया था ?"

शकुन्तला—"वे तो घर नही आये, मगर मै आपके कुशल समाचार पूछने के लिए उनके घर गई थी। मैने पूछा भी था कि क्या कुछ भेजा है ? उन्होंने कहा—"कुछ भी नही।"

महेश ने सोचा—सुरेश का मन पलट गया है, मन मे वेईमानी आ गई है, हीरा उसी ने हजम कर लिया है। दूसरे दिन वह सुरेश के घर गया।

सुरेश ने कहा—"भाई महेश ! कव आए ?"

महेश ने कहा—"कल ही पहुचा हू।"

सुरेश—"स्वास्थ्य तो अच्छा है ? शरीर काफी दुर्वल प्रतीत होता है।"

महेश—"मित्र ! ठीक ही है, किन्तु बताओ वह हीरा कहा है ?"

सुरेश—"मैंने भाभीजी को दिया था।"

महेश—"वह कहती है कि मुझे तो नही मिला।"

सुरेश—(आखें लाल कर) "मित्र ! स्त्रियो का विश्वास नही करना चाहिए। वह झूठी है, मुझे चोर वनाती है। हाय ! ऐसा पता होता तो मैं हीरा लाता ही क्यो ?"

आखिर महेश हाकिम के पास पहुचा। सारी घटना से हाकिम को अवगत किया। हाकिम ने कहा—"क्या कोई साक्षी है ?"

महेश—"मैंने तो हीरा विश्वास पर ही दिया था, मुझे यह भरोसा नही था कि सुरेश धोखा देगा।"

हाकिम ने सुरेश को वुलाकर कहा—"महेश ने तुम्हारे विषय मे इस प्रकार शिकायत की है, हीरा है तुम्हारे पास ?"

सुरेश ने कहा—"परदेश से आते ही मैंने भाभीजी को दे दिया था। इसके गवाह भी मौजूद है, मैं विल्कुल निर्दोष हू।"

हाकिम ने गवाह वुलवाये। चार पेशेवर गवाह उपस्थित हुए। हाकिम के

पूछने पर चारो ने कहा—"हम लोगो के सामने सुरेशजी ने महेशजी की पत्नी को हीरा दिया था। हम ईश्वर की शपथ खाकर कहते हैं कि सुरेशजी बिलकुल सच्चे हैं।" हाकिम ने चारो को अलग-अलग बुलाकर कहा—"तुमने हीरा तो देखा ही है, उसके बराबर के आकार का एक-एक पत्थर लाओ।" चारो घबडाए, अब पोल खुलेगी। चारो ने सोचा—हीरा बहुत कीमती होता है, कुछ बडा ही होगा। चारो ही भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के पत्थर उठा लाए, जो कि एक-दूसरे से काफी बडे-छोटे थे।

हाकिम ने चारो पत्थर अपने पास रख लिए और आदेश दिया कि चारो के कोडे लगाए जाए। यह सुनते ही चारो कापने लगे और मन ही मन सोचने लगे कि अगर थोडे से पैसो के लोभ मे न पडे होते तो आज यह विषम समस्या क्यो पैदा होती ? अब तो सत्य का ही सहारा लेना पडेगा। गिडगिडाकर बोले—"साहब ! हमने तो क्या हमारे बाप दादाओ ने भी हीरा नही देखा। हम तो लालच मे फसकर झूठी साक्षी देने आए हैं।"

सुरेश ने आक्रोशपूर्वक कहा—"हाकिम साहब ! कुछ भी हो, हीरा मेरे पास नही है, मै बिलकुल सच्चा हू, आप विश्वास करे।"

हाकिम ने उसी समय आदेश दिया कि उसको नगा करके कोडे लगाए जाए तथा उसकी बेइज्जती की जाए।

न्यायाधीश के इस कथन मात्र से ही बेचारे सुरेश की तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई, और अपनी जेब मे छिपे हीरे को निकालकर न्यायाधीश की मेज पर रख दिया।

हीरे को तो मित्र ने, छुपा लिया तत्काल।
आखिर न्यायाधीश ने, किया न्याय सुविशाल ॥

विलासिता के चक्रव्यूह मे

विमला का सुखी जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो चुका था। उसके खुशी के दिन अपने प्रियतम की चिता के साथ ही जल गये थे। उसके हृदय मे दुख का तूफान रह-रहकर उभर रहा था। मगर इतने ही दुख से छुटकारा कहा ? उसका दिल उस समय टूक-टूक हो गया, जब रामनाथ ने आकर कहा कि लाला बुधराम कान्ता की शादी अपने पुत्र से नही करेंगे।

विमला सिसकती हुई कहती है—"पण्डितजी ! उनके द्वारा तय किए गए इस सम्बन्ध को क्यो और किसलिए ठुकराया जा रहा है, आखिर वे क्या चाहते हैं ?'

रामलाल—"वहिन ! रो मत, सम्भवत लाला बुधराम यह सोचते होगे कि लाला वल्लीराम की तो मृत्यु हो गई है, अव हमे विशाल सम्पत्ति, जो दहेज के रूप मे मिलने वाली थी, कौन देगा ?"

विमला—"पण्डितजी ! लक्ष्मी भी तो लाजाजी के साथ ही साथ रूठकर चली गई, मै अव क्या करू ? सयानी लडकी है। इसका सम्वन्ध तो करना ही होगा।"

रामलाल—"वहिन विमला ! इतनी चिन्ता मत करो। सम्वन्ध वहुत मिल जायेंगे, घवराओ मत। इस कार्य के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूगा। मुझे आशा है कि इस भार से तुमको वहुत जल्दी मुक्ति मिल जाएगी।"

रामलाल विवाह-शादी करवाने के लिए एक अच्छा दलाल था। उसकी सारी जिन्दगी इसी दौड-धूप मे व्यतीत हुई थी। वह मृदुभाषी, चालाक तथा वात वनाने मे वडा ही दक्ष था। इसी से उसकी आजीविका चलती थी।

रामलाल को पता था कि लाला दयालीराम की दूसरी पत्नी का अभी देहान्त हुआ है। उसने सोचा कि अगर उनको समझाया जाए, तो सम्भव है वे मान भी जाएगे तथा मुझे भी अच्छा खासा इनाम मिल जाएगा। इन्ही विचारो को लिए वह लाला दयालीराम के गाव की ओर चल पडा।

लाला दयालीराम अपने कमरे मे उदास बैठे थे। मुख-मण्डल की चमक निस्तेज वन रही थी। वे चिन्ता के अपार पारावार मे गोते लगा रहे थे। हक्के-वक्के मनुष्य की भाति आखे फाड-फाडकर इधर-उधर ताक रहे थे। मन ही मन कहने लगे—'हाय ! अव मेरा जीवन किस रूप मे व्यतीत होगा ? कौन अवोध वच्चो की देखभाल करेगा ?' इतने मे ही पण्डित रामलाल वहा आ गया। लालाजी को नमस्कार करते हुए वोला—"लालाजी आज तो आप वडे उदास दीख रहे है कहिए क्या वात है ? कौन-सी चिन्ता सता रही है ?" दयालीराम—"क्या कहू, रामलाल ! जवसे वच्चो की मा मरी है, तभी से मुझे इस चिन्ता ने परेशान कर रखा है कि कौन इनका लालन-पालन करेगा।"

रामलाल—"लालाजी ! इसमे चिन्ता की क्या वात है ? आप शादी क्यो नही कर लेते ?"

लालाजी—"शादी ! इच्छा तो है, मगर तुम ही वताओ कि इस अवस्था मे अपनी लडकी कौन देगा ? तिस पर यह समाज क्या कहेगा ?"

रामलाल—"आप धनी व्यक्ति हैं, धन के सहारे प्रत्येक कार्य किया जा सकता है तथा आपकी सवके साथ अच्छी मेल-मुलाकात भी है। छोटे-वडे राजकर्मचारी आदि सभी आपके हाथ के खिलौने हैं। समाज के भी आप कर्णधार है, सभी आपको ऊची नजरो से देखते है, तो फिर किसकी शक्ति है कि आपकी आलोचना

करे। आपको घृणा की दृष्टि से देखे।"

दयालीराम—"मगर······?"

रामलाल—"मगर-वगर कुछ नही, लालाजी! आज-कल तो माठ-साठ वर्ष के बुड्ढो के भी विवाह होते है, फिर आपको डरने की क्या जरूरत है? अवस्था भी कोई खास नही है।"

अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, घृत की आहुति का मौका मिल गया। दयालीराम ने कहा—"आप आ गए है और इतना कह रहे हैं, तो मैं आपका आग्रह टालना अच्छा नही समझता हू।" ऐमे वातो ही वातो मे कान्ता का मम्वन्ध दयालीराम के साथ तय हो गया। जव वासना की आग धधक रही हो, तव मनुष्य को कृत्याकृत्य का भान नही रहता है। तृष्णा की आग भी उचित अनुचित नही देखती। दयालीराम का हृदय-कमल कमल की भाति खिल रहा था। लालाजी ने रामलाल को भेटस्वरूप एक हजार रुपये देकर विदा करते हुए कहा कि आप जैमे ही मज्जन दूसरो की चिन्ता को खुशी मे परिवर्तित कर सकते हैं।

उचित पुरस्कार प्राप्त हाने से रामलाल का मुख-मण्डल विकसित हो रहा था, चेहरे पर अद्वितीय चमक थी। पडितजी प्रसन्न मुद्रा मे विमला के घर पहुचे।

विमला उनकी प्रसन्न मुद्रा देखकर वोली—"रामलालजी! आज तो आप वडे खुश नजर आ रहे हैं, क्या कोई विशेप वात है?"

रामलाल—"जिस लक्ष्य को लेकर गया था, उसे पूरा करके आया हू।"

विमला—"क्या कान्ता का सम्वन्ध तय हो गया?"

रामलाल—"हा, अभी-अभी तय करके वही से आ रहा हू। लाला दयालीराम, जो वडे अमीर है, धन-धान्य, नौकर-चाकर, सवसे सम्पन्न हैं, प्रतिप्ठा भी अच्छी है, करीव ३५ वर्ष की आयु है। उनके साथ कान्ता सुख से जीवन व्यतीत करेगी। कान्ता के लिए घर व वर दोनो ही उचित हैं, किसी प्रकार की न्यूनता नही है। फिर हमे दहेज भी नही देना होगा।" परिस्थिति मनुष्य से सवकुछ करवा सकती है। विमला इम समय लाचार थी। उसके पास अपनी कन्या को दहेज देने के लिए धन न था। विवशता मे उसे यह सम्वन्ध स्वीकार करना ही पडा।

कुछ ही दिनो मे कान्ता का विवाह दयालीराम के साथ हो गया। वह मायके से विदा हो ससुराल पहुची। हवेली की चमक-दमक, नौकरो का ठाठ-वाट और पति का वैभव देखकर अपने भाग्य की सराहना करने लगी। किन्तु जव पतिदेव के झुरियो भरे चेहरे पर नजर पडी, तो उसका मन अवसाद से भर गया। दो पुत्र क्रमश १६ व ७ वर्ष की आयु के, दो पुत्रिया क्रमश १० व ४ वर्ष की। यह सव देखकर कान्ता के हृदय मे उथल-पुथल मच गई। वह सोचने लगी कि मेरे जीवन

के सब सुन्दर स्वप्न शेष हो गये। यह क्या हुआ ? अच्छा तो यही होता कि मैं भी अपने पिता की तरह इस दुनिया से चली जाती।

उसने भावी निराशामय जिन्दगी मे प्रवेश करने की अपेक्षा अपनी जीवन-लीला को समाप्त करना अधिक श्रेयस्कर समझा। शादी की प्रथम रात्रि, अमावस्या के सघन अन्धकार मे परिणत हो गई। दुनिया निद्रा-मग्न थी, सन्नाटा छाया हुआ था। कान्ता बिछौने से उठी और अपने बाग मे बने कुए की शरण ली। पानी की तरलता मे उसके प्राणो का रस धुल गया। देह पानी की सतह पर कमल की भाति तैरने लगी।

दयालीराम की सहसा आखे खुली। कान्ता को न देखकर वे हक्के-बक्के हो गये। अरे, यह क्या ? कान्ता कही चली गई ? वे बिछौने से उठे, कान्ता को सब जगह खोजा, लेकिन कान्ता नही मिली। अन्त मे खोजते-खोजते जब कान्ता की प्राणरहित देह को कुए मे पानी पर तैरते देखा तो उनका कलेजा काप गया। मुख पर विषाद की रेखाए उभर आई, अपने आपको घृणा की दृष्टि से देखने लगे। दुख की असह्य पीडा से उनका हृदय चीख उठा—"अरे दयालीराम ! धिक्कार है तेरे जीवन को, तेरी बुद्धि-हीनता को और वासना की अनुरक्ति को, जिसने तुझको इन वृद्धावस्था मे भी विलासिता के चक्रव्यूह मे फसाकर, इस जघन्य कुत्सित कार्य का निमित्त बनाया।"

"हाय ! इस बुढापे मे तू विवाह न करता तो आज यह बालिका अपनी अमूल्य जिन्दगी को इस तरह नष्ट करने के लिए प्रेरित क्यो होती और क्यो इस मानव-हत्या के जघन्य पाप का तू भागी बनता, क्यो इज्जत और प्रतिष्ठा प- काला धब्बा लगता, किन्तु अब क्या · ?"

विलासिता के व्यूह मे, फसता नर नादान।
कर शादी वृद्धत्व मे, पाता कष्ट महान॥

५ झूठा इल्जाम

लाला भगवानदास बहुत बडा व्यापारी था। लाखो रुपयो का लेन-देन करता था। नीतिज्ञ एव विश्वासी होने के साथ-साथ वह बडा शीतल एव गम्भीर था। निर्धनता की उसे चिन्ता नही थी, किन्तु सन्तान नही होने से वह काफी व्यथित-सा रहता था। भाग्य ने पलटा खाया और सन्तानोत्पत्ति का शुभ समय नजदीक आने लगा, किन्तु काल की गति बडी बलवान होती है, उसके सामने सभी शक्तिया नगण्य है। बडे-बडे शूरवीर योद्धा भी उससे परास्त हो जाते है। सन्तानोत्पत्ति के दस दिन पूर्व ही वह अचानक काल-कवलित हो गया। उसकी पत्नी के वक्षस्थल

पर भयानक वज्र-पात हो गया। वह उदर-पीडा से छटपटाती रही और अपनी तकदीर को कोसने लगी। हाय! मेरे कैसे कर्म उदय मे आये, मैं कैसी हतभागिन नार। पति की अन्तिम क्रिया मे भी सम्मिलित न हो सकी। आस-पास की स्त्रिया ने आकर उसको सात्वना दी।

कुछ ही समय पश्चात् उसके वच्चा हुआ। गुलाव के फूल की तरह कोमल और कामदेव की तरह सुन्दर, लेकिन माता पच्चीस दिन भी अपने सुकोमल अगज को दूध नही पिला पाई कि पति के शोक मे वह भी सदा के लिये ससार मे विदा हो गई।

लाला भगवानदास का छोटा भाई लाला मोहनदास वड़ा समझदार था। नगर मे भी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसने उस अनाथ वच्चे (रमेश) को अपनी ही सन्तान समझकर तन, मन ओर धन से उसका लालन-पालन किया। रमेश वडा हुआ। पढ़ने मे भी वहुत होशियार था। हर कक्षा मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होता था। मोहनदास का रमेश पर वहुत स्नेह था। अपने वच्चो से भी वढकर उसकी सव तरह से निगाह रखता था। उसकी पत्नी पुष्पलता पति के इस व्यवहार से मन ही मन झुलसती थी। उसे जेठ का पुत्र निरा जहर जैसा कडवा लगता था। हर समय किसी न किसी वहाने से रमेश को डाटने की सोचती ही रहती थी, किन्तु पति के आगे उसका तनिक भी जोर नही चलता था। फिर भी कभी-कभी तो वह पति से झगडा कर ही लेती और मुख से अनर्गल एव घृणित शब्द वोल देती—"पतिदेव! आप तो केवल रमेश की सार-सम्भाल मे लगे हुए हैं। वाहर से आते ही पूछते है कि रमेश कहा है? रमेश कहा है? पर कभी अपने वच्चो की भी सार-सम्भाल लेते हैं? वे क्या पढते है? किसी की सगति मे समय लगाते हैं?"

मोहनदास—"देख, रमेश को पराया वच्चा नही समझना चाहिए, अपना ही है।"

पुष्पलता—(झीकती हुई) "कहा है अपना? यह तो जिठानी का आत्मज है। जरा ध्यान रखना आप, इसे अपना मत समझ लेना। यह रमेश वडा चालाक है। धूर्त है। कही आपको धोखे मे न डाल दे।"

मोहनदास—"कैसी ऐसी फिजूल की वाते कर रही हो? रमेश वडा अच्छा लडका है। स्वभाव का सरल एव सुशील है। पढाई मे भी हर वर्ष फर्स्ट आता है। कभी फेल नही होता। गरीव का वच्चा सदा मेहनत और फिक्र से पढता है। सुरेश और नरेश को देखो। कितनी वार फेल हो गए हैं, इन्हे पढने की फिक्र नही है। दिन-दिन हरामी होते जा रहे हैं। यह सव तुम्हारे लाड-प्यार का फल है। वच्चो के निर्माण मे माता का वहुत वडा उत्तरदायित्व होता है।"

पुष्पलता—"रहने दो ऐसी शिक्षा। औरो को दिया करो। क्या आप पर

उत्तरदायित्व नही है ? पराये बच्चे के लिए जीवन लगा रखा है। खुद के बच्चो के लिए एक मिनट भी खर्च नही करना—यह कहा का न्याय है ?"

मोहनदास—"खैर, तुम जो कहती हो शायद ठीक ही होगा। किन्तु मुझे कुछ काम के लिए बाहर जाना है। सम्भवत बीस-पच्चीस दिन लगेंगे। सब बच्चो को अच्छी तरह रखना।"

पुष्पलता के मौज बन गई। बात-बात पर रमेश को दुत्कारने लगी—"जा, यह पापी कैसा जन्मा है ? जन्मते ही मा-बाप को खा गया। ऐसो का मुह देखना ही पाप है। अपनी इस शक्ल को लेकर निकल जा घर से। मेरे बच्चो के साथ ज्यादा न बैठना, न खेलना। कही तेरी सगति से बिगड न जाए।"

जब यह तेरी-मेरी की बात आई तब रमेश को पता लगा—यह मेरी मा नही है, चाची है। मन ही मन मे सिसकता हुआ वह विचार कर रहा है कि चाचाजी तो मुझसे कितना प्यार करते हैं, मुझे स्नेह-भरी दृष्टि से देखते है, किन्तु चाचीजी का हृदय तो बडा कठोर है। कदम-कदम पर वे तो डाटती रहती है। हाय ! ऐसे कैसे निकलेंगे दिन ? क्या करू ?

पुष्पलता ने कहा—"मन ही मन मे क्या कर रहा है कुड-कुड ? क्या मुझे डराने के लिए ? मै किसी से डरने वाली नही हू। तेरे को करना है, सो करले।"

रमेश—"चाचाजी मैं एक अनाथ लडका हू। मुझे आपके सिवाय और किसी का भी सहारा नही है। चाचाजी तो मुझसे बहुत प्यार करते हैं। सुधा-भरी शीतल नजर से मुझे निहारा करते हैं आप इतनी कठोर क्यो है ? अनाथ पर दया रखनी चाहिए।"

पुष्पलता—"वृथा बकवास न कर, भूख लगी है तो खाना खा ले।"

एक दिन पुष्पलता गुसलखाने मे स्नान करने के लिए गई, वहा हार भूल गई। इधर-उधर सारा घर टटोल लिया, बच्चो से पूछताछ कर ली, किन्तु हार नही मिला। आखिर उसके मस्तिष्क मे आया, हो न हो यह रमेश धूर्त है, चालाक है। इसने कही न कही हार को छिपा दिया है। वह इस ताक मे थी कि रमेश की कोई गलती पकडी जाए। समय मिल गया। झट रमेश को बुलाया और जोर से ललकारते हुए उसने कहा—"धूर्त ! आज मेरा हार खो गया है। क्या तूने लिया ?"

रमेश—(हाथ जोडकर नम्र भाव से) "नही लिया, अभी तक मैंने देखा ही नही कि आपका हार कैसा है ?"

पुष्पलता—"हा मैं जानती हू। तू बडा मीठा बोलता है। अति भक्ति दिखाता है। किन्तु "अति भक्ति चोर लक्खन" अति भक्ति करना चोर का लक्षण है। सच-सच बोल, नही तो आज मारे बिना नही छोडूगी। मुझे तो विश्वास है, तेरे सिवाय और कोई नही है हार लेने वाला।'

रमेश—"अनाथ बच्चे पर झूठा इल्जाम लगाना महा भयकर पाप है। मैं मेरे हृदय से कहता हू, भगवान् की साक्षी से कहता हू, मैंने हार नही लिया।"

पर पुष्पलता कहा मानने वाली थी, उसको क्रोध का नशा चढा हुआ था, पिशाचिनी की तरह विकराल रूप धारण कर हाथ मे डण्डा लेकर रमेश को जोर-जोर से पीटने लगी। शरीर से खून निकलने लग गया, पर उसके हृदय मे दया कहा थी ? आखिर वडी मुश्किल से आचल छुडाकर रमेश चिल्लाता हुआ घर मे भाग चला। धैर्य का वाध टूट गया। आखो मे आसुओ की धारा वह चली। 'धिक्कार है जीवन को अव कव आएगी मौत ?' आखिर दु ख करता-करता तालाव मे जाकर गिर गया और ससार से सदा के लिए आखें वन्द कर ली।

सन्ध्या के समय लाला मोहनदास जव घर आया, तव पुष्पलता घवराती हुई आई और पति से वोली—"क्या कर दिया आपके रमेश ने ? मैंने तो पहले ही कहा था, इसके लक्षण अच्छे नही हैं। जरूर रमेश का हममे पुराना वैर है, नही तो वह इस तरह वदला नही लेता।"

मोहनदास—"क्या वात हुई, सुनाओ तो सही ! या यू ही वक-वक किए जाओगी।"

पुष्पलता—"क्या कहू ? उसने तो मेरा सर्वस्व लूट लिया। हमारा घर वर-वाद कर दिया।" पुष्पलता छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

मोहनदास—"वात तो कुछ वताओगी नही, वस गला फाडे जाओगी। क्या नुकसान कर दिया रमेश ने ?"

पुष्पलता—"मेरा हार गुम हो गया, घर का कोना-कोना छान लिया, हार नही मिला। मुझे निश्चित ही लगता है कि हार रमेश ने लिया है। मैंने उसे मारा, पीटा, काफी ललकार भी लगाई, किन्तु वह धूर्त सच वोलने वाला कहा था ?"

मोहनदास—"तुम्हारे स्वभाव मे अभी तक परिवर्तन नही आया। विना मत-लव दूध-मुहे वच्चे पर इल्जाम लगाती हो। रमेश वडा ईमानदार है। वह कभी भी ऐसा कार्य नही कर सकता। रमेश कहा है ?"

पुष्पलता—"मुझे क्या पता रमेश कहा है ? आप करते फिरे अव उसकी तलाश।"

इतने मे ही मा-मा कहता हुआ नरेश आया और वोला—"यह लीजिए हार। मैं अभी गुसलखाने मे गया था, वहा एक तरफ पडा था।"

मोहनदास—"देख लिया, वेचारे अनाथ वालक पर झूठा कलक देती हो। भूलने का स्वभाव तो खुद का, दोष देना दूसरे को। वह वेचारा मा के विना इस घर मे पला, उसने इस घर को अपना घर समझा, पर तुम्हारा हृदय वडा कठोर है। हार मिल गया, लेकिन कुमार कहा मिलेगा ?"

लालाजी उसकी खोज मे चल पडे। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले की छानवीन कर ली, किन्तु रमेश नही मिला। आखिर तलाश करते-करते तालाव मे उसकी लाश मिली। उस शव को घर लाया गया।

लाला मोहनदास के दु.ख का पार नही रहा। चेहरे पर कालिमा छा गई। पुष्पलता भी हक्की-वक्की-सी कुछ क्षण मूर्तिवत् खडी रही। आखो से टप-टप पानी गिरने लग गया। अपने कृत दुष्कृत पर पश्चात्ताप करने लगी—"हाय! मै डायन हू। मैने अपने रमेश को खा लिया। यदि मैं यह झूठा इल्जाम नही देती, तो आज यह शव क्यो......?"

अन्य व्यक्ति के शीष पर, देता जो इल्जाम।
वह नर वन सकता नही, जन श्रद्धा का धाम॥

ईर्ष्या

चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त दोनो ही श्यामलाल के पुत्र थे। दोनो वडे सुशील थे। दोनो की पारस्परिक सोहार्द-सौरभ से आस-पास का सारा मोहल्ला महक रहा था। लालाजी भी अपने प्रिय पुत्रो का मेल-मिलाप देखकर अपने आपको धन्य समझते थे। अचानक ही लालाजी काल-कवलित हो गये और घर का समस्त उत्तरदायित्व उनकी पत्नी के कन्धो पर आ पडा। सम्पन्न घर एव पढी-लिखी लडकिया देखकर माता ने दोनो ही पुत्रो की शादी कर दी। वडे भाई चन्द्रकान्त की धर्मपत्नी मनोरमा स्वभाव से वडी कर्कशा एव लडाकू थी। देवरानी और जिठानी मे पारस्परिक मधुर-व्यवहार व प्रेम की अपेक्षा निरन्तर आग सुलगती थी। अशान्ति के काले-कजरारे सघन वादलो से सारा घर तिमिराच्छादित जैसा रहता था। मनोमालिन्य तीव्र गति से इतना आगे वढा कि एक-दूसरे का मुह भी देखना नही चाहती थी।

कुछ ही समय वाद सूर्यकान्त के पुत्र व एक पुत्री पैदा हुई। देवरानी आभा को पुत्रवती देखकर जिठानी मनोरमा के हृदय मे ईर्ष्या का दावानल द्विगुणित होने लगा। मन ही मन मे अनेको सकल्प-विकल्पो की उत्ताल तरगे तरगित होने लगी—यह सूर्यकान्त दुकान पर काम करने वाला तो एक है और इसके खाने वाले चार हो गये। वस्तुत दोनो वच्चे उसकी आखो मे खटकने लगे। अन्तस्तल मे जलन पैदा हो गई और तीखे-तीखे वचन तीरो से देवरानी आभा के मानस को क्षमण वीधने लगी।

अर्द्धांगिनी मनोरमा की अनिष्ट शिक्षा के कारण चन्द्रकान्त की विचारधारा

भी वदल गई और मानस मे कडवापन पैदा हो गया। सूर्यकान्त को समय-समय पर वह कुरेदने लगा और छोटे-छोटे विषयो पर भी झडप होने लगी। दोनो के उस अटल सम्वन्ध, अकाट्य प्रेम के वीच एक अभेद्य दीवार खडी हो गई। छोटे भाई के वच्चो को देखकर उसकी आखो मे रक्त-प्रवाह प्रवाहित होने लग गया। कदम-कदम पर तू-तू और मैं-मैं के वुरे शव्दो से अधर प्रकम्पित होने लग गये।

एक दिन चन्द्रकान्त ने रोप-भरी वाणी मे कहा—"सूर्यकान्त ! मैं तुझे साथ रखना नही चाहता, तेरा स्वभाव अच्छा नही है। निकल जा मेरे घर से।" कठोर शव्दो की तर्जना देते हुए उसको कुछ भी सम्पत्ति दिये विना घर से निकाल दिया।

सूर्यकान्त की आखें डवडवा आईं, हृदय पर वज्रपात हुआ। मानसिक विचार सारणी मे उथल-पुथल का ज्वार आने लगा। क्या करू ? कैसे होगा जीवन-निर्वाह ? आखिर दोनो वच्चो और स्त्री को लेकर पडोसी के घर मे किराये पर रहने लग गया। वैभव के अभाव मे दुकान तो कर ही नही सकता था। तेल, गुड, साबुन आदि अनेको चीजे आस-पास के छोटे गावो मे ले जाकर प्रतिदिन वेचा करता था। उस नैरन्तिक स्वल्प कमाई से परिवार का भरण-पोपण करने लग गया। 'हर रोज कुआ खोदना और हर रोज पानी पीना' इसी कहावत को चरितार्थ करता हुआ वह क्रमश अपने व्यापार मे विकास करने लगा। वह इतना स्वाभिमानी था कि समय पर भूखा रहना उसे मंजूर था, परन्तु वडे भाई से याचना करना उसे स्वीकार नही था।

एक दिन सूर्यकान्त तो विक्रय-सामान लेकर कोई गाव गया हुआ था। इधर घर मे आटा न होने के कारण वच्चे क्षुधा से पीडित हो रहे थे। रोटी-रोटी की आह भरी करुण पुकार से धरा और आकाश एक हो रहे थे। करुण क्रन्दन देखकर मा से रहा नही गया। सकुचाती हुई वह वडे भाई के घर गई और विनम्र शव्दो मे कहा—"सासूजी ! वच्चे विलख रहे हैं। प्यासी मीन की भाति तडप रहे है। घर पर आटा विलकुल नही है। कम से कम चार रोटी का आटा दे दीजिए, कल ही वापस लौटा दूगी। भूख मैं सह सकती हू, पर वच्चे नही।"

सास ने कुछ आटा दिया। छोटी वहू की कामना क्रियान्वित हुई, दौडी-दौडी घर आई और रोटिया पकाने की क्रिया प्रारम्भ की, वच्चो के कुछ जी मे जी आया। आशावान् वने। अव तो अवश्य ही क्षुधाग्नि शान्त होगी।

सूर्यकान्त के अलग हो जाने पर भी चन्द्रकान्त की ईर्ष्याग्नि शात नही हुई थी। प्रत्येक कार्य मे वह उसकी अवनति चाहता था। आखो मे रजकण की भाति इसके दोनो वच्चे खटकते ही थे। अचानक घर आया और जव अपनी पत्नी द्वारा यह विदित हुआ कि देवरानी आटा माग कर ले गई है, एडी से चोटी तक लाल-

पीला होकर धम-धम करता हुआ वह क्रोधी सूर्यकान्त के घर जा पहुचा।

आभा खाना पका रही थी, सिकी हुई एक रोटी बच्चो की थाली मे थी, दूसरी तवे पर, तीसरी अगारो पर और चौथी रोटी का आटा कठौती मे था। इतने मे वह (चन्द्रकान्त) बकवास करता हुआ मन ही मन मे कुड-कुड करता हुआ बच्चो की थाली मे पडी हुई रोटी के टुकडो को, कच्चे आटे को तथा सिकी और अधसिकी रोटी को लेकर दौड आया। घर से बाहर आकर उसने सारा सामान कुत्तो को डाल दिया। जोर-जोर से बकने लगा—"कुत्ते भले ही खा जाए पर भाई के परिवार वालो को नही खाने दूगा।"

इस असह्य अपमान और हृदय चीरने वाली दुत्कार से छोटे भाई की पत्नी का हृदय टूक-टूक हो गया। दु खाक्रान्त अवस्था मे वह इस निर्णय पर पहुची कि इस ससार से सदा के लिए विदाई ले लेनी चाहिए। दोनो बच्चो को साथ लेकर कुए पर पहुची। पुत्र को कहा—"पुत्र! मै तेरे लिए रोटी लाने जाती हू, तू यहा आनन्द से क्रीडा करते रहना।" वह उस छोटी बच्ची को छाती से चिपका-कर कुए मे कूद पडी। बाहर पुत्र प्रतीक्षा कर रहा है—"कब अम्मा आए, कब रोटी लाए ?"

सूर्यकान्त कुछ कमाई करके जब घर आया, पडोसी से पूछा—"घर की मालकिन आभा कहा गई है ?"

पडोसी—"आज आपके बडे भाई से झगडा अवश्य हुआ था।"

सूर्यकान्त—"किस विषय मे ? मैं अलग, वह अलग, फिर झगडा ?"

पडोसी—"आटे के विषय मे।"

सूर्यकान्त—"अच्छा किसी को पता है, वह घर से निकल कर किधर गई ?"

पडोसी—"कहा गई, यह तो पता नही है, लेकिन वह उससे अपमानित होकर दोनो बच्चो को साथ लिए कही जा अवश्य रही थी।"

यह सारा दु खद वृत्तान्त सुनते ही सूर्यकान्त तो उसकी खोज करने के लिए शहर मे निकल गया। पर्यटन करते-करते आखिर उसी कुए पर जा पहुचा, जहा पुत्र रुदन कर रहा था, मा-मा की रटन लगा रहा था। सहसा सूर्यकान्त ने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर प्यार से पूछा—"वत्स! तेरी मा कहा गई ?"

पुत्र—(बिलखता हुआ) "पिताजी! मेरे लिए रोटी लेने गई है।"

पिता—"क्या वह बच्ची को साथ ले गई है ?"

पुत्र—"हा, मुझे कह गई, तू यहा बैठे रहना।"

पिता—"अच्छा! वह किस मोहल्ले मे गई है ? किधर से गई है ?"

पुत्र—(कुए की ओर सकेत करते हुए) "इधर से, पिताजी! अम्मा कब

आयेगी ? अभी तक नही आई, मुझे भूख लग रही है।"

यह सुनते ही सूर्यकान्त अवाक् रह गया। अपनी तकदीर को कोसने लगा। हाय ! कैसा अन्याय ! क्या इस स्थिति मे मुझे जीवित रहना शोभास्पद है ? पुत्र को व्यथा भरी वाणी मे कहा—"पुत्र ! तुझे अम्मा मे मिलना है ? चलो, जहा तेरी अम्मा गई है, वहा हम भी चले।" यो कहता हुआ पुत्र को साथ लेकर कुए मे कूद गया। ससार से सदा के लिए आखे मीच ली। यह है, ईर्ष्या का दुष्परिणाम। वडे भाई के दुश्चिन्तन तथा जलन के कारण आज छोटे भाई का सारा परिवार यमराज के घर पहुच गया।

इधर चन्द्रकान्त के भाग्य ने भी पलटा खाया और अचानक उसके व्यापार मे लाखो रुपयो का नुकसान हो गया। चन्द्रकान्त के वक्षस्थल पर इतना भयकर वज्र-पात हुआ कि उसका हार्ट फेल हो गया। अपने प्रिय-पति के देहावसान की भयकर दु खाग्नि से प्रज्वलित होकर मनोरमा भी विपपान कर सदा के लिए परलोक चली गयी।

बुढिया अपने भाग्य को धिक्कारती हुई करुण विलाप कर रही है। "हन्त ! यदि ईर्ष्या की भीषण ज्वाला नही भभकती, तो आज इस विषम स्थिति का क्यो अवलोकन करना पडता ? क्यो समस्त परिवार को ससार से विदा लेनी पडती ? अव क्या···?"

ईर्ष्या भीषण रोग है, ईर्ष्या दु ख की खान।
होता ईर्ष्याशील के, पग-पग पर नुकसान॥

पंचों की प्रवंचना

सुशीला की शादी सर्व-साधन-सम्पन्न परिवार मे वडे ठाठ-वाट से हुई थी। विवा-होपलक्ष मे सेठ करोडीमल ने दिल खोलकर खर्चा किया था। चार भाइयो के वीच एक ही वहिन होने के कारण सभी के हृदय मे उल्लास का अतिरेक था, किन्तु सुशीला के भाग्य ने अधिक सहयोग नही दिया। कर्मो की गति वडी विचित्र होती है। भवितव्यता की अकाट्य शक्ति के सामने वडे-वडे शूरवीर योद्धा भी निस्तेज हो जाते है। उनका समग्र वल पगु मनुज की भाति निष्क्रिय हो जाता है। 'यद् भाव्य तद् भविष्यति' अनेको प्रयत्न करने पर भी होनहार टल नही सकता। जो होना होता है वह होकर ही रहता है। छ महीनो की अल्प अवधि मे ही सुशीला का समस्त जीवन दु खाचरण से आवृत्त हो गया, मानो वक्षस्थल पर कडकडाती हुई विद्युत गिर पडी हो। सुहाग का अमर प्रदीप वुझ गया। वाल-विधवा सुशीला

के सारे-राग-रग दुख मे परिणत हो गये। मूर्च्छित-मृणालिनी की भांति उसकी जीवन लता सलिलाभाव मे अविकस्वर दशा को प्राप्त हो गई।

सुशीला वहिन अब अपने जीवन की समस्त घडिया पीहर मे व्यतीत करने लगी। अशान्ति की काली घटाओ से दूर होकर शान्ति के उपवन मे विहरण करने लगी। सुशीला वडी धार्मिक प्रवृत्ति की थी। पाप-पिशाचिनी से कदम-कदम पर सजग रहती थी। सादगी के प्रति गहरी निष्ठा थी। सयम का शृगार ही वह अपना सारा शृगार मानती थी। धर्म के शीतल सरोवर मे वह डुवकिया लेती हुई अपने मानसिक सन्ताप को समाप्त कर रही थी।

एक दिन सध्या के समय उसने पिता करोडीमल से कहा—"पिताजी! आप से सानुरोध निवेदन है कि आप अपने अमूल्य जीवन की शुभ घडिया पचायती करने मे नष्ट न करे, प्रभु-भक्ति मे लगाये।"

पिता—"पुत्री! प्रभु-भक्ति के लिए मुझे अवकाश नही है।"

पुत्री—"पचायती की भयकर महामारी से किसी को भी आत्मसुख की अनुभूति नही होती और इसी खठ-पट मे आप समय पर खाना-पीना भी भूल जाते हैं। रात-दिन का भी ख्याल नही रखते हैं। जिसका दिनो-दिन स्वास्थ्य पर भी वुरा असर है और पचायती के हर निर्णय मे स्वभावतया एक पक्ष की दुर्भावना तो अवश्य ही आपके प्रति वनती है, चाहे जिसके पक्ष मे भी आप फैसला करें। कभी-कभी सव जानते हुए भी निर्णय वास्तविकता से परे होना सम्भव है। अत विना मतलव लोगो का अपयश मोल लेकर जीवन को कालिमा से अवगाहित करना क्या वुद्धिमत्ता है? कृपया मेरा कहना मानकर आप पचायती के कार्य से विरक्त हो जाइए।"

पिता—"वेटी! तेरा कहना अक्षरश सत्य हो सकता है, किन्तु हम झूठी पचायती मे भाग नही लेते हैं। वरावर न्याय, एक रोटी के दो टुकडे कर देते हैं। हस-विवेक रखते हुए दूध का दूध और पानी का पानी कर देते हैं।"

पुत्री—"पिताजी! रहने दीजिए दिखावटी सफाइया। कहा पडा है आज के युग मे न्याय? न्यायालय भी अन्याय की तुला पर तुले हुए हैं। वहा का प्राय सव काम रिश्वत के आधार पर आधारित है। चादी की मार के आगे वडे-वडे वुद्धिमान् न्यायाधीशो की वुद्धि मे भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। धन का पक्ष इतना वलिष्ट होता है कि रगे हाथो पकडा गया दोषी भी निर्विवाद वरी हो जाता है। सच्चे झूठे और झूठे सच्चे हो जाते हैं। न्याय-अन्याय का पक्ष अवास्तविक होकर हरेक की आखो के सामने पैसे का प्रश्न नृत्य करने लग जाता है, अत पुन-पुन मेरी यह आपको चेतावनी है कि आपका जीवन-सूर्य अस्ताचल की ओर प्रयाण करने वाला है। झूठे झगडो व जजालो से विदाई लेकर जीवन को आत्मविकास

मे लगाए।"

पिता—"सुशीला! तू अभी तक विल्कुल भोली है। तेरा वाक्-प्रलाप गगन-कुसुम की भाति अर्थ-शून्य है। तुझे क्या पता, देख पचो मे परमेश्वर रहते हैं। जब हम न्यायासन पर आरूढ होते हैं तव हमारे (पचो के) दिलो मे पाप विल्कुल भी नही होता है। हम निष्पक्ष होकर वरावर न्याय करते हैं।"

पुत्री—"रहने दीजिए वृथा वितडावाद। कपोल-कल्पित आपकी कल्पना अरण्यरुदन की तरह निष्फल है। न तो परमेश्वर आते हैं और न जाते हैं।"

पिता—(आक्रोशपूर्वक) "वस, रहने दे तेरी शिक्षा! मुझे जैसा उचित व हितकर लगेगा, वैसा करूगा।"

सुशीला समझ गई कि अव पिताजी को कहने मे अधिक लाभ नही है। कुछ ही दिनो पश्चात् वह अपनी भाभियो के साथ वात-वात पर तकरार करने मे निर्भयता का परिचय देने लगी। समय-समय पर उन सवको चिढाती हुई, सभी के दिलो मे अनल-ज्वाला प्रज्वलित करती हुई, अनर्गल वचन-तीर चुभाती हुई वक-वक करने लगी—"भाभियो! मेरे ही प्रताप से तुम माल-मसाले उडाती हो, सुन्दर-सुन्दर कपडो तथा वहुमूल्य आभूपणो से पल-पल अपनी शारीरिक शोभा को द्विगुणित करती रहती हो। मैं विधवा वनी सो वनी, किन्तु तुम सवको मौज वन गई।"

सुशीला की तीखी वाणी ने सारे घरेलू वातावरण को अशान्त कर दिया। कोलाहल की प्रचड आधी से एकता की लौ वुझ गई और घर मे चारो तरफ अन्धकार ही अन्धकार नजर आने लगा। चारो भाइयो को इस अघटित घटना की जानकारी प्राप्त होते ही उन्होंने पिता से कहा—"अगर वहिन को कुछ देना हो तो दे दीजिए, वह निरन्तर घर मे धूम मचाती रहती है।" पिता ने पुत्री को बुलाकर कहा—"पुत्री! क्यो विना मतलव अपनी भाभियो के साथ झगडा करती है? क्या लेना है तुझे?"

पुत्री—"गजव करते हैं पिताजी आप! जव मै विधवा वनी थी तव ससुराल से ५०० तोला सोना लाकर मैंने आपको सम्भलाया था। वही सोना वापस लेना है।"

पिता—"क्यो असत्य का सहारा लेती है? केवल नमक की रोटी पकाते तुझे जरा भी सकोच नही होता? एक भी तोला नही दिया था तूने।"

पुत्री—(साश्चर्य) "पिताजी! आप ही ऐसे जीवित मक्खी निगल रहे हैं। मुझे ऐसा विश्वास ही नही था कि आप इनकार हो जायेंगे। हृदय के टुकडे हो रहे हैं। आप भी सहायक हो गये। वस, अव अधिक कहना नही चाहती हू। कृपया मेरा जेवर दे दीजिए।"

पिता—(आखो से खून बरसाता हुआ) "धिक्कार है तुझे, क्यो वृथा आग सुलगाती है ? निकल मेरे घर से।"

पुत्री—"पिताजी ! मैं मेरा माल-ताल लेकर रहूगी। अगर आप नही देंगे तो मैं पचो के पास जाकर पुकार करूगी। आपकी सेठाई भी मिट्टी मे मिल जाएगी।"

बीच मे ही चारो भाई आखो से रक्तधारा प्रवाहित करते हुए विद्युत की भाति कडककर बोले—"जा जा, पचो के पास, तुझे करना है सो कर ले। हम झूठे कलक को धो डालना चाहते हैं।"

पचो के पास जाकर सुशीला ने अपनी मानसिक-व्यथा-भरी कहानी आदि से अन्त तक कह डाली। पचो ने सेठ को बुलाकर कहा—"करोडीमल ! धिक्कार है तेरे जीवन को। बेचारी विधवा पुत्री को तू धोखे मे डाल रहा है।"

करोडीमल—"यह (सुशीला) बिल्कुल झूठ बोल रही है। मुफ्त मे तो हमारी रोटिया खाती है, प्रत्युत हमे चोर बनाती है। झूठा इल्जाम लगाती है। क्या लिखित रूप से इसके पास कोई साक्षी है।"

सुशीला—"पचो ! क्या पिता से भी कुछ लिखवाया जाता है ? मुझे तो केवल इतना सा याद है कि जब मेरे पति का देहावसान हुआ तब मैं पाच सौ तोला सोना लेकर पीहर आई और पिताजी को सौंप दिया था। इसके सिवाय मुझे और कुछ भी याद नही है।"

एक तरफ सुशीला का बाल-वैधव्य व उसकी करुणामयी चीख ने सहानुभूति को उभारा और दूसरी तरफ सेठ करोडीमल, जो निरन्तर पचायती मे निमग्न रहता था और जिनके विपक्ष मे निर्णय देते उनकी चिरकालीन दुर्भावना आदि विषाक्त परिस्थितियो के कारण सुशीला का कथन पंचो को अक्षरश सत्य लगा। आखिर सोच-विचार कर पचो ने फैसला सुनाते हुए यह जाहिर किया कि सुशीला को ५०० तोला सोना अथवा २० के भाव से १००००) रुपये मिलने चाहिये। फैसला सुनते ही सेठक रोडीमल के होश गुम हो गए। वे हक्के-बक्के रह गए, पर करे क्या ?

सुशीला पिता से लड-झगड कर आखिर १००००) रुपये लेकर घर से निकल गई। इधर सेठ करोडीमल के दु ख का पार नही रहा। वे चिन्ता के महासागर मे गोते खाने लगे—'हाय ! रुपये गए सो गए लेकिन साथ-साथ इज्जत भी चली गई। लोगो के सामने ऊचा मुह करके कैसे बोलूगा ?' इस भयकर मानसिक व्यथा के कारण सेठजी का स्वास्थ्य भी बिगड गया। वे असाध्य रोग से सपीडित हो गए।

कुछ ही दिनो पश्चात् सुशीला पिताजी से मिलने के लिए आई और पिता के

चरणो मे पडकर नम्र-भाव से मधुर वाणी मे निवेदन करती हुई वोली—"पिताजी ! देख ली आपने पचो की प्रवचना। वताइए, पचायती मे कितनी सच्चाई है। मैने पाच सौ तोला सोना आपको नही दिया था, फिर भी तकरार करके दस हजार रुपये ले गई। पिताजी ! क्या पचो मे परमेश्वर रहते है ? कहा गए वे आपके परमेश्वर। विल्कुल हलाहल अन्याय हुआ। ये लीजिए आपके दस हजार रुपये। मुझे केवल आपको समझाने के लिए यह प्रयोग करना पडा और अभद्र व्यवहार करके घर के वातावरण को कलुषित वनाना पडा। अव मैं आपसे पुन -पुन क्षमा चाहती हू।"

सुशीला की गद्-गद् वाणी से घर का वातावरण वदल गया। सवके रोगटे खडे हो गए। मुह मे अगुलिया आ गईं। सेठ करोडीमल की आखो से टप-टप अश्रु-विन्दु गिरने लगे और धीरे से कोमल शब्दो मे सेठ ने कहा—"पुत्री ! तूने मेरी आखें खोल दी। हृदयस्थ अज्ञानान्धकार मे प्रकाश कर दिया। अव मैं तेरी वाणी का शतश स्वागत करता हू। पचायती करने मे कुछ भी लाभ नही है। आज के इस विषैले युग मे प्रवचना के सिवाय न्याय कहा पडा है ? सर्वत्र झूठ का वोल-वोला है। सच्चाई झूठ मे और झूठ सच्चाई मे परिणत हो जाता है। पुत्री ! अव मैं आत्म-निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हू कि कभी भी पच-पचायती मे भाग नही लूगा और न किसी को धोखा दूगा।"

पचजनो की वचना, हुई प्रकट साक्षात्।
पचो मे परमेश हो, सत्य नही यह वात॥

चमत्कार

सुवोधकुमार अपने मा-वाप का इकलौता पुत्र था। माता-पिता के अत्यधिक स्नेह व लाड-प्यार मे पला-पुसा और वडा हुआ। १७ वर्ष की उम्र मे ही वह कुछ ऐसे लोगो की सगति मे फस गया, जो शरावी, व्यभिचारी एव जुआरी थे। मदिरा की वोतलें उडाना, जुआ खेलना इसके लिए साधारण-सा वन गया था। कुछ ही दिनो मे वह प्राय सभी व्यसनो का दास वन गया। हर रोज स्कूल का नाम लेकर जाता, किन्तु उसने अपना स्कूल सिनेमा-घर को वना रखा था। सिगरेट और वीडियो का धुआ उडाता हुआ सडको एव गलियो को छानता रहता था। स्कूल मे हाजरी भराकर दौड जाता था। समय-समय पर मास्टर साहव भी उसको शिक्षा देते थे। उपालम्भ के साथ-साथ डाट भी लगाते थे, किन्तु सुवोधकुमार की ऊपर भूमि मे अकुर प्रस्फुटित कहा होने वाले थे ?

एक दिन मास्टर सुबोधकुमार के घर गये और उसके पिता लाला श्यामनाथ से बोले—"लालाजी! आपका यह पुत्र बडा उद्दण्ड है। मेरे सामने भी अनर्गल शब्द बोलते हुए इसे तनिक भी सकोच नही होता। पढाई पर बिल्कुल ध्यान नही है। नजर चुराकर कब कहा दौड जाता है, किसी को भी पता नही लगता, और इधर मे मैने सुना है कि सुबोध गुण्डो की टोली मे भटकता रहता है, शराब के नशे मे चूर रहता है, जुआ खेलता है। यदि आप इस पर नियन्त्रण नही रखेंगे तो आगे जाकर आपको ही पश्चात्ताप करना पडेगा।"

लाला श्यामनाथ ने धर्मपत्नी प्रभा से कहा—"सुन लिए सुबोध के समाचार! अभी मास्टरजी आए थे, वे उसकी कहानी सुना रहे थे कि वह बिल्कुल नही पढता है। आवारा लडको के साथ फिरता रहता है, सभी व्यसनो का दास बन चुका है। यह सब तुम्हारे अत्यधिक लाड-प्यार का ही दुष्परिणाम है। खैर, अब भी लापरवाही को छोडकर उसे सुधारने का प्रयास करो। क्योकि बाल्यावस्था मे जो सुधर जाता है, वह सुधर जाता है, पर भविष्य मे बडा होने के बाद सुधरना अतीव मुश्किल है।"

अपने प्यारे पुत्र का वृत्तान्त सुनते ही प्रभा की भौहे ऊपर को चढ गई। आशाओ पर पानी फिर गया। आखो के सामने अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। वह सोफे पर बैठी-बैठी असमजस के सागर मे डुबकिया लगाने लगी, सुबोध स्कूल का नाम लेकर गया था, लेकिन अभी तक उसका कोई पता नही, कौन जाने कब आएगा। आखे फाड-फाडकर प्रतीक्षा कर रही थी कि इतने मे निरन्तर की भाति शहर से भटकता हुआ वह घर मे घुसा। प्रभा ने विद्युत की तरह कडककर कहा—"सुबोध! इधर आओ, किताबे लाओ, आज विद्यालय मे क्या अध्ययन किया?

सुबोध—(टालमटोल करता हुआ) "माताजी! मास्टरजी जो पाठ देते है, वही पढता हू। तुम हमारी पुस्तको के विषय मे क्या जानती हो?"

प्रभा—"पुत्र! मैने सुना है, तुम दत्त-चित्त होकर अध्ययन नही करते हो। इधर-उधर साथियो के साथ घूमते रहते हो। देखो, कदम-कदम पर बुरी आदतो से डरते रहना चाहिए क्योकि 'सादा जीवन उच्च विचार' ही जीवन की अमूल्य निधि है। धूम्रपान, शराब आदि दुर्व्यसनो की जजीरो मे जो मुक्त रहता है वह मानव इस वसुन्धरा का चमकीला नक्षत्र है। जहा जाता है वहा उसकी इज्जत एव प्रतिष्ठा होती है। पुत्र! माता होने के नाते मेरी सीख है कि तुम प्रतिक्षण व्यसनो से बचते रहना।"

प्रभा की शिक्षाओ का उस पर क्या असर हो सकता था? काली कम्बल पर क्या रग चढ सकता है? चिकने घडे पर क्या बूद ठहर सकती है? सुबोध कुमार तो 'वही घोडा, वही मैदान' इसी कहावत को चरितार्थ कर रहा था। लाला

श्यामनाथ भी उसे काफी समझाते थे, किन्तु उनका किया हुआ प्रयास भी कानन-कुसुम की भाति निष्फल जाता था। इससे वे वडे चिन्तित एव व्याकुल रहते थे, पर सुबोध सभी प्रकार के दुर्गुणो से ग्रसित होने पर भी अपने माता-पिता का सकोच अवश्य रखता था। खुलेआम उनको जवाव देने मे अव भी उसे हिचक थी। आख की शर्म ही सुधार के लिए बची हुई एक किरण थी, जो अन्धकार भरे जीवन मे आलोक दे सकती थी।

उसी शहर मे सन्तो का शुभागमन हुआ, उनका विद्वत्तापूर्ण प्रवचन सुनने के लिए हजारो व्यक्ति जाते थे। लाला श्यामनाथ ने सोचा कि सुबोध का सुधार सन्त-जन ही कर सकते है। लालाजी ने एक दिन अपने पुत्र से कहा—"पुत्र! आचार्य श्री तुलसी के अन्तेवासी विद्वान शिष्य यहा आये हुए हैं। उनके ओजस्वी भाषण मे वडी भीड रहती है। क्या तू भी भाषण सुनने के लिए चलेगा?"

पुत्र—"पिताजी! ये आचार्य तुलसी कौन हैं? मैंने तो इनका नाम ही सुन रखा है।"

पिता—"पुत्र! आचार्य तुलसी भारत के एक महान् सन्त हैं। इन्होंने जन-जन का नैतिक स्तर ऊचा उठाने के लिए एक अभिनव अभियान चलाकर राष्ट्र को वहुत वडी देन दी है।"

पुत्र—"अच्छा! आजकल समाचार-पत्रो मे अणुव्रत आन्दोलन की चर्चा वडे-वडे अक्षरो मे जो पढने मे आती है, क्या उसके वे ही प्रवर्तक है?"

पिता—"हा, इस आन्दोलन को प्रचलित करने के लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार भी आशातीत सहयोग प्रदान कर रही है और इसकी सुविस्तृत जानकारी तो मुनिजनो से ही प्राप्त हो सकती है।"

सुबोधकुमार पिता के आग्रह को न टाल सकने के कारण उनके साथ सन्तो के स्थान मे चला गया। (लालाजी ने पहले से ही सन्तो से प्रार्थना कर दी थी कि मेरे पुत्र को सुधारना आपके हाथ है)। प्रवचन का उस पर काफी असर पडा। भाषण समाप्ति के वाद उसने अणुव्रत शब्द का अर्थ पूछा।

मुनि—"अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत। जिस आन्दोलन मे नैतिक नियमो का सगठन किया गया है उसका नाम है अणुव्रत।"

सुबोध—"इस आन्दोलन का क्या उद्देश्य है?"

मुनि—"जाति, वर्ण, देश, भाषा और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव मात्र को सयम की ओर आकृष्ट करना। व्रतो के आधार पर इसको तीन भागो मे विभक्त किया गया है—(१) प्रवेशक अणुव्रती (२) अणुव्रती (३) विशिष्ट अणुव्रती। इनके क्रमश ११, ४३ और ४६ नियम वनाये गये है।

असाम्प्रदायिक आन्दोलन की गतिविधि को जानकर उसने काफी प्रसन्नता

व्यक्त की। परस्पर और भी अनेक प्रश्नोत्तर चले। आखिर जीवन निर्माण की दिशा मे प्रेरित करते हुए मुनिराज ने उसको नियम अपनाने की प्रेरणा दी और साथ-साथ जीवन को सस्कारित एव उज्ज्वल रखने के लिए फरमाया कि किसी की भी बुरी सगति नही करनी चाहिए और धूम्रपान आदि व्यसनो से विरक्त रहना चाहिए।

सुबोधकुमार ने कहा—"महाराज ! आपका सदुपदेश अक्षरश सत्य है। पर अब मैं इन नियमो के योग्य नही हू, किन्तु इसमे जो आत्म-हत्या का नियम रखा गया है, वह तो पाल ही सकूगा। इसमे मुझे कोई बाधा नही लगती। अगर आप चाहे तो मुझे आत्म-हत्या न करने का नियम दिला दीजिए।"

मुनिराज से नियम ले सुबोध अपने घर पहुचा। दस बजते ही स्कूल के लिए रवाना हो गया। मास्टर साहब ने उसे कुछ डाटा। उस डाट से सुबोध कहा डरने वाला था। प्रत्युत उसने मास्टर साहब की मरम्मत कर दी। घर शिकायत आई। प्रभा के दु ख का पार नही रहा। घर आते ही सुबोध के चट-पट करते हुए दोनो गालो पर जोर से चाटे पड गये। सारी अगुलियो के निशान से उसका मुह सन्ध्याकाल के सूर्य जैसा हो गया। "सुबोध ! कितनी बार मैंने तुझे समझाया, लेकिन अक्ल नही आती। आज मास्टर साहब पर हाथ उठाया है, कल मुझ पर, परसो लालाजी पर · ···। नीच और कमीनो के साथ ही यदि तुझे जीवन विताना है तो जा, उन्ही के साथ रह। घर मे पैर रखने की जरूरत नही है। समझ लेना मा-बाप ससार से चल बसे हैं। इस घर मे पैर तभी रख सकोगे, जब बुरी आदतो को छोडकर गुण्डो के पास न जाने की प्रतिज्ञा करोगे।"

माता की असह्य ललकार से सुबोध अपना बोध भूल गया और चुपके से घर से निकलकर समुद्र के किनारे जा बैठा। अशान्ति से उसका मस्तिष्क इतना भर गया कि उसके विचारो मे उथल-पुथल मच गई। वह अपना धैर्य खो बैठा। सुमति उससे विदा ले गई और वह मन ही मन सोचने लगा—'अब इस सागर का अतिथि होकर ससार से प्रस्थान कर देना चाहिए।' समुद्र मे गिरकर मरने की तैयारी कर ही रहा था कि अचानक नियम ने उसकी अन्त प्रेरणा को जागृत किया। एक झटका सा लगा, अन्तर्मन बोल उठा—'अरे, सुबोध ! तनिक सोच, तूने सन्त-मुनिराजो की साक्षी से सकल्प किया है कि तू आत्म-हत्या नही करेगा, अब यह क्या कर रहा है ? ठहर जा, अपने को रोक, यह नही हो सकेगा।'

यह सुनते ही सुबोध को सद्बुद्धि मिल गई और वहा से लज्जा के कारण किसी अपरिचित शहर मे जाकर एक सेठ के पास नौकरी कर ली।

इधर मा-बाप ने सुबोध की खोज मे हजारो रुपये खर्च कर दिये, लेकिन उसका पता नही लगा। पुत्र के अभाव मे प्रभा निष्प्रभ हो गई। 'हा बेटा, हा बेटा' करती

हुई पागल वन गई।

कुछ ही महीनो वाद सुवोध को घर की याद आई। समस्त वुराइयो को देश-निकाला देकर घर की ओर मुह मोडा। घर आते ही उच्च स्वर मे मा को पुकारा। पुत्र की आकृति देखते ही प्रभा की कली-कली खिल उठी। वेटे को इस तरह छाती से चिपका लिया जैसे कि जन्म-जन्म की खोई वस्तु उसे मिल गई हो। पुत्ररूपी प्रकाश के सामने उसके पागलपन का समस्त अन्धेरा दूर हो गया। लाला श्याम-नाथ दफ्तर की छुट्टी होते ही खाना खाने के लिए घर पहुचे। अचानक अपने वच्चे सुवोध को देखकर फूले न समाए, आखो से खुशी के आसू टपकने लगे।

पुत्र ने कहा—"पिताजी ! मैंने तो आवेश मे आकर आत्म-हत्या करने की योजना वना ली थी, लेकिन महाराज का भला हो, उस एक नियम मे मैं मरता-मरता वच गया, और धीरे-धीरे सभी व्यसनो को भी मैंने छोड दिया है। पिताजी, वताइये तो सही, आजकल वे महाराज कहा पर विचरण करते हैं। मैं एक वार उनके अवश्य दर्शन ।"

पाप आत्म हत्या सदृश, कोई भी न विचार।
एक नियम के योग से, वचा सुवोधकुमार ॥

काश ! मै नियंत्रित होता ?

"पवन ! अभी विलायत जाना तुम्हारे लिए उपयुक्त नही है क्योकि मैं वृद्ध हू। तुम्हारी माता प्राय रोग-ग्रस्त रहती है। हम दोनो की सेवा करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है। दुकान पर लाखो का व्यापार व लेन-देन चलता है, उसकी सारी जिम्मे-दारी भी अव तुम्हे निभानी पडेगी, अव मैं काम करता-करता थक गया, अवस्था भी काफी हो गई। अव मेरी इच्छा यह है कि सासारिक समस्त कार्यों से मुक्त होकर अपना सारा समय भगवान् की भक्ति मे लगा लू, जिससे मुझे सहजानन्द की अनुभूति हो।"

पवन—"पिताजी ! आपने तो मेरी मानसिक कल्पनाओ पर पानी फेर दिया। मैं क्या सोच रहा था और आप क्या कह रहे हैं ? जरा सोचिए, आज इस वैज्ञानिक युग मे प्रकाण्ड पडितो व उच्च अध्येताओ का महत्व है, सम्मान है, साधारण मेट्रिक, वी० ए० की पढाई करने वालो की सख्या अत्यधिक है, उनकी कोई इज्जत नहीं है। नौकरी के लिए इधर-उधर फिरते रहते है। योग्य पद मिलना तो दूर, साधारण पद मिलना भी वडा कठिन हो जाता है। इसलिए मैं तो विला-यत जाऊगा और वैरिस्टरी पास करके आऊगा। आप अपनी सेवा के लिए नौकर का इन्तजाम कर लें। माताजी की सेवा के लिए मैं दर्शना को घर पर छोड दूगा।

कारोबार यदि आपसे न हो सके, तो बन्द कर दीजिए। मैं तो जनवरी के प्रथम सप्ताह मे यहा से चला जाना चाहता हू।" इन तीखे-तीखे तीरो ने सेठ पृथ्वीराज के कलेजे को बीध डाला। वे हताश हो गये, मुखाकृति बदल गई, पर करे क्या ? लडका बडा उद्दण्ड और उच्छृ खलता था, वह किसकी सुने ? आखिर सेठजी मजबूर होकर बोले—"बेटा! आनन्द से जाना, स्वास्थ्य का ध्यान रखना और वापिस जल्दी आना।"

बाबू पवनकुमार रवाना होकर विलायत पहुचे। वहा अल्प वर्षों मे बैरिस्टर बनकर अपने नगर को रवाना हुए। जब माता-पिता को पुत्र के आगमन की सूचना मिली तो सारा परिवार आनन्द-विभोर हो गया। दर्शना अपने प्रियतम के दर्शन के लिए आकुल हो उठी। उसके स्वागत के उपलक्ष मे सेठ पृथ्वीराज के घर पर बडी तैयारिया होने लगी। कही दावत का सामान एकत्रित हो रहा था, तो कही कुर्सी और टेबुलो की सजावट हो रही थी। सूर्य उदय होते ही बाबू पवनकुमार अपने घर पर पहुचे। मित्र-मण्डली ने उसके स्वागतार्थ एक आयोजन रखा, जिसमे अनेको मित्रो के भाषण हुए, पवन के अनन्य साथी नरेशकुमार ने सेठ पृथ्वीराज को धन्यवाद देते हुए कहा—"सेठ साहब! आपने अपने पुत्र को बैरिस्टरी पढाकर पिछडे हुए समाज के सामने एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया है।" इतने मे सभी मित्र अनुमोदन करते हुए बोले—"सेठजी! आपने विलायत का रास्ता खोल दिया है, सामाजिक भय के कारण कोई भी बैरिस्टर न बन सका, लेकिन आपका प्रथम चरण सदा के लिए प्रशस्य रहेगा। कोटि-कोटि धन्यवाद!"

दावत पूरी होते-होते रात्रि अधिक हो गई। सबकी आखो मे नीद आने लगी। धीरे-धीरे सब मित्र अपने-अपने घर गए। बाबू पवनकुमार भी चुपके मे अपने निर्णीत स्थान पर जा पहुचे। मेम साहब मुह सिकोडे, आखे लाल बना, विद्युत की भाति कडककर अपनी अग्रेजी भाषा मे बोली—"वैल! तुम यहा से चले जाओ। सवेरे हम तुम पर नॉलिश करेगा। तुमने हमको धोखा दिया है। तुमने विलायत मे कहा था कि तुम्हारी शादी नही हुई है, परन्तु यहा आते ही यह मालूम हुआ कि तुम शादीशुदा हो।"

बाबू पवनकुमार भयभीत होकर बोले—"मै किसी भी परिस्थिति मे आपको नही छोडूगा। उस पत्नी से मेरा कोई भी सम्बन्ध नही है। आप जैसा कहेगी, वैसा ही करूगा। अपना सम्बन्ध अटूट है अविच्छिन्न है। आप किसी भी तरह का सन्देह न करे!" प्रात चाय आदि का सब प्रबन्ध करके अपने घर की ओर चला। घर पहुचते ही खाना खाने के लिए रसोईघर मे गया।

माताजी ने पवन से कहा—"दस वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद ही तू आया, फिर भी घर पर नही सोया, यह अच्छा नही।"

पवन ने कहा—"माताजी ! घर मे मेरा दिल नही लगता, आप कुछ भी कहे।"

दर्शना बैठी-बैठी सुन रही थी। उसने सोचा—'पतिदेव तो अवश्य ही किमी के चक्कर मे फसे हुए हैं।' एकान्त का मौका पाकर पवनकुमार वोला—"देख, दशना ! यदि तुम मेरा इष्ट चाहती हो, तो सदा के लिए तुम अपने पिता के घर चली जाओ, मै तुम्हारे जैसी अशिक्षित स्त्री के साथ जीवन नही विता मकता।" यह सुनते ही दर्शना उदास हो गई और निजी कमरे मे हतोत्साह होकर चली गई। हृदय मे चिन्तन चला—'अव मेरा जीवित रहना ठीक नही।' वस, फिर क्या था ? दर्शना ने तो जहर का घूट पीकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

शहर मे वैरिस्टर पवनकुमार की चर्चा चलने लगी, अगर यह विलायत जाकर अनियन्त्रित न होता, तो क्यो इस 'मेमडो' के चक्कर मे पडता ? क्यो वेचारी दर्शना को जिन्दगी से हाथ धोना पडता ? नगर के इस विपाक्त वातावरण मे भी पवन कुमार का पापाण हृदय कहा पिघलने वाला था ? कहां उसमे सन्मति आने वाली थी ? प्रत्युत शराव और माम उसके जीवन के आवश्यक अङ्ग वन गए और क्रमश सातो ही व्यसनो ने उसको घेर लिया। आय की अपेक्षा खर्चा चौगुना वढ गया। पिता पृथ्वीराज पुत्र-मोह से उसको काफी लम्वे समय तक खर्च के लिए देता ही रहा, पर उसने अपना भविष्य विलकुल भी नही सोचा। एक दिन ऐसा आया कि सेठ पृथ्वीराज का घर धन-विहीन हो गया। पवन को एकान्त मे ले जाकर पिता ने मर्मभरे शव्दो मे कहा—"वत्स ! अव अधिक खर्च मत करो। व्यसनो से मुक्त होकर निर्व्यसनी वन जाओ। मेरी इस शिक्षा से जीवन सुखी वन जाएगा।"

लेकिन स्निग्ध घडे पर पानी की वूद कहा ठहरने वाली थी। पवन पर कुछ भी असर नही हुआ। सेठ की शिक्षा को सुनी-अनसुनी कर गया।

पुत्र की चिन्ता से प्रथम माता का और दो महीने वाद पिता का भी देहावसान हो गया। अव पवनकुमार विल्कुल स्वतत्र हो गया।

अति विलास एव मद्यपान से पवनकुमार भी रोगग्रस्त हो गया। काफी समय तक उपचार करवाया मगर रोग की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। एक दिन मेमसाहव वेहोशी का मौका देख घर का सारा जेवर व रुपये लेकर चम्पत हो गई।

वावू पवन जव चेतनावस्था मे पहुचे तव उन्होने 'मेम' साहव को आवाज दी। आवाज सुनकर नौकर ने हाथ मे पत्र देते हुए कहा कि मेम साहव चली गई है।

है ! क्या ? मेमसाहव चली गई हैं ? यह कहकर पढने लगा। हृदय के दुख का सागर उमड पडा, जीवन भार वन गया। रह-रहकर वीती वाते याद आने लगी। आखिर सोचता है कि इन सवको किसने पनपाया ? मैंने ही इनको आश्रय मे

रखकर पनपाया था। काश ! मैं नियन्त्रित रहता तो आज मेरी यह हालत क्यो ?

रहती मेरी वृत्तियां, यदि सात्विक अविकार।
तो न दुखी बनता कभी, सोचे पवनकुमार॥

फांसी की सजा

विमला स्वभाव से कोमल थी। वह किसी का दु ख-दर्द नही देख सकती थी। प्रत्येक के साथ उसका व्यवहार प्रशसनीय रहता था। उसकी जिह्वा मे अमृत-सी मधुरता थी, अत वह हर व्यक्ति को प्रिय लगती थी। वह जहा जाती, वही उसका विशेष सम्मान होता था। ग्रेजुएट होने के साथ-साथ उसने मनोविज्ञान का भी काफी अध्ययन किया था। उसकी सगीतकला तो जन-मानस को मन्त्र मुग्ध कर लेती थी। उसका आचार और विचार निर्मल था। वह समय-समय पर अपने प्रिय पति रवीन्द्र कुमार एम० ए० को उज्ज्वल आचार व उच्च विचार की शिक्षाए देती थी। वह पतिव्रत धर्म मे सुदृढ थी।

विमला की सहेली मजुला ने एक दिन कहा—"मैंने सुना है, तेरे पति आज-कल काफी व्यसनी हो चुके हैं। शराव की बोतले पी-पीकर बदमाशो के साथ घूमते रहते है। ध्यान रखना, एक व्यसन आ जाने के बाद इन्सान धीरे-धीरे सभी व्यसनो का शिकार हो जाता है।"

विमला ने हसकर कहा—"मैं यह कल्पना भी नही कर सकती हू कि मेरे पतिदेव कभी आचारहीन हो सकते है। यह निरी अफवाह तेरे कानो मे कहा से आ गई ? यह बिल्कुल असत्य है।"

दूसरे ही दिन रवीन्द्र कुमार रात को नौ बजे घर पहुचा, तो उसके साथ लाल-लाल आखो वाले दो बदमाश आदमी भी थे। वे दोनो ही मैले-कुचैले कपडे पहने हुए थे। लम्बे-लम्बे केशो तथा दातो से उनकी आकृति डरावनी लग रही थी। वे दोनो ही रवीन्द्र के साथ कमरे मे घुस गये और दरवाजा बन्द कर रवीन्द्र के साथ खुसर-फुसर करने लगे।

विमला का दिल सन्देह से भर गया। उसने सोचा—'दाल मे कुछ काला है।' वह उनकी बाते सुनने के अभिप्राय से बाहर दरवाजे के समीप ही बैठ गई। किसी का धन हडपने की योजना बना रहे थे। आखिर पारस्परिक परामर्श करते-करते वे इस निर्णय पर पहुचे कि आज रात महलो मे चोरी करके खूब वैभव लाएगे और शराब की बोतलें उडाएगे, फिर वेश्या के वहा चलेंगे।

उनके गुप्त परामर्श की समस्त जानकारी विमला को मिल जाने से उसके हृदय मे दु ख का पार नही रहा। रोगटे खडे हो गये और शरीर सिहर उठा।

चेहरे की सारी चमक निस्तेज हो गई। उसका हृदय-उपवन मुरझा गया। हृदय की गति तेज हो गई। क्षण-भर के लिए वह दिग्मूढ-सी हो गई। हाय! अब इन गुण्डो के जाल मे से इन्हे कैसे बचा पाऊगी? इसी चिन्ता मे वह चुप-चाप कमरे में जाकर लेट गई।

ज्योही वे गुण्डे वहा से रवाना हुए, त्योही रवीन्द्र कमरे से बाहर आकर उच्च स्वर से बोला—"विमला! खाना तैयार हो तो थाली मे परोस कर शीघ्र ले आओ। आवश्यक कार्य से मुझे अभी बाहर जाना है।"

विमला—(पलग से उठकर) "अभी इस अर्द्ध-निशा मे क्या काम पडा है?"

रवीन्द्र—(क्रुद्ध होकर) "तुझे इसकी पचायती की जरूरत नही है कि क्या काम है? क्या नही? हमारे प्राइवेट अनेको ही काम होते हैं।"

विमला—"मुझे मालूम हो गया है कि आप कहा जा रहे हैं और किस-लिए?"

रवीन्द्र—(झीकता हुआ) "क्या मालुम हो गया है तुझे? तनिक मुझे भी तो बता।"

पिशाच की भाति विकराल रूप धारण किए अपने पति को देखकर विमला सहम गई। आखे जमीन मे गड गई। उसने सोचा—'अब अगर इनकी मैं बराबरी करुगी तो क्रोध शान्त न होकर प्रत्युत द्विगुणित होगा। अग्नि मे घृत का काम करेगा। क्योकि वह एक विचक्षण एव समझदार स्त्री थी, हिताहित का विचार किये बिना एक कदम भी नही उठाती थी। अतएव अपने ही आवेश को बलपूर्वक दबाकर, हाथ जोड नम्र भाव तथा सौम्य एव मधुर स्वर मे बोली—"पतिदेव! आप स्वय शिक्षित है, मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नही, आप तनिक सकेत से समझने वाले हैं। देखिए, राजस्थान मे कहावत है—'पर धन धूलि समान' पराये धन को धूल के समान समझना चाहिए। चोरी करना भयकर पाप है। जघन्य एव पशुवत् कृत्य करने वाला मानव, मानव नही दानव है। शराब पीना भी विवेकी एव बुद्धिशील मनुष्यो के लिए कदापि शोभास्पद नही है। बुद्धि एव विवेक भ्रष्ट हो जाने से शराबियो को कृत्याकृत्य का भान नही रहता। मुह मे बिना माप-तौल के शब्द बोलने लग जाते है। कही-कही उनकी जूतो से भी पूजा की जाती है। हाय! शराबियो की कैसी दुर्दशा होती है। इसे हम आप सभी जानते है। फिर भी आप···।"

रवीन्द्र बीच मे ही बोल उठा—"हू, तू तो बडी चालाक है। हमारे प्राइवेट परामर्श का तुझे कैसे पता लग गया। मैं तो अपने साथियो से अत्यन्त एकान्त मे बात कर रहा था। हमारे गुप्त रहस्य का पता ब्रह्माजी को भी नही लग सकता। तूने बहुत ही गजब किया।"

विमला—"मेरी बात पूरी तो सुन लीजिए।"

रवीन्द्र—(स्मित होकर) "अच्छा, तो अभी अधूरा उपदेश हुआ है। बोलो, और क्या कहना है?"

विमला—"वेश्या-वृत्ति से हमारे देश का बहुत बडा पतन हुआ है। इस महामारी की बीमारी से जो सपीडित है, वे कभी भी अपना ही नही वरन् देश तथा समाज का भी अभ्युत्थान नही कर सकते। पतिदेव! अधिक न कहकर आपसे विनम्र शब्दो मे मै यही प्रार्थना करती हू कि आपको यदि अपना जीवन प्रिय है, कुल को यदि आप उज्ज्वल रखना चाहते है, तो इन तीनो (चोरी, शराब, वेश्या-वृत्ति) दुर्व्यसनो से बचते रहिए। इससे आपको बहुत बडा लाभ होगा। मै आपको अच्छा विचारक व आचारवान् समझती थी। मैं आपके प्रति यह धारणा ही नही कर सकती थी कि आप ऐसे बदमाशो के चक्र-जाल मे फस जायेगे, लेकिन आज मेरी समस्त कल्पनाए अवास्तविक एव निर्मूल बन गई। खैर, अब भी मुझे विश्वास है कि आप अपनी आदतो को सुधार कर चरित्रशील बन जायेंगे।"

रवीन्द्रकुमार पर विमला की शिक्षा का कुछ भी असर नही हुआ। वह निर्लज्ज होकर उच्च स्वर से बोला—"सुनो, विमला! तुम्हारा कथन या उपदेश मुझे अपने निश्चय से डिगा नही सकता। मैंने जो बात ठान ली, वह ठान ली। मैं मेरे निर्णय पर पहाड की तरह अटल हू। तुम्हारी समस्त शिक्षाए बहुत ही लाभ-प्रद है, किन्तु मेरे जीवन मे अब उतर नही सकती। खैर, अब इन बातो के लिए समय नही है। मै जाता हू।"

रवीन्द्रकुमार अपने पूर्व निर्णीत स्थान पर जा पहुचा। साथियो से मिला और बोला—"चलो, शीघ्र राजमहलो मे। खूब धन चुराकर लाए और फिर बोतले उडाए।" तीनो राजभण्डार मे पहुचे। वहा भण्डार सुरक्षार्थ एक पहरेदार सोया हुआ था। उसकी नीद न उड जाए, इस भय से उन्होंने आव देखा न ताव शीघ्र साइलेसर युक्त पिस्तौल निकाल कर उस पहरेदार के सीने मे दो-तीन गोलिया मार दी और मन इच्छित धन चुराकर वहा से रवाना हुए। अचानक पुलिस वाले मिल गए और उन तीनो हत्यारो को पकड लिया। आखिर न्यायाधीश द्वारा हत्या के अपराध मे उन तीनो को फासी की सजा सुनाई गई।

अब उन रवीन्द्रकुमार की आखे खुली। कुछ भान हुआ। मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। 'हाय! यदि मैं मेरी धर्मपत्नी विमला की शिक्षाओ को जीवन मे उतार लेता, तो आज मेरी यह दुर्दशा क्यो ... ?'

दुर्व्यसनो के योग से होते बडे अनर्थ।
फासी मिली रवीन्द्र को, सब शिक्षाए व्यर्थ॥

चेहरे की सारी चमक निस्तेज हो गई। उसका हृदय-उपवन मुरझा गया। हृदय की गति तेज हो गई। क्षण-भर के लिए वह दिग्मूढ-सी हो गई। हाय! अब इन गुण्डो के जाल मे से इन्हे कैसे बचा पाऊगी? इसी चिन्ता मे वह चुप-चाप कमरे मे जाकर लेट गई।

ज्योही वे गुण्डे वहा से रवाना हुए, त्योही रवीन्द्र कमरे से बाहर आकर उच्च स्वर से बोला—"विमला! खाना तैयार हो तो थाली मे परोस कर शीघ्र ले आओ। आवश्यक कार्य से मुझे अभी बाहर जाना है।"

विमला—(पलग से उठकर) "अभी इस अर्द्ध-निशा मे क्या काम पडा है?"

रवीन्द्र—(क्रुद्ध होकर) "तुझे इसकी पचायती की जरूरत नही है कि क्या काम है? क्या नही? हमारे प्राइवेट अनेको ही काम होते हैं।"

विमला—"मुझे मालूम हो गया है कि आप कहा जा रहे हैं और किस-लिए?"

रवीन्द्र—(झीकता हुआ) "क्या मालुम हो गया है तुझे? तनिक मुझे भी तो बता।"

पिशाच की भाति विकराल रुप धारण किए अपने पति को देखकर विमला सहम गई। आखे जमीन मे गड गईं। उसने सोचा—'अब अगर इनकी मैं बराबरी करूगी तो क्रोध शान्त न होकर प्रत्युत द्विगुणित होगा। अग्नि मे घृत का काम करेगा। क्योकि वह एक विचक्षण एव समझदार स्त्री थी, हिताहित का विचार किये बिना एक कदम भी नही उठाती थी। अतएव अपने ही आवेश को बलपूर्वक दबाकर, हाथ जोड नम्र भाव तथा सौम्य एव मधुर स्वर से बोली—"पतिदेव! आप स्वय शिक्षित है, मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नही, आप तनिक सकेत से समझने वाले है। देखिए, राजस्थान मे कहावत है—'पर धन धूलि समान' पराये धन को धूल के समान समझना चाहिए। चोरी करना भयकर पाप है। जघन्य एव पशुवत् कृत्य करने वाला मानव, मानव नही दानव है। शराब पीना भी विवेकी एव बुद्धिशील मनुष्यो के लिए कदापि शोभास्पद नही है। बुद्धि एवं विवेक भ्रष्ट हो जाने से शराबियो को कृत्याकृत्य का भान नही रहता। मुह से बिना माप-तौल के शब्द बोलने लग जाते है। कही-कही उनकी जूतो से भी पूजा की जाती है। हाय! शराबियो की कैसी दुर्दशा होती है। इसे हम आप सभी जानते है। फिर भी आप•••।"

रवीन्द्र बीच मे ही बोल उठा—"हू, तू तो बडी चालाक है। हमारे प्राइवेट परामर्श का तुझे कैसे पता लग गया। मैं तो अपने साथियो से अत्यन्त एकान्त मे बात कर रहा था। हमारे गुप्त रहस्य का पता ब्रह्माजी को भी नही लग सकता। तूने बहुत ही गजब किया।"

विमला—"मेरी बात पूरी तो सुन लीजिए।"

रवीन्द्र—(स्मित होकर) "अच्छा, तो अभी अधूरा उपदेश हुआ है। बोलो, और क्या कहना है ?"

विमला—"वेश्या-वृत्ति से हमारे देश का बहुत बडा पतन हुआ है। इस महामारी की बीमारी से जो सपीडित है, वे कभी भी अपना ही नही वरन् देश तथा समाज का भी अभ्युत्थान नही कर सकते। पतिदेव ! अधिक न कहकर आपसे विनम्र शब्दो मे मै यही प्रार्थना करती हू कि आपको यदि अपना जीवन प्रिय है, कुल को यदि आप उज्ज्वल रखना चाहते है, तो इन तीनो (चोरी, शराब, वेश्या-वृत्ति) दुर्व्यसनो से बचते रहिए। इससे आपको बहुत बडा लाभ होगा। मैं आपको अच्छा विचारक व आचारवान् समझती थी। मैं आपके प्रति यह धारणा ही नही कर सकती थी कि आप ऐसे बदमाशो के चक्र-जाल मे फस जायेगे, लेकिन आज मेरी समस्त कल्पनाए अवास्तविक एव निर्मूल बन गई। खैर, अब भी मुझे विश्वास है कि आप अपनी आदतो को सुधार कर चरित्रशील बन जायेंगे।"

रवीन्द्रकुमार पर विमला की शिक्षा का कुछ भी असर नही हुआ। वह निर्लज्ज होकर उच्च स्वर से बोला—"सुनो, विमला ! तुम्हारा कथन या उपदेश मुझे अपने निश्चय से डिगा नही सकता। मैंने जो बात ठान ली, वह ठान ली। मैं मेरे निर्णय पर पहाड की तरह अटल हू। तुम्हारी समस्त शिक्षाए बहुत ही लाभ-प्रद है, किन्तु मेरे जीवन मे अब उतर नही सकती। खैर, अब इन बातो के लिए समय नही है। मै जाता हू।"

रवीन्द्रकुमार अपने पूर्व निर्णीत स्थान पर जा पहुचा। साथियो मे मिला और बोला—"चलो, शीघ्र राजमहलो मे। खूब धन चुराकर लाए और फिर बोतले उडाए।" तीनो राजभण्डार मे पहुचे। वहा भण्डार सुरक्षार्थ एक पहरेदार सोया हुआ था। उसकी नीद न उड जाए, इस भय मे उन्होंने आव देखा न ताव शीघ्र साइलेसर युक्त पिस्तौल निकाल कर उस पहरेदार के सीने मे दो-तीन गोलिया मार दी और मन इच्छित धन चुराकर वहा से रवाना हुए। अचानक पुलिस वाले मिल गए और उन तीनो हत्यारो को पकड लिया। आखिर न्यायाधीश द्वारा हत्या के अपराध मे उन तीनो को फासी की सजा सुनाई गई।

अब उस रवीन्द्रकुमार की आखे खुली। कुछ भान हुआ। मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। 'हाय ! यदि मैं मेरी धर्मपत्नी विमला की शिक्षाओ को जीवन मे उतार लेता, तो आज मेरी यह दुर्दशा क्यो • • • ?'

दुर्व्यसनो के योग से होते बडे अनर्थ।
पत्नी मिली रवीन्द्र को, सब शिक्षाए व्यर्थ॥

स्टेशन पर हाहाकार

प्रवीणकुमार जव स्टेशन पर उतरा, तव सावन के मेघ आकाश पर घिर जाने मे वह काली रात और भी काली हो उठी। वादलो की भयकर गडगडाहट से धरती तल कपित हो रहा था। विजलियो की असह्य चमक-दमक मे आखें चकाचोंध हो रही थी, रिमझिम-रिमझिम पानी वरस रहा था और सामने की काली सडक विल्कुल निर्जन होने से पिशाच की भाति डरावनी लग रही थी ऐसे विकराल समय मे शहर जाना प्रवीण के लिए चिन्ता का विषय वन गया। वह मन ही मन सोचने लगा—"इस भीषण रात्रि मे घर जाना वुद्धिमत्ता नही है। क्योंकि मेरे पास तीस हजार रुपये है। इतनी वडी रकम लेकर अकेला कैसे जाऊ, साथ किसी का मिल नही रहा है। कहावत भी है—'डर काया को नही माया को है।' रात भर स्टेशन पर ही विश्राम करना अच्छा है।"

प्रवीण स्टेशन मास्टर के पास पहुंचा, नमस्कार करते हुए वोला—"वावूजी! मैं परदेश से इस गाडी से आया हू। शहर यहा से दूर है। रात वहुत खराव हो गई। हाथ से हाथ भी नही दीखता है। इस समय घर जाने के लिए दिल मनाही कर रहा है, क्योकि मेरे पास तीस हजार रुपयो की जोखित है, अत. रात्रि विश्राम यही लेना चाहता हू। कृपा करके कोई ऐसा सुरक्षित स्थान वताइये, जहा मैं आराम से निश्चित होकर नीद ले सकू।"

तीस हजार का नाम सुनते ही वावूजी का दिल ललचा गया, प्रवीण को आत्मीयता दिखाते हुए (कुर्सी की ओर इशारा करके) वोले—"विराजिये! आपको किसी भी तरह से चिन्ता करने की जरूरत नही है। आपकी सहज मधुर वोली एव शीतल स्वभाव से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आप वडे सज्जन पुरुष हैं, अवश्य लीजिए यहा रात भर विश्राम। ऐसी अधेरी निशा मे इतनी रकम लेकर जाना ही नही चाहिए क्योकि आजकल शहर मे छुटपुट चोरी-चकारी होती रहती है। यह पास वाला वेटिंग रूम (कमरा) खाली पडा है, आराम से सो जाइये, भय की कोई आवश्यकता नही है, और भी मेरे लिए कोई काम हो तो फरमाइये।"

प्रवीणकुमार वेटिंग-रूम मे जाकर आनन्द से सो गया। मुसाफिरी से थका होने के कारण सहसा वह निद्रा देवी का अतिथि वन गया।

इधर स्टेशन-मास्टर की आखो के सामने वह तीस हजार रुपये नर्तकी की तरह नाचने लगे। उसकी भावना वदल गई, विचारो मे विकृति समा गई। वह मन ही मन सोचने लगा—'आज तो वहुत ही अच्छा मौका मिला है। वह तो अकेला ही निद्रित पडा है। किसी को भी उसकी रकम की जानकारी नही है। इन

रुपयो को शीघ्र ही हस्तान्तरित कर लेना चाहिए। ऐसा सुन्दर समय वार-वार नही मिला करता।' आखिर स्टेशन मास्टर अपने कमरे मे पहुंचे और पानी भरने वाले एक हरिजन (चाण्डाल) को बुलाकर कहा—"आज मैने तुझे एक प्राइवेट काम के लिए बुलाया है। क्या दिल से करेगा ?"

हरिजन—"वावूजी ! आप यह क्या फरमा रहे हैं ? मैं आपके चरणो की रज हू। आप जो हुक्म करे उसके लिए आधी रात को तैयार हू।

वावू—"देख, मै तुझे विश्वासपात्र समझकर कहता हू, किसी को कहना मत।"

हरिजन—"मे भगवान् की साक्षी से कहता हू कि किसी के आगे वात नही करूगा।"

वावू—(उसके कुछ निकट होकर) "आज एक पूजीपति मुसाफिर आया है, वेटिंग रूम मे सोया पडा है। उसके पास तीस हजार कैश है। रात को एक-दो वजे तुम वहा जाकर उसके गले पर छुरा भोक देना। जिसने वह मर जायेगा। वस यही काम है।"

हरिजन—(चौककर) "वावूजी ! अगर किसी को पता लग जायेगा, तो मुझे नर-हत्या के अपराध मे भयकर दण्ड भुगतना पडेगा। फिर मुझे कौन छुटाएगा।"

वावू—"घवडा मत, काम निपुणता से करना। किसी को भी पता नही लगेगा। इस काम की वधाई मे मैं तुझे एक हजार रुपये का इनाम दूगा।"

लोभानल की प्रज्वलित चिनगारियो से सद्गुण रूपी उपवन वल-जलकर भस्म हो जाता है। इन्सान लोभ के चक्रजाल मे फसकर वडे से वडे अकृत्य कार्य भी करने को तैयार हो जाता है। मानवीय आचार को त्यागकर दानवीय आचार पर आरूढ हो जाता है। हजार रुपये का नाम सुनते ही उस हरिजन का भी दिल फिसल गया। मुह मे पानी की धार वह चली। चेहरे पर खुशहाली छा गई धीरे से वह वोला—"अच्छा वावूजी ! आपके आदेश का पालन तो करना ही पडेगा। अव मै जाता हू। नमस्ते।"

पार्श्वस्थ क्वाटर मे रहने वाले पेटवान को इस गुप-चुप अर्थात् गुप्त रहस्य का पता लग गया। वह वृद्ध होने के साथ-साथ वडा अनुभवी एव सज्जन था। उसने सोचा— वावूजी की वुद्धि तो नष्ट हो गई है। लोभाध होकर वहुत वडा अन्याय करा रहे है। किन्तु मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।' वरसते हुए पानी मे वह दौडा-दौडा प्रवीणकुमार के पास पहुचा। उसे जगाकर धीरे से वोला— "सेठ साहव ! यहा पर आपको खतरा है। यदि आपको अपना जीवन प्रिय है तो कृपा करके मेरे क्वाटर मे पधार जाइए।" प्रवीण चमका, आखें खुली, झट उठा— अरे भाई ! ऐसी क्या वात है ? वताओ तो सही, वस्तुस्थिति क्या है ?"

पेटवान बोला—"सेठ जी अभी यहा अधिक समय लगाने मे लाभ नही है, मेरे यहा चलिये। वहा पर विस्तारपूर्वक आपको समग्र घटनाचक्र से अवगत करा दूगा।" प्रवीणकुमार बिना किसी ननु-नच के उसके क्वाटर मे चला गया।

इधर उसी स्टेशन मास्टर का सुपुत्र रश्मिकुमार (जिसकी शादी कुछ ही दिनो पूर्व हुई थी) सिनेमा देखकर एक बजे स्टेशन पर आया। वहाँ विल्कुल सुनमान था। निजी क्वाटर का दरवाजा वन्द होने के कारण रश्मि ने सोचा—'यह वेटिंग रूम खुला पडा है। अभी यही पर सो जाना अच्छा है। घर वालो को जगाकर क्या करूगा। पिताजी प्रत्युत गुस्सा करेगे।' इसी विचार मे वह वही सो गया।

कुछ ही देर वाद वह हरिजन योजनापूर्वक पिशाच की तरह विकराल रूप धारण किए, हाथ मे छुरा लेकर उस वेटिंग रूम मे जा पहुचा। रुपयो के लोभ मे वह अन्धा तो वना ही था, उस सोये हुए व्यक्ति पर टूट पडा और गले मे छुरा भोक दिया। रश्मिकुमार का सिर और धड अलग-अलग होकर धरती पर गिर पडे।

हरिजन की खुशी का पार नही रहा। हजार रुपये रह-रहकर उसकी आखो के सामने नाच रहे थे। वह दौडा-दौडा स्टेशन मास्टर के कमरे मे आकर धीरे से वोला—"भैया! ध्यान रखना इस वात का किसी को पता न लग जाए।"

अव तीस हजार रुपये पर कब्जा करने के लिए स्टेशन मास्टर ने वेटिंग रूम मे ज्योही पैर रखा, त्योही अपने पुत्र रश्मिकुमार का शव देख हक्का-वक्का हो गया और धडाम से धरती पर गिर पडा। करुण क्रन्दन तथा भयकर विलाप करता हुआ अपने आपको धिक्कारने लगा—'हाय! यदि मैं तीस हजार रुपयो के लोभ मे नही फसता तो मेरा नौजवान पुत्र क्यो मरता? मेरे जैसा पापी मनुष्य इस दुनिया मे कोई नही है। मैंने वहुत अन्याय किया अव मैं दूसरो को मुह कैसे दिखाऊगा? ऊचा मुह करके कैसे वोलूगा?' मानस-वारिधि मे तरह-तरह की लहरे उठने लगी। 'हाय! अव भण्डाफोड होते ही मुझे कारागृह का अतिथि वनना पडेगा। न जाने किन-किन मुसीवतो का शिकार वनना पडेगा। खैर! हुआ सो हुआ, अव स्वय का वचाव करने के लिए तो कुछ योजना गढनी ही पडेगी।' मानव के मस्तिष्क मे जव स्व का प्रश्न नृत्य करने लग जाता है तव दूसरे सव गौण हो जाते हैं। स्व-रक्षा के सम्मुख पर-रक्षा आखो से ओझल हो जाती है। वावूजी के आदेशानुसार उस लाश को वोरे मे डालकर नदी मे उसे वहाने के लिए एक आदमी चल पडा। मार्गस्थ चुगी-कर लेने वालो ने उसे रोक लिया और पूछा—"इस वोरे मे क्या माल है?" सही हकीकत वताने मे वह विल्कुल दिग्मूढ-सा हो रहा था, किन्तु आखिर गुप्त रहस्य का उद्घाटन होते ही स्टेशन पर हाहाकार मच गया।

तुच्छ स्वार्थ हित नीच जन, कर देते सहार।
स्टेशन पर अव मच रहा, भीषण हाहाकार॥

समाज का अभिशाप

"मनोरमा! यो अपने आपको कब तक चिन्ताग्रस्त बनाए रखोगी, सोचो तो जरा। विवाह-शादी कोई साधारण कार्य तो है नही, तिस पर भी हम तो लडकी वाले हैं। हमे ही उपयुक्त वर की खोज करनी होगी, जो हमारी सरला को सुखी रख सके। फिक्र मत करो, मैं सरला के लिए शीघ्र ही अच्छे वर की तलाश करूगा।"

कुछ दिन पश्चात् रामलाल ने कहा—"लाला श्यामलाल वडे धनाढ्य व्यक्ति है, खानदान भी अच्छा है, व्यापार भी लाखो का चलता है। उनका पुत्र रमेश, गोल चेहरा, लम्वा कद, आखो मे तेज सुकुमार शरीर, एक स्वस्थ युवक है। उसने इसी वर्ष एम० ए० किया है। मुझे वह सुशील एव सर्व-गुण-सम्पन्न प्रतीत होता है। क्या ही अच्छा हो अगर सरला की शादी उससे हो जाए। मगर···?"
मनोरमा "पतिदेव! अगर लडका सर्व-गुण-सम्पन्न है, तो फिर मगर क्या है?"
रामलाल—"तुम्हे क्या पता नही, समाज के रीति-रिवाजो का? लडकियो के सौदो के दिन तो अव नही रहे मगर लडको का सौदा आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज मे भी खुल्लमखुल्ला होने लगा है। लडके वाले इतना दहेज मागते है जैसे उनके घर किसी लडकी ने जन्म लिया ही न हो!"

मनोरमा—"पतिदेव! आप इस चिन्ता से पागल क्यो होते जा रहे है? लाला श्यामलाल तो वैभवशाली व्यक्ति हैं, क्या वे भी दहेज की माग करेंगे, क्या वे भी अपने लडके की कीमत चाहेगे?"

रामलाल—"और रोना ही किस वात का है, कुछ ही दिनो पूर्व उनसे वात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा कि रमेश मेरा इकलौता पुत्र है, उसकी शादी मैं वडे ठाठ-वाट से करना चाहता हू। अत वारात मे भी करीव ५०० व्यक्ति होंगे तया दहेज भी कम से कम वीस हजार का देना होगा।"

यह सुनकर मनोरमा अवाक् रह गई और आश्चर्य के महासिन्धु मे डुवकिया लगाने लगी। वह कहने लगी—"समाज के ये धनाढ्य व्यक्ति कर्णधार माने जाते है, वे समाज प्रतिपालक कहे जाते है। उनका नाम वडे-वडे समाज-सुधारको मे आता है, मगर ये व्यक्ति प्रतिपालन के स्थान पर समाज को कुचलना चाहते हैं। सुधार का ढिंढोरा पीटनेवाले ये स्वय रूढिग्रस्त होते जा रहे हैं। नैतिकता व प्रेम के स्थान पर इनमे ईर्ष्या व घमण्ड की चिनगारिया प्रज्वलित होने लग गई हैं। मगर ये सव अवगुण होते हुए भी पूजनीय माने जाते है क्योकि उनके पास लक्ष्मी का वोलवाला है। खैर! कुछ भी हो, लडका तो सुशील एव सुन्दर है। होशियार है, तो कर लीजिए सम्वन्ध।"

रामलाल—"म···ग· र, इतना दहेज कहा से आएगा ? अगर इतना दहेज न दे सका, तो सरला के भावी जीवन का क्या होगा ?"

मनोरमा—"क्या होगा ? सरला का भावी जीवन नवीन कलियो की तरह आनन्द-दायक होगा। शशि के समान शीतल होगा। सूर्य के समान दैदीप्यमान होगा। आप चिन्ता न करे, रुपयो का प्रवन्ध मैं करूगी, आप देखते जाइये।"

सम्वन्ध निश्चित होते ही विवाह की तैयारिया होने लग गई। मगल गीतो से घर का वातावरण अद्वितीय प्रतीत हो रहा था। पाचो पकवानो का परिमल परित फैल रही थी। सवकी आकृतियो पर उल्लास की रेखाए अंकित हो रही थी।

वारात का आगमन हुआ। सरला का विवाह शुभ मुहूर्त मे रमेश के साथ सम्पन्न हुआ। मनोरमा अपने दामाद को देखकर मन ही मन मे कमल की भाति खिलने लगी।

दहेज की साज-सज्जा से दर्शको का मन आकर्षित हो रहा था। दहेज देखने के लिए लोग उमड रहे थे।

दहेज-प्रदर्शनी समाप्त होने को थी कि मनोरमा की सहेली सत्या आ गई। मनोरमा सत्या को वहुत चाहती थी, उसके दिल मे उसके प्रति प्रेम था, श्रद्धा थी, उसने सत्या को दहेज का सामान दिखाना शुरू किया। सत्या की दृष्टि दहेज पर पडी तो सहसा अपने अतीत की वातें स्मृति पटल पर आने लगी।

उसके सामने अपनी लडकी की शादी का दृश्य नृत्य करने लग गया क्योकि उसने अपनी लडकी की शादी पर सारा जेवर व घर आदि वेचकर वडी मुश्किल से ५,००० का दहेज दिया था, पर आज उसका जीवन कष्टो के गहरे गर्त मे गिर रहा है। उदर-पोषण भी एक पहेली वन रही है। मकान मालिक किराये के लिए तग करता है। काश ! मैं इतना दहेज न देती तो मेरे घर की यह दशा क्यो होती ?

सत्या के मुख को अवसादभरा देखकर मनोरमा ने कहा—"आज किस चिन्ता-सागर मे डूव रही हो ?"

सत्या ने कहा—"देख मनोरमा ! मैं तुमसे कोई वात छिपाना नही चाहती, चाहे वह गोपनीय ही क्यो न हो ? मगर पहले तुम यह वताओ, तुमने इतना दिखावा क्यो और कैसे किया ?"

मनोरमा—"समाज मे रहते हुए, समाज की सभी प्रथाओ का पालन करना अनिवार्य होता है, चाहे वे अच्छी हो या वुरी। अपनी मान-प्रतिष्ठा रखने के लिए, समाज मे इज्जत पाने के लिए हमे सव रीति-रिवाजो का पालन करना पडता है। आज यह समाज दहेज-प्रथा की भयकर वीमारी से सत्रस्त है, वस इसी के लिए

मेरा यह सारा उपक्रम है। मैं मानती हू, यह प्रथा समाज के लिए अभिशाप है, समाज अन्दर का अन्दर पिसा जा रहा है, रो रहा है, फिर भी यह प्रथा दिनोदिन प्रगति कर रही है। उसी का यह सूक्ष्म रूप है।"

सत्या—"मगर, तुमने इतने व्यय का प्रबन्ध कैसे कर लिया ?"

यह सुनकर मनोरमा के होश उड गए, हृदय टूटने लगा, पर अपनी सखी से हृदय के विचारो को कैसे छुपा सकती थी ? हृदय को वज्र बनाकर कहा—"समाज की अंधी-परम्परा को निभाने के लिए घृणित एव निम्नतम कार्य करने को भी बाध्य होना पडता है।"

"महीने भर पहले की बात है, सम्भवत तुझे पता हो होगा। सेठ वशीलाल का हार (सवा लाख का) खो गया था, जिससे सेठ का हार्ट फैल हो गया था। उस हार का अपहरण करने वाली मैं ही तो हू, उसी के आधार पर यह दहेज तैयार हुआ है और मैं मेरी मनोभावना को साकार रूप दे रही हू।"

बात सुनते ही सत्या का हृदय बैठ गया और कहने लगी—"हाय रे समाज ! कैसी है यह दहेज-प्रथा जो मानवता को दानवता मे परिणत करने मे सफल हो रही है। बहन मनोरमा ! तेरे इस घोर अपराध का जिम्मेवार यह रूढिग्रस्त समाज ही है, जो निन्दनीय कार्य करने के लिए विवश करता है, लेकिन ऐसी रूढियो को समाप्त कर हमे एक स्वस्थ व सुन्दर समाज की रचना करनी है और इसके लिए हमे आमूल-क्रान्ति की लौ जगानी पडेगी।"

दहेज लेना सर्वथा, निंदनीय है कार्य।
ऐसा छिछला आचरण कभी न करते आर्य ॥

प्रेम-परीक्षा

सुरेश और महेश दोनो ही मित्र धार्मिक एव नीतिज्ञ होने के साथ-साथ बडे तत्त्वज्ञ थे। प्रतिदिन किसी न किसी विषय पर परस्पर विचार-विनिमय चलता ही रहता था । एक दिन ससार के स्वरूप का चित्रण करते हुए सुरेश ने महेश से कहा—"मित्र ! मतलबी दुनिया मे सब मतलब का प्यार है। जब तक मतलब है, तब तक सब प्रिय लगते हैं। मतलब के अभाव मे प्रिय भी अप्रिय बन जाते हैं। मित्र भी शत्रु और पिता भी यम जैसे हो जाते हैं। मास भी डायन हो जाती है। स्वार्थाभाव मे कोई भी किसी को नही पूछता। और क्या गुजन करने वाले भ्रमर भी फूलो पर तभी आते हैं, जबकि उनको वहा पर मधुर रस मिलता है। रस की अनुपलब्धि मे वे भी मुख मिचलाते हुए वापस मुड जाते हैं, अत सब मतलब के पुजारी हैं।"

इमी पारस्परिक वार्तालाप के बीच उनका तीमरा परम मित्र कमल भी वहा आ पहुचा, किन्तु कमल की विचारधारा उनसे विल्कुल भिन्न थी। वह धर्म-कर्म को कुछ भी नही मानता था। खान-पान, ऐश-आराम करना उमने अपना सिद्धान्त वना रखा था। वह वोला—"प्रिय मित्रो! तुम कहते हो कि सव मतलव के सम्वन्ध है, तुम्हारी दृष्टि मे यह सत्य हो सकता है किन्तु मेरे पारिवारिक जीवन मे यह वात नही है। परिवार का हर मदस्य मेरे लिए जीवन देने को तत्पर है।"

सुरेश ने कहा—"मसार मे कोई भी तेरा नही है। मव स्वार्थ के साथी हैं। जव तक स्वार्थ होता है, तव तक सव पीछे-पीछे दौडते है। स्वार्थ दूर होते ही सव वदल जाते हैं। अर्धांगिनी कहलाने वाली स्त्री भी मुह फेर लेती है। दु ख मे वह भी तुझे नही पूछेगी। वस्तुत धर्म ही सच्चा साथी है। वह सुख-दुख मे प्रतिक्षण साथ रहता है। धर्म से सहज आनन्द की उपलब्धि होती है। धर्म जीवन का शृगार है अत ससार से विरक्त होकर कुछ धर्म किया कर।"

कमल—"मित्र! ऐसी वात नही है। मेरी स्त्री तो मुझसे वडा प्रेम करती है। सुख-दुख मे प्रतिक्षण छाया की तरह माथ रहने वाली है। जव कभी भी मैं रोग-ग्रस्त हो जाता हू तो वह खान-पान सव भूल जाती है और केवल मेरी सेवा-सुश्रूषा करना ही अपना परम कर्तव्य समझती है।"

सुरेश—"मित्र! अभी तक तू अज्ञान अवस्था मे है, मोह के जाल मे फमा हुआ है। ममत्व का चश्मा हटाकर तू परीक्षा करेगा, तव तुझे पता लगेगा कि स्त्री कैसा प्यार करती है? कैसे अपना कर्तव्य निभाती है? माता-पिता भी तेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं?"

कमल—"अच्छा! परीक्षा कैसे करू?"

मुरेश—"उदर-रोग का वहाना लेकर श्वास चढाकर सो जाना, जव तक मैं इशारा नही करू, तव तक उठना मत। फिर देखना तू तेरे पारिवारिक सदस्यो का आन्तरिक प्रेम।"

कमल—"श्वास चढाना तो वहुत वडी कला है। अभ्यास के विना इस कला मे पारगत होना असम्भव है। मुझे इस कला का विल्कुल भी ज्ञान नही है। फिर यह परीक्षा कैसे सम्भव हो?"

मुरेश—"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै। उद्यम करने से हर एक विद्या का अभ्यास किया जा सकता है। कुछ दिनो मे मैं तुझे श्वास-विद्या मे निपुण वना दूगा।"

सुरेश की उत्कट प्रेरणा से कमल ने श्वास-विद्या का अभ्यास करना प्रारभ कर दिया, मानसिक एकाग्रता तथा सतत प्रयास से कमल कुछ ही दिनो मे उस विद्या मे प्रवीण हो गया। एक दिन उसने अपने घरवालो से कहा—"आज तो

मेरे पेट मे काफी दर्द हो रहा है। तीखी-तीखी शूलो की भाति चुभन-सी हो रही है। सिर मे भी काफी दर्द है, मानो कोई बहुत बडा पहाड टूट कर मेरे सिर पर गिर रहा हो।" यो कहता हुआ कमल पुष्प की तरह मुरझा गया। असह्य वेदना देखकर परिवार के सभी सदस्य चितातुर हो गए। चारो तरफ दौड-धूप मच गई। कोई डाक्टर को बुलाकर लाता है, तो कोई वैद्य को। कमल की नाडी को देख-देखकर वापस मुड जाते है, किन्तु किसी को भी रोग समझ नही आया कि कमल कौन-सी बीमारी से सपीडित है। कुछ ही देर बाद कमल हाय-हाय करता हुआ श्वास रोककर लम्बा पसर गया। चारो तरफ सन्नाटा छा गया। घर के सभी सदस्यो की आकृति पर उदासी ने अपना साम्राज्य जमा लिया। हृदय मे दु ख का सागर उमड गया। कमल की धर्मपत्नी कान्ता भी चीख-चीखकर रोने लगी, धैर्य का बाध टूट गया। सभी चिन्तातुर होकर कमल को चारो ओर से घेरे हुए बैठ गये है।

इतने मे कमल का अभिन्न मित्र सुरेश वैद्य का रूप बनाकर आया। कमल के पिता ने उसे नमस्कार करते हुए कहा—"वैद्यजी! धन्यवाद है आपको, जो विना बुलाए आप मेरे पुत्र को देखने के लिए मेरे घर पधार गये। कृपा करके यदि इसको स्वस्थ कर दे, तो मै आपका उपकार जीवन भर नही भूलूगा। आपको कोटि-कोटि बधाइया दूगा। कई डाक्टर और वैद्य आये, किन्तु कोई भी रोग की जड को नही पकड सका। कौन जाने क्या बला है?"

वैद्य—"सेठ! प्रयास करना मेरा कर्तव्य है। अच्छा होना और न होना इसकी किस्मत पर आधारित है। मैं अब इसके रोग का निदान करना चाहता हू आप लोग सभी यहा से हट जाइये।"

सब लोग दूर हो गये। कुछ जाच-पडताल करके वैद्य ने सेठ से कहा—"रोग तो मेरी समझ मे आ गया है। आप कहे, तो रोग को बाहर निकाल दू। लडका बिल्कुल स्वस्थ हो जाएगा, किन्तु एक शर्त है।"

सेठ—(प्रमुदित होकर) "वैद्यजी! आपकी समस्त शर्तें हमे मजूर हैं, फरमाइये।"

वैद्य—"जिस रोग को मैं औषधि के बल से बाहर निकालूगा, उसे किसी न किसी को पीना पडेगा। पीने वाला जीए या मरे इसकी जिम्मेवारी मेरे पर नही। अगर कोई नही पीएगा, तो वापिस इसे ही पिला दूंगा। उसी वक्त यह आपका सुपुत्र सदा के लिए आखे बन्द कर लेगा।"

माता-पिता, पत्नी आदि सभी सदस्यो ने एक स्वर मे कहा—"हम तैयार हैं पीने को, निकालिए, रोग को बाहर।" वैद्य ने दो सेर दूध मगवाया। उसको ओटाकर (सडाकर) ऊपर मेहदी बुरक दी। एक बडा प्याला भरकर वैद्य ने सेठ

से कहा — "यह लीजिए पुत्र का रोग। यदि पुत्र का जीवन चाहते हैं, तो आख मूदकर पी जाइए।"

सेठ हक्का-बक्का-सा रह गया। बार-बार वैद्य की ओर झाकने लगा। मन ही मन सोचने लगा—'आज तो फस गया। साप के मुह मे छछूदर वाली बात बन गई। छोडे तो कोढी हो जाए और खाए तो अन्धा। यह सडा दुर्गन्धित रोग पीया भी नही जाता और इन्कार भी नही किया जाता। क्या करू ? बडी समस्या खडी हो गई। हर एक को अपना जीवन प्रिय होता है। कोई भी मरना नही चाहता।'

आखिर सेठ जी दातो मे अगुलिया देते हुए धीरे से बोले—"वैद्यजी ! यदि आप और कोई काम बताते तो मैं उसे करने के लिए शतश प्रयत्न करता, किन्तु इस रोग को पीने मे असमर्थ हू।"

वैद्यजी मौन होकर आगे बढे, माता, भगिनी और भानेज के पास प्याला लेकर पहुचे। दुर्गन्धित रोग को देखकर सबके मन मिचलाने लगे। नाक सिकुडने लगे। सबके सिर नीचे झुक गये। आखें डबडबा आईं, किन्तु रोग पीने के लिए किसी का भी साहस नहीं हुआ क्योकि मौत के मुख चढे कौन ?

आखिर कमल की धर्मपत्नी कान्ता के पास जाकर वैद्यजी बोले—"बहिन जी ! घर के और सभी सदस्य बदल गये हैं, किन्तु मुझे दृढ विश्वास है, आप नही बदलेंगी। इस रोग को पीकर आप अपने पति को जीवन-दान करने मे सहायक बनेंगी। कमल आपका अभिन्न अग है, जीवन का उत्कृष्टतम साथी है। उनका जीवन आपका जीवन है, उनकी मृत्यु आपकी मृत्यु है। उनकी स्वस्थता ही आपके जीवन का पाथेय है। किसी भी उधेडबुन मे न जाइए। आखे मूदकर इस रोग को पी जाइए। आपका जीवन-साथी स्वस्थ हो जाएगा।"

वैद्य के वचन सुनकर कान्ता का सिर लज्जा से झुक गया, निरुत्तर हो गई। सिटपिटाने लगी। मुँह फेर लिया।

कमल सोया हुआ यह सारा दृश्य देख ही रहा था। मित्र सुरेश (वैद्यजी) का तनिक इशारा पाते ही कमल झट उठा और बोला—"सुरेश ! प्रेम-परीक्षा हो गई। सच्चा प्रेम करने वाले कोई नही है। सब दिखावटी प्रेम करने वाले है। माता-पिता, भगिनी आदि परिवार के सभी सदस्य तो बदले सो बदले किन्तु जिन कान्ता को मैं अर्द्धांगिनी समझता था, जिसको मैं मेरी-मेरी कहकर पुकारता था और वह भी मुझे जीवन का आधार एव सर्वेसर्वा मानती थी। वह कान्ता भी बदल जायगी, मुझे जीवनदान देने मे सिर धुनेगी, ऐसी कल्पना स्वप्न मे भी नही कर सकता था। धिक्कार है इस स्वार्थ भरे ससार को।"

प्रेम-परीक्षा हो गई, बदला मित्र सुरेश
बदल गया परिवार भी, समझा कमल विशेष ॥

हाय ! मौसर की सनक मेरे······

गांव मे पचो ने चौधरी टीकमराम से कहा—"भाई टीकम ! माता-पिता के स्वर्ग-वास के उपलक्ष मे, जो उनका मौसर नहीं करता है, उसके सिर पर बहुत बड़ा कर्जा रहता है। कर्जदार आदमी कभी भी मुह ऊचा कर नही बोल सकता। जहा जाता है, वहा उसको दुत्कार मिलती है। जात-पात मे भी उसकी इज्जत नही होती। पारस्परिक व्यवहार तथा लेन-देन उसके सब वन्द कर दिए जाते हैं।" पच लोग टीकम को समझा ही रहे थे कि इतने मे सेठ मिश्रीमल वहाँ आ पहुचे। सेठ साहब ने टीकम से पूछा—"तेरे पिता का स्वर्गवास हुए कितने वर्ष हो गये ?"

चौधरी—(हाथ जोडकर) "सेठ साहब ! चार-पाच वर्ष हुए है।"

सेठ—"तुमने बहुत बडी गलती की है, अभी तक उनका मौसर नही किया।"

चौधरी—"क्या करू, इच्छा होते हुए भी कमाई के अभाव मे मौसर नही कर सका।"

सेठ—"पर इस साल तो तुम्हारे पर परमात्मा खुश है, पैदावार अच्छी हुई है। फिर भी कर्ज को नही उतार रहा है, क्या यह बुद्धिमत्ता है ?"

चौधरी—"सेठ साहब ! अगर आप इसकी जिम्मेवारी ले, तो मैं इसी महीने मे कर्ज उतार दू क्योकि आज कल कई तरह की राजकीय वाधाए भी आती है।"

सेठ—"तुझे घबराने की जरूरत नही है। सारे राजकर्मचारी मेरे से मेल-मुलाकात रखने वाले है। अत इनमे से कोई भी वाधक नही बन सकेंगे। सब अच्छा होगा।"

बेचारा चौधरी सेठ के जाल मे फस गया और स्वय के हिताहित को कुछ भी चिन्तन किये बिना उसने हा भर ली और दिन भी निश्चित कर दिया।

टीकम घर आकर चौधरानी से बोला—"क्या मैं मेरे पिताजी का मौसर कर लू ! बोल, तेरी क्या इच्छा है ?"

चौधरानी—"पतिदेव ! चढे हुए कर्ज को उतारना तो अच्छा है, किन्तु भविष्य मे किसी का मुह नही ताकना पडे, ऐसा काम करना।"

चौधरी—"पैसा तो हाथ का मैल है। यह तो ऐसे ही आता है, और ऐसे ही जाता है। इस साल पैदावार अच्छी हुई है। और यदि कुछ रुपये पैसो की जरूरत पडेगी तो सेठ मिश्रीमल तैयार है ही, अत मेरे दिल मे तो मौसर करने की बात सोलह आना जच गई है।"

चौधरानी—"आप जैसा उचित समझें वैसा करें, किन्तु खर्च अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए, ताकि प्रतिष्ठा और इज्जत भी बनी रहे।"

चौधरी टीकमराम अपने निर्णय पर अटल था ही, उसने खर्च के लेखे-जोखे का सारा भार तथा मौसर का समस्त उत्तरदायित्व सेठ मिश्रीमल को सौंप दिया। लगभग इक्कीस गाव के छोटे-बडे एक हजार भाई-बहिनो ने भोजन मे भाग लिया। घृत, शक्कर अदि समस्त वस्तुओ का इन्तजाम तो पहले ही हो चुका था। रुपयो-पैसो का लेन-देन सब सेठ मिश्रीमल के हाथ मे था ही। पक्ति मे बैठे लोग पकवान उडाने मे मशगूल हो रहे थे कि अचानक आठ-दस जवानो को लेकर थानेदार वहा आ पहुचा। सभी के दिलो मे बिजली-सी कौंध गई, चौधरी किंकर्तव्य-विमूढ हो गया।

इतने मे सेठ मिश्रीमल थानेदार साहब को एक तरफ ले गया और कुछ घुस-पुस के बाद थानेदार वापस मुड गया। मौसर का सारा कार्यक्रम शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया। चारो तरफ सेठ मिश्रीमल की महिमा होने लगी कि सेठ साहब ने ही टीकम की नाक को कटने से बचा लिया अन्यथा उसको स्वय को तो डूबना पडता ही, उसके साथ-साथ दूसरो को भी कई दिनो तक कोर्ट कचहरियो मे हाजिर होना पडता।

इधर सेठ ने खर्च का सारा आकडा मिलाकर चौधरी के सामने रख दिया। वह देखते ही अवाक् सा रह गया और बोला—"सेठ साहब ! खर्च तो बहुत हो गया है। लगता है दो चार हजार उल्टे कर्ज लेने पडेंगे।"

सेठ—"हा ! भाई चौधरी ! आज के इस महगाई के जमाने मे मौसर करना कोई मामूली बात नही है। तेरे जैसे हिम्मत वाले ही कर सकते हैं। हर एक साधारण आदमी से इतना बडा काम पार ही नही पड सकता। खैर ! घबराने की जरूरत नही है। एक दो वर्ष मे चुका देना।" यो कहकर सेठ ने बही मे चौधरी का अगूठा चिपकवा लिया।

चौधरी चिन्तातुर-सा घर मे गया। चौधरानी बोली—"आज आपके चेहरे पर उदासी क्यो ? क्या कोई शारीरिक पीडा सता रही है या मानसिक ?"

चौधरी—"मौसर क्या किया, घर को बर्बाद कर दिया। आज तो वही कहावत चरितार्थ हो गई—चौबेजी, छब्बेजी बनने गए थे पर बन गए दुब्बेजी। जब मैं मौसर करने उद्यत हुआ था तब मेरे मस्तिष्क मे यह कल्पना थी कि मेरा कर्ज उतर जाएगा। किन्तु कर्ज उतरा तो नही प्रत्युत दुगुना चढ गया।"

चौधरानी—"हिम्मत रखो पतिदेव ! दुनिया मे हिम्मत की कीमत है। रुपयो की क्या चिन्ता है ? चौमासा आने दीजिए, हर साल की अपेक्षा कुछ अधिक खेती करेंगे। खूब मोठ-बाजरा होगा। उसे बेचकर सारा कर्ज उतार देंगे।"

वर्षाऋतु का समय आते ही आकाश मे काली-काली घटाए उमडने लगी। काली-पीली रात्रि मे बिजलियो की चमक-दमक से धरातल प्रकाशित होने लगा। मयूर भी नृत्य करने लग गये। किसानो के हृदयागन मे आनद की तरगे समुद्र की भाति तरगित होने लग गई। टीकम चौधरी के भी कुछ जी मे जी आया। बरसात होते ही हल जोत दिए कुछ ही दिनो मे बाजरी क्रमश बडी होने लगी। चौधरी का दिमाग कल्पना के खुले अतरिक्ष मे विहरण करने लगा। बस, जमाना होते ही इस साल सारा कर्ज उतार दूगा, किन्तु वर्षा रुष्ट होकर ऐसी गई कि वापस आई ही नही। प्रतीक्षा करते-करते आषाढ, सावन व भाद्र मास क्रमश व्यतीत हो गये परन्तु एक बूद भी पानी नही बरसा। अनाज भी प्राय जलकर भस्म हो गया। किसानो के मुह मे अगुलिया आ गई। टीकम बडा दु खी हो गया। अनाज के अभाव मे जीवन का पालन-पोषण करना तथा कर्ज उतारना उसके लिए बडी समस्या हो गई।

इधर सेठजी रुपयो के लिए तकाजा कर ही रहे थे। महीने मे तीन चार चक्कर टीकम के घर लगाया करते थे। टीकम ने सविनय प्रार्थना करते हुए कहा—' सेठ साहब ! इस साल तो अनाज कुछ भी नही हुआ। अगली साल यदि फसल हुई तो मैं आपका एक पैसा भी नही रखूगा। कृपा करके अभी आप मुझे तग न करे।"

दूसरे वर्ष मे किस्मत ने सहयोग नही दिया। बरसात बिलकुल नही हुई। काफी दौड-धूप तथा प्रयत्न करने पर भी टीकम की सभी आशाओ पर तुषारापात हो गया। मुरझाए हुए पुष्प की भाति टीकम का मुखमण्डल कुम्हला गया। चिन्ता से उसका शरीर कृश हो गया।

सेठ मिश्रीमल मन ही मन विचार करने लगा—'अब तिलो मे तेल नही है, दो वर्ष हो गये, एक कच्ची कौडी भी नही आई, अत कानूनी कार्यवाही से ही टीकम की आखे खुलेगी। टीकम के नाम से उसने नोटिस निकाल दिया। कचहरी मे दावा पेश हुआ, न्यायाधीश ने कुर्की का आदेश दे दिया। सेठजी सरकार और कानून के माध्यम से टीकम के घर पहुचे। साथ मे पुलिस आदि का इन्तजाम था ही अधिकतर जेवर चौधरी ने मौसर के समय मे बेच ही दिया था, किन्तु थोडे-बहुत बचे हुए गहनो पर बैलो पर और टीकम की बची हुई जायदाद पर सेठ ने पूरा कब्जा कर लिया। चौधरी और चौधरानी दोनो को घर से बाहर निकलना पडा। आखो से आसुओ का स्रोत बहने लगा। सिर पर दु ख के पहाड टूट पडे। इधर-उधर भटकता हुआ टीकम अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा—' हाय ! यदि मौसर की मनक मेरे दिमाग पर सवार नही होती, तो आज

इस सकट का सामना क्यो·········।"

सिर पर मौसर की सनक, होती यदि न सवार।
रे टीकम ! आपत्ति का, नही उभरता ज्वार ॥

× सरोज का साहस ✓

रात के बारह वज रहे थे। जगमिन्दर की तवियत घवडा रही थी। रोग का आवेश पल-पल वढ रहा था। डाक्टर और वैद्यो की मोटरे दौडी-दौडी आ रही थी। कीमती औपधिया सव निष्फल वन रही थी। इतने मे उन्होने एक जोर की चीख मारी और नेत्र सदा के लिए वन्द कर लिए।

वेचारी सावित्री पर दु ख का पहाड टूट पडा। सुहाग का दीपक वुझ गया। विलाप कर-करके रोने लगी—"हाय स्वामी ! आप अपनी सरोज को किसके भरोसे पर छोड गये ? इसका विवाह अव कैसे होगा ? कौन करेगा ? क्या ही अच्छा होता कि मैं भी आपके साथ चली जाती ?" सरोज की आखे भी आसुओ से छलछला उठी। हृदय मे अनुताप की लहर दौड रही थी। कल्पना के चक्रजाल मे फस रही थी।

पुष्पा आई, उसने सवेदना प्रकट करते हुए कहा—"सखी सावित्री ! अव रोने से क्या होगा ? गया हुआ कोई वापस नही आ सकता, फिर क्यो दु ख करती है ? अव तो हिम्मत से काम लेना होगा। अपनी छाती वज्र सी कठोर करनी होगी।"

आखो के आसुओ को पोछती हुई सावित्री वोली—"पुष्पा ! मेरा तो आधार स्तम्भ गिर चुका है, तेरे सिवाय मुझे आश्वासन देने वाला कोई नही है। अव सरोज का विवाह कैसे होगा ? यह भार तो तुम्हारे ऊपर ही है। जैसा तुम करोगी, वैसा ही होगा।"

पुष्पा—"तुम कोई भी चिन्ता मत करो। सरोज मुझे प्राणो से भी प्यारी है। मैं यथाशक्ति अच्छा घर-वर ढूढने का प्रयत्न करूगी। जीवन मे सुख-दु ख आते ही रहते हैं, तुम अधीर मत वनो। धैर्य से सव काम सफल होते हैं।"

सरोज के हृदय मे उथल-पुथल मचने लगी। विचारो मे क्राति और शान्ति की धारा एक साथ वहने लगी। मेरे कारण इतनी परेशानी उठानी पडती है, इससे अच्छा होगा कि मैं आत्म-हत्या करके माताजी को भार-मुक्त वना दू। सहसा उसकी आत्मा से एक आवाज उठती है कि "आत्म-हत्या" एक भयकर पाप है। ऐसा पाप तुझे किसी भी परिस्थिति मे नही करना चाहिए।

फिर विचारो का क्रम वदला, उसने सोचा कि अगर मैं शादी करने मे इन्कार

कर दू तो माताजी के ऊपर मे चिन्ता का आवरण हटाया जा सकता है। यह सोच विनय के साथ सरोज ने माता से कहा—"माताजी, मैं आजीवन कुवारी रहकर अध्ययन एव अध्यापन का कार्य करना चाहती हू।"

माता सावित्री ने यह सुना तो वह जोर-जोर से रोने लगी और करुण स्वर मे कहा—"पुत्री ! ऐसी बात कभी मत कहना। मैं ज्यो-त्यो करके तेरी शादी करूगी।"

इतने मे पुष्पा ने दरवाजा खटखटाया, अन्दर आई और बोली—"सखी ! 'वे' कल फिरोजपुर गए थे। लाला नोहरचन्द का लडका राजेन्द्र अभी बी० ए० मे उत्तीर्ण हुआ है, उससे सरोज का सम्बन्ध तय किया गया है, बसन्त पचमी का मुहूर्त अच्छा है, अत विवाह की तैयारिया करो।"

सावित्री की नस-नस मे आनद का सचार होने लगा और गद्‌गद् स्वर मे बोली—"बहिन पुष्पा ! तुम्हे शत-शत धन्यवाद है। तुमने मेरी चिन्ता को दूर किया। मैं तुम्हारे उपकार से कभी भी उऋण होने वाली नही हू। आजीवन तुम्हारा उपकार नही भूलूगी।"

बसत पचमी का सुनहला समय था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। शीतल मद चादनी जन-जन की नयनावली को आकृष्ट कर रही थी, उस पावन दिवस की पावन वेला मे सरोज और राजेन्द्र की शादी सम्पन्न हुई।

सरोज का जीवन नए प्रभात से नवीनता लिए हुए था। नव-जीवन के नए प्रभात सहित उसे विदा किया गया।

चलते-चलते रात हो गई। अन्धकार ने भूमण्डल पर साम्राज्य जमा लिया था। मुसाफिरो का आना-जाना प्राय बन्द हो चुका था। जगल की सघन झाडिया भी मानो निगलने के लिए तैयार थी। हिंस्र पशुओ के निनाद से वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। बारातियो का झुड आगे निकल चुका था। गाव कुछ दूर रह गया था। राजेन्द्र का रथ मन्द गति से आगे बढ रहा था। अकस्मात् लुटेरे आ निकले और "ठहरो-ठहरो" कहते हुए वे पास आये तथा पिस्तौल की गोलियो ने नोहरचन्द, राजेन्द्र और रथिक को यमराज का अतिथि बना दिया। जेवर, कपडे व नगद रुपयो को अपने कब्जे मे करके सरोज की तरफ बढे तथा आक्रोश-पूर्वक बोले—"उतर रथ से नही तो तुझे भी जिन्दगी से हाथ धोना पडेगा।"

सरोज की चेतना कराह उठी, होश गुम हो गए, मुख पर विषाद का आवरण छा गया, वह सिसक उठी। उसने सोचा—इस निर्जन जगल मे कौन है मेरा रक्षक ? इस तिमिराच्छादित महारात्रि मे कौन है, मेरा सहायक ? मैं अकेली अबला और ये है चार लुटेरे। इतने मे हृदय मे आवाज निकली—'सरोज ! घबडा मत क्या है ? कायर मत बन अवश्य ही तेरी विजय होगी।' मेघ की

इस सकट का सामना क्यो·········।"

सिर पर मौसर की मनक, होती यदि न मवार।
रे टीकम ! आपत्ति का, नही उभरता ज्वार ।।

× सरोज का साहस ✓

रात के वारह वज रहे थे। जगमिन्दर की तवियत घवडा रही थी। रोग का आवेश पल-पल वढ रहा था। डाक्टर और वैद्यो की मोटरे दौडी-दौडी आ रही थी। कीमती औषधिया सव निष्फल वन रही थी। इतने मे उन्होने एक जोर की चीख मारी और नेत्र सदा के लिए वन्द कर लिए।

वेचारी सावित्री पर दु ख का पहाड टूट पडा। सुहाग का दीपक वुझ गया। विलाप कर-करके रोने लगी—"हाय स्वामी ! आप अपनी मरोज को किसके भरोसे पर छोड गये ? इसका विवाह अव कैसे होगा ? कौन करेगा ? क्या ही अच्छा होता कि मैं भी आपके साथ चली जाती ?" सरोज की आखे भी आसुओ से छलछला उठी। हृदय मे अनुताप की लहर दौड रही थी। कल्पना के चक्रजाल मे फम रही थी।

पुष्पा आई, उसने मवेदना प्रकट करते हुए कहा—"सखी सावित्री ! अव रोने से क्या होगा ? गया हुआ कोई वापस नही आ सकता, फिर क्यो दु ख करती है ? अव तो हिम्मत से काम लेना होगा। अपनी छाती वज्र सी कठोर करनी होगी।"

आखो के आसुओ को पोछती हुई मावित्री वोली—"पुष्पा ! मेरा तो आधार स्तम्भ गिर चुका है, तेरे सिवाय मुझे आश्वासन देने वाला कोई नही है। अव सरोज का विवाह कैसे होगा ? यह भार तो तुम्हारे ऊपर ही है। जैमा तुम करोगी, वैमा ही होगा।"

पुष्पा—"तुम कोई भी चिन्ता मत करो। सरोज मुझे प्राणो से भी प्यारी है। मैं यथाशक्ति अच्छा घर-वर ढूढने का प्रयत्न करूगी। जीवन मे सुख-दु.ख आते ही रहते हैं, तुम अधीर मत वनो। धैर्य से सव काम सफल होते हैं।"

सरोज के हृदय मे उथल-पुथल मचने लगी। विचारो मे क्राति और शान्ति की धारा एक साथ वहने लगी। मेरे कारण इतनी परेशानी उठानी पडती है, इससे अच्छा होगा कि मै आत्म-हत्या करके माताजी को भार-मुक्त वना दू। सहसा उमकी आत्मा से एक आवाज उठती है कि "आत्म-हत्या" एक भयकर पाप है। ऐमा पाप तुझे किमी भी परिस्थिति मे नही करना चाहिए।

फिर विचारो का क्रम वदला, उमने सोचा कि अगर मैं शादी करने से इन्कार

कर दू तो माताजी के ऊपर से चिन्ता का आवरण हटाया जा सकता है। यह सोच विनय के साथ सरोज ने माता से कहा—"माताजी, मैं आजीवन कुवारी रहकर अध्ययन एव अध्यापन का कार्य करना चाहती हू।"

माता सावित्री ने यह सुना तो वह जोर-जोर से रोने लगी और करुण स्वर मे कहा—"पुत्री! ऐसी वात कभी मत कहना। मैं ज्यो-त्यो करके तेरी शादी करूगी।"

इतने मे पुष्पा ने दरवाजा खटखटाया, अन्दर आई और वोली—"सखी! 'वे' कल फिरोजपुर गए थे। लाला नोहरचन्द का लडका राजेन्द्र अभी वी० ए० मे उत्तीर्ण हुआ है, उससे सरोज का सम्बन्ध तय किया गया है, वसन्त पचमी का मुहूर्त अच्छा है, अत विवाह की तैयारिया करो।"

सावित्री की नस-नस मे आनद का सचार होने लगा और गद्‌गद् स्वर मे वोली—"वहिन पुष्पा! तुम्हे शत-शत धन्यवाद है। तुमने मेरी चिन्ता को दूर किया। मै तुम्हारे उपकार से कभी भी उऋण होने वाली नही हू। आजीवन तुम्हारा उपकार नही भूलूगी।"

वसत पचमी का सुनहला समय था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। शीतल मद चादनी जन-जन की नयनावली को आकृष्ट कर रही थी, उस पावन दिवस की पावन वेला मे सरोज और राजेन्द्र की शादी सम्पन्न हुई।

सरोज का जीवन नए प्रभात से नवीनता लिए हुए था। नव-जीवन के नए प्रभात सहित उसे विदा किया गया।

चलते-चलते रात हो गई। अन्धकार ने भूमण्डल पर साम्राज्य जमा लिया था। मुसाफिरो का आना-जाना प्राय वन्द हो चुका था। जगल की सघन झाडिया भी मानो निगलने के लिए तैयार थी। हिंस्र पशुओ के निनाद से वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। वारातियो का झुड आगे निकल चुका था। गाव कुछ दूर रह गया था। राजेन्द्र का रथ मन्द गति से आगे वढ रहा था। अकस्मात् लुटेरे आ निकले और "ठहरो-ठहरो" कहते हुए वे पास आये तथा पिस्तौल की गोलियो से नोहरचन्द, राजेन्द्र और रथिक को यमराज का अतिथि वना दिया। जेवर, कपडे व नगद रुपयो को अपने कब्जे मे करके सरोज की तरफ वढे तथा आक्रोश-पूर्वक वोले—'उतर रथ से नही तो तुझे भी जिन्दगी से हाथ धोना पडेगा।"

सरोज की चेतना कराह उठी, होश गुम हो गए, मुख पर विषाद का आवरण छा गया, वह सिसक उठी। उसने सोचा—इस निर्जन जगल मे कौन है मेरा रक्षक? इस तिमिराच्छादित महारात्रि मे कौन है, मेरा सहायक? मैं अकेली अवला और ये है चार लुटेरे। इतने मे हृदय से आवाज निकली—"सरोज! घवडा मत क्या है? कायर मत वन, अवश्य ही तेरी विजय होगी।" मेघ की

तरह गर्जना करती हुई उन लुटेरो को ललकारती हुई बोली—"अरे विवेक-विह्वल मनुष्यो ! मेरे हाथ मत लगाना, मैं स्वय सब दे दूंगी।" ऐसा कहकर नाक की लौंग, हाथ की चूडिया, पैर के गहने छोडकर और सब दे दिए।

चोरो ने कहा—"हम एक भी तोला सोना नही छोडेंगे, तार-तार लेकर रहेंगे। स्वेच्छा से दे दो, अन्यथा हम बलात्कार करेंगे।"

सरोज ने कोमल शब्दो मे कहा—"भाइयो ! मैं अनाथ बालिका हू। किसी का भी मुझे आधार नही है। जीवन-निर्वाह के लिए कुछ न कुछ धनराशि अपेक्षित है। आप दया करे। थोडा-सा तो रहने दीजिए अन्यथा उदर-पूर्ति असभव है।"

चोरो की आखे सरोज की मुखाकृति पर पडते ही उनका हृदय काम-बाण से बिंध गया। विषयान्ध बनकर कहने लगे—"तुम हमारी कामना को पूरी करो, हम एक भी तोला सोना नही छीनेंगे। सारे आभूषण दे देंगे। ऐसा सुन्दर समय पुन पुन नही मिलेगा। तेरी मजुल मूर्ति पर हम मुग्ध है।" डाकुओ की विषभरी वाणी सुनते ही सरोज का हृदय कापने लगा, आखो के आगे अधियारा छा गया। सारा शरीर पसीने से भीग गया, फिर भी उसने अपना साहस नही खोया और सर्पिणी की भाति उग्र रूप धारण कर कहा—"नराधम डाकुओ ! क्या समझते हो ? क्या मैं कुलटा हू ? चले जाओ यहा से। क्या तुम भारतीय महिलाओ के सतीत्व को नही जानते ? मैं प्राणो की आहुति देने को भी तैयार हू पर शील का खण्डन किसी परिस्थिति मे नही होने दूगी।"

पर वे डाकू कहा मानने वाले थे। उसको धमकाते हुए बोले—"अगर हमारे कथन को स्वीकार नही करोगी, तो तुम्हारे लिए अच्छा नही होगा।" यो कहते हुए उसकी ओर बढे और उसे पकडना चाहा।

किन्तु सती सरोज अपने शील का खण्डन कहा करने वाली थी ? उनको अपनी ओर आते देखकर सती ने अपनी जिह्वा को खीच लिया और सदा के लिए आखे बन्द कर ली। प्राणो की आहुति देकर भी उसने सतीत्व की रक्षा की।

लुटेरो का दिल धन-दौलत को देखकर रह-रहकर खुश हो रहा था। सभी के मुख-मण्डल पर हर्ष का उद्भव हो रहा था। उसी गहन जगल मे सिपाहियो का एक समूह घूम रहा था। अचानक उस समूह ने आकर चोरो को घेर लिया। डाकुओ ने सामना किया, किन्तु सशस्त्र पुलिस के आगे डाकुओ का क्या जोर चल सकता था। चारो ही आखिर घायल होकर गिर पडे। पृथ्वी माता पर पडे-पडे कहने लगे, जैसा हमने किया था वैसा पा लिया।

साहस श्लाघ्य सरोज का, प्रण पर रही अडोल।
जीभ खीच ली शील हित, बढा धर्म का मोल॥

स्वप्नो पर पानी

सेठ मगतराम अपने जीवन मे बडा सन्तुष्ट था। उसको रहन-सहन, खान-पान आदि समस्त क्रियाओ मे सादगी सर्व-प्रिय थी। वह अपने हाल मे बडा मस्त रहता था। बिना मतलब किसी के साथ बात करना, किसी की बुरी-भली करना उसको बिल्कुल भी अभीष्ट नही था। नगर मे एक छोटी दुकान चलाया करता था। दूसरो को ठगना, धोखे मे डालना उसने सीखा भी नही था क्योकि वह न्यायनीति का पुजारी था। उसका सत्य साध्य था। दुकान मे थोडी-बहुत जितनी भी कमाई होती, उसे अधिकतर घर-खर्च मे लगा देता और कुछ अवशिष्ट कमाई अपने प्रिय-पुत्र नयन की सार-सम्भाल मे व्यय कर देता क्योकि माता (सरला) व पिता (मगतराम) को नयन प्राणो से भी अधिक प्रिय था, उनकी आखो का तारा था उनके स्वप्नो का आधार था। उसकी फूलो-सी हसी, तुतलाती हुई बोली माता-पिता के हृदय को लुभाती रहती थी। नयन के लिए प्राणो का बलिदान भी उन्हे तुच्छ लगता था।

राजकुमार की तरह नयन का पालन-पोषण होता था। उसका तनिक भी स्वास्थ्य बिगड जाता, तो घर का घर परेशान हो उठता और सारा पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता। जब तक उसे चैन नही हो जाता, तब तक किसी को चैन नही होती। नयन बडा हुआ। उसे स्कूल मे भरती कराया गया। पढाई की सारी व्यवस्था करके सेठजी वापस घर लौटे, तो उनका मुख कमल की भांति खिल रहा था।

सरला—"आज किस बात की खुशी है? आपके चेहरे पर बडी चमक है। क्या हुआ?"

मगतराम—"मैं अभी स्कूल गया था। नयन की मा! जानती हो मास्टरजी ने क्या कहा?"

सरला—"मुझे क्या पता? मैं तो घर बैठी थी। आप सुनाइये।"

मगतराम—"वह कहते थे तुम्हारा नयन भाग्यशाली है। पढ-लिखकर बडा अफसर बनेगा।"

यह बात सुनकर सरला इतनी खुश हुई मानो संसार की समस्त खुशिया सिमटकर उसके हृदय मे समाहित हो गई हो। भविष्य के लिए उसके मस्तिष्क मे अनेको कल्पनाए दौडने लगी—नयन बडा होगा पढ-लिखकर दक्ष होगा, फिर पढी-लिखी लडकी के साथ विवाह करूगी। बडे ओहदे पर अफसर बनेगा। खूब पैसा कमाएगा। आलीशान बगला होगा मोटर होगी, दो-तीन नौकर होगे। जीवन के प्रत्येक पहलू से सुख-शान्ति का अविरल स्रोत बहता रहेगा। ये स्वप्न

नयन की मा के ही नही पिता के भी थे। सेठ मगतरामजी अपनी अधिक कमाई नयन के लिए आख मूदकर खर्च कर देते थे। एक पैसा भी उन्होने जमा करना नही सीखा। जब कभी सरला कहती—"पतिदेव! थोडी धनराशि तो बैंक मे जमा रखनी चाहिए।"

मगतराम—अरे पगली! तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। नयन अपने घर मे चलता-फिरता बैंक है। खूब कमाकर लाएगा और हम दोनो की सेवा-चाकरी करेगा।"

सरला—"अजी! जमाना बहुत खराब आ गया है। कही आगे जाकर अपने को रोना न पडे।"

मगतराम—"तेरे मे अक्ल नही। जमाना भले ही खराब हो, किन्तु नयन बडा विनीत है, आज्ञाकारी है। फिर चिन्ता किस बात की?"

नयन की बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी। वह हर क्लास मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होता था। बी० ए०, एल०एल० बी० की उपाधि मिल जाने के बाद पुत्र ने कहा—"पिताजी! आपका यदि मुझे शुभ आशीर्वाद प्राप्त हो, तो मैं विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर लू।"

पिता—"पुत्र! आनन्द से जाओ। किन्तु वहा कई बातो का ध्यान रखना।"

पुत्र—"कृपा करके शिक्षा फरमाइये, कदम-कदम पर आपकी शिक्षाए साथ लिए चलूगा।"

पिता—"(१) बुरी सगति से बचते रहना, (२) अपनी कुल मर्यादा का भी उल्लघन मत करना, (३) शराब आदि नशीली वस्तुओ से दूर रहना, (४) मास अण्डे आदि बुरे पदार्थों को अभक्ष्य समझना। बस, इन बातो का यदि तू प्रतिपल पालन करेगा, तो अवश्य ही तुझे सफलता आलिगन करेगी।"

पुत्र—"पिताजी! विश्वास रखिए, मैं आपकी शिक्षाओ को जीवन मे उतारता हुआ आगे बढूगा।"

माता-पिता का शुभ आशीर्वाद पाकर नयन विदेश के लिए रवाना हो गया। शीघ्रातिशीघ्र बैरिस्टरी पास करने के लिए उसने बडी एकाग्रता से अध्ययन किया। चन्द ही वर्षों मे वह बैरिस्टर बनकर अपने घर आ गया और माता-पिता के चरणो मे नमस्कार करता हुआ बोला—"आप ही की कृपा का यह शुभ फल है। आपके उपकार से मैं कभी भी उपकृत नही हो सकता।"

नयन कुछ ही दिनो बाद सरकारी अफसर बन गया। जितना भी मासिक वेतन पाता वह सब पिताजी को लाकर दे देता।

एक दिन सरला ने नयन के पिता से कहा—"अजी! आप तो देखते नही है।

नयन सब तरह से योग्य हो गया है। अब जल्दी से जल्दी इसका विवाह हो जाना चाहिए। छम-छम करती देवागना सी सुन्दर वहू आयेगी मेरी पग-चपी करेगी। मैं घर की सारी जिम्मेवारी उसे सौंपकर निश्चित वन जाऊंगी। घरेलू सभी झझटो से छुटकारा पाकर अमूल्य मानव-जीवन का कुछ लाभ कमाऊंगी। आप मेरी इस भावना को अविलम्ब साकार करे।"

सेठ ने अच्छा खानदान देखकर लाला प्रकाशचन्द्र की सुपुत्री शान्ति, जो कि सुन्दर, सुकुमार, चतुर एव अच्छी पढी-लिखी थी, उसके साथ नयनकुमार का सम्वन्ध निश्चित कर दिया।

नयन के विवाह की बडी धूमधाम से तैयारिया होने लगी। मा के कानो मे व्याह की शहनाइया गूजने लगी। मगल-गीतो से घर और आकाश एक होने लगा। बडे अरमानो के साथ नयनकुमार का विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ।

नयन की वहू शान्ति ने ज्यो ही घर मे प्रवेश किया, त्यो ही अशान्ति के काले-काले बादल उमटने लगे। शहनाइयो की गूजे चीखो मे वदल गई। हृदय मे बसी अरमानो की नगरी धू-धू कर जल गई। आखो मे आसू ढलकाती सरला बोली—"पतिदेव! देख लिया नयन का विनय, वहू ने क्या जादू कर दिया?"

मगतराम—"क्या कहू? मुझे तो विश्वास ही नही था कि नयन ऐसा उद्दण्ड निकलेगा। नयन तो वहू के हाथो का खिलौना बन चुका है। जैसा वह कहती है, वैसा करता है। अपने को तो कुछ भी नही गिनता है।"

सरला—"मैंने पहले ही कहा था, इतना खर्च मत करो, अब भविष्य कैसे निकलेगा? चौका-वर्तन, झाडना-बुहारना, खाना-पकाना आदि घर का सारा काम मुझे ही करना पडता है। वहू तो बैठी-बैठी आराम करती है। दो टाइम भोजन कर लेती है और महलो मे चली जाती है। हाय! मेरे तो समस्त स्वप्नो पर पानी फिर गया।"

मगतराम—"तुम जो कहती हो, वह अक्षरश सत्य है। व्याह के बाद नयन ने अपनी तनख्वाह की एक कौडी भी नही दी। वहू क्या आई है, घर मे एक कलह आ गई। नाम से तो वह अवश्य शान्ति है, किन्तु शान्ति का नाम-निशान भी नही। कदम-कदम पर अशान्ति की चिनगारिया उभरती रहती है। बडी कर्कशा है। सर्पिणी की भाति फुफकार करती है। नयन को भटकाने वाली भी तो यही है। क्या करे? बडी समस्या खडी हो गई।"

सास-बहू मे मनमुटाव तो चलता ही था, एक दिन काफी जोर-शोर से तकरार हो गई। वहू ने अत्यन्त तीखी हृदय विदीर्ण करने वाली वाणी मे कहा— अभी तो तुम को दाल रोटी मिल रही है, यह सब मेरा ही तो प्रताप है। मेरे पति के वेतन से ही तो घर का काम चलता है ज्यादा तीन-पाच करोगी तो हम-हम, तुम-

तुम। काफी दिनो तक मैंने तुम्हारे तीखे तीर सहे, किन्तु अब मैं सहने वाली नही हू।" आखिर वह कर्कशा सास-श्वसुर के साथ कहा रहने वाली थी। नयन उसके वश मे था ही। उसके कथनानुसार ही नयन की गति-प्रगति होती थी। एक दिन अवसर देखकर घर का सारा सामान लेकर वह अलग हो ही गई।

सेठ-सेठानी बडे दु खी हो गए। अनेको समस्याए उनके सामने मुह खोलकर खडी हो गई। घर-मालिक किराए के लिए तग करने लगा। भोजन और कपडों का खर्च भी निभाना बडा मुश्किल हो गया। चारो ओर से सेठ को दु ख ने घेर लिया। एक-एक दिन बडी मुश्किल से निकलने लगा। मन ही मन सोचने लगे—हाय ! ऐसा बेटा नही होता, तो अच्छा ....।

स्वप्नो पर पानी फिरा, देख पुत्र-उत्पात।
सब आशाओ पर हुआ, तीव्र तुषारापात ॥

आजीवन कैद

रूपसेन को यह विश्वास नही था कि मेरा मित्र वामदेव मेरे साथ विश्वासघात करेगा। मुझे मौत के घाट पर उतारेगा। लेकिन जब धन का प्रश्न सामने आता है, तब मित्र की मित्रता मे खाई पड जाती है। मन-मुटाव के सघन बादलो मे हृदय आच्छादित हो जाता है। एकता मे द्वेष की दीवार खडी हो जाती है। भाई-भाई को धोखा देने व पुत्र पिता को मारने के लिए उतारु हो जाता है। इसी-लिए ऋषियो ने धन को अनर्थ का मूल कहा है।

दुकान से लाखो रुपयो का वैभव लेकर वामदेव और रूपसेन दोनो मित्र अपने नगर के लिए रवाना हुए। मार्ग मे चलते-चलते वामदेव की विचारधारा ने पलटा खाया। मन मे विकार आया। स्वच्छ हृदय पर कपटाई की काई छा गई। वचनापूर्ण मधुर स्वर मे बोला—"मित्र रूपसेन ! गाव तो अभी काफी दूर है। विश्राम लिये बिना मेरे से तो चला नही जाता।"

रूपसेन—"मित्र ! कोई बात नही, थकान आना तो स्वाभाविक ही है, बोलो ! कहा ठहरे ?"

वामदेव—"भाई ! इस वट-वृक्ष के नीचे रातभर शयन कर लें। सारी थकान दूर हो जायेगी। फिर सुबह चलेंगे।"

दोनो वहा सो गये। रूपसेन तो सोते ही निद्रा देवी का अतिथि बन गया क्योकि उसका हृदय निश्छल था। मक्खन की भाति कोमल था। अपने प्रिय मित्र वामदेव के प्रति किसी भी तरह का दुर्भाव नही था।

कपट-निद्रा से सोये हुए वामदेव को नीद कैसे आ सकती थी ? वह इस निर्णय पर पहुच चुका था कि ज्यो-त्यो करके रूपसेन को यमराज के घर पहुचा देना, जिससे मेरा मनोवाछित कार्य क्रियान्वित हो सके। धन के दो विभाग न होकर समग्र सम्पत्ति का स्वामी मैं वन जाऊगा।

वह उठा और रूपसेन की छाती पर जा बैठा। सहसा उसकी आखे खुली। अपने प्रिय मित्र को वीभत्स रूप धारण किए हुए देखकर सुधामयी वाणी मे बोला—"वामदेव ! यह क्या ? हाथ मे चाकू और आखो मे रक्त का प्रवाह क्यो ?"

वामदेव—"रूपसेन ! अब तू मेरी निगाह मे मित्र नही शत्रु है, प्रिय नही अप्रिय है। इस चाकू का प्रयोग भी तेरे गले पर होने वाला है तेरी मौत भी मेरी आखो के सामने नाच रही है। अगर किसी का स्मरण करना है तो कर ले।"

रूपसेन—"मित्र ! ऐसा क्यो ? क्या मेरा कोई अपराध हुआ है ? अगर अज्ञान अवस्था मे हुआ [भी तो पुन पुन क्षमा याचना करता हू, परन्तु यह अकृत्य तेरे लिए शोभास्पद नही।"

वामदेव—"कहना था वह कह दिया। मैं मेरे निर्णय पर अटल हू। तुझे यदि परिवार वालो को कुछ कहलाना है कह दे। नही तो आ रहा है चाकू।"

रूपसेन भौचक्का-सा रह गया। आखो मे आसुओ का स्रोत अविरल गति मे बहने लगा। रुदन करता हुआ छोटा-सा पत्र लिखकर बोला—"भाई ! कम से कम यह पत्र तो मेरे पिताजी तक पहुचा देना।"

वामदेव नृशसता के अतिरेक पर था। उस निर्दयी हत्यारे ने चाकू मारकर उसे सदा के लिए ससार से विदा कर दिया। यह है लोभ-पिशाच का नग्न ताण्डव। लालच के चक्र-जाल मे फसकर मानव अपनी मानवता को खो बैठता है। दानवीय प्रवृत्तियो मे प्रवृत्त होकर अकृत्य व अवाछनीय कार्य करने लग जाता है। वामदेव की कामना पूर्ण हुई। हृदय कमल की भाति खिल उठा। सारा वैभव लेकर त्वरित गति से रवाना हुआ और अपने गाव मे आ गया। घर मे समस्त परिवार वालो से मेल-मिलाप कर उसने पिता से कहा—"इस साल व्यापार अच्छा चला था। जो भी धधा किया उसमे आशातीत सफलता मिली। यह लीजिए इस साल की कमाई।" पिता अमरदत्त ने पुत्र वामदेव को कोटि-कोटि बधाइया देते हुए कहा—"वत्स ! तेरे जैसा कमाऊ पुत्र ही मेरी सेवा-चाकरी करेगा।'

वामदेव ने मित्र रूपसेन का पत्र पढा। लेकिन उस पत्र के अर्थ को वह समझ नही सका। हाय-हाय व करुण-क्रन्दन करता हुआ वह लाला लक्ष्मीचन्द के घर पहुचा। उष्ण नि श्वास लेता हुआ रुदनपूर्वक बोला—'लालाजी' बहुत बडा

अन्याय ! दिल के टुकडे हो रहे है। सिर पर दु ख का पहाड टूट पडा। हन्त ! हन्त !"

लक्ष्मीचन्द—"ऐसे दु ख करने की क्या बात है ? सही-सही समाचार सुनाओ तो भाई वामदेव !"

वामदेव—"लालाजी ! क्या समाचार सुनाऊ ? मेरा प्यारा मित्र रूपसेन ससार से चल वसा। मै आज ही परदेश से आया हू।"

लक्ष्मीचन्द—(विलाप करता हुआ) "क्या मेरे दुलारे रूपसेन का देहावसान हो गया ? रोगग्रस्त हो गया था या अचानक।"

वामदेव—"लालाजी टी०वी० की वीमारी ने रूपसेन को खत्म कर दिया। अनेको डाक्टरो व वैद्यो द्वारा अत्यधिक उपचार होने पर भी कोई उपाय नही लगा। मेरे देखते-देखते रूपसेन की आखे वन्द हो गई।"

लक्ष्मीचन्द—"क्या आखिरी समय मे रूपसेन ने मेरे लिए कोई सन्देश भेजा है ?"

वामदेव—"लालाजी ! ऐसी कमजोर हालत मे वोलने की तो शक्ति थी नही, फिर भी यह छोटा-सा पत्र वडी मुश्किल से लिखकर दिया है।"

लाला लक्ष्मीचन्द ने पुत्र का पत्र पढा, किन्तु पत्र मे—

"वा ··· रू · ···घो······ल······।"

इन चार अक्षरो के सिवाय और कुछ नही था। पत्र का गूढ अर्थ नही समझने के कारण लालाजी तो असमजस के गहरे-गर्त मे डूव गए। आखो से टप-टप पानी वहने लगा।

आखिर उस पत्र को लेकर लालाजी राज दरवार मे आए और राजा को समग्र वृत्तान्त से अवगत कराया। राजा की मति चकरा गई। उस पत्र का अर्थ वे भी समझ नही सके। समीपस्थ मत्री ने कहा—"राजन् ! इन चार अक्षरो का अर्थ इतना गूढ है कि साधारण मनुष्य की वुद्धि चकराए विना नही रह सकती। अक्षर चार, किन्तु सार वहुत है।"

लाला लक्ष्मीचन्द के विशेष निवेदन पर राज्य द्वारा एक विराट् सभा का आयोजन किया गया, जिसमे समस्त राजकर्मचारियो के अतिरिक्त विद्वान्, वकील, अध्यापक, व्यापारी आदि शहर के अनेको प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित हुए। नृपति ने वडे-वडे मस्तिष्क वाले वुद्धिशील व्यक्तियो से उन चार अक्षरो का अर्थ पूछा। कोई भी उनकी गहराई तक नही पहुच सका। सव मौन एव निरुत्तर हो गए। आखिर नृपति के आदेशानुसार मत्री खडा होकर वोला—

'वा ·· वामदेवन मित्रेण, रू· ···रूपसेनो वनान्तरम्।

घो··· · घोर निद्रा वशीभूतो, ल······लक्ष-लोभान्निपातित ।"

"जगल मे निद्रित रुपमेन का वामदेव मित्र ने लोभाकुल होकर मार दिया।" चारो अक्षरो का यह गूढार्थ स्पष्ट होते ही सभा मे सन्नाटा छा गया। नृप के हृदय मे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या इन चार अक्षरो का यह सही अर्थ है ? "बुलाओ वामदेव को।"

वामदेव आया। राजा ने पूछा—"वामदेव ! क्या तूने तेरे अनन्य मित्र रूपसेन को मारा ?"

वामदेव—"राजन् ! वह मेरे परम मित्रो मे मे एक मित्र था। क्या मैं ऐसा क्रूर जघन्य अकृत्य कर सकता हू ?"

राजा—"भाई ! तू जो कहता है वह सम्भवत सत्य ही होगा, पर तेरे द्वारा प्राप्त—पत्र का अर्थ भी असत्य कैसे हो सकता है ?"

वामदेव—"राजन् ! बिल्कुल मिथ्या। वह तो टी० वी० के असाध्य रोग से खत्म हुआ था। मैं दानव नही मानव हू। ऐसा अकृत्य कभी नही कर सकता।"

अन्त मे नृपति की कठोर ललकार व असह्य मार से वामदेव को अक्षरश सब स्वीकार करना ही पडा। नृप ने क्रोधाकुल होकर कहा—"अरे अधम वामदेव ! लोभासक्त होकर तूने अपने परम मित्र को मार दिया। तेरे सदृश घोर निर्दयी इस ससार मे कोई नही है। ऐसे क्रूर व्यक्तियो का मुखावलोकन भी भयकर पाप है।" उसी वक्त वामदेव को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। उसके होश उड गए। वह हक्का-बक्का रह गया। मन ही मन मे विचार करने लगा—"हाय ! यदि मैं लोभ के चक्र मे नही पहुचता तो आज यह आजीवन कैद क्यो ?"

लोभी मानव मित्र की, कर देता है घात।
आखिर मे उसको मिला, नरक कुड साक्षात ॥

चाण्डाल कौन ?

एक तपस्वी मुनि थे। वे एक-एक महीने का निराहार उपवास किया करते थे, जिससे उनका शरीर जर्जरित हो गया था। एक्सरे के बिना ही उनका फोटो खीचा जा सकता था। मास व शोणित रहित केवल हड्डियो का पिंजर रह गया था। शारीरिक शक्ति कम होते हुए भी मुनि का मानसिक बल प्रबल था। तपस्या का पारणा लाने के लिए भी मुनिवर स्वय जाते थे। उनके घोर तप के प्रभाव से प्रभावित होकर एक देवता हमेशा उनकी सेवा मे रहा करता था। मुनि गोचरी, पचमी जहा कही भी पधारते थे, वह साथ ही रहता था।

एक दिन मुनिराज नीचे देखते हुए धीरे-धीरे भिक्षा के लिए जा रहे थे। अचानक सामने से एक धोबी आया, जिसके सिर पर कपडो की एक बहुत गठरी

थी। एक दूसरे को नही देखने के कारण मुनि और रजक आपस मे टकरा गये, गठरी का धक्का लगने से मुनि नीचे गिर गये। शरीर से गिरे सो गिरे किन्तु साधुत्व से भी गिर गये। मुनि शीघ्र उठे और धोबी को गालियां देने लगे—"अरे पागल! ऐसे कैसे चलता है? क्या तेरी आखे फूट गई? अन्धा कही का!" बस ये अपशब्द धोबी के कानो मे पडते ही मानो अग्नि मे घी पड गया। धोबी के क्रोध का पार नही रहा। शीघ्र गठरी एक तरफ रख उसने मुनि पर धावा बोल दिया। मुनि भी क्रुद्ध होकर उसका सामना करने लगे। धोबी बलिष्ठ था, उसने शीघ्र मुनि को पछाड दिया और मुनि के ऊपर जा बैठा। मुनि की अच्छी तरह से पूजा करके धोबी अपने घर के लिए रवाना हो गया।

मुनि का गुस्सा शात हुआ, आखे खुली। अपने आप का भान होते ही पश्चात्ताप करने लगे—हाय! मैंने बहुत बडा अकृत्य किया। साधु होने के नाते मुझे ऐसा काम करना, क्या उचित था? ऐसे अपने आपको धिक्कारते हुए, शान्त-रस का स्वाद लेते हुए मुनि आगे चले।

इतने मे वह देव आया। मुनि को नमस्कार किया। मुनि बोले—"देवानुप्रिय! इतनी देर कहा गये थे? अभी धोबी ने मुझे पीटा।"

देव—"महाराज! मैंने मार्ग मे दो को लडते हुए जरूर देखा, किन्तु मैं समझ नही सका कि दोनो मे साधु कौन है और चाण्डाल कौन है? उस समय आपके घट मे चाण्डाल घुस गया था। धोबी ने आपको नही पीटा था। चाण्डाल को पीटा था। मैं आपका सरक्षक हू, चाण्डाल का नही। आपके कोई हाथ भी नही लगा सकता।" यह सुन मुनि मौन हो गये।

मनुष्य जाति से कोई चाण्डाल नही होता है। चाण्डाल वही है कि जिसके घट मे क्रोध का नशा छाया हुआ हो। क्रोध एक भयकर अग्नि है। इससे निरन्तर दूर रहना चाहिए।

मुनि भूले निज भान जब, तब वे बने चण्डाल।
सरक्षक भी देवता, खिसक गया तत्काल॥

किस्मत का चमत्कार

मणिचूड और चन्द्रचूड दो देवता थे। दोनो मे परस्पर अच्छा प्रेम था। एक दिन शक्ति की बात चली।

मणिचूड ने कहा—"सुर-शक्ति सदा किस्मत के पीछे रहती है।" चन्द्रचूड ने कहा—"मित्र! तू गलती मे है। देव-शक्ति चाहे जो कर सकती है।"

अब इसकी परीक्षा करने के लिए दोनो मृत्यु लोक मे आये। मणिचूड

बोला—"ये जो तीन प्राणी खेत आ रहे है, इनको धनी बनाओ।" चन्द्रचूड ने उन तीनो के आगे स्वर्ण और रत्न के ढेर लगा दिये। इधर तीनो ने सोचा —यदि कभी अधे हो जायेगे तो कैसे चलेगे ? इसका अभी से अभ्यास करना चाहिए। तीनो आखे बन्द करके चलने लगे। धन पीछे रह गया। इस असफलता के बाद देव ने सोचा—वरदान देकर इन्हे धनी बना दू। दोनो तालाब की पाल पर बैठ गये। इतने मे एक जाटनी पानी लेने के लिए आई और पूछा—"तुम कौन हो ?" उन्होने कहा—"हम सिद्ध पुरुष है। चाहे जो वरदान माग लो हम देने को तैयार है।" जाटनी ने रूप मागा। वह देवी सी रूपवती बन खेत मे आ गई। जाट देखते ही चमका और बोला—"हे देवी मा ! कहा से आई हो ?" "मै तो पेमे की मा हू।" यो कह जाटनी ने सारी बात सुना दी।

जाट लाल-पीला होकर बोला—"घर मे तो खाने के लिए अनाज के लाले पड रहे है और पिशाचिनी को सुन्दर रूप अच्छा लगता।" वह दौडा-दौडा तालाब पर गया और सिद्ध पुरुषो से वर मागा—"मेरी स्त्री को गधी बना दो।"

देव के वरदान देते ही वह बेचारी गधी बन गई। वह जोर-जोर से रेंकती हुई खेत मे इधर-उधर दौडने लगी। जाट गुस्से मे लाल हो उसे लाठी से पीटता हुआ अनर्गल एव घृणित गालिया निकालने लगा—"दुष्टा ! तुझे रूप चाहिए, किन्तु आज तुझे मारे बिना नही छोडूगा।" घर का सारा काम बन्द हो गया। सबके दिलो मे अशान्ति के बादल छा गये। आखिर जाट का पुत्र पेमा दौडा-दौडा सिद्ध पुरुष के पास गया और पूछा—"क्या मुझे भी वरदान मिलेगा ? देवो ने कहा—हा, जो भी तुम मागोगे।" पेमे ने कहा—'महाराज ! न मुझे धन चाहिए न कुछ और। कृपया गधी को मेरी मा बना दो। रोटी पकाने की भी समस्या खडी गई है।" तत्काल देवता ने उसे स्त्री बना दिया।

मणिचूड हसकर बोला—"मित्र ! भाग्य बिना इन तीनो को तू कुछ भी नही दे सका। अब चलो भाग्यवान के पास।" दोनो शहर मे आये। सिद्ध पुरुष का नाम सुनकर एक अधा आया और बोला—"कृपया मुझे वरदान दीजिए।" देवो ने कहा—"तुम जो चाहो एक वर माग लो।" अधे ने कहा—"स्वर्ण के थाल मे पक-वान खाते हुए पोते को देखू।"

यह सुनते ही उन देव को मानना पडा कि वास्तव मे किस्मत का चमत्कार है। किस्मत के बिना एक कौडी भी कोई किसी को नही दे सकता। देव द्वारा अधे की आशा पूर्ण करते ही उसकी आखे खुल गई। धन के भण्डार भर गये और क्रमश: पोता भी हो गया।

मनुष्य तो क्या देवता भी तभी सहयोग दे सकते है जब इन्सान की किस्मत

हो। किस्मत के अभाव मे किमी को भी धनवान नही बना मकते।

किम्मत है जव मनुज की, तव देते मव योग।
विना भाग्य वह देव भी, कर न मका सहयोग॥

संग्रह से दुःख

राजा भोज सभा मे वैठे थे। इतने मे उनके सामने एक शहद की मक्खी आई। वह दोनो पाव मलकर सिर पर लगाने लगी। राजा भोज ने यह देखकर उपस्थित विद्वानो मे प्रश्न किया—"विज्ञो! मुझे ऐमा प्रतीत होता है कि मक्खी कोई फरियाद लेकर आयी है। क्या आपमे से कोई वतला मकता है कि यह क्या फरियाद कर रही है?"

भोज का प्रश्न सुनकर सभी पण्डित आश्चर्य के झूले मे झूलने लगे। आखिर एक मनीपी ने कहा—"राजन्! यह मक्खी कुछ ही दिनो पहले मेरे पाम आई थी और फरियाद करने लगी।"

मैंने कहा—"तुम राजा के पास जाओ वहा वरावर न्याय होगा। इसलिए आपके पाम आई है।"

राजा—"विज्ञवर! यह तो वताओ इसकी क्या फरियाद है?"

विज्ञ—"राजन्! यह मक्खी आपको चेतावनी देने आई है कि महाराज भोज! मग्रह करना वहुत वडा पाप है। सग्रहशील व्यक्ति को मेरी तरह दु ख का शिकार वनना ही पडता है। मैंने वडी निपुणता से मधु का मचय किया था। मगृहीत मधु पर मैं मन ही मन गर्व करती थी। मैंने न तो उमका भक्षण किया और न ही किमी को दान दिया। अन्त मे लूटने वाले लूट ले गये और मै हाथ मलती ही रह गई।"

मचय करने वाला व्यक्ति कभी भी सुखी नही हो सकता, अत हर एक को असग्रह की भावना विकसित करनी चाहिए।

मग्रह करना छोड दो, सुन मक्खी-आख्यान।
'मुनि कन्हैया' मग्रही, पाता दु ख महान॥

रेखा

विवाह की तैयारिया बडी धूमधाम से होने लगी। घर को सुसज्जित किया गया। सबके दिलो मे खुशी का सचार होने लगा। विशेषकर विद्यावती बहुत ही खुश नजर आ रही थी। क्योकि आज वह चिन्ता-मुक्त होने जा रही है, अपने दिल का बोझ हल्का करने जा रही है, जा रही है अपनी पुत्री को दूसरो के हाथो सौपने, जो उसका जीवन साथी बनेगा। इसी खुशी के साथ उसको एक चिन्ता थी कि रेखा, जो अब तक बचपन साथ लिए हैं, जिसकी जिह्वा बडी ही चचल एव कर्कश है, वह अपने पति, सास, श्वसुर के साथ न जाने कैसा व्यवहार करेगी, न जाने वहा कैसे शान्ति रखेगी। सोचती है इसी कटु व्यवहार के कारण आज तक कितने ही व्यक्तियो ने सबध करने से इन्कार कर दिया, कितने ही इसके नाम मात्र मे चौकन्ने हो जाते। काश ! आज का दिन मेरे लिए आह्लाद का होगा, मगर सुरेन्द्र के जीवन मे क्या होगा ? फूल खिलेगे या काटे ?

बारात आई, मोटर द्वार पर रुकी। सबके मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट छा गई। आनन्द की सरिता बहने लगी। मगल मुहूर्त और मगल-वेला मे रेखा और सुरेन्द्र प्रणय-सूत्र मे बध गए।

कर्म-चक्र का अगला चक्र चला, खुशहाली की जगह वीरानी ने ले ली, फूल की जगह काटे खिलने लगे। आज सुरेन्द्र की मा उसको अपनी नव-नवेली दुलहन के हवाले कर गई। अभी पहला दु ख ही सुरेन्द्र को विह्वल कर ही रहा था कि फिर विपत्ति का पहाड टूट पडा। सुरेन्द्र अब अनाथ हो गया, मा का दु ख भूल ही नही सका था कि पिता का हाथ भी हमेशा के लिए उठ गया। बेचारा दिन को सात्वना की लहर मे बिठाने की कोशिश करने लगा।

रेखा की प्रकृति मे कोई परिवर्तन न हुआ। वह हर एक के साथ कलह-कदाग्रह करती रहती थी। यहा तक कि अपने पति देवता के साथ भी। किसी विशेष घटना के कारण सुरेन्द्र और रेखा मे काफी वाद-विवाद हुआ। उसको समझाया गया, धमकाया गया। मगर उस पर किसी प्रकार का असर न हुआ। सुरेन्द्र हैरान होकर पलग पर जा गिरा। अर्द्ध-निद्रा मे सोचने लगा—प्रतिदिन की कलह ने तो मेरा जीवन ही बर्बाद कर दिया। यह रेखा क्या है ? मेरे जीवन पर शनि की तरह छा गई है, सुख और शान्ति को छीन लिया है। काश ! मैं भी अपने पिता की तरह इस दुनिया से चला जाता।

रात्रि के शान्त वातावरण को देख सुरेन्द्र ने अपनी प्रियतमा रेखा को समझाने के बहाने वार्तालाप शुरू किया और मधुर स्वर मे रेखा को सम्बोधित करते हुए कहा—"प्रिये ! लडाई-झगडो मे कुछ भी लाभ नही है। तनिक अपने आप मे

परिवर्तन करो। सबसे मधुर बोलो। जहर की प्याली पीना सरल है, किन्तु तुम्हारे कटुकमय वचनों का पान करना कठिन है।" इन शब्दो को सुनते ही रेखा सर्पिणी की भाति फुफकारने लगी। परस्पर तनाव बढा, मारपीट होने लगी। सुरेन्द्र का क्रोध चरम सीमा पर पहुच गया। क्रोधावेश मे उसने रेखा का खून कर दिया। इस नृशंस हत्या की बात हवा की तरह फैल गई। लोगो मे घर भर गया। लोगो के दिलो मे घटना के प्रति उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई, पुलिसवाले भी आ पहुचे और कानूनी जाच-पडताल करने लगे। जाच-पडताल मे सुरेन्द्र ही दोषी साबित हुआ, अत उसे हत्या के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया गया। बीस हजार की जमानत पर रिहा हो गया और न्यायालय मे उसके विरुद्ध मुकदमा चलने लगा।

आज की दुनिया मे हर वस्तु पैसो से मिलती है जैसे—न्याय, इज्जत । यही सोचता हुआ सुरेन्द्र न्यायाधीश की कोठी पर गया और कहने लगा—"जज साहब ! आपके पास मेरा मुकदमा है, आप चाहे तो मुझे स्वतत्र कर सकते है अथवा जिन्दगी भर परतत्र।"

न्यायाधीश—"भैया सुरेन्द्र ! मैं कर ही क्या सकता हू ? जब तुम अदालत मे दोषी प्रमाणित हो गए, तो अदालत ही इसके दण्ड की व्यवस्था करेगी।"

सुरेन्द्र—"जज साहब ! अदालत तो आपकी ही है, फिर अदालत क्या करेगी ? करने वाले तो आप ही है।"

न्यायाधीश—"सुरेन्द्र ! जब तुमने खून किया है, तो तुम्हे सजा मिलनी ही चाहिए, मै लाचार हू।"

सुरेन्द्र ने सोचा कि अब आखिरी अस्त्र का उपयोग किए बिना कार्य पूर्ण न होगा और उसने जज साहब के सामने दस हजार के नोट रखते हुए कहा—"साहब ! यह लीजिए आपका इनाम, कर दीजिए मुझे हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त।"

न्यायाधीश—(फटकार कर) "सुरेन्द्र ! यह क्या है ? घूस ! छि · छि ·छि । न्याय और सत्य पैसो मे नही खरीदा जा सकता। इन मुट्ठी-भर रुपयो के लिए मैं अपना ईमान नही बेच सकता। ले जाओ इन रुपयो को, यहा फिर कभी मत आना।"

न्यायाधीश मन मे सोचता है— वाह रे समाज ! तेरे मे ऐसे व्यक्ति भी जन्म लेते है, जो न्याय, ईमान को बेचने फिरते है। तनिक लोभ के कारण समाज तथा देश को नष्ट करने पर तुले हुए है। वे देशद्रोही है, गद्दार है।

सुरेन्द्र हाथ मलता-मलता अपने घर पहुचा। अब क्या था ? कुछ समय पश्चात् न्यायाधीश ने उसको आजीवन कारावास का दण्ड दिया। यह सुनते ही सुरेन्द्र ने कहा—"काश ! मैं अपने आवेश पर नियत्रण कर सकता, तो यह सजा

क्यो· · ···?"

मौके पर आवेश को, रोके वही महान।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, बहुत बडा नुकसान ॥

दो हजार के बदले नौ हजार

शकुन्तला के शादीयोग्य होने पर भी लाला मदनलाल ने कुछ भी ध्यान नही दिया। सरस्वती ने विनम्र शब्दो मे निवेदन करते हुए कहा—"पतिदेव! शकुन्तला सौन्दर्य, सौम्य, सारल्य और सौकुमार्य आदि सर्वगुणयुक्त होने के साथ-साथ काफी वडी हो गई है। क्या आपने इसके लिए अच्छे घर व अच्छे वर के लिए प्रयास किया है?" मदनलाल—"क्या प्रयास करू? सारा समाज अन्ध रूढियो की जजीरो से जकडा हुआ है। सब लकीर के फकीर हो रहे है। लडके वाले पिशाच की भाति मुह वाए खडे हैं। कोई पाच हजार तो कोई दस हजार के लिए पहले से ही वादा करके लडकी वालो को वाधना चाहता है। अपने हृदय के टुकडो को वेचते हुए उनको तनिक भी सकोच नही होता। इसी कुत्सित एव घृणित प्रणाली के कारण सारा समाज जर्जरित हो रहा है। पतन के गहरे गर्त्त मे गिर रहा है। अन्दर ही अन्दर सारे घुन की भाति पिसे जा रहे है। सब के हृदय दारुण पीडा से भरे हुए हैं। ठहराव की घृणित वीमारी से सब पीडित व वेचैन है। फिर भी यह दावानल शान्त नही हो रहा है। मुझे तो दो सौ रुपये मासिक मिल रहे हैं। कैसे मिलेगी शकुन्तला के भार से मुक्ति?"

सरस्वती बोली—"प्राणाधार! आपके कथन मे असत्य का लवलेश भी नही है। मेरा हृदय भी इसी चिन्ता से व्याकुल-सा रहता है। आजकल कई लोग अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए अपनी हैसियत से अधिक विना मतलव खर्चा कर देते हैं, किन्तु आगे जाकर उनको स्वय की भूल के लिए पछताना पडता है, किन्तु अपने को ऐसी प्रतिष्ठा नही चाहिए। घर को देखकर ही खर्च करना समझदारी है, लेकिन ज्यो-त्यो करके वाई का विवाह तो अव शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिए।"

लाला मदनलाल की काफी दौड-धूप के वाद शकुन्तला का सम्वन्ध लाला प्यारेलाल के सुपुत्र राकेशकुमार के साथ निश्चित हो गया। यद्यपि लाला प्यारेलाल उन व्यक्तियो मे नही थे, जो दहेज को बुरा समझते हो या किसी प्रकार का दहेज के प्रति आकर्षण न हो पर चूकि लाला मदनलाल के कम आय होते हुए भी वे खान-पान व रहन-सहन का स्तर ठीक रखते थे, जिससे उनके अर्थ-सम्पन्न होने का अनुमान लगाया जा सकता था और उन्होंने लाला प्यारेलाल को यह वादा तो दे

ही दिया कि वे अपनी हैसियत मे अधिक ही दहेज देंगे। इसलिए यह सम्बन्ध कुछ आसानी से बैठ गया।

लाला मदनलाल के एक ही सतान होने के कारण उनके दिल मे बडा उल्लास था। विवाह की तैयारिया होने लगी। घर मे कही पर सुनार काम करते है, तो कही पर दर्जी अपनी मशीन का कौशल दिखा रहा है। हलवाई भी विभिन्न प्रकार की मिठाइया बनाने मे पूरी तैयारी के साथ लग रहा है और इधर द्वारो पर वदनवार बाधे जा रहे है। तरह-तरह की झण्डियो और रग-विरगे वस्त्रो मे अलग सजावट हो रही थी। सरस्वती सर्वत्र जा-जाकर निरीक्षण कर रही थी कि कही सजावट तथा व्यवस्था मे कसर न रह जाए।

कुछ ही समय पश्चात् शहनाई का स्वर सुनाई देने लगा। बारात आ रही थी, सभी के दिलो मे आनद की तरगे तरगित हो रही थी। नगर की सहस्रो स्त्रिया दौड-दौडकर अपने घरो की छतो व खिडकियो से शकुन्तला के वर को देखने के लिए लालायित हो रही थी। वर महोदय (राकेशकुमार) सुन्दर-सुन्दर वस्त्रो व बहुमूल्य आभूषणो से सुसज्जित, घोडी पर सवार होकर बडी शान से चल रहे थे।

मण्डप की सजावट निराली थी। उसका अद्वितीय सौंदर्य अभ्यागतो के मानस को आकर्षित कर रहा था। वहा की सुन्दर व्यवस्था के लिए सभी लाला मदनलाल की प्रशसा कर रहे थे। सरस्वती भी बडे उत्साह से यह देख रही थी। उसके नेत्र तृप्त हो गये। उस शुभ दिन को देखने के लिए आप कई वर्षों से प्रतीक्षा कर रही थी। निश्चित शुभ मुहूर्त मे सखिया शकुन्तला को मण्डप मे ले आई और उसे आसन पर बैठा दिया। वर वरासन पर विराजमान था ही। पण्डितजी के मत्रोच्चारण के साथ शकुन्तला की शादी सानद सम्पन्न हुई।

लाला मदनलाल ने अपनी शक्ति के अनुसार कन्यादान मे दो हजार रुपयो का माल दिया। दहेज-स्वल्पता के कारण लाला प्यारेलाल की आकृति बदल गई और तत्काल रोष भरे शब्दो मे कहा—"यह दहेज तो बहुत कम है।"

मदनलाल—"(मृदु शब्दो मे) इतनी व्यवस्था भी बडी मुश्किल से कर पाया हू। इससे अधिक देने मे असमर्थ हू।"

प्यारेलाल—"आधुनिक युग के अनुसार घडी, रेडियो और स्कूटर आदि तो दहेज मे अवश्य ही दीजिए।"

यह सुनते ही लाला मदनलाल स्तब्ध-सा रह गया। सारे शरीर मे बिजली-सी दौड गई। आखें रक्तिम हो गईं। सारा शरीर क्रोध से कम्पित हो गया, पर वह भी पक्का आर्य समाजी था। उसे इस बात का तनिक भी सकोच नही था कि वह अपनी पुत्री का पुनर्विवाह नही कर सकता, अत क्रुद्ध होकर बहुत तीखी वाणी मे

बोला—"भिखारियो की भाति याचना करते हुए आपको तनिक भी शर्म नही आती। मैं ऐसे लालची एव भिक्षुको को कन्या देना नही चाहता। निकल जाइये घर से। मेरी पुत्री के भाग्य मे जैसा विधि-विधान होगा, वैसा होगा।"

क्षण भर मे सन्नाटा छा गया। बाजो का स्वर बन्द हो गया। सरस्वती के मुह पर हवाइया उडने लगी। सबके चेहरो की चमक-दमक निस्तेज हो गई। सभी के नेत्र नग्न-नृत्य देखने के लिए उतावले हो गये। मुख-मुख पर बाते होने लगी—"हाय! यह क्या समाज है?" "हड्डियो का ढेर है।" "इस दहेज-प्रथा का भयकर रूप जब तक रहेगा, तब तक यह समाज स्वस्थ नही होगा और समाज का कोई भी सदस्य आराम की जिंदगी नही जी सकेगा।" "धिक्कार है—ऐसे समाज के नागरिको को जहा क्षुधा शात करने के लिए अनाज नही, तन ढकने के लिए पूरा कपडा नही। व्यवसाय के अभाव मे घरेलू-खर्च की भी कोई सुव्यवस्था नही फिर भी बेशर्म होकर खुल्लम-खुल्ला कहा जाता है—लाओ बीस हजार रुपया, लाओ रेडियो, लाओ स्कूटर। हाय! कैसे होगा यह पिछडे हुए समाज का सुधार!"

लाला प्यारेलाल के दिमाग पर लोभ का भूत सवार था। अपनी अकड मे वह अकडा हुआ था। अभिमान के नशे मे जोर से बोला—"पुत्र राकेश! उठ, आज के युग मे लडकियो की कोई कमी नही है। हम तो पन्द्रह हजार का माल लेकर ही घर मे प्रवेश करेंगे।" पिता का रूप देखकर राकेश सहम गया। पिता के सामने बेचारा क्या बोल सकता था। बिना सोचे-विचारे लाला प्यारेलाल मुह चढाकर पुत्र सहित वहा से रवाना हो गया। ऐसे दुर्व्यवहार से उनको धिक्कार ही धिक्कार मिलने लगी। प्रतिष्ठा, मान, विश्वास उनके मिट्टी मे मिल गये। इज्जत की धज्जिया उडने लगी।

ऐसे लालची व पिशाच वृत्ति वाले लालाजी के सामने बडी पेचीदगी परिस्थिति उत्पन्न हो गई। यदि मैं ऐसे ही घर चला जाऊगा तो लोग मेरा उपहास किये बिना नही रहेंगे। अगुली दिखा-दिखाकर मुझे अपमानित करेंगे। इधर लालाजी के घृणित व्यवहार एव कुत्सित आचार की दुर्गन्ध चारो तरफ फैल चुकी थी।

एक तरफ जहा बिना दुल्हन के बारात लौटने मे उनकी ही नही, बल्कि गाव के सगे-सम्बन्धियो की एव सब की भर्त्सना होती, इसलिए दुल्हन सहित जाना ही उचित होता, तो दूसरी ओर दुल्हन जो उसी समय विवाह के लिए तैयार हो जाए, यह भी लगभग असम्भव सा हो रहा था।

उत्कट प्रयत्न व अनहद दौड-धूप करने पर भी लाला प्यारेलाल को कोई उपयुक्त सम्बन्ध नही मिला। आखिर प्रतिष्ठा के मारे लालाजी हताश होकर एक छोटे गाव मे गये और लडकी वाले को प्रत्युत नौ हजार रुपये देकर पुत्र राकेश का

विवाह कर घर आए। लालाजी मन ही मन सोचने लगे—'हाय! ये तो लेने के देने पड गये। यदि मैं दो हजार के दहेज मे सतोष कर लेता तो घर के नौ हजार क्यो देने पडते ? क्यो मुझे इज्जत और आबरू से हाथ धोना पडता ? क्यो मुझे गालियो की दुत्कार सुननी पडती। किंतु अब क्या……?"

लेने के देने पडे, लोभ योग से व्यक्त।
सुखी वही सतोष मे, रहता जो अनुरक्त ॥

माया का संसार

प्रतिवर्ष लाखो रुपये की आय से सेठ शीतलचन्द बडा सतुष्ट था। पारिवारिक एव घरेलू चिताओ से वह सर्वथा मुक्त था। सेठ की नैतिकता की धाक थी। वह जहा जाता वही इज्जत और प्रतिष्ठा उसकी अनुगामिनी होकर रहती थी। दिग्-दिगन्त मे उसकी कीर्ति-पताका लहरा रही थी। अचानक काल की कुटिल गति ने उसे लील लिया। काल के दुश्चक्र के आगे विश्व के अप्रतिम योद्धाओ का उत्कट पराक्रम भी शिथिल हो जाता है। इसके आगे किसी का भी उपक्रम सफलता की वरमाला नही पहन सका। विज्ञान भी इसके आगे पराजित है। शीतलचन्द का जीवन-प्रदीप ज्योंही बुझा घर मे अन्धकार छा गया। सेठ के वियोग मे नैरन्तरिक आक्रन्दन एव विलाप मे सेठानी का स्वास्थ्य भी क्रमश गिरता गया और वह भी शीघ्र ही काल-कवलित हो गई।

पुत्र अरुणकुमार इस दुखद आघात मे अतिशय आहत हुआ। उसके समक्ष एक भयकर समस्या खडी हो गई। व्यापार मे दिन-प्रतिदिन घाटा होने लगा। जो घर वैभव मे भरा रहता था, आज उसमे अनाज के भी लाले पड गये। जहा अरुण-कुमार के समक्ष अनेक नौकर, मुनीम कर-बद्ध खडे रहते थे, वह घर आज वीरान हो गया। 'सब दिन होत न एक समान', यह बहुत ही अनुभूत वाणी है। अरुण-कुमार के जीवन-महासागर मे सहसा भयकर भूचाल आते ही उसकी समस्त सुख-सुविधाए समाप्त हो गईं। दुख का पहाड टूट पडा। धन के अभाव मे स्वय का भरण-पोषण भी कठिन हो गया। भविष्य अन्धकार मे विलीन हो गया। सगे-सम्बन्धियो ने मुह फेर लिया। उस अबोध बालक को देखकर किसी के भी हृदय मे करुणा-भाव जागृत नही हुआ।

अरुणकुमार के मस्तिष्क मे अनेक विचार उभरने लगे। हाय! कैसे होगा जीवन-निर्वाह ? कैसे मिलेगी दुख-कारा से मुक्ति ? मुझे अब किसी का भी सहारा नही है, किन्तु बहिन चन्द्रकला नही बदलेगी। वह मेरी जीवन-नैया को पार पहुचाने मे पतवार का काम करेगी। वह मुझे इस सकट के कुएं मे से निकालकर

अपना कर्त्तव्य निभाएगी क्योकि उसका ससुराल सर्व-साधन सम्पन्न है। लाखो रुपयो का व्यापार चलता है। वहा पर मानसिक सताप की लहर शात होते ही सुख-शाति की मृणालिनी खिल उठेगी। वह इन्ही अपरिमित आशाओ को लेकर भिखारियो की भाति भटकता हुआ चन्द्रकला की ससुराल जा पहुचा। शरीर पर फटा-पुराना चिथडा लिपटा हुआ था, जिससे उसका चेहरा बिल्कुल बदल रहा था। आखे गडी हुई थी और चमडी ढीली होकर ऐसे लटक गई थी जैसे उसका मास और हड्डियो से कोई सम्बन्ध ही न हो।

चन्द्रकला की दृष्टि ज्योही अपने भाई अरुणकुमार पर पडी त्योही वह सहसा चौक उठी। मन ही मन विचार करने लगी—'हाय! मेरे भाई की यह दुर्दशा कैसे हुई? इस दीन और मलिन भाई को मै कैसे गले लगाऊ? मेरे ससुराल वाले क्या समझेंगे? देवरानी, जिठानी भी मुझ पर ताने कसेगी। यही अच्छा होगा—बिना परिचय पाए ही इसे यहा से रवाना कर दिया जाए।'

चन्द्रकला का देवर दौडा-दौडा भाभी के पास आया और जोर से बोला—"भाभीजी! द्वार पर जो भिखारी खडा है, वह आपका नाम लेकर उच्च स्वर मे पुकार रहा है। क्या आप इसको पहिचानती हैं? मुझे बताए तो सही यह कौन है?"

चन्द्रकला झल्लाती हुई बोली—"यह तो मेरे पीहर का नौकर है। घर का कूडा-कचरा निकालने वाला है। सम्भव है इधर-उधर भटकता हुआ ऐसे ही आ गया है। बेचारा भूख से व्याकुल हो रहा है। कुछ रूखी-सूखी रोटी इसे अवश्य ही मिलनी चाहिए।"

अरुणकुमार के कानो मे जब यह वार्तालाप पडा, उनके धैर्य का बाध टूट गया। उनकी सारी आशाओ पर अनल पात हो गया। उनके शरीर मे बिजली कौध गई। उसने अनेक बार अपनत्व-भरी आखो से चन्द्रकला को देखा और मन ही मन गुनगुनाया—"हाय! बहिन को तो मैं ऐसा न समझता था। इसने भी मेरे साथ यह व्यवहार किया? यह तो मेरे कृतकर्मों का दोष है, अन्य किसी के सिर पर इसे नही मढना चाहिए।" उसने वही पर मिट्टी खोदी एव बहिन की ओर से मिली हुई सूखी रोटी को गाडकर वहा से आगे चल दिया।

अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए वह आगे से आगे चलता गया। पुरुषार्थ और भाग्य का समन्वय हुआ कि उनको सफलता के कुछ आसार दिखाई देने लगे। नैरन्तरिक उत्कट उद्यम से भाग्य ने पलटा खाया। कुछ ही दिनो मे अरुणकुमार की गई हुई सम्पत्ति लौट आई। वह लक्षाधिपति की कोटि मे गिना जाने लगा।

धन के प्रबल बल पर समस्त सुख-सुविधाए सहज तथा समुपलब्ध हो जाती है। पैसा आते ही उनका चेहरा खिल उठा, शारीरिक सौन्दर्य मे भी निखार

आ गया। अरुणकुमार को, चतुर्मुखी विकास होते ही, स्वदेश की स्मृतिया भी कचोटने लगी। एक दिन उसने लाखो रुपयो का वैभव अपने साथ लेकर स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे बहिन का ससुराल आ गया। उस गाव को देखते ही उसकी स्मृतिया ताजी हो आई। बहिन के घृणित व्यवहार से अरुण का दिल पहले से ही फटा हुआ था, फिर भी वह व्यवहार-कुशल था अत बहिन से साक्षात् किए बिना वह आगे न जा सका।

उसने ज्योही दरवाजे मे प्रवेश किया, गवाक्ष मे बैठी चन्द्रकला अपने भाई को धन-सम्पत्ति से लदा हुआ देख, आनन्द-विभोर हो उठी और दौडी-दौडी नीचे आकर भाई से मिली, कुशल-क्षेम पूछा। भाई का हार्दिक सत्कार करती हुई बोली—"भाई! आज तो बहुत दिनो से मिलना हुआ। आखे फाड-फाड कर पपीहे की तरह निरन्तर निर्निमेष से टक-टकी लगाए रहती थी। आज मेरी मनोकामना फलित हुई। घर वालो को सगर्व कहने लगी—यह मेरा प्यारा भाई है। अब इसके लिए मधुर-मधुर पकवान तैयार होने चाहिए। चन्द्रकला के आदेशानुसार तरह-तरह की भोजन सामग्री तैयार हुई, गद्दी-पट्टे लगाए गए।

अरुणकुमार ने कहा—"बहिन! मैं यहा (रग भवन मे) भोजन करना नही चाहता। मेरे लिए वही स्थान और वही भोजन रुचिकर है, जो तुमने कुछ समय पूर्व जब मैं दरिद्रावस्था मे यहा आया था और तुमने दिया था। बहिन वह दिन तुम्हे याद होगा—जब मै तुम्हे भाई नही, किन्तु पीहर का एक साधारण नौकर लग रहा था।"

यह सब सुनकर चन्द्रकला को मानो काटो तो खून नही, वह लाज के मारे डूब गई।

अरुणकुमार अब अपने घर आ गया था। अपने विगत जीवन पर नजर डालता हुआ सोच रहा था और चिन्तन के क्षणो मे उसे लगा—'जैसे ससार काया का नही किन्तु माया का ही है।'

सदा स्वार्थ पूरित रहे, सब लौकिक उपचार।
है वाणी अनुभूत यह, माया का ससार॥

पर्दे से नुकसान

नवीन राजभवन के निर्माण का कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् राजा ने मत्री से कहा—"मत्री! राजभवन तो बडा मोहक और मनोहर बना है, लेकिन कमरे की आमने सामने की दीवारो पर दो सुन्दर चित्र बन जाने से भवन की शोभा द्विगुणित हो जायेगी।"

मत्री—"राजन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपके विचारो को अवश्य ही क्रियान्वित करने का प्रयास करूगा।"

मत्री ने दो विचक्षण कलाकारो को नियुक्त कर कहा—"जिसका चित्र सुन्दर व मोहक होगा, उसे राजा की ओर से पुरस्कार दिया जायेगा।" दोनो चित्रकारो मे एक वृद्ध था और एक युवक। अच्छा समय देख दोनो ने चित्र बनाना प्रारम्भ किया। वृद्ध कलाकार ने सोचा—"मेरे कला-नैपुण्य से सारा ससार अवगत है। मेरे सुयश का सौरभ चारो तरफ फैल चुका है। मै अनुभवी हू। यह युवक नया खिलाडी है। इसको मेरे जैसा अभ्यास नही है। मेरी जैसी हस्त-विचक्षणता भी इसके पास नही है, परन्तु कही यह युवक मेरा अनुकरण कर मेरे जैसा सुन्दर चित्र न बना डाले इसलिए वस्त्रावरण डलवा देना उचित होगा, जिससे दोनो की प्रवीणता का परीक्षण सुचारु रूप से हो सके। ऐसा सोच वृद्ध कलाकार ने मत्री से कह कमरे मे एक पर्दा डलवा दिया।

पर्दे को देख युवक के हृदय मे निराशा की चिनगारिया प्रबल होने लगी। वह दुख के सागर मे डूबने लगा और मन ही मन सोचने लगा—ओह ! उस बुड्ढे के विश्वास पर ही मैने राजभवन का कार्य अपने हाथ मे लिया था कि वृद्ध का चित्र देखकर एक सुन्दर चित्र बना लूगा। पर अब क्या होगा ? यह राजभवन है। यदि मोहक व आकर्षक चित्र न बना, तो पुरस्कार के बदले तिरस्कार ही मिलेगा। हाय ! बुड्ढा भी कितना स्वार्थी निकला ! इसने अवश्य ही अपनी कला को छिपाने के लिए यह पर्दा डलवाया है। खैर, "विघ्नै पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना, प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।" बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को जो नही छोडता है, वही उत्तम जन कहलाता है, जो कष्टो मे घबराता है कायर बन जाता है, वह मानव किसी भी क्षेत्र मे सफल नही हो सकता। अत मुझे हिम्मत नही हारनी है, ऐसा सोच वह युवक अपने गुरु के पास गया और अपनी समस्या गुरु के चरणो मे रख दी।

गुरु ने शिष्य को सान्त्वना देते हुए कहा—"शिष्य ! घबराने की जरूरत नही है। अधीर क्यो हो रहे हो ? किस्मत पर भरोसा रखो। धैर्य का फल सदा मीठा होता है। मै जैसा कहू, वैसा करना, सब अच्छा होगा।"

शिष्य—(हाथ जोडकर) "गुरुवर ! आपके आदेश को निभाने के लिए मैं प्रतिपल तैयार हू। फरमाइये क्या आदेश है ? मेरा मान और मेरी शान आप ही रख सकते है।" गुरु—"शिष्य ! तुम्हे कोई भी चित्र बनाने की आवश्यकता नही है केवल उस दीवाल को घोट-घोट कर दर्पण जैसी साफ बना लेना। दीवाल पर तनिक भी कालिख मत रहने देना। मै दृढता से कह सकता हू कि आखिर विजय तुम्हारी ही होगी। तुमको ही पुरस्कार मिलेगा, और ससार मे तुम्हारी कला

चमक उठेगी। वृद्ध कलाकार की अवश्य हार होगी। और वह देखता ही रह जायेगा। शिष्य ! अब जाओ काम प्रारम्भ करो।" शिष्य ! (नत-मस्तक होकर) "पूज्यवर ! आपने जो मार्गदर्शन दिया है वैसा ही करूंगा। आपकी कृपा से अवश्य ही मेरी विजय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

गुरुजी का आशीर्वाद लेकर वह युवक राजभवन में आया। गुरु के वचन पर निष्ठा होने के कारण उसने दीवाल घोटना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन घोटते-घोटते दीवाल चमकीले दर्पण जैसी बन गई। युवक का मस्तिष्क विभिन्न कल्पनाओं के उपवन में रमण करने लगा, कैसे विजय होगी और कैसे गुरु की वाणी सत्य होगी ?

उधर उस वृद्ध कलाकार का भी चित्र पूर्ण हुआ। वह अपने मंजुल व आकर्षक चित्र का पुनः-पुनः अवलोकन कर हृदय को उल्लसित बना रहा था। दरबार में गया और उसने राजा से प्रार्थना की—राजन् ! चित्र तैयार है, आप देखने के लिए पधारें और मेरी मनो-कामना पूर्ण करें। राजा ने राजभवन में आकर उस पर्दे को हटा दिया। दोनों में कौन-सा चित्रकार अधिक निपुण है ? इसकी परीक्षा के लिए निरीक्षण करने लगा। बूढ़े द्वारा निर्मित चित्र का प्रतिबिम्ब उस युवक की घोटी हुई दीवाल पर पड़ा। दीवाल चमकदार होने के कारण प्रतिबिम्ब के सामने वास्तविक चित्र फीका हो गया, अतः राजा को उस युवक की चित्रकला अधिक सुन्दर मोहक प्रतीत हुई। यद्यपि उस घोटी हुई दीवाल पर चित्र नहीं था। फिर भी दूर से चित्र जैसा ही आभास हो रहा था। युवक के चित्र पर प्रसन्न हो पुनः-पुनः उसकी प्रशंसा करता हुआ राजा बोला—"ओ युवक चित्रकार ! तू ही पुरस्कार का हकदार है। यह लो मन इच्छित इनाम।" वृद्ध चित्रकार बेचारा देखता ही रह गया। और निराश होकर अपने घर की ओर चल दिया। मन ही मन सोचने लगा—ओह ! पर्दे से नुकसान ! अगर मुझे ऐसा पता होता तो पर्दा कभी भी नहीं करवाता और न युवक पुरस्कार का पात्र बन पाता, किन्तु अब क्या·· ·· ?

जो व्यक्ति दूसरे के विकास को सहन नहीं कर पाता है, आखिर उसको पश्चात्ताप करना ही पड़ता है। अतः ईर्ष्या के आवरण से आवृत्त न होकर सबको अपना हृदय उदार एवं विशाल रखना चाहिए।

पर की उन्नति में बने, बाधक जो इन्सान।
उसका सफल न हो सका, कोई भी अभियान ॥

बनिये की वाचालता

एक बनिया था। वह बातें बनाने मे बडा वाचाल था। जहा कीचड नही वहा समुद्र बना देता था। सुई का मूसल बनाना तो उसके लिए खेल जैसा था। छोटे-छोटे गावो मे वह माल बेचने जाता था। जब वापस घर आता तो अपनी पत्नी के आगे बडी-बडी बाते बनाता। "आज तो तेरा सुहाग अमर रहना ही था, अन्यथा मैं तो परलोक पहुच जाता"—वह कहता।

सेठानी पूछती—"पतिदेव! ऐसा क्या सकट आ गया था?"

सेठ—"कल मार्ग मे चार चोर मिले। उन्होंने मुझे लूटना चाहा। किन्तु मैंने वीरता के साथ उनसे सग्राम किया। किसी को हाथ से मारा, तो किसी को पैरो से और सबको भगा दिया।" इस प्रकार वह बनिया निरन्तर अपनी प्रशसा करता और कहता रहता कि आज पाच मिले, आज सात मिले।

सेठानी बडी विवेकशील एव समझदार थी। उसने सोचा—पतिदेव तो बडे कायर है और मेरे सामने बडी-बडी डीगे हाकते है। एक दिन इनकी परीक्षा करनी चाहिए कि वास्तविक स्थिति क्या है। सेठानी ने सेठ से सब पूछ लिया कि आप किधर से जाते है और किधर से आते है? सेठानी दूसरे दिन पुरुष के कपडे पहन कर मार्ग मे जा बैठी। कुछ समय बाद जूतो को घसीटता धीरे-धीरे आता हुआ वह सेठ दिखायी दिया। सेठानी ने उसे जोर से ललकारा और दो चार थप्पड लगाकर बोली—"इधर लाओ यह पोटला।" सेठ रोता-रोता बोला—"यह लो पोटला, किन्तु मेहरबानी करके मुझे मारो मत।" सेठानी बोली—"बैठ जाओ यहा पर, जब तक मै आखो से ओझल न हो जाऊ तब तक यहा से उठना मत।"

सेठानी सेठ का सारा सामान लेकर घर लौट आई। वह सेठ धीरे-धीरे चलता हुआ घर पहुचा। सेठानी बोली—"पतिदेव! आज तो रात बहुत चली गई। इतनी देर कैसे कर दी?" सेठ बोला—"आज की बात तो पूछो मत, घर पर जीवित पहुच गया, यह तेरे सौभाग्य का ही प्रताप है। मार्ग मे आते-आते आज पच्चीस चोरो से मुठभेड हो गई। मैंने किसी को हाथो से, किसी को दातो से, सबको पछाड दिया। किन्तु सामान का पोटला वे जरूर ले गये।" सेठानी गुस्से से लाल-पीली होकर बोली—"सेठजी! आपको फिजूल की बात बनाने मे तनिक भी सकोच नही होता। कभी कहते हैं चार चोर मिले, कभी पाच, कभी पच्चीस। कहा मिलते हैं चोर, आज तो मैं मिली थी आपको। यह लीजिए आपका पोटला। भविष्य मे ऐसे निरर्थक झूठे ढोग रचकर मेरे आगे डींगें हाकने की आवश्यकता नही है।" सेठ बोला—"हा, पोले-पोले हाथ मुझे भी पोपले की मा जैसे ही लगे थे।" आखिर सेठ को सारे ढोग छोडने ही पडे।

जो व्यक्ति अधिक ढोंग करते है, आवश्यकता से अधिक जो व्यर्थ की बातें बनाते है उनका विश्वास किसी भी क्षेत्र मे जम नही सकता। अत प्रत्येक को निश्छलता की लौ जलानी चाहिए और जैसी बात हो वैसी स्पष्ट रखना ही श्रेयस्कर समझना चाहिए।

ढोंगी और वाचाल का, नही तनिक विश्वास।
निश्छलता की लौ जगी, करता हृदय प्रकाश॥

मेरेपन का दुख

एक सेठ था। परदेश मे लाखो रुपयो का कारोबार चलता था। एक दिन मुनीम का पत्र आया कि सेठ साहब एक बार आप जरूर कृपा करके परदेश पधारे और अपनी दुकान का निरीक्षण करे। पत्र पढते ही सेठजी रवाना होने लगे। उस समय सेठानी गर्भवती थी। सेठ ने कहा—"तुम सुख-शान्ति से रहना, मैं कुछ ही दिनो मे वापिस आ जाऊगा।" सेठजी परदेश गये, किन्तु व्यापार मे इतने फसे कि घर आना मुश्किल हो गया।

सेठानी के पुत्र हुआ। सेठ को समाचार दिये गये। पुत्र के समाचार पढकर सेठ ने परदेश मे पुत्र की खुशी मे हजारो का खर्च कर एक बहुत बडा उत्सव मनाया। सेठानी सेठ की प्रतीक्षा निरन्तर कर रही थी।

सेठ को घर से गए बारह वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु सेठजी घर नही आये। क्योंकि वहा अच्छी कमाई हो रही थी। व्यापार भी जोर से चलता था। "ज्यो-ज्यो लाभ होता है त्यो-त्यो लोभ भी बढता है।" इसी कहावत के अनुसार सेठजी घर कहा आने वाले थे?

एक दिन सेठानी ने कहा—"पुत्र! तू अपने पिता से मिलना चाहता है?"

पुत्र—"मा! मेरे पिताजी कहा है?"

माता—"परदेश, अमुक शहर मे व्यवसाय करते है। जब तू गर्भ मे था तभी से गये है। आज बारह वर्ष हो गए है।"

मा से सब पूछ-ताछकर पिता से मिलने के लिए पुत्र रवाना हो गया। साथ मे दो नौकर थे। मार्ग मे कई गाडिया बदलनी पडती थी। एक स्टेशन पर धर्मशाला मे ठहरे थे। अचानक उस बच्चे के पेट मे दर्द हो गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। रात का समय था नौकर घबरा गये। किसी से भी जान-पहचान न होने के कारण उपचार कहा होने वाला था? इधर सेठजी भी बडे ठाठ-बाट से देश के लिए रवाना हुए। साथ मे पाच-दस नौकर मुनीम थे। रास्ते मे उसी स्टेशन पर उसी धर्मशाला मे सेठजी ने विश्राम लिया। उस बच्चे की चिल्लाहट

से सेठ को नीद नही आ रही थी। तीन-चार वार मनाही करने पर भी बच्चे का चिल्लाना वन्द नही हुआ और क्रमश पेट मे दर्द बढने लगा। सेठ के सिर पर धन का नशा चढा हुआ था। गुस्से मे आकर बोले "इस लडके को बाहर निकाल दो, नीद नही लेने देता है।" सेठ के नौकरो ने जबरदस्ती पकडकर उस बच्चे को बाहर निकाल दिया। कुछ देर के बाद उस बच्चे ने सदा के लिए आखे वन्द कर ली। साथ वाले नौकरो का चेहरा उतर गया। पर करे क्या? वहा किसी से पहचान थी नही।

सेठजी आराम मे नीद लेकर उठे और पूछा—"वह लडका कौन था?" नौकर गये। पूछ-ताछ करने पर पता लगा कि यह लडका सेठजी का है। नौकरो की सूचना मिलते ही सेठजी दौडे-दौडे बाहर आये और उस शव को देखते ही पछाड खाकर धरती पर गिर पडे। मन ही मन दु ख करने लगे—"हाय! पहले यदि मालूम होता कि यह लडका मेरा है तो बाहर क्यो निकालता? दवाइयो से पेटी भरी थी। उपचार करता। पर अब क्या ••?"

दुनिया मे मेरेपन का दु ख है। जहा इन्सान यह सोच ले कि मेरा कोई नही है उसे दु ख हो ही नही सकता। अत ममत्व का परित्याग करना ही सुख का प्रशस्त मार्ग माना गया है।

मेरेपन का दु.ख है, मेरेपन का भार।
तेरी-मेरी छोड दो, पाओ सुख अविकार॥

परीक्षक बनो

लाला श्यामलालजी जवाहरात के बहुत बडे व्यापारी थे। बीसो मुनीम उनकी दुकान पर रहते थे। लाखो का व्यापार चलता था। किन्तु 'सब दिन होत न एक समान' सब दिन समान नही होते हैं। सुख के पीछे दु ख और दु ख के पीछे सुख आते ही रहते है। रात के पीछे दिन और दिन के पीछे रात अवश्य ही होती है। सेठ साहब की किस्मत बदली। कारोबार मे चारो तरफ नुकसान होने लगा। सेठ जी के एक पुत्री और एक पुत्र थे। घाटा अधिक होने से उनके हृदय पर बहुत बडा धक्का लगा जिससे सेठजी ने संसार से सदा के लिए आखें बन्द कर ली।

सेठानी के वक्षस्थल पर दु ख का पहाड टूट पडा। घर की स्थिति को सम्हालना एक समस्या बन गई। जीवन का भरण-पोषण भी कठिन हो गया। एक दिन पुत्र कमल से कहा—"पुत्र! यह लो नीलम, मुनीम प्रेमचन्दजी की दुकान पर जाओ और इसे बेच दो। जितने रुपये मिले उतने लाओ, जिससे पेट पोषण तो सुख से करे।"

कमल मुनीम के पास गया और नीलम उन्हे देता हुआ बोला—"मुनीमजी ! इस नीलम को बेच दीजिए। अम्मा ने कहा है।" मुनीमजी नीलम को देखकर विचार मे पड गये, कुछ समय पश्चात् उन्होने सोच-विचारकर कमल से कहा—"अभी इसके भाव मन्दे हैं, अत इसे बेचना ठीक नही है। वापस ले जाओ।"

कमल—"मुनीमजी ! घर मे खाने के लिए अनाज ही नही है अत जिस भाव मे बिके इसे बेच दीजिए।"

मुनीम—"तुम दूकान से पाच सौ रुपये ले जाओ, घर का खर्च चलाओ और कल से तुम दुकान पर आकर बैठा करो।"

कमल—"मुनीमजी ! मैं तो कुछ समझता ही नही हू फिर दुकान मे क्या करूगा ?"

मुनीम—"कमल ! मैं भी पहले अनभिज्ञ था परन्तु तुम्हारे पिताजी की कृपा से मैं सब कुछ समझने लगा हू। इस दुकान को अपनी ही समझो, यहा पर काम सीखा करो।"

कमल अब मुनीमजी की दुकान पर बैठने लगा। काम सीखना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धि-विचक्षणता के कारण वह चन्द ही दिनो मे इतना निपुण बन गया कि प्रेमचन्दजी ने दुकान की सारी देख-रेख कमल के हाथो मे सौप दी। कुछ वर्षों मे ही कमल की स्थिति ऐसी हो गयी कि वह पुन लखपति बन गया।

जवाहरात के परीक्षा मे कमल का नाम पहला आने लगा, तब मुनीमजी ने एक दिन कहा—"कमल ! अब बाजार भाव कुछ अच्छे हैं, इसलिए अब नीलम को बेचना अच्छा है।" कमल ने नौकर भेजकर माताजी से उस नीलम को मगवाया और मुनीम को दे दिया।

मुनीमजी ने कहा—"कमल ! तुम इसकी परीक्षा करो। यह नीलम कितने रुपयो का है ?"

कमल ने उसे देख नीचे फेंक दिया और विनयपूर्वक हाथ जोडकर बोला—"मुनीमजी ! यह तो काच का टुकडा है।"

मुनीमजी ने कहा—"कमल ! मैंने तो उसी समय इसे काच का टुकडा समझ लिया था, लेकिन उस दिन अगर काच का टुकडा कह देता तो मेरी बात पर तुम्हे विश्वास नही होता, पर आज तुम सच्चे जौहरी बन गये हो। नीलम की परीक्षा कर सकते हो कि नीलम कैसा होता है।"

कमल ने कहा—"मुनीमजी ! धन्य है आपकी निपुणता को। आप जैसे परोप-कारी मनुष्य ही समाज का उत्थान कर सकते हैं, दूसरे नही।"

हर व्यक्ति को परीक्षक बनना चाहिए जिससे सत्य-असत्य का सही ज्ञान हो सके। काच और नीलम का मूल्याकन परीक्षक ही कर सकते है। सही ज्ञान की

उपलब्धि होते ही कमल की भाति दिव्य प्रकाश होता है कि यह काच का टुकडा है।

बनो परीक्षक सत्य सब, पाना अगर यथेष्ट।
ज्ञानोपलब्धि के लिये, रहना सतत सचेष्ट ।।

मृत्यु का भय

एकनाथ नाम का एक महात्मा था। वह बडा वैरागी व मस्त था। उसके पास एक दिन एक भक्त आया और बोला—"महाराज! धन्य है आज की वेला, और धन्य है आज का स्वर्णिम दिन, आप जैसे त्यागी सन्तो के दर्शन हुए। महाराज! आपका जीवन तो बडा शान्त एव सुखी प्रतीत हो रहा है। किसी भी तरह की आपको चिंता नही है, परन्तु मेरा जीवन अशान्ति से आच्छादित रहता है। रात-दिन एक न एक चिन्ता सताती रहती है। सुख की नीद भी नही ले सकता। आपके और मेरे जीवन मे इतना अन्तर क्यो?" एकनाथ महाराज ने कहा—"भक्त! इन प्रश्नो का उत्तर अभी नही मिलेगा। पर एक बात सुन, तेरी मृत्यु आज से आठवें दिन होने वाली है, इसलिए अभी से उसकी चिन्ता कर।"

महात्मा की बात सुनते ही भक्त घबराया और दौडा-दौडा अपने घर आया। उसने सोचा—अब तो आठवे दिन मरना पडेगा। इस दृष्टि से उसने अपने परिवार वालो मे व पडोसियो से क्षमायाचना कर ली। सासारिक मोह से विरक्त हुआ, घर के कार्यों से निवृत्त बना, जीवन का सारा समय धर्मध्यान मे व्यतीत करने लगा। जब आठ दिन पूरे हो गए तो एकनाथ महाराज उसके घर पर गये।

भक्त—"महाराज! अब मेरी मृत्यु मे कितना समय अवशिष्ट है?"

एकनाथ—"भक्त! मौत कब आयेगी यह तो ब्रह्मज्ञानी जानते है, किन्तु बता तेरा यह सप्ताह कैसे बीता?"

भक्त—"महाराज! मेरे सामने तो मौत नाच रही थी, इसलिए मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता था। पौद्गलिक सुखो व सासारिक कर्मो से विमुख होकर मैने आठो दिन ही धर्मध्यान मे बिताए।"

एकनाथ—"भक्त! जिस प्रकार तेरे सामने आठो ही दिन मौत नाचती रही और तुमने कोई भी सासारिक कार्य नही किया, उसी प्रकार महापुरुषो की आखो के सामने मौत निरन्तर ही नाचती रहती है, वे जानते है कि मौत आने वाली है अत वे शान्त व निष्क्रिय रहते है। सुख से नीद लेते है। भक्त यह है तेरे प्रश्न का उत्तर।"

भक्त—"(खुश होकर) पूज्यवर! आपने मुझे बहुत ही अच्छा ज्ञान दिया। मैं आपके उपकार को कभी भी भूल नहीं सकता। अब मैं भी सामाजिक कार्यों से निवृत्त होकर धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति करूँगा और मौत को निरन्तर याद रखूँगा जिससे मुझे भी शान्ति मिले।"

किसी भी परिस्थिति में मौत को नहीं भूलना चाहिए। मौत निरन्तर हमारे ऊपर घूमती रहती है। वह हर एक को सचेष्ट करती है कि मैं किसी को भी सूचित किये बिना ही अचानक हमला बोलने वाली हूँ। अतः सत्कार्य करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तेरे सिर पर रे मनुज! घूम रहा यमराज।
आलस निद्रा त्यागकर, निज जीवन को साज॥

अभिमान का नशा

सुन्दरलाल ने कुछ ही समय पूर्व एम० ए० पास किया था। उसको विद्या का बड़ा अभिमान था। वह हर एक के सामने अंग्रेजी की ही प्रशंसा करता और अंग्रेजी में ही वार्तालाप करता। आँखों पर चश्मा लगाता था। पेंट, सूट, बूट तथा टाई लगाकर जब वह बाजार में से गुजरता तो हरेक की नजर उस अपटूडेट बाबू पर पड़े बिना नहीं रहती। माता-पिता भी अपने पुत्र को दक्ष तथा प्रवीण समझकर अपने आपको धन्य मानते थे। पिता ने अच्छा खानदान तथा रूपवती लड़की देख सुन्दरलाल का विवाह बड़ी धूम-धाम से कर दिया। बहू घर में आई। सबको बड़ी प्रसन्नता थी। बहू का स्वभाव बहुत अच्छा था। कदम-कदम पर वह सास एवं पति की आज्ञा का ध्यान रखती थी। घरू कार्यों में पटु होने के साथ-साथ वह रोटी-पानी में भी दक्ष थी। किन्तु प्राचीन युग में शिक्षा का प्रचलन नहीं होने के कारण वह बिल्कुल अनपढ़ थी।

एक दिन बाबू सुन्दरलाल ने पत्नी से कहा—"वाटर लाओ।" उसने सोचा पतिदेव रोड़ा माँग रहे हैं। शीघ्र गली में गई और एक चमकीला पत्थर ढूँढकर लाई व पति के चरणों में हाजिर किया। सुन्दरलाल ने मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा—हाय! कैसे जीवन बिताऊँगा? पत्नी को कुछ कहे बिना ही वह उठा और बाजार में चला गया। मित्रों से मिलन होते ही उसने कहा—"मेरी शादी क्या हुई है, मेरे पीछे तो पत्थर बँध गया है।" मित्रों ने पूछा—"अरे! क्या हुआ?' उसने दिल खोलकर सब बात कह दी। मित्रों ने कहा—सीधी सरल भाषा में बोलना चाहिए था, अंग्रेजी का प्रयोग क्यों किया? अनपढ़ होने से कोई बुरी नहीं होती है। दोष उसका नहीं तुम्हारा है।' सुन्दरलाल ने कहा—"अच्छा,

भविष्य मे ध्यान रखूगा ।"

एक दिन उसने पत्नी से सीधी भाषा मे कहा—"पानी लाओ ।" वह वेचारी दौडी-दौडी गई। काच के गिलास मे ठडा-ठडा पानी छान कर उसे हाथ मे ले पति के सामने हाजिर हो गई। उस मदान्ध से रहा नही गया, वह जोर से बोल पड़ा—"थैंक्यू-थैंक्यू !" वह अवला समझ न सकी, उसने सोचा—पतिदेव 'फैंक दो फैंक दो' फरमा रहे हैं। मेरा कर्तव्य है कि पति की आज्ञा का अक्षरश पालन करु। वस ऊपर खडे-खडे ही उसने गिलास फेंक दिया।

सुन्दरलाल कुछ गर्म होकर—"गिलास को फैंका क्यो? देखो उसके टुकडे-टुकडे हो गये।"

पत्नी ने विनयपूर्वक कहा—"आपने अभी फरमाया था कि फैंक दो, मैने तो आपके आदेश का पालन किया है।"

सुन्दरलाल—"फैंकने के लिए थोडे ही कहा था? मैने तो थैंक्यू अर्थात् तुझे धन्यवाद दिया था।"

पत्नी पति के चरणो मे गिर गई और आसू ढुलकाती हुई वोली—"प्राण-वल्लभ! कृपया सीधी-सादी भाषा का प्रयोग करे, क्योकि मुझे अग्रेजी भापा आती नही है। आप अपनी विदेशी भाषा का प्रयोग अन्यत्र भले ही करें, पर मेरे सामने नही।"

सुन्दरलाल समझ गया कि हर एक स्थान मे अंग्रेजी वोलना लाभप्रद नही है। आज तो केवल गिलास का ही नुकसान हुआ है भविष्य मे कुछ वडा नुकसान भी हो सकता है।

वावू सुन्दरलाल पर छाया हुआ अभिमान का नशा दूर हो गया। खान-पान, रहन-सहन, वोली-चाली आदि समस्त क्रियाओ मे वह सादगी अपनाने लग गया।

जो व्यक्ति अहकार करता है, उसको आखिर पश्चात्ताप करना ही पडता है। अहकार सव गुणो का नाशक है, अत धन, रूप, विद्या आदि किसी का भी अहकार नहीं करना चाहिए। जीवन के हर क्षेत्र मे सादगी व विनय ही लाभप्रद हैं।

धन का, वल का, वुद्धि का, मत करना अभिमान।
अभिमानी का एक दिन, होता है अवमान ॥

अमरकुमार

सम्राट श्रेणिक ने एक सुन्दर महल वनवाना शुरु किया। ज्योही वह वनकर तैयार होता त्योंही ढह जाता। राजा ने ज्योतिषशास्त्रज्ञो से पूछा—"ऐसा कोई उपाय वताइये जिससे वार-वार मेरा महल ढह न जाये।"

ब्राह्मणो ने कहा—"राजन् ! इसके लिए एक बत्तीस लक्षण वाले लडके का होम होना चाहिए।" नृप ने सारे शहर मे घोषणा करवा दी कि अगर कोई मुझे ऐसा लडका देगा तो उसको लडके के बराबर सोना तोल कर दिया जायेगा। अमरकुमार की माता ने जब यह समाचार सुना तो उसका हृदय लोभ के गहरे सागर मे डूब गया। लोभिन मा ने अमरकुमार के बराबर सोना ले लिया और उसको होम के लिए बेच दिया।

आक्रन्दन करते हुए बालक अमरकुमार को राजमहल मे लाया गया। करुण-क्रन्दन व विलाप सुनकर महारानी चेलना ने राजा को बाल-हत्या न करने के लिए बहुत समझाया और कहा—"ऐसे निरपराध प्राणी की हिंसा करना आपके लिए शोभास्पद नही है।" लेकिन राजा कब मानने वाला था। वह अपने लक्ष्य पर अटल था। रानी की बात बिल्कुल नही मानी। तब महारानी बिलखते हुए अमरकुमार के पास आई और बोली—"वत्स ! धैर्य रखो, घबराओ मत। जो कर्म उदय मे आते है, उनका फल अवश्य ही भोगना पडेगा। मैं तुम्हे एक मत्र बताती हू। इसका शुद्ध भाव से जाप करो। अवश्य ही तुमको आत्म शक्ति मिलेगी। देखो ! वह मत्र यह है—

"णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व साहूण।"

अमरकुमार ने हाथ जोडकर मधुर स्वर से कहा—"माताजी ! यह नमस्कार महामत्र तो आपकी कृपा से मुझे याद है। अभी कुछ ही दिनो पहले सतो के पास सीखा था।"

रानी ने कहा—"फिर डरने की क्या बात है? इस महामत्र की रटन लगाओ। इसके प्रभाव से सारा सकट दूर हो जायेगा।"

रानी की अनमोल शिक्षा के अनुसार अमरकुमार तो जोर-जोर से इस मत्र का रटन लगाने लगा। इतने मे होम करने वाले आये और उसको होमस्थल पर ले गये। ज्योही पडितो ने कुमार को अग्निकुण्ड मे फेका त्योही अग्नि सलिल की भाँति शीतल हो गई। एक स्वर्ण सिंहासन बन गया। उस पर अमरकुमार बैठ गया और मत्र का अस्खलित गति से जाप करता हुआ आत्मध्यान मे लीन हो गया।

होम करने वाले सभी पण्डित बेहोश होकर गिर पडे। सम्राट श्रेणिक इस विस्मयोत्पादक वृत्तान्त से अवगत होते ही घटनास्थल पर आ पहुचा। अमरकुमार के चरणो मे नतमस्तक होकर नृपति ने कहा—"मैं पुन-पुन क्षमाप्रार्थी हू। आप महान् है। मेरी इस अक्षम्य त्रुटि पर ध्यान न देकर कृपया मेरा राज्य ग्रहण करें।"

अमरकुमार ने कहा—"यह ससार असार है। जिसने मेरी रक्षा की है मैं तो

उसकी शरण लूगा। आखिर अमरकुमार ने मुनिव्रत लेकर अपना कल्याण कर लिया।

नमस्कार महामत्र के प्रभाव से वडे से वडे सकट टल जाते है। जीवन की दुखद घडिया भी सुख मे परिणत हो जाती है। अत इस मन्त्र का निरन्तर जाप करना चाहिए।

नमस्कार महामन्त्र का, करो निरन्तर जाप।
अमरकुवर ज्यो झट मिटे, भव-भव के सताप॥

पत्नी के ढोंग

एक ठाकुर था। वह अपने मित्रो के सामने प्रति-दिन अपनी स्त्री की प्रशसा किया करता था कि मेरी पत्नी जैसी पति-भक्ता और कही नही मिलेगी। एक दिन एक मित्र से नही रहा गया और वह बोला—"ठाकुर साहव! आप स्त्रियों के चरित्र से अनभिज्ञ है। एक दिन परीक्षा कीजिए कि वह आप से कैसा प्रेम करती है।" ठाकुर—"मित्र! क्या परीक्षा करू? मेरे विना मेरी स्त्री जीवित ही नही रह सकती। जैसे विना पानी मछली तडफती है, वैसे ही वह मेरे विना तडपती रहती है।" मित्र—"ठाकुर साहव! आप अज्ञान अवस्था मे हैं कल ऐसा करे कि स्त्री को कहकर पाच-सात दिन के लिए दूसरे गाव चले जाये थोडी दूर जाकर वापस घर मे आकर छिप जाये। और स्त्री के प्रेम की परीक्षा करे।"

मित्र ने जैसा कहा था ठाकुर ने वैसा ही किया दिन व्यतीत हो गया। चारो ओर अधरा छा गया। ठकुरानी ने दासी से कहा—"ठाकुर गया गाव, म्हानै न भावै धान। अभी रात का समय है, खेत मे से पाच-सात गन्ने ले आ।" दासी गई। गन्ने तोडकर लाई। ठकुरानी चूसने लगी।

ठाकुर छिपा हुआ यह सव हाल देख रहा था और सोचने लगा मेरे विना इसको धान भी नही भाता है। मेरे से कितना घनिष्ट सम्वन्ध है।

कुछ समय वाद ठकुरानी ने कहा—"गन्ना चूसने से भूख लग गई है। अभी रात वहुत है। थोडे नर्म-नर्म वाफले वाटी तो वना ले। घी भी अच्छा लगाना।" दासी ने वाफले वनाये और खूव घी लगाया। ठकुरानी ने खूव वाफले खाये। कुछ समय पश्चात् वह फिर वोली—"दासी! वाफले तो मुझे अच्छे नही लगे। कुछ खिचडी वना ले।"

दासी ने खिचडी वनाई, ठकुरानी ने खाई और वोली—"दासी! तीन प्रहर रात्रि तो वीत गई है, अभी एक प्रहर अवशिष्ट है। कुछ धानी सेक ले। उसे चवाते-चवाते रात्रि विताए।" दासी ने वैसा ही किया।

ठाकुर ने यह सब हाल देख ही लिया था और वह अचानक प्रकट हुआ। ठकुरानी खड़ी हुई और विनयभाव से बोली—"प्राणाधार! मेरी तक़दीर अच्छी है, जो आप जल्दी पधार गये।"

ठाकुर—"प्रिये! तेरी तकदीर अच्छी थी। घोड़े के सामने एक भयंकर सांप आ गया था। उससे मैं किसी तरह बच गया।"

ठकुरानी—"प्राणेश! वह सांप कितना बड़ा था?"

ठाकुर—"वह गन्ने जितना बड़ा था।"

ठकुरानी—"उसने फन तो नहीं फैलाया था?"

ठाकुर—"फन की क्या बात पूछती है, उसका फन बाफले जैसा बड़ा था।"

ठकुरानी—"क्या वह बैठा था अथवा दौड़ता था?"

ठाकुर—"जैसे खिचड़ी में घी दौड़ता है। वैसे वह दौड़ता था।"

ठकुरानी—"क्या वह फुफकार भी करता था?"

ठाकुर—"हां, जैसे कड़ेले में सेकने के समय धानी फूटती है, वैसे ही जोर से वह फुफकार मार रहा था।"

आखिर ठाकुर साहब क्रोधाकुल होकर बोले—"प्रिये! देख लिए मैंने तेरे ढोंग—कहां है सच्चा प्रेम? तू केवल बातें बनाने में होशियार है। तथ्य कुछ भी नहीं है।" यह सुन ठकुरानी का सिर झुक गया। जबान बन्द हो गई।

दुनिया में सच्ची पतिव्रता स्त्री कोई-कोई है। झूठा प्रेम दिखाने वाली बहुत हैं। अतः हर एक को सोचना चाहिए कि कोई किसी का नहीं है यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा।

सभी किसी का है नहीं, कोई भी परिवार।
ठाकुर ने जाना सही, मतलब का सब प्यार॥

वह क्या करता होगा?

सर्दी का समय था। सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलना महलों में शयन कर रहे थे। चेलना का हाथ आवरण से बाहर रह गया, जिससे हाथ अकड़ गया। वह अचानक जगी और अपने हाथ को सम्भाला। सहसा उसके मुंह से निकला—"ओह वह क्या करता होगा?" ये शब्द सम्राट् श्रेणिक के हृदय में तीर की भांति चुभ गये। मन में उथल-पुथल मच गई। वह कल्पना के गगन अन्तरिक्ष में विहरण करने लगा।

सवेरा होते ही सम्राट् ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—"वत्स! रानी

के महलो को जला डालो। मैं भगवान् की वन्दना करके वापिस आता हू।" सम्राट् इतना क्रोधाकुल था कि अभयकुमार कुछ भी बोल नही सका और उसे स्वीकार करना ही पडा।

सम्राट् भगवान् के समवसरण मे पहुचा। वन्दना की। भगवान् ने चेलना के शील की प्रशसा की। श्रेणिक ने सुना तो अवाक् रह गया। अधीर हो उठा—भगवान् की वाणी तीनो कालो मे भी असत्य नही हो सकती। आकृति पर अवसाद की रेखा अकित हो गई। वह तुरन्त वहा से चला। मार्ग मे अभयकुमार मिला। श्रेणिक ने पूछा—"क्या महल जला दिये ?"

अभयकुमार ने कहा—"राजन् ! जो आदेश मिला था, वह काम पूरा हो गया है। देखिये महलो से धुआ निकल रहा है।" सहसा श्रेणिक के मुह से निकला—"जा रे।"

अभयकुमार—"अच्छा पिताजी ! मैं जाता हू।"

श्रेणिक—"पुत्र ! कहा जाता है ?"

अभयकुमार—"भगवान् के चरणो मे दीक्षा लेने के लिए। आपने ही फरमाया था कि जिस दिन 'जा' शब्द निकल जाये उस दिन दीक्षा ले लेना।"

श्रेणिक—"पुत्र ! अन्याय हो गया। भगवान् ने फरमाया है कि चेलना शीलवती है। क्या उसने कुछ कहा था ?"

अभयकुमार—"माताजी ने कहा कि कल मैं और सम्राट भगवान् को वन्दना कर शाम को वापस लौट रहे थे। मार्ग मे एक साधु कायोत्सर्ग की मुद्रा मे खडा था। शीत से रक्षा के लिए उस साधु के पास कोई वस्त्र नही था। घोर परीषह को समभाव से सहन कर रहा था। मैंने उसे देखा। आज रात्रि मे मेरा हाथ ठिठुरने पर मुझे उस मुनि की स्मृति हो आई और मेरे मुह से सहसा निकल पडा—"वह क्या करता होगा ?"

श्रेणिक—पुत्र ! "क्या उसने ऐसा कहा था ? हाय ! अर्थ का अनर्थ हो गया। मैंने सदेह भरी दृष्टि से उसे देखा, पर वह तो सती है।"

अभयकुमार - "पिताजी ! दु ख मत कीजिए। माताजी आनन्द मे है।"

श्रेणिक—"पुत्र ! तेरे जैसा बुद्धिमान् दुनिया मे कोई नही है।"

किसी को भी सदेहभरी दृष्टि से नही देखना चाहिए और हर शब्द की वास्तविकता पर पहुचने का प्रयास करना चाहिए।

केवल झूठे वहम से, होते बड़े अनर्थ।
श्रेणिक पछताता रहा, मिला नही कुछ अर्थ॥

ठाकुर ने यह मव हाल देख ही लिया था और वह अचानक प्रकट हुआ। ठकुरानी खडी हुई और विनयभाव से वोली—"प्राणाधार! मेरी तकदीर अच्छी है, जो आप जल्दी पधार गये।"

ठाकुर—"प्रिये! तेरी तकदीर अच्छी थी। घोडे के सामने एक भयकर साप आ गया था। उससे मैं किसी तरह वच गया।"

ठकुरानी—"प्राणेश! वह साप कितना वडा था?"

ठाकुर—"वह गन्ने जितना वडा था।"

ठकुरानी—"उसने फन तो नही फैलाया था?"

ठाकुर—"फन की क्या वात पूछती है, उसका फन वाफले जैसा वडा था।"

ठकुरानी—"क्या वह वैठा था अथवा दौडता था?"

ठाकुर—"जैसे खिचडी मे घी दौडता है। वैसे वह दौड़ता था।"

ठकुरानी—"क्या वह फुफकार भी करता था?"

ठाकुर—"हा, जैसे कडेले मे सेकने के समय धानी फूटती है, वैसे ही जोर से वह फुफकार मार रहा था।"

आखिर ठाकुर साहव क्रोधाकुल होकर वोले—"प्रिये! देख लिए मैंने तेरे ढोंग—कहा है सच्चा प्रेम? तू केवल बातें वनाने मे होशियार है। तथ्य कुछ भी नही है।" यह सुन ठकुरानी का सिर झुक गया। जवान वन्द हो गई।

दुनिया मे सच्ची पतिभक्ता स्त्री कोई-कोई है। झूठा प्रेम दिखाने वाली वहुत हैं। अतः हर एक को सोचना चाहिए कि कोई किसी का नही है यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा।

कभी किसी का है नही, कोई भी परिवार।
ठाकुर ने जाना सही, मतलव का सव प्यार॥

वह क्या करता होगा?

सर्दी का समय था। सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलना महलो मे शयन कर रहे थे। चेलना का हाथ आवरण से वाहर रह गया, जिससे हाथ अकड गया। वह अचानक जगी और अपने हाथ को सभाला। सहसा उसके मुह से निकला—"ओह वह क्या करता होगा?" ये शब्द सम्राट् श्रेणिक के हृदय मे तीर की भाति चुभ गये। मन मे उथल-पुथल मच गई। वह कल्पना के रिक्त अन्तरिक्ष मे विहरण करने लगा।

सूर्योदय होते ही सम्राट् ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—"वत्स! रानी

के महलो को जला डालो। मैं भगवान् की वन्दना करके वापिस आता हू।" सम्राट् इतना क्रोधाकुल था कि अभयकुमार कुछ भी बोल नही सका और उसे स्वीकार करना ही पडा।

सम्राट् भगवान् के समवसरण मे पहुचा। वन्दना की। भगवान् ने चेलना के शील की प्रशसा की। श्रेणिक ने सुना तो अवाक् रह गया। अधीर हो उठा— भगवान् की वाणी तीनो कालो मे भी असत्य नही हो सकती। आकृति पर अवसाद की रेखा अकित हो गई। वह तुरन्त वहा से चला। मार्ग मे अभयकुमार मिला। श्रेणिक ने पूछा—"क्या महल जला दिये ?"

अभयकुमार ने कहा—"राजन्! जो आदेश मिला था, वह काम पूरा हो गया है। देखिये महलो से धुआ निकल रहा है।" सहसा श्रेणिक के मुह से निकला— "जा रे।"

अभयकुमार—"अच्छा पिताजी! मैं जाता हू।"

श्रेणिक—"पुत्र! कहा जाता है ?"

अभयकुमार—"भगवान् के चरणो मे दीक्षा लेने के लिए। आपने ही फरमाया था कि जिस दिन 'जा' शब्द निकल जाये उस दिन दीक्षा ले लेना।"

श्रेणिक—"पुत्र! अन्याय हो गया। भगवान् ने फरमाया है कि चेलना शीलवती है। क्या उसने कुछ कहा था ?"

अभयकुमार—"माताजी ने कहा कि कल मैं और सम्राट भगवान् को वन्दना कर शाम को वापस लौट रहे थे। मार्ग मे एक साधु कायोत्सर्ग की मुद्रा मे खडा था। शीत से रक्षा के लिए उस साधु के पास कोई वस्त्र नही था। घोर परीषह को समभाव से सहन कर रहा था। मैंने उसे देखा। आज रात्रि मे मेरा हाथ ठिठुरने पर मुझे उस मुनि की स्मृति हो आई और मेरे मुह से सहसा निकल पडा— "वह क्या करता होगा ?"

श्रेणिक—पुत्र! "क्या उसने ऐसा कहा था ? हाय! अर्थ का अनर्थ हो गया। मैंने सदेह भरी दृष्टि से उसे देखा, पर वह तो सती है।"

अभयकुमार –'पिताजी! दु ख मत कीजिए। माताजी आनन्द मे है।"

श्रेणिक—"पुत्र! तेरे जैसा बुद्धिमान् दुनिया मे कोई नही है।"

किसी को भी सदेहभरी दृष्टि से नही देखना चाहिए और हर शब्द की वास्तविकता पर पहुचने का प्रयास करना चाहिए।

केवल झूठे वहम से, होते बड़े अनर्थ।
श्रेणिक पछताता रहा मिला नहीं जब अर्थ॥

त्रियाचरित्र

लाला वलिराम का लडका जिनेश माता-पिता का वडा विनीत पुत्र था। पिता ने अच्छा खानदान व सुशील लडकी देखकर जिनेश का विवाह कर दिया। जिनेश की वहू (स्वर्णा) कुछ दिन तो ससुराल मे अच्छी तरह रही, किन्तु उसका स्वभाव अच्छा नही होने से वह हर एक के साथ झगडा कर लेती थी और प्रतिदिन यही रट लगाती थी कि कव मेरी सास और ये दो ननदे मरे और कव मैं सुख से रोटी खाऊ। घर के सामने एक 'सोवन्नफुल्ली' नाम का वृक्ष था। अपने कार्य की सिद्धि के लिए वह प्रतिदिन उसकी पूजा करती और धीरे-धीरे वोलती—

"हू तने पूजू सोवन्नफुल्ली, मरज्यो सासु दोय ननदुली।"

जिनेश को इस प्रपच का पता लग गया। वह उससे अधिक चतुर था। वह भी प्रतिदिन घर के पीछे जो 'ऊटकटाला' नाम का वृक्ष था उसकी पूजा करने लगा और जोर-जोर से वोलने लगा—

"हू तने पूजू ऊटकटाला, मरज्यो सासू वलि दोय साला।"

स्वर्णा को जिनेश के जाल का पता लगते ही उसने सोचा—अव तो कोई और ही जाल रचना पडेगा क्योंकि ये मुझसे वहुत होशियार है। एक दिन जिनेश तो दूकान गया हुआ था, पीछे से उसने एक भयकर ढोग रचा। वह सभी कमरे मे रोती, कभी उछलती, और कभी शरीर को कपाती मानो शरीर मे कोई देवी प्रविष्ट हो गई हो। सास वेचारी भोली-भाली थी। वह घवराती हुई वोली—"देवी! जैसा तुम कहोगी वैसा ही करने को तैयार हू। किन्तु मेरी वहू को अच्छा कर दो।"

देवी उस वहू के मुह से वोली—"देखो, अगर वहू को जीवित रखना है तो मैं जैसा कहती हू वैसा करना। सवसे पहले तुम सिर को मुडाओ, मुख को काला और पैरो को नीला करो। तुम स्वय गधी वन कर इस वहू को अपने ऊपर बैठाओ। वस, ऐसे करने से तुम्हारी वहू जीवित रह जायेगी अन्यथा इसे मैं मार दूगी।" सास वेचारी सरल थी। उसने सव स्वीकार कर लिया। इतने मे जिनेश आ गया। माता ने सारी हकीकत सुनाई। जिनेश वोला—"मा! तुम वाहर बैठो, अभी इसका इलाज करता हू।" उसी समय जिनेश अपने ससुराल पहुचा। सास को सारी वात से अवगत कर वह वोला—"यदि आप अपनी पुत्री को जीवित देखना चाहती हो तो जल्दी चलो।" सास शीघ्र उठी। सिर को मुडाकर, मुह को काला करके कमरे मे जा वह गधी वन गई। देवी (वहू) तुरन्त उठी और उस पर बैठ गई। लातो से मारती हुई वोली—

"देख वन्दी का चाला, सिर मुडाया मुह काला।"

"हे सास! मेरी चालाकी देख। मैंने तेरा मुह काला करवाया। तुझे गधी

बनाकर मै ऊपर बैठ गई हू। अब मुझे सुख की नीद आयेगी।"

जिनेश वहा खडा-खडा सब सुन ही रहा था। उससे रहा नही गया, वह जोरो से बोला—"देख बन्दे की फेरी, आ अम्मा मेरी कि तेरी।"

यह सुनते ही जिनेश की बहू चौकी, शीघ्र नीचे उतर कर बोली—"क्या मा तू है? मैंने तो समझा था कि मेरी सास है। तू यहा कैसे आ गई?" मा ने सब कह दी। और आखिर सारा भेद खुल गया। स्वर्णा ने सोचा—मेरे पति मुझसे अधिक चालाक हैं। अब यदि तीन-पाच करुगी तो मुझे बेमौत मरना पडेगा। मेरी दाल इनके आगे नही गलेगी। क्रमश उसने अपनी प्रकृति सुधार ली और घर मे वह विनय-भक्ति से रहने लगी।

जो मनुष्य मतिमान है, वे स्त्रियो के चक्रजाल मे कभी नही फसते, प्रत्युत उनको नियन्त्रण मे रखते है। हर कार्य मे अपने ही चिंतन को प्रधानता देते हैं। स्त्रियो के चरित्र का पार नही है अत चिंतनशील व्यक्तियो को त्रियाचरित्र मे दूर ही रहना चाहिए।

नही स्त्रियो के चक्र मे, फसते है मतिमान्।
बुद्धिमान् जिस बुद्धि से, करते काम महान्॥

अति लोभ से अनिष्ट

एक दर्जी धन कमाने के लिए परदेश जा रहा था। रास्ते मे कोई देवी का मदिर आ गया। दर्जी ने देवी की भक्तिभाव से पूजा की और बोला—"हे देवि! यदि परदेश मे मेरा व्यापार अच्छा चलेगा, और अच्छी कमाई होगी तो वापस आते समय तेरे चरणो मे एक नारियल अवश्य चढाऊगा।"

बस, वह कलकत्ता जैसे शहर मे जा पहुचा। उसने अच्छा मुहूर्त देखकर कपडे का व्यापार शुरू कर दिया। उस दर्जी की किस्मत अच्छी होने के कारण व्यापार काफी जोर से चला। कुछ ही समय मे अच्छी पूजी कमाकर वह अपने देश के लिए रवाना हो गया। रास्ते मे वही देवी का मदिर आया। अचानक उसको याद आते ही समीपस्थ गाव मे नारियल खरीदने के लिए गया। दुकानदार ने कहा—"एक नारियल के दो आने लगेंगे।" उसने कहा—"छेढ आना ले लो।" सौदा नही पटने के कारण दूसरी-तीसरी दुकान पर गया। एक नारियल डेढ आने का बताया गया। उसने कहा—"एक आना दूगा।" फिर आगे चला। कई दुकानदार दो पैसे मे नारियल देने लगे, फिर भी उसने नही लिया क्योंकि अति लोभी होने के कारण वह एक ही पैसे मे लेना चाहता था। व्यापारियो ने कहा—"जगल निकट ही है। नारियल के काफी वृक्ष हैं, वहा मुफ्त मे ही मिल

जायेगा ।"

वह दर्जी जगल मे गया और अच्छा सा वृक्ष देखकर नारियल तोडने के लिए ऊपर चढा । ज्योही हाथो से डाली को पकडा त्योही पैर फिसल गये और वह एक डाली मे जा फसा, जिसे पकडकर वह लटक गया । पास ही मे एक कुआ था। वह विचार कर रहा है—हाय ! दो पैसे के लोभ मे फसकर मैंने वहुत ही वडी गलती की । अव इस दु ख से छुटकारा कैसे होगा । इतने मे एक ऊंट वाला आया और उसने कहा—"यदि तू मुझें नीचे उतार देगा तो मै तुझे सौ रुपया इनाम दूगा ।" रुपयो का नाम सुनते ही जव ऊट पर खडे होकर उसने उसके पैर पकडे तो इतने मे वह ऊट खिसक कर आगे वढ गया । ऊटवाला भी लटक गया और उसने कहा—"भाई ! तू छोड मत देना नही तो हम दोनो ही मरेंगे ।"

इतने मे एक घोडी वाला आ पहुचा । दोनो ने आवाज दी—"भाई ! हम तेरा उपकार नही भूलेगे । यदि तुम हमे इस सकट से वचा दोगे, तो हम तुझे एक-एक हजार रुपये इनाम मे देंगे ।"

वह भी घोडी पर चढा, उसकी टाग पकडी ही थी कि घोडी चमककर दूर चली गई और वह भी लटक गया । दोनो ने उस दर्जी से कहा—"भाई ! हाथ छोड मत देना, अव तो तेरे ही चरणो मे जीवन है । हम दोनो तुमको एक-एक हजार मुहरें देंगे ।" मोहरो की वात सुनते ही उस दर्जी ने सोचा अव तो महल वनाऊगा । वह इस खुशी मे तो फूल गया और अपने भान को भी भूल गया । अचानक हाथ छूटे और तीनो ही कुए मे जा गिरे ।

"अति लोभो न कर्तव्य " अति लोभ किसी को भी नही करना चाहिए । जो मनुष्य लालच के पजे मे फस जाते है उनको तीनो महाशयों की भाति दु ख-महासागरो मे गोते खाने पडते हैं ।

लोभी मानव हर कदम, पाते दु ख महान् ।
लोभ न करना चाहिए, कहते सत महान् ॥

पहल मै अव तुम

सेठ की कन्या कौशल्या एक योगी के पास अध्ययन किया करती थी, कौशल्या का रूप-लावण्य देखकर योगी का मन विचलित हो गया, इन्द्रिया विशृखलित हो गईं । योगी से रहा नही गया । वाणी का सयम टूटा । मधुर भाषा मे कहा, कौशल्या ! तेरी मोहक आकृति से मेरा मन मुग्ध हो रहा है, अत तेरा स्पर्श करना चाहता हू ।"

कन्या घवराई, मन ही मन चिन्तन चला—अरे यह क्या ? योगी, गुरु होकर

ऐसी बुरा भावना रखते है, हाय ! कन्या ने अपनी ओज भरी वाणी मे कहा—"योगीराज ! आप अपने कर्तव्य को सभाले। मन को अडिग रखें। विचलित होना अच्छा नही है। माता-पिता को पता लगेगा, तो उन पर क्या प्रभाव पडेगा ?"

योगी ने कहा—"कौशल्या ! मेरे तप का प्रभाव ऐसा है कि मैं तुम्हारे माता-पिता को जड बना दूगा, तब फिर किसका डर है ?"

कन्या बोली—"अभी दिन है, लोक-लज्जा भी परम अपक्षित है।"

योगी—"योगबल से दिन को भी रात बना दूगा। मेरे पास अनेको लब्धिया हैं। मैं जल को स्थल, पशु को मानव बना सकता हू। भयभीत होने की जरूरत नही है।"

कन्या—"योगीराज ! आप बडे दक्ष हैं। हर कला मे कुशल हैं आपकी तपस्या का अद्वितीय तेज है। सब कुछ होते हुए भी आपको वासना ने पराभूत कर रखा है। विषयासक्त होकर आप सन्मार्ग का परित्याग कर रहे हैं। आत्मनिरीक्षण कीजिए। क्या इसी मे आपका महत्त्व है ? साधना को क्यो भूल रहे हैं ?"

कन्या की वाणी सुनते ही योगी की विचारधारा बदल गई। योगी को नया आलोक मिला। कन्या के चरणो मे सिर झुक गया। अपने आपको धिक्कारता हुआ बोला—"कन्या ! धन्य है तुम्हारे जीवन को, धन्य है तुम्हारी विचारधारा को ! पूर्व मे मैं तुम्हारा गुरु था, किन्तु अब से मैं तुम्हे गुरु के रूप मे मानूगा क्योकि तुम मुझे गिरते हुए को उठाने वाली हो। तुम्हारा पावन चिन्तन ही मेरे लिए सम्बल बना। मैं तुम्हारे उपकार से कभी भी उपकृत होने वाला नही हू। कोटि-कोटि अभिनन्दन।"

प्रत्येक मनुष्य को अपना मन पवित्र रखना चाहिए। मानसिक पवित्रता ही मानव की अमूल्य सपदा है इसके अभाव मे मानव दरिद्री कहलाता है।

पावन चिन्तन मनुज का, है सच्चा पाथेय।
बुरे भाव को सज्जनो, समझो पल-पल हेय॥

अंगुलीमाल

श्रावस्ती के जगल मे एक लुटेरा रहता था। मनुष्य मारना व तृण तोडना उसकी दृष्टि मे एक था। वह मनुष्यो को लूटमार कर उनकी अगुलिया काट लेता और उनकी माला बना, पहन लेता था। इस कारण वह सारे शहर मे 'अगुलीमाल' नाम से प्रसिद्ध हो गया ! श्रावस्ती की सारी जनता उससे बहुत भयभीत रहती थी। वहा का राजा भी उसे वश मे नही कर सका। भगवान् बुद्ध ने जब यह सुना तो वे उस भयकर जगल मे जाने को तैयार हुए जहा वह लुटेरा रहता था। यद्यपि

'परोपकाराय सता विभूतय ' महापुरुषो का जीवन परोपकार के लिए ही होना है। वे दूसरो की दुर्गति नही देख सकते, दूसरो की भलाई के लिए वे हमेशा विहरण करते रहते है। उन्हे उस भीषण अटवी मे जाते देख, ग्वाले कहने लगे —"महाराज ! आप किधर जा रहे है ? इस गहन वन मे तो एक भयकर लुटेरा रहता है जो सबको लूटकर मार डालता है। अत यदि आपको जीवन प्रिय है तो यहा से वापस लौट जाइये।" भगवान् बुद्ध उन भोले-भाले ग्वालो की वात सुन चकित होने लगे और मन ही मन चिन्तन करने लगे—मनुष्य प्रकृति के कितने भद्र होते हैं। वे हृदयस्थ भयकर लुटेरो से तो डरते नही बल्कि बाहरी लुटेरो से भय खाते हैं। ग्वालो की बात सुनी-अनसुनी कर वे आगे चले। अगुलीमाल ने जब दूर से ही भगवान् बुद्ध को आते देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह सोचने लगा—इस जगल मे अकेला साधु कैसे आ रहा है ? मेरा इतना प्रभाव है कि इस जगल मे अकेला कोई आ ही नही सकता, पर यह कौन ? क्या इसे अपना जीवन प्यारा नही है ? वह बुद्ध के सामने आया और स्थिर खडा होकर जोर से बोला—"ठहर जाओ, आगे मत बढो, वही खडे रहो।" बुद्ध ने चलते-चलते कहा—"भाई ! मैं तो खडा हू किन्तु तुम भी खडे रहो।" अगुलीमाल ने सोचा—यह कैसा साधु है, जो मेरे स्थिर खडे रहने पर भी खडे रहने को कहता है और स्वय चलते हुए भी कहता है कि मैं तो खडा हू। भगवान् बुद्ध का यह निराला उत्तर सुनकर वह भ्रम मे पड गया और बुद्ध से कहा—"ऐसे तुम कैसे कह रहे हो ? देखते नही, मैं तो खडा ही हू।" तब भगवान् बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा—"भाई ! मैं तो प्रेम और मैत्री मे स्थिर हू लेकिन तुम अभी स्थिर नही हो अत स्थिर हो जाओ।" भगवान् बुद्ध के उपदेश का यह परिणाम निकला कि वह बुद्ध का शिष्य बन गया और उन्ही के साथ विहरण करता हुआ श्रावस्ती के उद्यान मे आया।

नगर का सम्राट प्रसेनजित सेना लेकर जगल मे रहने वाले अगुलीमाल को पकडने के लिए अदम्य साहस लिए चला। ज्योही मार्गस्थ उस बगीचे मे पहुचा तो वह भगवान् बुद्ध के चरणो मे नतमस्तक हो वन्दन करने लगा। भगवान ने जब उसकी सशस्त्र सेना देखी तो कहा—"राजन् ! आज सेना लेकर कहा जा रहे हो ? किस पर चढाई कर रहे हो ?" राजा ने उत्तर दिया—"महाराज ! आपको पता ही है कि इस जगल मे एक लुटेरा रहता है, आने-जाने वालो को वह लूटता है दुख देता है। अत मैं उसे पकडने जा रहा हू। भगवान् बुद्ध ने कहा—"राजन् ! जिसे तुम पकडने जा रहे हो वह यदि साधु बन जाये तो तुम क्या करोगे ?" राजा ने हाथ जोडकर कहा—"भगवन् ! मैं उसे नमस्कार करूगा, उसका सत्कार करूगा अपना सिर उसके चरणो मे झुका दूगा।" तब भगवान् ने निकट ही बैठे हुए अगुलीमाल को बताते हुए कहा—"राजन् ! तनिक क्रोध दूर करो, शान्ति से

देखो, यह वही लुटेरा है, जिसे तुम सेना लेकर पकडने जा रहे हो"। यह सब सुनते ही राजा चौंका और तत्क्षण नतमस्तक हो अगुलीमाल को पुन पुन वन्दना करने लगा। राजा प्रसेनजित भगवान् से प्रार्थना करने लगा—"अहो महाभाग ! धन्य है आपका त्याग, धन्य है आपका आत्मबल और धन्य है आपका जीवन ! जो कार्य आपने किया है वह हम सशस्त्र सैन्यशक्ति से भी नही कर सकते। आपके इस अपरिमित उपकार से हम कभी भी उऋण नही हो सकते। सारे शहर को आपने अभय बना दिया। जीवनदान दे दिया प्रभो ! जो प्रभाव सत्सगति मे है वह न तो सेना मे है और न अस्त्र-आयुधो मे और न हम मे।"

कवि ने ठीक ही लिखा है—"सत्सगति कथय किं न करोति पुसाम्।" महापुरुषो की सगति से चोर भी साहूकार बन जाते हैं, पापी भी धर्मिष्ठ बन जाते है अत हर एक को कुसग से दूर रहना चाहिए और सत्सग मे अपना सारा जीवन खपा देना चाहिए।

लोहा पारस योग से, बने स्वर्ण तत्काल।
सुधर गया सत्सग से, चोर अगुलीमाल ॥

किस्मत से सब अच्छा

एक टिडा नाम का पण्डित था। अधिक अध्ययन नही होने के कारण उसे कोई भी नही पूछता था। उसने लोकप्रिय बनने की सोची। एक दिन वह जगल जाकर आ रहा था। मार्ग मे कुम्हार का गधा खडा था। उसने उसके पैर बाधकर गाव से दूर छोड दिया। वापस आते समय कुम्हार मिल गया। कुम्हार ने पूछा—"पण्डित जी महाराज ! आप ज्योतिष विद्या के जानकार हैं, मेरा गधा गुम हो गया है उसकी तलाश करते-करते मैं थक गया, किन्तु गधा नही मिला। आप बताइये गधा कहा मिलेगा ?" पण्डित ने काफी गणित कर सोच-विचार कहा—'भाई ! तेरा गधा अमुक स्थान पर मिल जायेगा।" कुम्हार गया, उसे गधा मिल गया। उसने खुश होकर पण्डित जी को चार रोटियो का आटा दिया। पण्डित वहा से आगे चला।

आगे जाते-जाते एक कुम्हारी मिल गई। पण्डित को भूख लगी हुई थी, उस कुम्हारी से वह बोला—'बेटी ! यह लो आटा और रोटिया पका दो।" पण्डित बाहर बैठ गया और रोटियो के टवके गिनने लगा। कुम्हारी ने परीक्षा के लिए तीन रोटिया लाकर पण्डित को दे दी। पण्डित ने कहा—'बेटी ! मेरी ज्योतिष के हिसाब से रोटिया चार होनी चाहिए। एक रोटी और कहा है ? उसने चुपचाप

रोटी पण्डित को दे दी और वोली—"मैंने आपकी ज्योतिप विद्या की परीक्षा के लिए ऐमा किया था। किन्तु आप तो वडे विद्वान हैं। विद्या के बल मे हर वात वता देते है।"

अव उस पण्डित की महिमा वायु की भाति सारे शहर मे फैल गई। राजा के कानो मे भी यह वात पहुंची कि अमुक पण्डित वहुत विद्वान है। भूत-भविष्य की वात भी वताने मे वडा दक्ष है। एक दिन महारानी का हार गुम हो गया, सव जगह उसकी खोज करली, सवको पूछ लिया, किन्तु हार नही मिला आखिर राजा ने उसी पडित को बुलाकर कहा—"आप ज्योतिपी हैं। हर एक की सही-सही वात वता देते हैं। किन्तु अव वताइये महारानी का हार किसने लिया ? रात भर का समय है, यह आपकी कसौटी है।" पण्डित वेचारा दुविधा मे पड गया। वडी समस्या खडी हो गई। उसने सोचा—वस, आज सारी पोल खुलेगी। चिन्ता-चिन्ता मे सारा दिन पूरा हो गया। रात्रि मे सव सो गये। किन्तु चिताग्रस्त उस पण्डित को नीद नही आने से वह जोर-जोर से निद्रा को निमन्त्रण देने लगा—"निद्रा आजा, निद्रा आजा।" नृप की एक दासी का नाम निद्रा था। उसने सोचा—पण्डित जी को मेरा पता लग गया। वह शीघ्र आई और वोली—"यह लीजिए हार। आप किसी को मेरा नाम मत वताना।"

पण्डित का काम वन गया, सुवह होते ही उसने नृप के आगे हार रख दिया। नृप के आश्चर्य का पार नही रहा। राजा ने साक्षात् उसकी परीक्षा लेने की इच्छा से कहा—"पण्डित जी! वताओ मेरी मुठ्ठी मे क्या है ?"

पण्डित ने सोचा—वस, अव तो विना मौत मरना पडेगा। इतने दिन तो तुक्के मिलते गये। वेचारा मन ही मन गाने लगा—

"अकुरडया चरता गधा वताया, ठवके रोटी पाई।
निद्रा पुकारत हार मगाए, टिडा मुठ्ठी मे मौत आई॥"

राजा और सव वातो से तो अनभिज्ञ था, अत. उसे कुछ भी नही लगा, किंतु टिडा का नाम सुनते ही मुठ्ठी खोल दी। मुठ्ठी मे टिडा (पतगा) ही था। नृपति उसकी बुद्धि पर दग रह गया। पुन. उसकी मुक्तकठ से प्रशसा करने लगा और हजारो का दान दे, उसे सम्मानित कर विदा किया।

इन्सान की किस्मत जव अच्छी होती है तव सव योग स्वत. ही मिल जाते हैं।

भाग्य-योग से मूढ भी, वन जाता धनवान।
अनपढ पण्डित का किया, नरपति ने सम्मान॥

कर सो भरे

ऊट और सियार मे परस्पर अच्छा प्रेम था। जगल मे प्राय साथ ही घूमते थे। एक दिन सियार ने ऊटसे कहा—"मित्र ऊट ! यदि तेरी इच्छा हो तो नदी के उस पार चले।"

ऊट—"क्यो भाई ! वहा क्या विशेषता है ?"

सियार—"वहा अपने को खाने के लिए काफी सामग्री मिल जायेगी, किन्तु नदी मे पानी का बाहुल्य होने के कारण मैं तेरे सहयोग के विना अकेला नही जा सकता। चलो हरे-भरे खेतो मे फल भी खा लेंगे और साथ-साथ सैर भी हो जायेगी।

सियार ऊट की पीठ पर बैठ गया। दोनो रवाना हुए और उन खेतो मे जा पहुचे। खेत का मालिक सोया हुआ था। दोनो के मौज बन गई। खेत को तहस-नहस करते हुए फल-फूल खाने लगे। सियार का पेट छोटा होने से शीघ्र ही भर गया। सियार बोला—"मित्र ! मुझे तो बुल-बुली आती है।" ऊट ने कहा—"भाई ! अभी कुछ समय के लिए चुप रहना अन्यथा खेत का मालिक जग जायेगा, तो दोनो को मार खानी पडेगी।"

सियार से रहा नही गया। वह तो जोर-जोर से बोलने लगा। खेत के स्वामी की आखे खुली और हाथ मे लाठी लेकर दोनो को मारने के लिए दौडा। सियार तो चालाक था। वह शीघ्र वहा से भाग गया किन्तु ऊट को काफी मार खानी पडी। नदी के किनारे पर बैठा-बैठा सियार ऊट की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने मे ही ऊट आया। सियार ने पूछा—"क्या बात है दोस्त ?" ऊट बोला—'मित्र ! आज तो उल्टे लेने के देने पड गये। अब तो कभी भी इस खेत मे आना नहीं है। यदि तू तनिक समय के लिए मौन रख लेता तो मार क्यो खानी पडती ?"

सियार—"खैर, जो हुआ सो हुआ। अब यहा अधिक समय लगाना अच्छा नही है। शीघ्र चलो। कही वह खेत का मालिक पीछे से आ जायेगा, तो फिर फडाफड मार खानी पडेगी।"

दोनो ही चले। ज्योंही नदी के मध्य भाग मे पहुचे त्योंही ऊट बोला—' मित्र सियार ! मुझे तो लटलटी आती है।" सियार घबडाता हुआ बोला—'भाई ! अभी अगर तू लट-लटी लेगा तो, मुझे बेमौत मरना पडेगा। नदी मे पानी बहुत है मैं तो डूब जाऊगा। तू मेरा पुराना साथी है। मित्रता निभाना तेरा परम कर्तव्य है। अत अभी लटलटी मत लेना। नदी पार होने के बाद ले लेना।"

ऊट बोला—"दूसरो को उपदेश देना सरल है। मैंने कहा था—थोडी देर के लिए तू चुप रहना, तथापि तुझसे बुल-बुली लिये विना नही रहा गया तो मेरे से

भी नट-लटी बिना नही रहा जाता।" आखिर उसने वैसा ही किया।

ऊट अपने इच्छित स्थान पर पहुच गया, उसकी किंचित् भी हानि नही हुई, किन्तु सियार पानी मे डूबकर मर गया।

जो करता है वह भरता है, जो हसता है वह रोता है, स्वयं की गलती का नुकसान स्वय को ही उठाना पडता है। अत कोई भी काम करना पडे तो हर दृष्टि मे सोच-समझकर ही करना चाहिए।

करता जो भरता वही, निश्चित यह सिद्धान्त।
उपनय ऊट-सियार का, सुनो सभी हो शान्त॥

झूठा अहकार

एक श्रीधर नाम का महाजन था। उसके तीन पुत्र थे। घरेलू स्थिति कमजोर होने के कारण श्रीधर काफी चिंतित रहता था। तेल, गुड, शक्कर आदि बेचने के लिए हमेशा छोटे-छोटे गावो मे जाता था। काफी दौड-धूप करने पर जो मजदूरी होती थी, उससे घर का खर्च निकलता था। एक दिन उसको मार्ग मे एक महात्मा मिल गये। महात्मा बोले—"भाई! तुम तो सत्सग मे कभी भी नही आते हो। क्या बात है?"

श्रीधर—"महात्मा जी! सत्सग मे आने की इच्छा तो होती है किंतु समय बिल्कुल नही मिलता है। घर की सारी जिम्मेदारी मेरे कन्धो पर है। प्रतिदिन कमाई करके लाता हू तब घर का काम चलता है, मेरे बिना एक पलक भी घर का काम नही चल सकता है। यहा की कमाई से भी खर्च पूरा नही पडता, अत कल परदेश जाऊगा।"

महात्मा—"अच्छा परदेश जाते समय मुझसे मिलकर जाना।"

श्रीधर परदेश जाने के लिए घरवालो से विदाई लेकर मठ मे आया। महात्मा ने उसे एक मन्त्र बताकर कहा—"अच्छा! बारह वर्ष तक घर मत आना। तुम्हारा सब काम सिद्ध हो जायेगा। जिस दिन आओ उस दिन पहले मेरे से मिलना, फिर घर जाना।" वह परदेश के लिए रवाना हो गया।

पीछे से महात्मा ने उसके परिवार वालो के नाम एक झूठा पत्र लिखा। उसमे एक पक्ति यह लिख दी कि "श्रीधर परदेश जा रहा था, रास्ते मे उसको सिंह खा गया।" पत्र को बन्द कर नौकर के द्वारा उसके घर पहुचा दिया। घर वालो ने उसको दिवगत समझ कर सामाजिक सभी काम कर लिए। श्रीधर के पुत्र बडे हुए। पडोसी की दुकान मे नौकरी करने लगे। एक दिन महात्मा ने श्रीधर के घर वालो से पूछा—"जीवन आराम मे है?" वे बोले—"बाबाजी महाराज! आपकी कृपा

से हम वहुत सुखी है। पिताजी का देहावसान हुए कई वर्ष हो गये, फिर भी हम घर का खर्च अच्छी तरह चलाते हैं।"

इधर श्रीधर काफी कमाई करके वारह वर्षों वाद अपने नगर मे आया। सवसे पहले महात्मा जी के मठ मे पहुचा। महात्मा वोले—"अच्छा! अभी मुहूर्त अच्छा नही है रात को दस वजे घर जाना।" महात्मा जी ने घरवालो से कह दिया—"श्रीधर का जीव मरकर भूत वन गया है, आज वह रात को दस वजे घर आयेगा, सव सावधानी रखे।"

श्रीधर दस वजे घर पहुचा। घरवालो ने दरवाजे वन्द कर रखे थे। भूत आया जानकर उसको निकालने के लिए ऊपर से पत्थर फैंकने शुरू किये। "हमको जरूरत नही है तेरी, निकल जा यहा से।" उसने कहा—"मेरे विना घर का काम कैसे चलेगा?" सवने कहा—"हमारा काम अच्छी तरह चलता है। पहले से भी हम अधिक सुखी है।" अचानक वहा महात्मा आये और वोले—"श्रीधर! वोल, तेरे विना घर का काम चलता है या नही?"

श्रीधर महात्मा के चरणो मे पड गया और वोला—"भगवन्! मैं झूठा अहकार कर रहा था। आपकी वाणी सत्य है।" आखिर महात्मा ने सारा भेद खोल दिया और श्रीधर ने अपना जीवन सत्सग मे खपा दिया।

किसी को भी झूठा अहकार नही करना चाहिए कि मेरे विना घर का काम चल ही नही सकता। अनेको मनुष्य अचानक चले जाते हैं। क्या उनके विना घरेलू काम रुक जाते हैं? कदापि नही।

पल भर भी मेरे विना, चले न घर का काम।
श्रीधर सम अभिमान का, होता विलय तमाम॥

काला अक्षर भैंस वरावर

एक सेठ था। उसके घनश्याम नाम का एक पुत्र था। इकलौता पुत्र होने के कारण वह लाड-प्यार मे विगड गया। सेठ ने अच्छा घर और अच्छी लडकी देखकर पुत्र का विवाह कर दिया। एक दिन घनश्याम ससुराल भोजन करने के लिए गया। सास ने विविध पकवानो द्वारा दामाद की वडी खातिरदारी की। घनश्याम अपने घर जाने की तैयारी मे था। इतने मे सास को याद आ गया कि परदेश से पत्र आया हुआ है। मैं पढी-लिखी नही हू, मौका अच्छा मिल गया कुवर जी पधारे हुए है। सास ने कहा—"कुवर साहव! यह पत्र आपके श्वसुर जी का आया हुआ है, पढकर सुना दीजिए।"

घनश्याम पढा-लिखा नही था। वह चक्कर मे पड गया और मन ही मन सोचने लगा—पत्र कैसे पढू? मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। पिताजी ने मुझे पढाया नही। उसे अपनी निरक्षरता पर बहुत दु ख हुआ और आखो मे आसुओ की धारा बहने लगी। मुह से कुछ भी नही बोल सका। सेठ की स्त्री ने सोचा—पत्र पढकर ये रो रहे हैं हो न हो दाल मे कुछ काला है अवश्य ही मेरा सुहाग लुट गया है। यह सोचकर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका विलाप भरा रुदन सुनकर आसपास की स्त्रिया भी आ गई। सभी अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए स्वर से स्वर मिलाने लग गई। घर मे कुहराम मच गया। पडोस के कुछ पुरुष भी आ गये। उन्होंने पूछा—"क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि सेठ जी कुशल मे हैं और अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है?" पत्र उनको दिखाया गया। पत्र मे लिखा था—"हम मजे मे हैं और भगवान् की कृपा से अच्छी कमाई भी हो रही है।"

पत्र का सही अर्थ मालूम होते ही सब अवाक् रह गये। घर का सब वातावरण बदल गया। सबकी आकृति पर खुशी छा गई। और दामाद से पूछा गया कि आपने पत्र कैसे पढा? श्याम ने दु ख भरी भाषा मे कहा—"भाइयो अगर मैं पढा हुआ होता तो आखो से आसू क्यो निकलते? मैं तो अपने पिताजी को रो रहा हू कि उन्होंने मुझे पढाया क्यो नही।"

निरक्षर व्यक्ति को कदम-कदम पर दु ख उठाना पडता है। साक्षर व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है, अत हर व्यक्ति को ज्ञानार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बिना पढाई जड मनुज, करता रुदन अपार।
अर्थ सही नही पा सका, जिससे हाहाकार॥

क्षमा की पराकाष्ठा

कुरगडुक मुनि गुरु के बडे विनीत एव आज्ञाकारी शिष्य थे। कदम-कदम पर वे गुरु के इगित आकार को ध्यान मे रखते थे। चातुर्मासिक चतुर्दशी का शुभपर्व आने पर गुरु ने समस्त श्रावक समाज व साधु समाज को आह्वान करते हुए फरमाया—"आज का दिन चतुर्मास आरम्भ होने की दृष्टि से काफी महत्त्व रखता है। आज प्रत्येक भाई-बहन को तथा साधु साध्वी को उपवास करना चाहिए।" गुरुदेव के निर्देश पर अनेको भाई-बहनो तथा सभी साधु-साध्वियो ने उपवास रखे किन्तु कुरगडुक मुनि उपवास करने मे असमर्थ थे। इसलिए गुरु के पास आये और हाथ जोडकर विनम्र भाव से बोले—"पूज्यवर! मुझसा कायर व कमजोर इस साधु

समाज मे कोई नही होगा। उपवास करने की इच्छा होते हुए भी मैं भूख नही सह सकता, अत गोचरी की आज्ञा दे।"

यह सुनते ही गुरु के क्रोध का पार नही रहा। मुनि को कठोर शब्दो मे ललकारते हुए कहा—"अरे पेटू! एक दिन मे क्या होता है?" मुनि बोले—"गुरुदेव! आपकी शिक्षाए बडी अनमोल हैं, किन्तु मैं विवश हू।" आखिर गुरु की आज्ञा लेकर वे भिक्षा के लिए रवाना हो गये। किन्तु सर्वत्र उपवास होने के कारण भिक्षा दुष्प्राप्य हो गई। एक घर मे ठडी खिचडी का सयोग मिला। मुनिराज उसे लेकर आये और गुरु को दिखाया। देखते ही अति भर्त्सनापूर्वक उस खिचडी मे थूककर गुरु बोले—"आ गया धान का कीडा, हम सबने तो उपवास किया है, तू खाएगा।"

मुनि क्षमा के झूले मे झूलते हुए बोले—"गुरुवर! धन्य है आपके तप को। वह दिन मेरा भी धन्य होगा, जिस दिन मैं उपवास करूगा।" शान्त रस का आस्वाद लेते हुए मुनि नीचे के कमरे मे आये और मन ही मन विचार करने लगे—आज तो बहुत ही अच्छा हुआ। घी का योग नही मिला था, किन्तु गुरुदेव ने खिचडी मे घी डाल दिया। ऐसा शुभ अवसर तो किस्मत वालो को ही मिलता है। इस तरह समभाव से खिचडी खाते-खाते मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। कैवल्यउत्सव करने के लिए देवता आए और कुडगडुक मुनि की पुन-पुन. प्रशसा करने लगे।

मुनि शीघ्र ही गुरु के पास गये और बोले—"गुरुवर! आपकी शुभ कृपा से मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।" गुरु अपने आपको धिक्कारते हुए बोले—"शिष्य! मैंने तेरा इतना अपमान किया फिर भी तूने क्षमाधर्म का परित्याग नहीं किया। तुझे कोटि-कोटि धन्यवाद है।"

क्षमाशील मनुष्य ही अपने जीवन का उच्चतम विकास कर सकते हैं। अत जीवन के हर पहलू मे क्षमाधर्म को अपनाकर अपने साध्य को प्राप्त करना चाहिए।

सब धर्मो मे श्रेष्ठ है, क्षमाधर्म अनमोल।
क्षमाशील गुणवान का, बढे विश्व मे तोल॥

दृष्टि-संयम

एक पथिक कही जा रहा था। उसकी आखो ने दूर से वृक्ष से गिरते हुए आम को देखा। वह वहा गया। आम को खाने लगा। इतने मे ही वृक्ष का मालिक आ गया। उसने उस पथिक को दो थप्पड मारते हुए कहा—'बिना इजाजत आम कैसे खा रहा

है?" पथिक की आखो से पानी गिरने लग गया और जोर से बोला—"जो देखता है वह रोता है।" इसलिए कहा—

"आवो पडियो पेड स्यू, देख्यो दो जणा।
देख्या सो दौड्या नही, दौड्या दो जणा।
दौड्या सो पाया नही, पाया दो जणा।
पाया सो खाया नही, खाया घणा जणा।
खाया सो रस पाया नही, पाया एक जणा।
पाया सो पकडीज्या नही, पकडीज्या दो जणा।
पकडीज्या सो कुटीज्या नही, कुटीज्या दो जणा।
कुटीज्या सो रोया नही, रोया दो जणा।।"

पेड से गिरते हुए आम को दो आखो ने देखा किंतु देखने वाली नही दौडी, दो पैर दौडे। दौडने वालो ने नही उठाया किंतु दो हाथो ने उठाया। उठाने वालो ने नही खाया किंतु अनेको दातो ने खाया। खाने वालो को रस नही मिला किंतु जीभ को रस मिला। [अचानक मालिक आ जाता है] रस ग्रहण करने वाली जीभ को वह नही पकड सका। पथिक के दो कधे पकडे गये। पकडे गये को मार नही खानी पडी, दो गालो पर मार (थप्पड) पडी। मार खाने वालो को रोना नही पडा, आखिर शुरुआत करने वाली आखो को ही रोना पडा।

पथिक को प्रकाश हुआ, गति मिली और अन्तर्द्रष्टा बनने का अवसर प्राप्त हुआ कि वास्तव मे जो करता है, वह भरता है। जो देखता है, वह रोता है अत दृष्टि-संयम ही जीवन का अमूल्य तत्त्व है।

तरु की द्रष्टा आख थी, रोने वाली आख।
संयम सुखकर दृष्टि का, किसको भी मत झाक।।

आज नही कल

एक दिन एक ब्राह्मण काफी आशाए लेकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास आया और नम्र-भाव से हाथ जोडकर बोला—"देव! आप बडे दानवीर है। जन-जन के दुःख को दूर करने वाले हैं। मै आपका नाम सुनकर काफी दूर से आया हू। आप मेरी कामना को सफल करें। मै भूखा हू, कुछ न कुछ दान दीजिए।"

युधिष्ठिर ने कहा—"बन्धुवर! आज नही कल तुम्हे दान दूगा।" यह सुनते ही ब्राह्मण हताश हो गया। समस्त आशाओ पर पानी फिर गया। मुख पर दुःख की रेखा अंकित हो गई। चिन्तातुर और व्याकुलमना हो वह वापस जाने लगा।

भीम बाहर बैठे थे। उन्होंने पूछा—"क्यो भाई ब्राह्मण ! चेहरे पर खुशी नही है, उदासी क्यो ?" ब्राह्मण—"क्या कहू ? मेरी तकदीर ही ऐसी है। मैं तो लम्बी आशा लेकर आया था, किन्तु अब निराश होकर जाता हू।"

भीम—"क्या भाई साहब ने तुझे दान नही दिया ?"

ब्राह्मण—"एक कौडी भी नही दी।"

भीम—"तो फिर उन्होंने क्या कहा ?"

ब्राह्मण—"उन्होंने तो सिर्फ इतना ही कहा—आज नही कल दूगा।"

भीम—"भाई ! दु ख करने की आवश्यकता नही है। कल तुझे अवश्य दान मिल जाएगा। क्योकि मेरे भाई साहब बडे सत्यवादी है। उनके कहने मे तनिक भी फर्क नही पड सकता।"

भीम ने सोचा—इस धरा पर काल को जीतने वाला आज तक कोई नही हुआ। मेरे बडे बन्धुवर ने काल को भी जीत लिया है। इस खुशी मे भीम ने जोर-जोर से ढोल बजाना आरम्भ कर दिया। हृदय मे आनन्द की कल्लोले कल्लोलित होने लगी।

युधिष्ठिर ने जब ढोल की आवाज सुनी तो भीम को बुलाकर पूछा—"भीम, ढोल किस खुशी मे बजा रहे हो ?"

भीम—"अभी आपने उस ब्राह्मण को कहा था, दान कल दूगा।" आपको कल का भरोसा है। आप असत्य बोलते नही। काल को पराजित करने के लिए आज तक ससार मे किसी ने जन्म नही लिया, लेकिन आपने काल को भी परास्त कर दिया। इसी आनन्द के उपलक्ष मे ढोल बजा रहा हू।

युधिष्ठिर सहसा चौके, भान हुआ, आखे खुली और बोले—"अरे भीम ! मै तो गलती पर हू। उस ब्राह्मण को वापस बुलाओ। दान अभी दूगा। बिना सोचे-समझे मैने कह दिया कि कल दूगा। लेकिन काल को जीतने वाला न तो कोई हुआ और न कोई होगा। कल का किसी को भी पता नही है।" आखिर उस ब्राह्मण को उसी समय बुलाया गया और युधिष्ठिर ने अपने हाथो से दान दिया।

जो कार्य करना है उसे शीघ्रता से कर लेना चाहिए कल पर छोडना बुद्धिमत्ता नही है। क्योकि कल का किसी को भी विश्वास नही है। काल सिर पर घूम रहा है, कौन जाने कब आ जाए ?

करना है सो झट करो, कल का नही विश्वास।
कौन जानता किस समय, रुक जावेगा श्वास॥

मुरली के तीन गुण

यमुना नदी के तट पर एक दिन श्रीकृष्ण मुरली वजा रहे थे। मुरली की मधुर तान मे जनता मुग्ध हो रही थी। मृग तथा मणिधर फनो को फैलाये हुए एकाग्रता से मुरली की मुग्ध आवाज सुनने मे तल्लीन थे। इतने मे सोलह शृगार सजकर पानी भरने वहा गोपिया आ गई। कृष्ण भगवान् को नमस्कार करके मुरली की तान सुनने लग गई और साथ-साथ ईर्ष्या के कारण सबके मुख लाल हो गये। श्रीकृष्ण भगवान् ने पूछा– "सब खुश हो रहे है। किंतु तुम सब लाल क्यो हो रही हो ?"

अधरावली को चबाती हुई बोली—"हम आपको प्यारी नही हैं। प्राणो मे भी अधिक प्यारी आप मुरली को समझ रहे है जो इसको साथ लेकर सोते हैं। कही पर भी जाते है तो हमेशा इसे साथ लेकर जाते है किंतु इस मुरली मे अवगुणो का पार नही है। देखिए—यह निर्वस्त्रा नारी है, पोली है, आकृति मे भी काली है। उसमे हम कितनी सुन्दर तथा मनमोहक है। फिर भी आप हम सबको छोडकर उस मुरली को ही सर्व-सर्वा क्यो मान रहे है ? यह हम सबकी दुश्मन है।" श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर देते हुए कहा—"चाहे यह मुरली पोली है, काली है किन्तु इस तरह ईर्ष्या करने मे कभी यह अप्रिय नही हो सकती। किसी के पास यदि एक भी गुण होता है, तो ससार मे उसकी पूजा होती है। मुरली मे तो तीन गुण हैं।"

गोपिया चौंककर बोली—"नाथ ! कौन-से तीन गुण है ? श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—"ससार मे बिना बतलाये नही बोलना, यह बहुत बडा गुण है उसको लोग पूज्य दृष्टि से देखते है। वाचाल की कही भी इज्जत नही होती। मुरली का पहला गुण तो यही है कि 'बिना बुलाये नही बोलती'। मधुर बोलने वाला हर एक को अच्छा लगता है। जहा जाता है वहा उसका आदर-सत्कार होता है, जग को वश मे करने वाला यह महामत्र है। कटुवाणी किसी को भी प्रिय नही लगती। मुरली मे दूसरा गुण यह है कि 'जब भी बोलेगी तो मधुर बोलेगी'।"

जिसके हृदय मे गाठ होती है, दाव-पेच होते है वह कभी भी उच्चपद को प्राप्त नही कर सकता। सरलता के गुण मे जो अलकृत है, उसे सर्वत्र महत्त्व मिलता है। मुरली मे तीसरा गुण 'सरलता' का है। यह बिलकुल सरल है, उसके दिल मे एक भी गाठ नही है।"

मुरली के तीनो गुणो को सुन गोपिया निरुत्तर हो गई, नशा उतर गया। श्रीकृष्ण भगवान् के चरणो मे झुककर बोली—"नाथ ! आपने हमे सच्चा ज्ञान दिया। हम मुरली के गुणो से पूर्णतया अनभिज्ञ थी। वस्तुत इन गुणो से हर एक की पूजा होती है।"

इन्सान को गुणग्राही बनना चाहिए। दूसरो के गुणो को देखकर जलना मानव की दुर्बलता है। गुण चाहे छोटो मे हो चाहे बडो मे हो, सबको सग्राह्य हैं। मुरली के तीन गुणो को स्वीकार करने वाला व्यक्ति गुणी बन सकता है।

बनना सबको है सुखद, मुरली के अनुसार।
गुणवानो का हर जगह होता है सत्कार॥

रात्रि-भोजन का दुष्परिणाम

चार मित्र थे। चारो ही आधुनिक समाज मे पले हुए थे। एक दिन चारो ही अपने साथी महेश के घर गये। रात्रि के ग्यारह बज रहे थे। महेश ने आगन्तुक मित्रो से कहा—"दोस्तो ! आज तो बहुत दिनो से मिलन हुआ है। चाय पीये बिना नही जाने दूगा।" चारो ही चाय के आदी थे। गरम मसाले डालकर मित्र ने चाय बनाई। सबने बडी रुचि के साथ चाय पी ली, परन्तु उन सब मे एक मित्र ऐसा था, जो रात मे कुछ भी खाता-पीता नही था। उसने चाय नही पी। अन्य मित्रो ने उससे कहा—"चाय पीने मे क्या दोष है ?" वह बोला—"मुझे रात्रि-भोजन का त्याग है। मै मेरे नियम को कभी नही तोडूगा। अटल हू।" साथियो ने कहा—"यार ! तुम तो अभी तक पुराने जमाने के वातावरण मे पल रहे हो। क्या पडा है नियम मे, तोड दो। गरम चाय थकावट मिटाती है, स्फूर्ति देती है। कम से कम एक कप तो जरूर ही पीओ।"

अत्याग्रह होने पर भी उसने चाय पीना स्वीकार नही किया। शेष सब चाय पीकर सो गए। सबको लम्बी नीद आ गई। सूर्योदय होने पर भी वे नही उठे। सबको निर्जीव देखकर चाय नही पीने वाला मित्र घबराया। उसने सोचा—कही मुझ पर ही कोई आफत न आ पडे। अपना बचाव करने के लिए थाने मे सूचना कर दी। पुलिस वाले जाच-पडताल के लिए आये। उस मित्र ने कहा—"ये सब लोग चाय पीकर सोए थे। मुझे ऐसा आभास होता है कि चाय मे कोई विषैली चीज मिली हुई होगी जिससे इन सबकी मृत्यु हो गई।" पुलिस अफसर बडा दक्ष था। उसने चायदानी मगवाई और उसको ध्यानपूर्वक देखा।

चायदानी की नली मे एक छिपकली फसी हुई थी। अफसर ने कहा—"इन सबकी मृत्यु का कारण समझ मे आ गया। यह छिपकली चाय के साथ उबल गई और उसी का जहर इन सबके शरीर मे व्याप्त हो गया जिससे ये [illegible] गये।"

रात्रिभोजन अधम भोजन कहा जाता है। पुराणो मे सूर्य [illegible] के पश्चात् अन्न को मांस और पानी को रुधिर समान बतलाया गया है, [illegible]

रात्रिभोजन का परित्याग कर देना चाहिए।

अन्धा भोजन रात्रि का, कहते ग्रन्थ तमाम।
वढता इससे रोग है, होता दुष्परिणाम ।।

निष्काम भक्ति…

रामू और शिव दो भाई थे। दोनो मे मेल-मिलाप अच्छा था। किन्तु स्त्रियो के वैमनस्य तथा मन-मुटाव के कारण दोनो को अलग होना पडा। रामू की पत्नी सुशीला स्वभाव की अच्छी एव पतिभक्ता थी। रामू जो भी शिक्षा देता, सुशीला उसको अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करती और पति को प्राणो से भी अधिक परमेश्वर के तुल्य समझती थी। शिव की पत्नी का नाम गगा था। उसकी प्रकृति ठीक नही थी। पति-पत्नी के परस्पर कलह-कदाग्रह होता ही रहता था। गगा अपने पति को कभी सुख से रोटी भी नही खाने देती और वात-वात पर वक-वक करती ही रहती थी।

रामू की पत्नी एक दिन मध्याह्न के समय ओखली मे वाजरा कूट रही थी। अचानक रामू दुकान से घर आया और जोर से बोला—"पानी पिलाओ।" पति के शब्द सुनते ही सुशीला वाजरा कूटती हुई बीच मे ही मूसल को छोडकर सहसा पानी पिलाने के लिए उठी और ठण्डा-ठण्डा पानी छानकर पति को पिला दिया, किन्तु वह मूसल सुशीला के सत्य-शील के प्रभाव से जमीन पर नही गिरा, शून्य मे लटका रहा।

यह देख गगा ने पूछा—"जिठानीजी! आज यह मूसल निरालव कैसे रहा? मेरे तो कुछ भी समझ मे नही आया।"

सुशीला ने अपनी सहज भाषा मे कहा—"देवरानी! मैं पतिव्रत धर्म का पालन करती हू। पतिदेव की आज्ञा मे चलती हू। यह सव उसी का प्रभाव है।"

देवरानी—"अच्छा! बताओ पतिव्रत-धर्म क्या है?"

जिठानी—"(१) अपने पति के अतिरिक्त ससार के समस्त पुरुषों को पिता व भाई की दृष्टि मे देखना (२) तन, मन, धन से पति की सेवा करना (३) पति की आज्ञा का तन-मन से पालन करना और उसके मनोनुकूल भोजन पकाना।"

देवरानी गगा भी मूसल को अधर रखने के लिए अपने पति शिव की सेवा-चाकरी करने लगी और उसको प्रतिदिन तरह-तरह के पकवान खिलाने लगी। एक दिन उसने पति से कहा—"आज आप मध्याह्न (वारह बजे) मे घर आना और पानी पिलाओ शब्द जोर से बोलना।" शिव ने कहा—"बहुत अच्छा।"

गगा मूसल लेकर वाजरा कूटने बैठ गई। वार-वार पति की प्रतीक्षा करने

लगी, किन्तु शिव व्यापार मे इतना फसा कि वह घर आना भूल गया। शाम को जब वह घर आया तब वह बोली—"पतिदेव आज तो आप भूल गए, कल जरूर पधारना।" दो-तीन दिन तो ऐसे ही बीत गए। चौथे दिन वह ठीक बारह बजे घर आया और बोला—"पानी पिलाओ।" गगा बीच मे ही मूसल को छोडकर पानी पिलाने के लिए उठी, किन्तु मूसल अधर न रहा, जमीन पर गिर गया। गगा गुस्से मे आकर बोली—"पतिदेव ! इतने दिन मैंने आपको तरह-तरह के पकवान खिलाए, आपकी तन, मन से सेवा की, फिर भी मेरा मूसल अधर नही रहा।"

शिव बोला—"फल की कामना से की हुई भक्ति, भक्ति नही है। वस्तुत सच्ची भक्ति तो वह है जो निष्काम की जाए। निष्काम भक्ति ही यथेष्ट की उपलब्धि मे निमित्त बनती है।

किसी को भी फल की आशा से काम नही करना चाहिए। निष्काम भक्ति ही जीवन उन्नति मे सहायक हो सकती है। काम करो, नाम स्वत होगा, किन्तु नाम की कामना से काम मत करो।

रखकर फल की भावना, करो न कोई काम।
सब शास्त्रो मे श्रेष्ठ है, भक्ति भव्य निष्काम ॥

पाठ याद हो गया

पाण्डव और कौरव द्रोणाचार्य के पास प्रतिदिन अध्ययन करते थे। एक दिन द्रोणाचार्य ने सब लडको को याद करने के लिए पाठ दिया 'क्रोध मा कुरु' क्रोध मत करो। दूसरे दिन सभी लडको ने पाठ याद कर लिया और गुरु को सुना दिया। लेकिन युधिष्ठिर ने पाठ नही सुनाया। तीन दिन पश्चात् द्रोणाचार्य ने उनसे पूछा—"क्या पाठ याद हो गया ?" हाथ जोडकर नम्रतापूर्वक युधिष्ठिर ने कहा—"पूज्यवर ! अभी तक पाठ याद नही हुआ है। इस प्रकार चार-पाच दिन बीत गये किन्तु युधिष्ठिर ने पाठ नही सुनाया। तब द्रोणाचार्य आखे लाल कर बोले—'अरे युधिष्ठिर ! तू पाठ को याद करने के लिए तनिक भी प्रयत्न नही करता है, तेरे सभी साथियो ने पाठ सुना दिया और तू अभी तक पीछे ही लटक रहा है।' इस प्रकार शब्दो की तर्जना देते हुए गुरु ने उनके एक थप्पड लगा दी। फिर भी युधिष्ठिर शान्त रहा, क्रोध नही किया प्रत्युत नम्र शब्दो मे वह बोला—"गुरुवर ! अब मुझे पाठ याद हो गया है।"

द्रोणाचार्य ने कहा—"इतने दिन तक तो नही हुआ था और आज मार पडते ही तुझे पाठ याद हो गया ?"

युधिष्ठिर ने कहा—"गुरुदेव ! इस छोटे से पाठ को कण्ठस्थ करना कुछ भी कठिन नही है। किन्तु कठिन है—जीवन मे उतारना। अत मैंने सोचा—मुझे कोई मारे, पीटे या मुझ पर गुस्सा करे उस प्रतिकूल स्थिति मे भी मैं शान्त रहू, क्षमा रखू तब मेरा पाठ याद करना सार्थक होगा। आज आपने मुझे मारा, पीटा और मुझ पर क्रोध भी किया। फिर भी मुझे क्रोध नही आया तब मैंने सोचा—सही माने मे आज यह पाठ—'क्रोध मा कुरु' मुझे याद हुआ है।"

द्रोणाचार्य ने सब लडको को आह्वान करते हुए कहा—छात्रो ! युधिष्ठिर ने इस पाठ को आचरण मे उतारा है, इसे मैं सही रूप मे कण्ठस्थ किया मानता हू। चन्द ही क्षणो मे यदि किसी ने पाठ को याद भी कर लिया, किन्तु उसे जीवन मे क्रियान्वित नही किया तो वह याद करना केवल याद करना ही है न कि जीवन उपयोगी, अत सभी विद्यार्थी युधिष्ठिर की भाति पाठ याद करने का प्रयत्न करे जिससे जीवन का विकास हो सके।

ज्ञान क्रिया ही मोक्ष का, समझो सच्चा द्वार।
करो ज्ञान-अनुकूल सब, जीवन का आचार ॥

सबसे बड़ा अनुभव

विमलकुमार ने पिताजी से निवेदन करते हुए कहा—"पूज्यवर ! आज मेरा मानस-मयूर आनन्द-उपवन मे नृत्य कर रहा है। क्योकि चिरकाल से मै जिस ज्योतिष-विद्या का अध्ययन कर रहा था, उसमे मुझे आपकी शुभ कृपा से आशातीत सफलता मिली है। और ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड मनीषियो मे मेरी गणना होने लग गई है। यदि आपकी इच्छा हो तो आप मुझसे कोई भी प्रश्न कर सकते है। मैं उसका सही सही उत्तर दे सकूगा। भूत और भविष्य का हाल बताना तो मेरे लिए बहुत ही सरल है।

पिता ने पुत्र की परीक्षा करने के लिए पूछा—"पुत्र ! बतलाओ मेरी इस मुट्ठी मे क्या है ?" विमलकुमार ने बुद्धि दौडाई, मस्तिष्क घुमाया और काफी समय तक गणित करने के पश्चात् उत्तर देते हुए कहा—"पिता जी ! आपकी मुट्ठी मे जो वस्तु है, वह गोलाकार होनी चाहिए, गोक्षीर की भाति सफेद होनी चाहिए और उसमे पत्थर भी जडा होना चाहिए।"

पिता रत्नीराम के हृदय मे आश्चर्य का पार न रहा। पुत्र की पुन -पुन प्रशसा करते हुए कहा—'वत्स ! तुमने जो उत्तर दिया वह शतश ठीक है। पर यह बताओ उस वस्तु का नाम क्या है ?" विमलकुमार प्रशसा से फूल गया और अभिमानपूर्वक बोला—"आपकी मुट्ठी मे चक्की का पाट है।"

सेठ रगीराम ने कहा—"पुत्र ! तुमने अध्ययन तो अवश्य किया परन्तु अनुभव प्राप्त नही किया है। तुम तनिक चिन्तन करो, क्या मुट्ठी मे चक्की का पाट समा सकता है ? यदि तुम अगूठी वताते तो सोने मे सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ कर देते।"

विद्या का धनी होते हुए भी अनुभवशून्य होने के कारण विमलकुमार को लज्जा का पात्र वनना पडा। उसके पास ज्ञान की कमी नही थी, पर अनुभव की कमी थी, जिससे वह सफलता प्राप्त करने मे असफल रहा।

ससार मे सवसे वडा अनुभव होता है। अनुभव के अभाव मे वडे-वडे विद्वान शास्त्रज्ञ भी पराजित हो जाते हैं। अत पढने के साथ-साथ गुनना भी आवश्यक है।

पढकर वी० ए० वैरिस्ट्री, वनते कई होशियार।
किन्तु एक अनुभव विना, पढना सव वेकार॥

माया और छाया

पूर्व दिशा मे जव दिनकर उदय हुआ तव ज्ञानचन्द पश्चिम की ओर मुह करके खडा-खडा चिन्तन करने लगा—क्या मैं मेरी परछाई को नही पकड सकता ? अवश्य ही पकडूगा। आखिर उसने सोच-विचार कर अपनी परछाई को पकडने के लिए दौडना आरम्भ किया। ज्यो-ज्यो वह आगे वढता, त्यो-त्यो उसकी परछाई भी आगे वढने लगी। हृदय मे झुझलाहट पैदा हुई और आखो मे शोणित सा प्रवाह वहने लगा। अरे ! यह क्या ? इतना श्रम करने पर भी परछाई तो आगे ही आगे दौडती जाती है। मुझे इसको पकडने मे सफलता कैसे मिलेगी ? इसी चिन्ता के गहरे सागर मे वह डुवकिया लगाने लगा।

इतने मे उसका परम मित्र प्रकाण्ड विद्वान रामकुमार वहा आ पहुचा और पूछा—"अरे साथी ! क्या चिंतन चल रहा है ? क्यो इस तरह दौडा-दौड लगा रहा है ?"

ज्ञानचन्द— मित्रवर ! मैं मेरी प्रतिच्छाया को पकडने का प्रयत्न कर रहा हू। और उसके लिए ही इतना दौड रहा हू। लेकिन वह हाथ नही आ रही है। मैं जितना दौडता हू वह मुझसे आगे निकल जाती है।

रामकुमार— मित्र ! छाया को पकडने का तुमने जो प्रयत्न किया वह यत्न युक्तिसगत नही। अगर तू अपना रास्ता वदल, पूर्व की ओर मुह कर आगे वढेगा, तो तुझे अवश्य ही सफलता मिलेगी। अर्थात् छाया के पीछे-पीछे दौडने की नौवत नही आवेगी। प्रत्युत छाया तेरे पीछे-पीछे दौडेगी। ज्योही वह घूमकर पूर्व

की ओर मुह कर दौडने लगा, त्योंही परछाई भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। ज्ञानचन्द की आखे खुली, ज्ञान हुआ—अरे ! इतने समय तक व्यर्थ ही परेशान हुआ, शक्ति लगाई फिर भी मैं छाया को पकड नही सका अब छाया मेरे पीछे-पीछे दौड रही है।

छाया की भांति ही माया को समझना चाहिए। माया के पीछे दौडकर यदि कोई उसे पकडना चाहेगा, तो माया को पकड नही सकेगा अर्थात् तृष्णा (माया) दिन दूनी और रात चौगुनी बढती रहेगी। यदि कोई माया को पीठ देकर चलेगा, तो छाया की भाति ही माया भी उसके पीछे-पीछे दौडेगी।

पीठ दिखाते जो मनुज, माया को दिन रात।
माया पीछे दौडती, छाया सम साक्षात्॥

कष्ट-सहिष्णुता

भगवान् बुद्ध का शिष्य 'पूर्ण' बडा ही धैर्यवान् तथा क्षमाशील था। जब वह अनार्य क्षेत्र मे धर्म प्रचार के लिए जाने लगा तो भगवान् बुद्ध ने उससे कहा—"शिष्यवर ! अगर तुझे वहा कोई गाली देगा तो तू क्या करेगा ?"

शिष्य—"गुरुदेव ! मैं क्षमा रख सब सहन करूगा।"

बुद्ध—"शिष्य ! अगर तुझे हाथो से मारेगा तो ?"

शिष्य—"गुरुवर ! मैं उसका उपकार मानूगा कि उसने शस्त्रो से तो नही मारा है।"

बुद्ध—"पूर्ण ! अगर कोई शस्त्रो से मारेगा तो क्या करेगा ?"

शिष्य—"आर्यवर ! मैं सब कष्टो को सहन मे निर्भय हू। मैं यही सोचूगा उसने मुझे मृत्युदण्ड तो नही दिया।"

बुद्ध—"शिष्य ! कोई तुझे मार डालेगा तो ?"

शिष्य—"भगवन् ! उस समय मैं यह चिन्तन करूगा कि यह शरीर तो मेरा है नही। मैं इस पर ममत्व क्यो करू ? एक दिन इसका नाश अवश्य होगा। उसे यदि कोई मारे तो भले ही मारे, मुझे किंचित् भी भय नही है। जो मेरी वस्तु नही है यदि वह एक दिन चली जाये, तो इसमे क्या आश्चर्य है ? जो मेरी (आत्मा) है, वह अजर है, अमर है। उसे कोई छीन नही सकता, भेद नही सकता, तो फिर घबडाने की क्या बात है ?"

शिष्य का पूर्ण उत्तर सुनते ही बुद्ध के मुह से सहसा ही ये शब्द निकले—"ऐसे क्षमाशील व्यक्ति ही समाज का कल्याण कर सकेंगे।"

परोपकार के लिए सत जन अपने जीवन का बलिदान करने को भी सजग

रहते है। भयकर दुत्कार और तिरस्कार से भी वे अपने लक्ष्य से विचलित नही होते। ऐसे महापुरुषो के जीवन से कष्ट सहिष्णुता एव क्षमाशीलता अवश्य ही सीखनी चाहिए।

सीखो कष्ट सहिष्णुता, सन्तो से हर वार।
क्षमाशील वन पूर्ण सम, करना है उद्धार॥

सुधार का केन्द्र

एक सेठ था। उसकी धर्मपत्नी स्वभाव मे वडी कर्कशा एव लडाकू थी। वात-वात पर सेठ के साथ झगडा करती थी। सारे दिन घर मे कलह की चिनगारिया प्रज्व-लित होती थी। सेठ वहुत दु खी था। भाग्ययोग से उसके घर एक लडकी पैदा हुई। जैसा स्वभाव माता का था वैसा ही स्वभाव उस लडकी का हो गया। 'घडे जिसी ठीकरी, मा विसी डीकरी' इस कहावत का उसने अक्षरश पालन किया। लडकी वडी हुई। सारे शहर के आस-पास के गावो के व्यक्ति इसके कर्कश स्वभाव से परिचित थे। सेठानी के स्वभाव को भी जानते थे, जिससे कोई भी उसके साथ सवध करना नही चाहता था। सेठ वहुत चिंतित था कि कव इस लडकी के भार से मुक्ति मिलेगी ?

एक दिन एक परदेशी वहा आया। कुछ धन का प्रलोभन पाकर उसने सेठ की लडकी से शादी करना स्वीकार कर लिया। सेठ ने उसी दिन अच्छा समय देखकर उसके साथ अपनी लडकी का विवाह कर दिया। परदेशी को उसके कर्कश स्वभाव का कुछ पता लग गया। हजारो का दहेज ले वैलगाडी मे वैठ दम्पति गाव की ओर चले। मार्ग वडा उवड-खावड होने से वर्तनो मे खटखडाहट होने लगी। उसने गाडी चलाने वाले से कहा—"यह खडखडाहट मुझे पसन्द नही है। इसे वन्द करो।" उसने वर्तनो को अच्छी तरह जमाया किन्तु मार्ग मे अधिक गड्ढे होने से कारण खडखडाहट फिर शुरू हो गई। परदेशी से रहा नही गया। लाठी से उन वर्तनो को फोडने लगा।

गाडी वाले ने कहा—"सेठ साहव ! यह क्या कर रहे है ?"

सेठ—"मुझे यह खडखडाहट पसन्द नही है। ये तो मिट्टी के वर्तन है। यदि कोई मनुष्य भी मेरे सामने खटखडाहट करता है तो चाहे वह नारी हो, चाहे पुरुष, उसका भी सिर फोड देना चाहिए, ऐसा मेरा अटल सिद्धान्त है।" वहू ने यह देख देखा और मन ही मन सोचा—यहा तो चुपचाप रहना होगा। यदि मा की तरह यहा तीन-पाच करूगी तो मरम्मत हुए विना नही रहेगी। घर पहुचते ही उसने

अपनी पत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—"देखो, मेरी आज्ञा बिना कोई काम मत करना। सुबह जल्दी उठना, घर सफाई आदि स्फूर्ति से करना। किसी से बोलना पड़े तो नीची दृष्टि रखते हुए मीठा बोलना।" इस प्रकार उसने घर की अन्य परम्पराओं से उसे अवगत करा दिया।

एक दिन बेटी से मिलने बाप आया। वहा की शान्ति देखकर सेठ के मन मे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बेटी ने पिता के लिए खिचड़ा बनाया। पिताजी को परोसा, उसने मन मे सोचा—खिचड़े मे घी डालू या तेल। उसका पति खिड़की मे बैठा था। स्त्री ने पति की ओर निहारा। पति ने बाई आख का इशारा किया। वह धीरे से बोली—"बाप से भी बाई।" तब उसने दाहिनी आख चलाई। घी परोसा गया। भोजन के पश्चात् सेठ ने जवाई से पूछा—"बाप से बाई का क्या अर्थ है?" जवाई ने कहा—"ससुर जी! मैंने आपकी लड़की को पहिले ही दिन ऐसी शिक्षा दे दी थी कि वह सुधर गई। मेरी आज्ञा के बिना वह कोई भी कार्य नही कर सकती।' आगे उसने सब विस्तार से बताया।

सेठ ने कहा—"जवाईजी! आप अपनी सास को सुधार दे तो मैं आपका उपकार नही भूलूगा।"

जवाई हसा और घर मे जा, तेल मे पकी हुई सरिप्त (रिसती हुई) हाडी जिसका एक किनारा टूटा हुआ था, लाया और बोला—"आपके नगर मे कुम्हार बहुत है इसे ठीक करवा दे।"

सेठ बोला—"पकी हुई हाडी ठीक नही हो सकती।"

जवाई—"मेरी सास भी तो पकी हुई हाडी है तो फिर उसका सुधार कैसे हो सकता है? जिस तरह नरम डाली को जिधर चाहे मोड सकते है किन्तु सूखे हुए काठ को नहीं, इसी प्रकार बालक को जिस साचे मे ढालना चाहे ढाल सकते है पर वृद्ध को नही। अतः बाल्यावस्था ही सुधार का केन्द्र माना गया है।

> कठिन घट नहीं सधना, पक जाने के बाद।
> नहीं सुधार हो सके, बुड्ढो का अविवाद॥

जैसा दिया वैसा पाया

एक चालाक जाट ने पाव सेर के घड़े मे साढे चार सेर गोबर के ऊपर आधा सेर ताजा घी फैलाकर एक गाव की ओर बेचने जा रहा था। रास्ते मे उसे एक आदमी मिल गया। उसने पूछा—"तुम कहा जा रहे हो? तुम्हारी जाति क्या है?" उसने उत्तर दिया—"मैं राजपूत हू। यह तलवार बेचने जा रहा हू।" तलवार के ऊपर उसने चमकदार पत्ती चिपका रखी थी। जिससे वह तलवार बहुत चमक रही

थी। हाथ मे सुन्दर लग रही थी। उसे देख जाट का मन ललचाया और कहा—"यह तलवार मैं खरीदूगा। कितने रुपयो मे दोगे? मेरे पास रुपए तो नही है यह घी का घडा अवश्य है। तुम यह घडा ले लो और तलवार मुझे दे दो।" वस, वातो-वात मे सौदा तय हो गया। वे अदला-वदली कर अपने घर की ओर रवाना हो गये। राजपूत ने सोचा—आज तो मेरी वहुत वडी जीत हुई है। काठ की तलवार देकर पाच सेर घी का घडा ले आया। जाट को उल्लू वना दिया। वह अपनी वुद्धि पर घमण्ड करने लगा।

उधर जाट ने सोचा—आज मेरी वहुत वडी विजय हुई है। मैंने राजपूत को ही ठग लिया। गोवर के वदले चमकीली तलवार ले ली। घर जाकर जव दोनो ने देखा तव दोनो की आखे खुली और मन ही मन सोचने लगे—हाय! जैसा दिया वैसा पाया।

जो दूसरे को ठगते हैं वे स्वय को ठगते है, जो दूसरो को मारते हैं वे स्वय को मारते है। जो जैसा करेगा उसको वैसा ही फल भुगतना पडेगा। अत हर एक व्यक्ति को सत्कार्य करने के लिए सजग रहना चाहिए।

जैसा को तैसा मिले, है यह सच्ची वात।
राजपूत और जाट का, सुनो सभी वृत्तान्त॥

सत्य-निष्ठ वनो

एक गरीव लकडहारा था। लकडिया काटने वह प्रतिदिन जगल जाता और लकडियो को वेच-वेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता था। एक दिन वह नदी के तट पर पहुचा। तीरस्थ सघन वृक्ष को काटने वह ऊपर चढा। वृक्ष को काट ही रहा था कि अचानक कुल्हाडी हाथ से छूट गई। नदी के गहरे जल मे गिर गई। वह नीचे उतरा। आक्रन्दन करने लगा—"हाय! जीवन-निर्वाह का साधन पानी मे गिर गया। अव कैसे घर का भरण-पोषण होगा? कुल्हाडी के अभाव मे मैं लकडिया नही काट सकता।" नदी देवी को नम्र शब्दो मे प्रार्थना करता हुआ वोला—"हे देवी! तुम्हारा उपकार नही भूलूगा। मेरे जैसे गरीव पर दया करो। करुणा करो। हृदय का दुःख दूर करो। मुझे मेरी कुल्हाडी मिल जानी चाहिए।"

अन्तर् की पुकार कौन नही सुनता? हृदय की आर्द्र चीत्र से किसका दिल नही पिघलता? देवी झन-झनाहट करती हुई वोली—"यह लो तुम्हारी कुल्हाडी।" लकडहारा वोला—"माता! तुम मुझे जो स्वर्ण की कुल्हाडी दे रही हो यह मेरी नही है मुझे तो मेरी ही चाहिए।"

दूसरी बार चादी की कुल्हाडी लेकर बोली—"बेटा ! यह तो तेरी है ?"

लकडहारा बोला—"माता ! यह भी मेरी नही है, मेरे जैसे हतभागी के पास चादी की कुल्हाडी कहा रखी है। यह और किसी की होगी। मुझे तो मेरी ही मिलनी चाहिए।"

तीसरी बार उस लोहे की कुल्हाडी को हाथ मे लेकर बोली—"बेटे ! यह तो तेरी है ?"

लकडहारा—"हा माता ! यह मेरी है, मुझे मिल जानी चाहिए।"

उसकी सच्चाई पर देवी बहुत प्रसन्न हुई और बोली—"बेटे ! तेरी सत्य-निष्ठा का मेरे दिल पर बहुत प्रभाव पडा है, तेरी शुद्ध-नीति के आगे मैं अवनत हू। कोटि-कोटि धन्यवाद के साथ ये तीनो कुल्हाडिया तुझे देती हू। सुख से रहना।" यो वह देवी अन्तर्धान हो गई।

लकडहारा तीनो कुल्हाडियो को लेकर घर पहुचा और समग्र घटनाचक्र से अपनी पत्नी को अवगत किया। अब उसकी दरिद्रावस्था दूर हो गई। आलीशान मकान भी बनवा लिया। ठाठ से रहने लगा जीवन सुखी हो गया। एक दिन पडोसी साहूकार ने उससे पूछा—"भाई ! तूने ऐसा कौन कारोबार किया था कि थोडे ही समय मे तू मालामाल बन गया। मकान भी अच्छा बनवा लिया। ऐसा क्या प्रसग ?"

लकडहारा सरल था। वचन मे मीठा था। पेट मे पाप नही था। मुस्कराता हुआ बोला—"सेठ साहब ! मैंने तो कुछ भी धन्धा नही किया यह सब तकदीर से मिल गया।"

सेठ बोला—"अरे ! ऐसे कैसे ? टाल-मटोल क्यो करता है ? सही-सही बात कह।"

उसने आदि से अन्त तक की कहानी सेठ साहब को सुना दी। सेठ ने मन मे सोचा—मुझे भी इसी तरह प्रयोग करना चाहिए। दूसरे दिन प्रात वह कुल्हाडी लेकर उसी वृक्ष पर चढा। कुल्हाडी को नदी मे डाल नीचे उतरा, बोला—"हे नदी देवी ! मेरी कुल्हाडी मुझे मिल जानी चाहिए। उसके बिना मेरा काम नही चल सकता।"

देवी प्रकट हुई। हाथ मे कुल्हाडी लेकर उसने पूछा—क्या यही है तेरी कुल्हाडी ?

स्वर्ण की चमकती हुई कुल्हाडी को देख सेठ का मन ललचाया। और जोर से बोला—"हे देवी ! यही है मेरी कुल्हाडी। मुझे मिलनी चाहिए। मै आपका उपकार नही भूलूगा।"

देवी ने ललकारते हुए उससे कहा—"अरे बनिये ! तू उस लकडहारे की

ठहर मेरे सामने। भविष्य मे कभी भी यहा मत आना। अन्यथा मारे बिना नही छोड़ूगी।" यो कह देवी अन्तर्धान हो गई।

सच्चाई मे वहुत बडी ताकत होती है। सत्यवादी के सामने सारा ससार अवनत रहता है। सत्य-निष्ठ व्यक्ति अपना चतुर्मुखी विकास कर सकते है, अत जीवन की हर दशा मे सत्य को महत्व मिलना चाहिए।

अमित शक्ति है सत्य मे, सत्य वडा वलवान्।
सत्यनिष्ठ को सर्वथा, मिलता है सम्मान॥

सरलता का प्रभाव

एक सेठ था। उसका स्वभाव वहुत ही सरल एव नम्र था। व्यापार मे व्यस्त होने के कारण सेठ रात को दस वजे घर आता था। सेठानी के कोई काम-काज नही था जिससे वह शहर मे भटकती रहती थी। एक दिन सेठ ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"ऐसे विना मतलव भटकना अच्छा नही है।" लेकिन उस उद्धत औरत पर क्या असर हो सकता था ? एक दिन सेठ ने हिम्मत करके दरवाजे की सांकल लगा दी और स्वय अन्दर सो गया।

अपने समय पर सेठानी आई, दरवाजे पर धक्का मारा, दरवाजा नही खुलने से वह जोर से वोली—"दरवाजा खोलो।" सेठ ने कहा—"दरवाजा, नही खुलेगा, ऐसे घूमना-फिरना अच्छा नही, लिखकर दो कि अब कभी घूमने-फिरने नही जाऊगी। तभी दरवाजा खुलेगा।"

सेठानी तडककर वोली—"दरवाजा खोलो अन्यथा कुए मे गिरकर मरूगी, लेकिन तुम्हे लिखकर तो नही दूगी।" सेठ घवराया। सोचा, कही गिर न जाये। इतने मे सेठानी ने एक वडा पत्थर उठाकर कुए मे पटका। उसके धमाके से सेठ को भरोसा हो गया कि वह तो कुए मे गिर गई। झट दरवाजा खोला और कुए की ओर दौडा। सेठानी वडी चालाक थी। दीवार की ओट मे खडी थी। दरवाजा खुलते ही वह अन्दर घुस गई और दरवाजा वन्द कर लिया। सेठ दौड़ता हुआ वापस आया और जोर से वोला—"खोल दरवाजा।" सेठानी मान के नशे मे चूर थी। वह वोली—"सारी रात घूमते हो और मुझे आवारा वताते हो। शर्म नही आती। अव लिखकर दो कि इस तरह रात मे नही फिरना, तभी दरवाजा खुलेगा।" 'उल्टा चोर कोतवाल को डाटे' अपराध स्वय का है और दोष वताती है सेठ का। सेठ ने काफी नम्र भाव से कहा। पर वह कहा समझने वाली थी। आखिर सेठ हताश हो गया। दु ख भरी जिन्दगी से तो मर जाना अच्छा है। यो कह कर वह कुए की तरफ वढने लगा।

सेठानी का विचार सेठ को अपनी ओर आकर्षित करने का था। दरवाजा खोला और दौड़कर सेठ को कुए की तरफ जाने से रोका। ज्यो-त्यो कर सेठ को घर मे ले आई। 'रस्सी जल जाये तो भी उनकी ऐठन नही जाती।' वह सेठ से कहने लगी "तुम्हे लिखकर देने मे क्या नुकसान है? केवल इतना ही लिख दो कि रात्रि मे नही घूमूगा।'

सेठ बड़ा सरल था। घर का झगडा शात करना था। इसलिए उसने लिखकर दे दिया। सेठ की इस सहिष्णुता एव उदार वृत्ति का सेठानी पर बहुत ही असर पड़ा। उसने झट वह कागज फाड डाला और स्वय को धिक्कारती हुई सेठ के चरणो मे गिर पडी। अपनी भूल की माफी मागती हुई बोली—"पतिदेव! आपका कोई दोष नही है। दोष सब मेरे है। अब मैं इधर-उधर नही भटकूगी और आपकी सेवा-परिचर्या मे हर समय तैयार रहूगी।"

दूसरो को वश मे करने के लिए सरलता एव नम्रता रामबाण दवा है। इससे बड़ी से बड़ी बीमारी दूर हो सकती है। अत हर एक के जीवन मे सरलता एव नम्रता आवश्यक है।

वश मे करने जगत को, दो हैं मार्ग सुरम्य।
सरल सरलता नम्रता, स्वीकृत करो अगम्य॥

सहजानन्द कब ?

एक तालाब के किनारे पर एक भौरा और कुछ ही दूर पर एक गुबरीला रहता था। दोनो मे अच्छी मैत्री हो गई। भवरा गुबरीला के पास जाता था। किन्तु गोबर की दुर्गन्ध उसके सहन नही होती थी। एक दिन मौका देखकर भौरे ने गुबरीले से कहा—'मित्र! तेरा यह निवास स्थान मुझे अच्छा नही लगता। एक बार मेरा घर देख कितना स्वच्छ सुन्दर एव मोहक बना हुआ है। रहने का जी करता है। एक बार तू चला जायेगा तो वहा से वापस लौटने का तेरा दिल नही करेगा।"

गुबरीले ने अपनी मुस्कराहट मे कहा—"साथी! मै तो यह मानता हू कि दुनिया मे गोबर के ढेर से बढकर कोई भी सुन्दर स्थान नही है। जो आनन्दानुभूति मुझे यहा पर हो रही है वैसी अन्यत्र कहा?" भौरा जरा हसता हुआ बोला—"मित्र! कल्पना के साम्राज्य से भूख नही मिटती। मेरे साथ चल। मेरे निवास स्थान पर कुछ आराम कर। तुझे स्वत अनुभव हो जायेगा कि वास्तव मे सुन्दर एव सुखप्रद स्थान कौन सा है।"

भौरे के अत्याग्रह से गुबरीला वहा जाने को तैयार हुआ, पर वह गोबर बिना

तनिक समय भी नही रह सकता था। इसलिए गोवर की एक गोली मुह मे दवा ली। भौरे के घर पहुचा। भौरे ने तन-मन से अपूर्व स्वागत किया और उसे एक कमल पर वैठाया। कुछ देर वाद भौरे ने गुवरीले से पूछा—"मित्र ! कैसा अनुभव हो रहा है।" पर गुवरीले की हालत अजीव हो गई। कमल की सुगन्ध के कारण उसे गोवर की दुर्गन्ध वरावर नही आ रही थी और गोवर की दुर्गन्ध के कारण कमल की सुगन्ध नही मिल रही थी। उसने सोचा—यहा कहा फस गया ? इससे तो मेरा स्थान वहुत ही सुन्दर था। वह वोला—"मित्र भौरा ! अव मैं मेरे घर जा रहा हू।" भौरा वोला—"मित्र ! पहले उसे थूक दो जो कि तुमने मुह मे दवा रखा है।" गुवरीले ने गोवर की गोली थूक दी। भौरे ने उसे सरोवर मे कुल्ला-स्नान कराया और फिर कमल पर वैठाया।

अव गुवरीले को कमल की सुगन्ध आने लगी और उसे स्वर्गीय सुख का अनुभव होने लगा। कुछ समय के वाद भौरा ने पूछा—"मित्र ! अव घर जाने की इच्छा है ?" गुवरीला वोला—"दोस्त ! मैं मूर्ख थोडा ही हू जो स्वर्ग को छोडकर नरक मे जाऊ। अव तो निरन्तर यही वास करना चाहता हू।"

भौतिक सुख गोवर की गोली जैसा है। जव तक उसको दूर नही किया जायेगा तव तक कमल की सुगन्ध नही आयेगी। अर्थात् सहजानन्द की अनुभूति नही होगी। अत सवसे पहले गोवर की गोली को दूर करे।

गोवर की गोली सदृश, भौतिक सुख पहचान।
आत्मिक सुख मे रमणकर, करके अन्तर् ज्ञान॥

न्याय का पक्ष

राजमहल मे कुछ वन्दर पाले गये थे। राजसेवक उनकी परिचर्या मे नियुक्त हुए। राजकुमार उन्हे अच्छे-अच्छे पकवान देते और उनसे साथ क्रीडा करते। ऐसी सेवा एव ऐसा भोजन देखकर सभी वन्दरो ने सोचा यहा से कभी भी अन्यत्र नही जाना है। वडी मौज है यहा पर।

राजभवन मे घेटो का एक टोला भी पाला गया। राजकुमार उन पर चढकर घूमने जाते और खूव आनन्द मनाते। उन घेटो मे एक घेंटा वडा दुष्ट था। वह राजा के रसोडे मे घुस जाता। और जो देखता वही खाकर भाग जाता। रसोइये उसे पत्थर मारकर भगाते, पर वह अपनी आदत को कहा छोडने वाला था।

एक दिन वन्दर ने यह सव देखकर सोचा अव राजमहल मे रहना अच्छा नही है क्योकि राजा का रसोइया क्रोधी है और घेंटा हठीला है। सम्भव है यह रसोइया इसे जलती लकडी से मारे और जलता हुआ घेंटा पास वाली घुडसाल

सेठानी का विचार सेठ को अपनी ओर आकर्षित करने का था। दरवाजा खोला और दौडकर सेठ को कुए की तरफ जाने से रोका। ज्यो-त्यो कर सेठ को घर मे ले आई। 'रस्सी जल जाये तो भी उसकी ऐठन नही जाती।' वह सेठ से कहने लगी "तुम्हे लिखकर देने मे क्या नुकसान है ? केवल इतना ही लिख दो कि रात्रि मे नही घूमूगा।"

सेठ बडा सरल था। घर का झगडा शात करना था। इसलिए उसने लिखकर दे दिया। सेठ की इस सहिष्णुता एव उदार वृत्ति का सेठानी पर बहुत ही असर पडा। उसने झट वह कागज फाड डाला और स्वय को धिक्कारती हुई सेठ के चरणो मे गिर पडी। अपनी भूल की माफी मागती हुई बोली—"पतिदेव ! आपका कोई दोष नही है। दोष सब मेरे है। अब मैं इधर-उधर नही भटकूगी और आपकी सेवा-परिचर्या मे हर समय तैयार रहूगी।"

दूसरो को वश मे करने के लिए सरलता एव नम्रता रामबाण दवा है। इससे बडी से बडी बीमारी दूर हो सकती है। अत हर एक के जीवन मे सरलता एव नम्रता आवश्यक है।

वश मे करने जगत को, दो हैं मार्ग सुरम्य।
हृदय सरलता नम्रता, स्वीकृत करो अगम्य॥

सहजानन्द कब ?

एक सरोवर के किनारे पर एक भौरा और कुछ ही दूर पर एक गुबरीला रहता था। दोनो मे अच्छी मैत्री हो गई। भवरा गुबरीला के पास जाता था। किन्तु गोबर की दुर्गन्ध उससे सहन नही होती थी। एक दिन मौका देखकर भौरे ने गुबरीले से कहा—"मित्र ! तेरा यह निवास स्थान मुझे अच्छा नही लगता। एक बार मेरा घर देख कितना स्वच्छ सुन्दर एव मोहक बना हुआ है। रहने को जी करता है। एक बार तू चला जायेगा तो वहा से वापस लौटने का तेरा दिल नही करेगा।"

गुबरीले ने अपनी मुस्कराहट मे कहा—"साथी ! मै तो यह मानता हू कि दुनिया मे गोबर के ढेर से बढकर कोई भी सुन्दर स्थान नही है। जो आनन्दानुभूति मुझे यहा पर हो रही है वैसी अन्यत्र कहा ?" भौरा जरा हसता हुआ बोला—"मित्र ! कल्पना के मोदको से भूख नही मिटती। मेरे साथ चल। मेरे निवास स्थान पर कुछ आराम कर। तुझे स्वत अनुभव हो जायेगा कि वास्तव मे सुरम्य एव सुखप्रद स्थान कौन सा है।"

भौंरे के अत्याग्रह से गुबरीला वहा जाने को तैयार हुआ, पर वह गोबर बिना

तनिक समय भी नही रह सकता था। इसलिए गोवर की एक गोली मुह मे दवा ली। भौरे के घर पहुचा। भौरे ने तन-मन से अपूर्व स्वागत किया और उसे एक कमल पर वैठाया। कुछ देर वाद भौरे ने गुवरीले से पूछा—"मित्र ! कैसा अनुभव हो रहा है।" पर गुवरीले की हालत अजीव हो गई। कमल की सुगन्ध के कारण उसे गोवर की दुर्गन्ध वरावर नही आ रही थी और गोवर की दुर्गन्ध के कारण कमल की सुगन्ध नही मिल रही थी। उसने सोचा—यहा कहा फस गया? इससे तो मेरा स्थान वहुत ही सुन्दर था। वह वोला—"मित्र भौरा ! अव मै मेरे घर जा रहा हू।" भौरा वोला—"मित्र ! पहले उसे थूक दो जो कि तुमने मुह मे दवा रखा है।" गुवरीले ने गोवर की गोली थूक दी। भौरे ने उसे सरोवर मे कुल्ला-स्नान कराया और फिर कमल पर वैठाया।

अव गुवरीले को कमल की सुगन्ध आने लगी और उसे स्वर्गीय सुख का अनुभव होने लगा। कुछ समय के वाद भौरा ने पूछा—"मित्र ! अव घर जाने की इच्छा है?" गुवरीला वोला—"दोस्त ! मैं मूर्ख थोडा ही हू जो स्वर्ग को छोडकर नरक मे जाऊ। अव तो निरन्तर यही वास करना चाहता हू।"

भौतिक सुख गोवर की गोली जैसा है। जव तक इसको दूर नही किया जायेगा तव तक कमल की सुगन्ध नही आयेगी। अर्थात् सहजानन्द की अनुभूति नही होगी। अत सवसे पहले गोवर की गोली को दूर करो।

गोवर की गोली सदृश, भौतिक सुख पहचान।
आत्मिक सुख मे रमणकर, करके अन्तर् ज्ञान॥

न्याय का पक्ष

राजमहल मे कुछ वन्दर पाले गये थे। राजसेवक उनकी परिचर्या मे नियुक्त हुए। राजकुमार उन्हे अच्छे-अच्छे पकवान देते और उनके साथ क्रीडा करते। ऐसी सेवा एव ऐसा भोजन देखकर सभी वन्दरो ने सोचा यहा से कभी भी अन्यत्र नही जाना है। वडी मौज है यहा पर।

राजभवन मे घेटो का एक टोला भी पाला गया। राजकुमार उन पर चढकर घूमने जाते और खूव आनन्द मनाते। उन घेटो मे एक घेटा वडा दुष्ट था। वह राजा के रसोडे मे घुस जाता। और जो देखता वही खाकर भाग जाता। रसोइये उसे पत्थर मारकर भगाते, पर वह अपनी आदत को कहा छोडने वाला था।

एक दिन वन्दर ने यह सव देखकर सोचा अव राजमहल मे रहना अच्छा नही है क्योकि राजा का रसोइया क्रोधी है और घेटा हठीला है। सम्भव है वह रसोइया इसे जलती लकडी से मारे और जलता हुआ घेटा पास वाली अश्वशाला

मे घुस जाये। वहां घास मे आग लगेगी और घोडे जलेंगे। घोडो के उपचार मे बन्दर की चर्बी बहुत लाभप्रद बताई जायेगी।

वृद्ध बन्दर ने अपने साथियो की सभा मे हृदयस्थ विचार रखते हुए कहा—"अब यहां रहना अच्छा नही है। वन मे चलो। वहां फल-फूल खायेंगे और आनन्द मे रहेंगे।"

एक युवक बन्दर हसता हुआ बोला—"यह तो अजीब बात है। घेटा और रसोइये की लडाई मे हमारा क्या नुकसान ?" एक दूसरे बन्दर ने कहा—"अगर इनकी लडाई से ही अपने पर कोई सकट उत्पन्न होता तो कब का ही हो सकता था।" तीसरे ने कहा—"जो सुखानुभूति यहां हो रही है, वह वन मे कहां। अत. जान-बूझकर दु ख मे पडना बहुत बडी मूर्खता है।" वृद्ध बन्दर ने कहा—"आप लोग कुछ गम्भीरता से चिंतन करें। मैंने गहराई मे इस विषय मे सोचा है मानना हो तो मानिये।"

एक बन्दर ने कहा—'यह विषय बडा गम्भीर है। अत एक के कथन पर चलना अच्छा नही है। सब बन्दरो के मत (वोट) लेने चाहिए।"

आखिर सब बन्दरो के मत लिए। सबने वृद्ध बन्दर की बात को हवा की तरह उडा दिया। किसी ने भी उनका समर्थन नही किया। सबने एकमत से यह प्रस्ताव पास किया कि हम राजमहल को छोडकर कहीं भी नही जायेंगे। वही आनन्द मे रहेंगे।

अपने भाइयो का यह निर्णय देखकर बूढे बन्दर के दिल मे बहुत दु ख हुआ। किसी ने भी उसकी बात पर ध्यान नही दिया। आखिर वह अकेला ही राजमहल को छोडकर वन मे चला गया। कुछ ही दिनो के बाद वही हुआ जो वृद्ध बन्दर ने कहा था। राजा ने पशु-चिकित्सको को बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा—"राजन् ! बन्दरो की ताजी चर्बी लगायी जाय तो ये घोडे ठीक हो सकते हैं। राजा के आदेशानुसार सब बन्दरो को मारने के लिए इकट्ठा किया गया। बन्दर घबडाये। मन ही मन सोचने लगे—"हाय ! वृद्ध बन्दर की बात मान लेते तो आज बिना मौत क्यो मरना पडता, किन्तु अब क्या…?" सभी बन्दरो को बिना मौत मरना पडा। उनकी ताजी चर्बी का उपयोग औषधि के रूप मे किया गया जिससे झुलसे हुए घोडे स्वस्थ हो गये।

बहुमत का पक्ष हमेशा सत्य नही होता और अल्प मत भी हमेशा गलती पर नही होता। जो बात न्याय की होती है, वह सच्ची होती है। अत हर एक व्यक्ति को न्याय के पक्ष मे रहना चाहिए।

सदा न्याय के पक्ष मे, रहना है मतिमान।
पक्षपात के योग से, होता है नुकसान॥

मोह का पर्दा

एक वावाजी थे। उनके पास पारसमणि थी। नगर सेठ को पता लगा कि वावा के पास अमूल्य पारसमणि है। अपना सारा धन्धा छोडकर सेठ वावा के पास गया और उनकी सेवा-परिचर्या मे रहने लगा। वावा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह हर प्रकार से भक्ति करता था। सेवा-चाकरी करते-करते वारह वर्ष वीत गये। वावाजी प्रसन्न हुए और वोले—"सेठ! तुम्हारी भक्ति-परिचर्या से मैं वहुत प्रसन्न हू मैं तुझे वर देता हू। मागना है सो मागो, देने को तैयार हू।" सेठ वोला—योगीराज! मुझे तो और कुछ नही चाहिए। कृपया पारस मणि दे दीजिए।" वावाजी ने कहा—"भक्त! मैं तुम्हारी भावना पूरी करूगा। पारसमणि उस झोली मे लोहे की डिव्वी मे पडी है, उस झोली को यहा लाओ।"

सेठ ने सोचा—यह क्या वात? पारसमणि के सस्पर्श से लोहा सोना वन जाता है और इधर वावाजी कह रहे है कि लोहे की डिव्वी मे पारसमणि पडी है। सेठ के मन मे सशय उत्पन्न हुआ कि पारसमणि है या नही अथवा वावा मुझे दूसरी चीज देकर टाल न दे। वारह वर्ष तक की हुई सेवा-जाप निष्फल न हो। आखिर सेठ उठा। झोली लाया और वावा को दे दी।

वावा ने झोली मे से डिव्वी निकाली। डिव्वी मे कपडा था। कपडे मे कोई चीज थी। सेठ हताश हो गया। वावा के चक्रजाल मे न फसता तो क्यो मेरे जीवन के वारह वर्ष व्यर्थ ही मे नष्ट होते। पर अव क्या? वावाजी ने कपडे की पोटली खोली तो चारो तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। कपडा हटाकर मणि को ज्योही उस लोहे की डिव्वी मे रखा त्योही वह लोहा सोना हो गया। यह दृश्य देखकर सेठ वहुत खुश हुआ। गुलाव के फूल की भाति आकृति खिल उठी। निराशा आशा मे परिणत हो गई। सेठ को विश्वास हो गया कि वास्तव मे यह पारसमणि है।

वावाजी ने कहा—"भक्त! यह लो पारसमणि, इसे सभाल कर रखना। ऐसी वहुमूल्य वस्तु वार-वार हाथ मे नही आती।" सेठ की इच्छा पूरी हो गई। पारसमणि लेकर सेठ अपने घर की ओर

लोहे और पारसमणि के वीच कपडे का व्यवधान था। इसलिए लोहा का सोना नही होता था। इसी प्रकार जव तक मोह का कपडा दूर नही होगा तव तक आत्मज्ञान नही होगा। अत आत्म-साक्षात्कार करना हो तो सबसे पहले मोह का पर्दा दूर करो जिससे सहजानन्द की प्राप्ति हो सके।

जव तक पर्दा मोह का, तव तक नहिं सद्ज्ञान।
उस पर्दे का शीघ्र ही, करना पर्यवसान॥

सत्यवादी का अचूक प्रभाव

मेठ शातिलाल वडे सत्यवादी थे। उनकी नस-नस मे सत्य समाया हुआ था। सत्य के प्रति अडिग निप्ठा थी। झूठ को गरल के समान समझते थे। सत्य के प्रभाव से व्यापार भी उत्तरोत्तर वढता गया। चन्द ही दिनो मे सेठ शान्तिलाल करोडपति वन गये। जहाजो को माल-टाल से भरकर सेठ साहव अपने देश की ओर रवाना हुए। साथ मे अनेक सरक्षक भी थे। जहाज द्रुत गति से चल रहे थे। अचानक डाकुओ का गिरोह आ पहुचा। सशस्त्र धावा वोल कर सेठ को लूटने लगे। डाकुओ के मुखिया शेरसिह ने कहा—"सेठ साहव! अव आपके पास और क्या है?"

सेठ ने कहा—"वस, अव मेरे पास कुछ नही है जो था वह तुमने ले लिया। वर्षो की कमाई चन्द ही पलको मे चली जायेगी, ऐसा मैंने स्वप्न मे भी नही सोचा था।"

लुटेरे सव माल लेकर जाने की तैयारी करने लगे कि सेठ की नजर अपनी अगुली मे पहनी हुई अगूठी पर पडी उसकी कीमत कम से कम ५०००० थी। सेठ के हृदय मे वेदना की लहरें दौडने लगी। आकृति पर उदासी की रेखा अकित हो गई। मन ही मन सेठजी सोचने लगे—हाय! गजव हो गया। आज अनजान मे झूठ वोल दिया कि मेरे पास कुछ नही है। सेठ ने शेरसिह को पुकारते हुए कहा—"भैया! तनिक ठहर जाओ। मेरी भूल हो गई। घवराहट मे मुझे कुछ भी ध्यान नही रहा। मै झूठ वोल गया कि मेरे पास कुछ भी नही है, किन्तु मेरे पास अगूठी है इसे भी लेते जाओ।"

शेरसिह अगूठी को हाथ मे लेकर चारो तरफ से घुमा-फिराकर उसे देखने लगा। धीरे-धीरे उसकी विचारधारा मे भी परिवर्तन आने लगा। मन ही मन चिन्तन चला—कहा यह सत्यवादी सेठ? कहा हम जैसे पापी लुटेरे? कहा इनका आदर्श और कहा हमारा धूर्त्तत्व? अपना सव कुछ चले जाने पर भी सेठ ने अपने सत्य को नही छोडा और हम अपनी उदर पूर्ति के लिए मनुष्यता को भी छोड देते है। पराए धन को लूटने के लिए सजग रहते है, डाका डालते है। निर्मम हत्याए करने के लिए नृशस वन जाते है। हिसक पशुओ की भाति हिसक हो जाते है। धिक्कार है इस क्रूर जीवन को।]

शेरसिह कुछ देर तक सोचता रहा। आखिर सेठ के चरणो मे मस्तक झुकाता हुआ वह अपने साथियो से वोला—"सेठ का धन वापस लौटा दो। इस सत्यवादी के धन को हम नही पचा सकते। इससे हमारा कभी भी भला नही हो सकता।"

शेरसिह का उद्घोप सुनते ही डाकू हताश हो गये। सेठ का समग्र वैभव लौटा

दिया और साथ-साथ अपने निन्द्य एव घृणित कृत्यो का प्रायश्चित करते हुए बोले—"सेठ साहब ! अब हम भविष्य मे ऐसा निम्न कार्य कभी भी नही करेंगे और आत्म-साक्षी से यह प्रतिज्ञा करते है कि कभी भी डाका नही डालेंगे ।"

सेठ ने चोरी न करने के लिए उनको कोई भी उपदेश नही दिया था । फिर भी सब नियम-बद्ध हो गये । वह था सत्य-आचरण का अचूक प्रभाव । क्योकि कहने का असर पडे या न पडे, किंतु आचरण का असर तो अवश्य ही पडता है, अत कहने की अपेक्षा आचरणो को सुधारो ।

आचरणो का अन्य पर, पडता असर विशाल ।
सत्य-वचन से सेठजी, रह गये मालो-माल ॥

विश्वास का फल

चम्पा नगर मे दो मित्र रहते थे । दोनो मे प्रगाढ प्रेम था । एक के विना दूसरा रह नही सकता था ।

एक वार दोनो चम्पानगर के वाहर वनभ्रमण को निकले । उस समय वर्षा ऋतु थी । आकाश पर काले-काले मेघ आच्छादित थे और धरातल पर था वन हरियाली का समारोह । ऐसे वातावरण मे मन स्वत ही उल्लसित हो उठता है । अत वे दोनो भी मन के उसी आनन्द से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओर एव झाडी से दूसरी झाडी की ओर घूमने लगे । घूमते-घूमते अचानक उन्होने धरती पर पडे मयूर के दो अण्डे देखे । उनके पैरो की आहट पाकर मयूरी तत्काल वहा से उडकर समीप के एक वृक्ष पर जा वैठी और वही से उन्हे टुकुर-टुकुर निहारने लगी ।

मयूर के वे दोनो अण्डे उन्हे इतने अच्छे लगे कि एक बोल उठा, 'अहा ! कितने सुन्दर है, दोनो अण्डे । इन्हे हम घर ले चले और मुर्गी के अण्डो मे रख दे । फिर इनमे से दो वच्चे निकलेगे । नाच सिखाने पर वे खूब सुन्दर नाच करेगे । कितना आनन्द आएगा तब ।'

दूसरा मित्र बोला, 'तब चलो, दोनो अण्डे उठा ले ।'

आखिर, उन्होने वही किया, जो कहा था । बेचारी मयूरी डाल पर बैठी-बैठी करुण नेत्रो से उन दोनो को निहारती रही । शायद उसकी आखो से अश्रु-जल की दो बूदे भी टपक पडी थी । पर, क्या कर सकती थी वह । उन्हे रोकने की सामर्थ्य उसमे कहा थी ।

दोनो मित्र एक-एक अण्डा अपने घर ले गए और उन्हे मुर्गी के अण्डो के साथ रख दिया ।

कुछ दिन इसी प्रकार बीते। एक मित्र ने सोचा—जरा देखू तो सही, अण्डा सही-सलामत है या नही। अत उसने अडे के समीप जाकर उसे हाथ मे उठाया, कान के समीप ले जाकर बजाया, ठोककर देखा। सोचा—नही, अभी अडा नही पका है, अत पुन उसे वही रख दिया।

दो दिन भी नही हुए कि वह फिर उसे देखने पहुचा, कान के पास ले जाकर बजाया, ठोका, आभास हुआ—अभी भी अडा पका नही है। उसके मन मे कुछ सदेह हुआ। अब वह रोज आने लगा और रोज ही उसे ठोक बजाकर देखने लगा, किन्तु अण्डा पकता ही नही था। पकना तो दूर, इस प्रकार नित्य ठोकने बजाने मे वह नष्ट हो गया।

दूसरा वाला मित्र भी नित्य अपने वाला अडा देखने जाता। किन्तु उसे हाथ मे स्पर्श नही करता। सिर्फ दूर से अवलोकन करता। उसे पूरा विश्वास था कि अण्डा एक दिन अवश्य पकेगा और उसमे से बच्चा निकलेगा। हुआ भी वही।

जैसे ही वह बच्चा बडा हुआ, उसे नृत्य सिखाने के लिए एक शिक्षक नियुक्त कर दिया। वह दोनो वक्त उसे नाच सिखाता।

जब वह मयूर शावक खूब अच्छा नाचने लगा, तो उसने अपने बन्धु-बान्धव, परिजन आत्मीयो को उसका नाच देखने बुलवाया। सभी ने मयूर शावक के साथ-साथ उसकी खूब प्रशसा की। अपनी प्रशसा को सुनकर उसका मन भी मयूर की भाति ही नाच उठा। तभी उसकी दृष्टि अपने मित्र पर पडी। देखा—उसकी दोनो आखे अश्रुपूरित थी।

वह उठकर उसके पास गया। उसकी पीठ को सहलाते हुए सात्वनापूर्ण शब्दो मे बोला—भाई, तुम्हारी त्रुटि के फलस्वरूप ही तो अण्डा नष्ट हो गया। किन्तु दु ख मानने से क्या होगा ? तुम्हे विश्वास ही तो नही था कि अण्डा पकेगा और उसमे से बच्चा निकलेगा, तभी तो तुम बार-बार उसे बजाते, ठोकते रहे। परिणामत अण्डा नष्ट हो गया।'

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने छोटे-बडे शिष्यो को यह कहानी सुनाकर कहा—'आयुष्मन्, साधना का पथ दीर्घ होता है। इस पथ पर चलते हुए यदि कोई विश्वास खोकर शकाकुल हो उठे और सोचने लगे कि सिद्धि प्राप्त होगी या नही, तो वह साधना-पथ से भ्रष्ट हो जायेगा और उसी प्रथम मित्र की भाति प्रायश्चित्त करेगा। इसके विपरीत जो धैर्य और निष्ठा से अपने पथ पर अग्रसर होता रहेगा, वह अवश्य सिद्धि प्राप्त कर दूसरे मित्र की भाति मनोकामना-पूर्ति के उल्लास से आनन्दित होगा।

अपने को देखो

एक आचार्य ग्रामोनुग्राम विहरण करते हुए नगर मे पधारे व उद्यान मे ठहरे। शिष्य-मण्डली साथ थी। उन सब शिष्यो मे एक छोटा शिष्य बडा चचल था। उद्यान के एक तरफ कुम्भकार घडा बना-बना कर बर्तनो को सुखा रहा था। वह छोटा चेला जब बाहर जाता तो उससे रहा नही जाता। उस बालक मुनि ने निशाना ताक कर एक ककड घडो पर मारा, घडे फूट गये। कुम्हार को गुस्सा आया, ललकारते हुए कुत्सित भाषा मे जोर से बोला—महाराज! घडो को क्यो फोड रहे है? शिष्य धीरे से बोला—'मिच्छामि दुक्कड'।

कुम्हार ने आई-गई कर दी। ध्यान नही दिया। कुछ ही समय के पश्चात् वे बालक मुनि क्रीडा करते हुए बाहर आए। ककड फेका। बर्तन खण्डित होने लगे। कुम्हार ने सोचा—ये फिर आ गये। वह उठा और जोर-जोर से बोलने लगा—महाराज! अभी तो आपको मैने मनाही की थी, बर्तनो का नुकसान क्यो कर रहे हो? शिष्य बोला—'मिच्छामि दुक्कड'। इस प्रकार ककड फेकता गया और 'मिच्छामि दुक्कड' लेता गया। आखिर कुम्हार से रहा नही गया। वह रोषारुण होकर उठा। मुनि का कान पकड कर पीटने लगा। मुनि चिल्लाने लगे—अरे, मूर्ख! क्या कर रहा है? साधु को पीटता है। कुम्हार बोला—'मिच्छामि दुक्कड'। बालक मुनि बोले—अरे! कुम्हार तेरी यही विनय नीति है। मेरा कान तो खीचता रहता है और 'मिच्छामि दुक्कड' बोलता रहता है। इस 'मिच्छामि दुक्कड' मे क्या पडा है? बेकार बोलता रहता है।

कुम्हार धीरे से बोला—महाराज! दूसरो को देखना सरल है अपना निरीक्षण करना कठिन है। जैसे आप बर्तन फोडते गये और 'मिच्छामि दुक्कड' बोलते गये, आपने जैसा व्यवहार किया वैसा ही मैने किया। जैसा तुम्हारा 'मिच्छामि दुक्कड' वैसा मेरा 'मिच्छामि दुक्कड' है। बालक मुनि ने सोचा—कुम्हार के सामने मेरा तर्क निस्तेज है। यहा मेरी दाल नही गलेगी। निरुत्तर होकर उसने उपाश्रय की राह पकडी।

अविनय करते रहना, पाप करते रहना धोखा देते रहना और 'मिच्छामि दुक्कड' बोलते रहना इस कुम्हार वाले 'मिच्छामि दुक्कड' से आत्मा की शुद्धि होने वाला नही है। पाप के प्रति ग्लानि उत्पन्न होनी चाहिए। अपनी त्रुटि का भान होना चाहिए। अपनी गलती पर पश्चात्ताप होना ही 'मिच्छामि दुक्कड' की सार्थकता है।

केवल मिच्छामि दुक्कड से, नहीं [illegible] की [illegible]।
रखो घृणा निज पाप प्रति, जिससे जीवन [illegible]॥

राग कर्म बन्धन का हेतु है

भगवान् ऋषभ देव के युग मे मत बहुत ही ऋजु-जड थे। उनके मन मे कुटिलता का लवलेश भी नही होता था। यथार्थ कहने मे उन्हे तनिक भी सकोच नही था। एकदा शिष्य बाहर शौच के लिए गया। देरी से आया, गुरु ने पूछा—शिष्य! आज इतनी देर से क्यो आया? शिष्य बोला—गुरुदेव! मार्ग मे एक बहुत ही सुन्दर नृत्य हो रहा था, मेरा मन चचल हो उठा, मैं देखने लग गया अत. विलम्ब हो गया।

गुरु ने अपने शिष्य को कोमल शब्दो मे प्रशिक्षण देते हुए कहा—शिष्य! हम श्रमण है, हमारा पद बहुत ऊचा है। श्रमणो को नट-नृत्य देखना नही कल्पता है।

शिष्य ने हाथ जोडकर "तहत्त" कहकर गुरुदेव के आदेश को स्वीकार किया और वह विनयपूर्वक बोला—भविष्य मे ध्यान रखूंगा, गलती नही होगी।

कुछ दिनो बाद एक दिन वही शिष्य किसी कार्यवश बाहर गया। देरी से आया। गुरुजी ने पूछ लिया—शिष्य! आज फिर देरी मे कैसे आया? शिष्य बोला—गुरुदेव! मैं तो आ रहा था। मार्ग मे एक नर्तकी का नृत्य बहुत ही आकर्षक व मनोरजक हो रहा था उसे देखने लग गया।

गुरु ने उपालम्भ की भाषा मे कहा—मैंने पहिले निषेध किया था, नाटक नही देखना है। आदेश का ध्यान नही रखता है।

शिष्य—आचार्य देव! आपने नट का नृत्य देखने के लिए निषेध किया था किन्तु नर्तकी के नृत्य का निषेध नही किया था। अत मैंने तो नर्तकी का नृत्य...।

शिष्य की सरलता व जडता पर गुरु अवाक् रह गये और बोले—चाहे नाटक नट का हो या नटनी का, किसी का भी नही देखना है। नृत्य के अवलोकन से मन मे रागोत्पत्ति होती है। राग कर्म बन्धन का हेतु है।

शिष्य ने विनम्रता मे मधुर वाणी द्वारा निवेदन करते हुए कहा—महाराज! प्रमादवश मेरी गलती हो गई। भविष्य मे पूरा ध्यान रखूंगा।

बात शिष्य की श्रवण कर, हुए दग गुरुराज।
'मुनि कन्हैया' तरस है, सरल बुद्धि पर आज॥

हिम्मत निष्पत्ति

एक छोटा-सा गाव। भोलू नाम का ब्राह्मण। बात बनाने मे दक्ष। आस-पास के गावो मे तेल-गुड, घी-आटा बेच-बेच कर किसी तरह उदर-पोषण करता। बीहड मार्ग मे डाकुओ का भय, हरदम अपने पास तलवार रखता था। भोलू की धर्मपत्नी घर-घर जाकर अपने प्राण प्रिय पति की प्रशसा करती कि वे बडे जीवट वाले साहसी, वीर है।

हर दृष्टि से योग्य है। चारो तरफ भोलू मशहूर हो गया। एक दिन तेल आदि बेचकर थका-मादा वह घर पहुचा। थकावट अधिक थी। लेट गया और लेटते ही गहरी नीद आ गई, पर मुह पर मक्खिया भिन-भिनाने लगी। वह क्रोध मे लाल-पीला हो गया और कपडा डालकर एक साथ तीस मक्खियो के प्राण ले लिये। ब्राह्मणी को पता चला तो उसने सर्वत्र प्रसारित कर दिया कि 'पडितजी ने एक ही बार मे तीस वीरो को हताहत कर दिया। भोलू की सर्वत्र पूछ होने लगी। 'तीस मार खा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजभवन तक खबर पहुची। राजा प्रसन्न हुए व भोलू को आमन्त्रित किया गया। वीरता का पत्र प्रदान करता हुआ राजा ने घोषणा की—तेरे जैसे साहसिक उद्भट वीर पर मुझे गर्व होता है। अत मैं तुझे लडाई के मैदान मे सेनापति के पद पर नियुक्त कर भेजता हू। भोलू घबडा गया, रात भर नीद नही आई, किन्तु प्रात सेना के साथ भोलू चल पडा। भय से आकुल-व्याकुल था, मार्ग मे वृक्ष पर जा चढा। डाली टूटी। कधो पर डाली रखकर आगे बढा। अधीनस्थ सैनिको ने भी भोलू सेनापति की भाति वृक्षो की डालिया उखाड-उखाड कर कधो पर रख ली। बडे जोर-शोर से सैनिक और सेनापति समरागण मे पहुचे। शत्रु की सेना ने सबके कधो पर बडी-बडी डालिया देखकर गम्भीर चिन्तन किया। ये लोग तो बडे वीर, बलशाली है। खूब बलिष्ठ, बलवान है। बडे-बडे वृक्षो को उखाड फेकते है। हमको तो चुटकी मे मसल देंगे। अब यहा हमे रहना उचित नही। सभी सैनिक उल्टे पाव भाग चले।

भोलू जीत का डका बजाते अपने गाव पहुचा, सर्वत्र उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ। राजाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। अनेक पुरस्कार प्रदान किये गये। आस-पास के सभी गावो मे भोलू की विजय-दुदुभि बजने लगी, चारो ओर महिमा प्रसारित हुई। उसी दिन से भोलू 'तीस मार खा' की सभी प्रशसा करने लगे।

जो हिम्मती होते है वे किसी न किसी रूप मे अपना काम बना ही लेते है। हिम्मत उद्यम के साथ भाग्य की भी परम अपेक्षा रहती है।

'तीस मार खा' नाम से, भोलू हुआ प्रसिद्ध।
'मुनि कन्हैया' भाग्य से, पाता अनुपम सिद्ध॥

हर स्थिति में सम रहो

एक अद्‌भुत योगी था। उसके वचन मे सिद्धि थी। एकदा तीन मित्र उसके पास पहुचे। साष्टाग दडवत करते हुए तीनो ने योगी से वरदान मागा। एक ने कहा—नदी को दूधमय बना दो। दूसरे ने कहा—योगीराज! मुझे बैरिस्टर बना दो। तीसरे ने कहा—मेरा विवाह राजकन्या से करवा दीजिए।

योगी बडा परोपकारी था। उसने तीसरे मित्र से कहा—भैया! राजकुमारी प्रश्न पूछेगी उसका उत्तर इस प्रकार होशियारी से देना। योगी उसे लेकर राज-भवन मे पहुचा। बातचीत हुई। कन्या आई और बोली—मेरा पति वही बनेगा जो मेरे प्रश्न का उत्तर देगा।

प्रश्न—'क्या नही तिरिया कर सके, सिंधु क्या न समाय।
आग न किसको खा सके, किसको काल न खाय॥'

उस लडके ने बडी तरकीब से उत्तर देते हुए कहा—

'त्रिया सुत नही कर सके, जस जल निधि न समाय।
शील न आग जला सके, नाम काल न खाय॥'

प्रश्न का उत्तर मिलते लडकी ने वरमाला पहिना दी। राजा ने अपनी दुलारी पुत्री का विवाह बडे ठाठ से किया। योगी ने तीनो मित्रो की इच्छा को पूर्ण कर दी शिक्षायें देते हुए कहा—बन्धुओ (१) सम्पत्ति मे फूलना मत (२) धर्म को भूलना मत। योगी अदृश्य हो गया।

कुछ ही दिनो पश्चात् योगी याचक के रूप मे परीक्षार्थ आ पहुचा। सबसे पहले उस दूध वाले के पास गया और बोला—पाव दूध दीजिये। उसने पैसे मागे। योगी के आश्चर्य का पार नही रहा। सोचा यह सम्पत्ति के नशे मे चूर है। धर्म-कर्म सब भूल गया। उसने सारा दूध बन्द कर दिया।

योगी बैरिस्टर के पास पहुचा और बोला—साहब! मै केस के मामले मे फस गया, मुझे बचाइये। वह बोला पैसे बिना मैं किसी का भी केस नहीं लेता। यह सुनते ही योगी ने उसकी भी सारी जायदाद व आय खत्म कर दी। अब वह तीसरे के पास गया और सर्दी से ठिठुरता-कापता हुआ बोला—मुझे कपडा दीजिए। रहने के लिए मकान दीजिए। उसने योगी को सब कुछ दिया। सम्मान भी दिया। योगी बहुत प्रसन्न हुआ। बोला—इच्छित वर मागो, तैयार हू देने के लिए। योगी के प्रसाद से सातवे दिन उसे राज्य मिल गया। योगी अदृश्य होते-होते जोर से बोल पडा—जो व्यक्ति सम्पत्ति मे फूलता है और धर्म को भूलता है उस व्यक्ति का पतन-ह्रास अवश्यभावी है। जो हर एक स्थिति मे सम

रहता है, परोपकार की भावना रखता है, वह अपनी उन्नति मे सफल होता है।

सम्पत्ति और विपत्ति जीवन के दो अग हैं। महापुरुष वही होते है जो दोनो मे समभाव रखते हैं। सम्पत्ति का अह आते ही दोनो मित्रो की भाति ह्रास होने मे तनिक भी विलम्ब नही है।

फूलो मत सम्पत्ति मे, भूलो मत जिन धर्म।
दोनो मित्रो का सुनो, सही-सही सब मर्म॥

एक से अनेक

रमेश बहुत वर्षों के पश्चात् अपने गाव आया। समस्त क्रियाओ से निवृत्त होकर, अपने अनन्य मित्र सुरेश के यहा पहुचा। सालो बाद पारस्परिक मिलन से दोनो के हृदय खिल उठे। वार्तालाप प्रारम्भ हुआ कि सुरेश के मुह से दुर्गन्ध आने लगी। तब रमेश से रहा नही गया, जोर से बोला—मित्र! तुम आखिर शराब कब से पीने लग गये। इस पर सुरेश बोला—मैं कोई रोजाना शराब नही पीता हू। जब मास-भक्षण करता हू, सारी इन्द्रिया प्रबल हो जाती हैं, मानसिक उद्वेग बढ जाता है, तब विवश होकर मुझे मद्य का प्रयोग करना पडता है।

रमेश—धिक्कार! क्या मासाहारी भी बन गये?

सुरेश—अरे! चौक क्यो रहे हो? मैं प्रतिदिन मास का प्रयोग नही करता हू। जब वेश्या के पास जाता हू तब मास-भक्षण की इच्छा हो जाती है।

रमेश—(साश्चर्य) क्या तू वेश्यागामी भी है?

सुरेश—वेश्या के यहा जाना, ऐसा मेरा व्यसन नही है, जब कभी जुए मे एकाएक धन आ जाता है तो वेश्या के यहा जाने की इच्छा होती है।

रमेश—हाय! हाय!! जुआ भी खेलते हो! लानत है तेरे जीवन पर। सारी बुराइयो का तू सरताज बन गया। याद रखो, इससे तेरी जिन्दगी कभी भी शात नही रहेगी। हर जगह पतन-अधोगति-दुर्गति।

क्या यही हमारा जीवन-लक्ष्य है? स्मरण रहे, व्यसन-मुक्त मानव ही स्व-पर-निर्माण मे सफल हो सकता है।

एक के पीछे अनेक बुराइया अपने आप आती है। बुराइया तो बुरी होती है, लेकिन उससे भी बुरे होते है सस्कार और वे बुरे सस्कार ही नई-नई बुराइयो को जन्म देते रहते है। अत हर व्यक्ति को अपने सस्कारो का प्रतिक्षण निरीक्षण रखना चाहिए। प्रत्येक बुराई पर नियन्त्रण अकुश रखना, उनसे सदैव बचते रहना मे ही मानव-जीवन की वास्तविक सफलता है, यथार्थ उत्थान है।

एक व्यसन के योग से, पनपे व्यसन अनेक।
सहसा हुआ सुरेश का, सारा भ्रष्ट विवेक॥

झूठा अहं

राजा भोज अपने प्रासाद मे सोये हुए थे। पहरेदार चारो तरफ पहरा दे रहे थे। फिर भी चोर वडे होशियार होते है। पहरेदार निद्रालीन थे। अचानक एक चोर आता है। सैंध लगाकर राजभवन मे घुस जाता है। हीरे, पन्ने, माणक, मोती आदि विभिन्न प्रकार की धनराशि को चुरा कर ले जाने की तैयारी करने लगता है। इतने मे उसके हृदय मे वैराग्य भावना की लहर दौडी। विरक्ति का अकुर प्रस्फुटित हुआ। मन ही मन सोचने लगा—मनुष्य पूर्व जन्म के पापो से कोई अग-हीन वन जाता है। कोई कोढी, अधे, लगडे तथा दरिद्री वन जाते हैं। उसी अवसर पर राजा की निद्रा भग हो गई और अपनी सुकोमल शैया पर बैठा-बैठा निहार रहा है, चिन्तन कर रहा है—मेरे जैसा सम्पत्तिशाली इस धरा पर कोई नही है। रथ, घोडे, हाथी आदि सम्पदा का कोई पार नही है। अह भरी भाषा मे अपनी सम्पन्नता का उल्लेख करते हुए वोल पडा—

चेतोहरा युवतय सुहृदोऽनुकूला
सद्वान्धवा प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्या
वलन्ति दन्ति निवहास्तरला स्तुरङ्गा

मेरे मित्रगण मेरे अनुकूल हैं तथा मनोहरा मेरी युवती रानिया है। सुयोग्य वाधव हैं तथा मधुरभाषी दास-दासिया हैं, मदोन्मत्त हाथी है और चचल घोडे है।

उक्त तीन चरण राजा ने कहे तथा चौथा चरण वनाने का प्रयास होते हुए भी राजा से वन नही पा रहा था। तब उस चोर ने श्लोक का चौथा चरण वोलते हुए कहा—

"सम्मीलने नयनयो र्न हि किञ्चिदस्ति"।

नेत्रों के वन्द होने पर कुछ भी नही।

यह चरण सुनते ही राजा उद्वोधित हुआ। साश्चर्य उसने पूछा—भैया! तुम कौन हो? वह वोला—देव! मैं चोरी करने के लिये आया था। किन्तु चोरी करना तो मैं भूल गया और आपके मुख से नि सृत पद्यो को सुनने मे लीन वन गया। चौथा चरण वनाने का मौका मुझे मिला, अत मैं भी सौभाग्यशाली हू। राजा खुश होकर वोला—इस चौथे चरण ने मुझे झकझोर डाला। उद्वोधन मिला। असत्य अहकार पर सत्य का प्रहार हुआ। यह लो पारितोषिक।

किसी व्यक्ति को अपनी दौलत व सम्पदा पर झूठा अहकार नही करना चाहिये। आखें वन्द हो जाने के पश्चात् कुछ भी किसी का नही है। अत अध्यात्म मे रमण करना ही श्रेयस्कर है।

झूठी यौवन सम्पदा, झूठा सव ससार।
'मुनि कन्हैया' धर्म मे, रमण करो हर वार।।

हिम्मत की कीमत

वैलगाडी मे वैठकर चौधरी लूणाराम अपनी समुराल जा रहा था। वैल धीरे-धीरे चल रहा था। चौधरी ने कहा—अरे वैल ! क्या वात है ? धीमी गति से गति कैसे कर रहा है ? वैल वोला—स्वामिन् ! आपको विदित है कि मेरा जन्म आपके हाथो मे हुआ, आपकी देखरेख मे मेरा पालन-पोषण हुआ। आपके देखते-देखते अब मैं वृद्ध हो गया। दात गिर गए। सारे शरीर मे शिथिलता छा गई। घुटनो मे दर्द रहने लगा। खुर खोखले हो गए। सीगो की जडे भी ढीली पड गई। इधर गाडी कीचड मे फस गई। गाडी को खीचकर वाहर निकालने की शक्ति अब मेरे मे नही है। अव आप ऐसा करे कि मेरे गले मे वधा घटा अव किसी युवक वैल के गले मे वाध दे।

चौधरी ने कहा—वृषभराज ! आपका कहना विलकुल उचित है। किन्तु जो काम आप कर सकते है, वह काम नवयुवक वृषभो मे नही हो सकता।

वृषभ वोला— स्वामिन् ! आप मेरी वात पर विश्वास करे। कीचड मे फसी गाडी को निकालने मे युवक वैल वहुत ही सक्षम है। आप प्रयोग करे। मेरे से अव कुछ भी नही हो सकता।

चौधरी वोला—हे धवल वृषभ ! ससार मे हिम्मत की कीमत है। हिम्मत के सहारे कठोर से कठोर कार्य भी सरल वन जाता है।

यह सुनते ही वैल के मानस मे उत्साह द्विगुणित हो जाता है और चौधरी को इच्छित स्थल पर पहुचा देता है। चौधरी द्वारा वृषभ का सम्मान होता है।

ससार मे हिम्मत की कीमत होती है। हिम्मत के अभाव मे किसी भी व्यक्ति का विकास नही हो पाता। हिम्मत के अमित वल से दु साध्य कार्य भी सुसाध्य वन जाता है।

सुखकर होगा हर समय, हिम्मत का व्यवहार।
'मुनि कन्हैया' हिम्मती, वनता जग शृगार॥

'शब्द' का सही अर्थ

एक कमजोर व्यक्ति था। वह जीभ का वडा लोलुप था। खाने-पीने मे सयम नही रखता था। पेट की नाडिया शिथिल हो गई थी। भोजन खूब ठूस-ठूस कर करता था। लेकिन पचता नही था। डाक्टर के पास पहुचा। बोला—डाक्टर साहव ! दिनो-दिन कमजोर हो रहा हू। स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है। नीद भी नहीं

आती है। कृपया कोई ऐसी औषधि दीजिए जिससे मैं स्वस्थ बन जाऊं। डाक्टर साहब ने हर दृष्टि से अच्छी तरह से उसका निरीक्षण किया और कहा—आप पन्द्रह दिनों तक अमुक-अमुक केप्सूल व टेब्लेट का सेवन करें, अवश्य आपकी बीमारी शान्त हो जायेगी।

डाक्टर साहब के कथनानुसार दवा प्रारम्भ हुई। पन्द्रह दिनों तक दवा का सेवन करने पर भी स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ। आखिर उसने किसी वैद्य की शरण ली। हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से बोला—वैद्य जी ! मैंने कई दिनों तक अंग्रेजी दवा का आसेवन किया, फिर भी रोग शान्त नहीं हुआ। कृपया अब आयुर्वेदिक उपचार प्रारम्भ करें जिससे स्वास्थ्य-लाभ हो सके। वैद्य जी ने निरीक्षण कर कहा—शहद के साथ सितोपलादि चूर्ण दो महीनों तक लीजिये, स्वस्थ बन जाओगे।

बीमारी में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। दिनों दिन रोग पुनः बढ़ने लगा। आखिर वह हास्पिटल के प्रमुख चिकित्सक के पास पहुंचा और गद्‌गद् स्वर में बोला—डाक्टर साहब ! इलाज कराते-कराते थक गया। लेकिन अभी तक स्वस्थता नहीं आ रही है। अब आपकी शरण में हूं। डाक्टर साहब ने अच्छी तरह निरीक्षण कर कहा—तुम और खाना एक बार छोड़ दो, केवल डबल रोटी खाओ। उसने किसी आदमी से पूछा—भाई साहब ! डबल का क्या अर्थ होता है ? उस आदमी ने कहा—भैया ! डबल का अर्थ होता है दूना। वह अपने घर आया। चिन्तन करने लगा—प्रतिदिन मैं चार रोटी खाता हूं किन्तु अब मुझे दुगुनी रोटी खानी चाहिए। धर्मपत्नी से कहने लगा—आज मैं वरिष्ठ चिकित्सक के पास चला गया था। उन्होंने मेरा उपचार प्रारम्भ कर दिया है। दवाई भी ले आया हूं। डाक्टर साहब ने एक बात और कही है कि डबल रोटी खाना है। अतः आज आठ रोटी खिलाना, जिससे मैं स्वस्थ बन जाऊं।

संसार में कई ऐसे अनभिज्ञ व जिद्दी व्यक्ति हैं कि शब्द के सही अर्थ को तो पकड़ नहीं पाते, प्रत्युत उल्टा समझकर अपना नुकसान कर बैठते हैं। शब्द की गहराई में न जाकर मूल बात को भूल जाते हैं और बिना मतलब शब्दों में उलझ जाते हैं। वे कभी भी अपने जीवन में स्वस्थता का अनुभव नहीं कर सकते।

शब्दों में मत उलझिये, पकड़ो सच्चा अर्थ।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, होगा बड़ा अनर्थ ॥

नाम से कल्याण नही

स्थानकवासी सम्प्रदाय मे अलग-अलग टोले के अलग-अलग आचार्य होते है। पूज्य रुघनाथजी और पूज्य श्यामजी महाराज दोनो का चातुर्मास एकदा एक ही नगर मे था। सवत्सरी महापर्व का सुन्दर समय आया। इस शुभ अवसर पर पौषध अधिक से अधिक होने चाहिये। दोनो ही सम्प्रदायो की ओर से प्रबल प्रयत्न होने लगा। पूज्य रुघनाथजी के श्रावक घूम-घूम कर एक-एक व्यक्ति को समझाने लगे कि तुम सब को पौषध पूज्य रुघनाथजी के सान्निध्य मे करने है। इधर पूज्य श्यामजी महाराज के श्रावक-गण भी अपने स्थान मे अधिक से अधिक पौषध हो ऐसा भरसक प्रयास करने लगे। दोनो ही तरफ के दलाल अपनी-अपनी दलाली मे जुटे हुए थे। हर व्यक्ति अपनी रोटी के नीचे अगारे देते है, यह लोकोक्ति असत्य कैसे हो सकती है?

सवत्सरी महापर्व का स्वर्णिम दिवस उदित हुआ। लोग दोनो ही तरफ पौषध करने लगे। एक भीमजी नामक श्रावक भी अपने उपकरण लेकर पौषध के लिए आया। ज्योही वह चौराहे पर पहुचा, देखा कि दोनो ही तरफ के श्रावक वहा पर थे। अपने-अपने स्थानक मे पौषध हेतु लोग उनसे मनुहार करने लगे। आखिर रुघनाथजी के श्रावक ने कहा—भीमजी! तुम श्यामजी के स्थानक मे पौषध कर लो। एक से क्या फर्क पडेगा? खीचातानी मे क्या लाभ? आखिर भीमजी ने श्यामजी महाराज के स्थानक मे पौषध कर लिया। अन्त मे पौषधो की गिनती की गई तो श्यामजी महाराज के सान्निध्य मे एक पौषध अधिक हो गया।

दूर किसी नगर मे किसी एक आचार्य का चातुर्मास था। उन्होने जब सुना कि खीचातानी मे श्यामजी महाराज एक नम्बर से आगे निकल गये तो उन्होने एक दोहे मे कहा—

> धर्म तो छै जठै छै, बडो काम है नाम रो।
> एक भीम ने खीचता, निकलो ऊचो श्याम रो॥

धर्म तो होगा जहा होगा, आज बडा काम है नाम का। एक भीम को अपनी ओर खीचने से श्यामजी महाराज का नाम सबसे ऊचा हो गया। सब कहते है कि श्यामजी महाराज के सान्निध्य मे पौषध अधिक हुए है।

वास्तव मे धर्म आत्म-साधना मे होता है, केवल नाम की भावना रखने से आत्मा का कल्याण होने वाला नही है। अतः नाम की भावना को छोडकर जो व्यक्ति आत्मा मे रमण करता है वही धार्मिक कहलाता है।

> नाम वासना त्याग कर, बनो सभी स्वानन्द।
> 'मुनि कन्हैया' सहज सुख, पाता है आनन्द॥

हमारी नैतिक प्रतिष्ठा किधर

एक भारतीय विद्यार्थी उच्च शिक्षा हेतु इग्लैण्ड पहुचा। वहा किसी ग्वाले के घर मे ठहरा। एक दिन की वात है, गृह स्वामी की लडकी उस विद्यार्थी के पास आई। उसकी आकृति पीडा-रेखा से अकित थी। चेहरा एकदम उदास था। भारतीय छात्र ने जिज्ञासा की—वहिन क्या समस्या है? आज वदन पर विषाद इतना प्रवल क्यो? उसने कहा—भैया! मेरे पिताजी दूध वेचते है। दूकान अच्छी चलती है। सभी ग्राहको के दिल मे गहरा विश्वास जम गया है, लेकिन न जाने क्यो आज दस सेर दूध घट रहा है। अनेक ग्राहको को खाली हाथ लौटाना पडेगा। यही है विषाद।

भारतीय विद्यार्थी बोला—इसका समाधान तो मैं ही वता सकता हू। आश्चर्य, वडा आश्चर्य कि लाखो-लाख जनो पर प्रशासन करने वाली अग्रेज जाति समस्या का हल ढूढने मे असमर्थ। इससे वढकर अचरज और लज्जा क्या? आपके पिताजी दक्ष वुद्धि वाले नही। वहिन! जल्दी जाओ और पिताजी से कहो—दूध मे १० (दस) पौंड पानी मिला दे—चिन्ता की कोई जरूरत नही।

लडकी दौडी। पिताजी के पास पहुची। हाथ जोडकर वोली—पिताजी! उस भारतीय विद्यार्थी का सुझाव है कि दूध मे पानी मिला दो। और यही है समस्या का सही समाधान। इस पर वह अग्रेज ग्वाला आग-ववूला हो गया। विद्यार्थी के पास तेजी से लपका और ललकारते हुए तीक्ष्ण स्वर मे कहा—देखो, यह तुम्हारा भारत नही है। ग्राहको को खाली हाथ लौटाना मजूर, किन्तु जनता के स्वास्थ्य को नुकसान पहुचा कर देश की जनता के साथ गद्दारी करना किसी भी कीमत पर मजूर नही। यह दानवीय व्यवहार है, मानवता के साथ सरासर धोखा है। ग्वाला अत्यन्त क्रुद्ध था। उसने उस भारतीय छात्र को तत्काल वहा से वाहर निकाल दिया।

यह है भौतिकवादी पश्चिम की प्रामाणिकता। इससे स्पष्ट है कि भारतीय वृत्ति मे नैतिकता का सर्वथा अभाव है। राष्ट्र की नैतिक प्रतिष्ठा पर काला धब्बा हमारे पतन की पराकाष्ठा है जिसका उन्मूलन अनिवार्य है। नैतिकता व प्रामाणिकता ही जीवन की सही सम्पदा है।

भारतीय उस छात्र को, घर से दिया निकाल।
'मुनि कन्हैया' नीति मे, चमक गया वह ग्वाल॥

पात्र देखकर ही शिक्षा दो

गुरु और शिष्य एक गाव मे ठहरे हुए थे। एक दिन गुरुदेव ने महती कृपा कर अपने शिष्य को शिक्षामृत पिलाते हुए कहा—चेला! कही भी वाहर जाते हो तो सिर पर पगडी वाध कर जाने से कदम-कदम पर तेरा सम्मान वढेगा। नगे सिर वाहर जाना अच्छा नही लगता।

शिष्य ने विनय पूर्वक हाथ जोडकर कहा—गुरुवर! आपने जो शिक्षा फरमाई, उसी के अनुसार मेरी गति होगी।

अचानक किसी कार्यवश चेला वाजार गया पर चेले ने सोचा—गजब हो गया, पगडी वाधकर नही आया। उपालम्भ मिलेगा, अव क्या करना चाहिए? अगर गुरुदेव की शिक्षा को याद रखता तो मेरा अवश्य ही सम्मान वढता। आखिर उसने अपनी धोती खोलकर सिर पर वाध ली। दिल मे गहरा विश्वास था—अव मेरी पूजा होगी। सर्वत्र प्रतिष्ठा वढेगी। जो भी देखेगा, मुझे महामहोपाध्याय समझेगा। आगे वढा, मुख्य वाजार मे पहुचा। लोगो ने उपहास करना प्रारम्भ कर दिया—अरे! यह कौन महामूर्ख है? इस प्रकार नग्न फिर रहा है। चेला कडक कर जोर से वोला—जरा सम्भल कर वोलो। वोली का विवेक ही मानवता है। अपशब्दो का प्रयोग करने की कोई जरूरत नही है। अपने गुरुदेव की शिक्षानुसार ही मैंने यह कार्य किया है!

लोग तेजी से दौड पडे, गुरु के पास पहुचे। सविनय वोले—आपने अपने शिष्य को यह क्या शिक्षा दी? गुरु सारा हाल सुनकर एकदम चौक पडे और वोले—मूर्ख मनुष्य को शिक्षा नही देनी चाहिए। मूर्ख को दी हुई हितकर शिक्षा भी नुकसान का हेतु वन जाती है। वेमतलव अन्यो को उपहास का अवसर मिलता है, अत पात्र देख कर ही शिक्षा देनी चाहिए अन्यथा लाभ के वदले नुकसान की सम्भावना वनती है।

राजस्थानी कहावत चरितार्थ हो रही है—'मूरख नै टको देणो पण [illegible] नही देणी'। मूर्ख मानव को दिया हुआ [illegible] ज्ञान भी प्रत्युत घातक सिद्ध होता है। इसलिए मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है, [illegible] है हित-कर है।

शिक्षा मत दो मूर्ख को प्रत्युत है नुकसान।
'मुनि कन्हैया' पात्र विन, नही [illegible] निर्माण॥

विवेकी राजा

एक बहुत बडा नगर था। नगरी के सम्राट का अकस्मात् देहावसान हो जाने से सर्वत्र सन्नाटा छा गया। राज्य का सचालन सुचारु रूप से अब कैसे होगा? कुशल नेता के अभाव मे सारी जनता पीडित व चितित हुए बिना कैसे रह सकती थी। राजा सतानहीन था। राज्याभिषेक किसे किया जाये? राज्य का भार कौन सम्भालेगा? राज्य के अधिकारियो ने गहराई से चिन्तन किया, अब क्या करना चाहिये। अधिकारीगण समस्या का समाधान खोजने के लिए एकत्रित हुये। मन्त्री ने अपने बुद्धि-बल से कहा—मेरे पास एक बाज है, जो पढाया हुआ है। आप सबको उचित लगे तो उडा दू। वह जिसके सिर पर बैठेगा, उसे ही राजा बना दे।

सभी सभासदो ने एक ही स्वर मे कहा—मन्त्रीवर! आपका कथन अक्षरश: सत्य है, आप जैसा उचित समझे वैसा ही प्रयोग करे। अपन सबको राजा चाहिये। सबकी सहमति पाकर बाज उडाया गया। वह बाज उडता-उडता शहर के बाहर नदी के किनारे पर बैठे हुए एक लकडहारे के सिर पर जा बैठा। सबके हृदय मे प्रसन्नता का पार न रहा। जय-जय की ध्वनि से गगन गूँजने लगा। मन्त्री ने अपनी स्पष्ट व सुकोमल भाषा मे कहा—यही व्यक्ति हमारे नगर का राजा होगा। उसे महलो मे ले जाकर स्नान करवाया गया, सुन्दर-सुन्दर कपडे पहनाये गये। मगल वेला व मगल घडी देखकर राज्य सिंहासन पर बैठा कर राज्याभिषेक कर दिया गया।

कुछ ही समय के बाद राजा उठने लगा तब वयोवृद्ध मन्त्री के कधे का सहारा लेकर उठा। यह अनोखा दृश्य देख कर मन ही मन सब हसने लगे। स्वय मन्त्री भी हसा। एकान्त का समय देखकर राजा ने मन्त्री से पूछा—मन्त्रीवर! बात समझ मे नही आ रही है। आप सबको हसी क्यो आई? मन्त्री ने कहा—मुझे हसी इसलिए आई कि कल तक तो आप लकडियो को उठाकर लाते थे और आज उठने मे भी मेरे जैसे बूढे के कधो का सहारा ले रहे है। राजा ने कहा—मैं कन्धो का सहारा इसलिए ले रहा था कि मैं तो अनपढ और शासन सचालन करने मे असमर्थ हू, पर इन कधो के सहारे राज्य शासन को चला सकूँगा या नही। राजा के इस विवेक भरे कथन से मन्त्री के हृदय मे विस्मय का ठिकाना न रहा। सोचा। समझा। गद्दी का अचूक प्रभाव। गद्दी पर बैठते ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरने लगता है।

गुरु चाहे उम्र मे छोटा हो या बडा। गुरु तो महान ही हुआ करते हैं। सिंह का बच्चा, क्या छोटा क्या बडा। यदि कोई अल्पज्ञ व्यक्ति अपने अह मे गुरु को

अल्पज्ञ व छोटा मानता है तो वह उचित व श्रेयस्कर नही होता।

गुरु चाहे छोटे वडे, समझो पूज्य सुपात्र।
करना मत आशातना, गुरु की किंचिद् मात्र॥

गुरु द्वारा ज्ञान

लुकमान नाम का एक वहुत वडा सुप्रसिद्ध हकीम था। वह विविध क्षेत्रो मे निष्णात था। उसकी प्रतिभा के सामने वडे-वडे पडित लोग भी अवनत शीष रहते थे। वह विविध रासायनिक प्रयोग करने मे सिद्धहस्त था। उसने अपने अनुभव के आधार पर एक ग्रन्थ का सुन्दर निर्माण किया, जिसमे रासायनिक विद्या के वहुत से नुस्खे सन्निहित थे। एक दिन उसका लडका उस पुस्तक को पढ रहा था। इस पुस्तक की जानकारी किसी व्यक्ति को मिली। उसने सोचा यह पुस्तक मेरे पास आ जाये, ऐसा प्रयास करू। मौका देखते-देखते एक दिन उसने उस पुस्तक को चुरा लिया। पुस्तक का अध्ययन किया। सोना वनाने की विधि को देखकर सोना वनाने लगा। वह वहुत गरीव था, फिर भी वहुत-सी वस्तुए नष्ट करने पर भी जव सोना नही वना, तव उसके हृदय मे आश्चर्य के साथ-साथ क्रोधानल की भभकने लगा। उसने गालिया देनी प्रारम्भ कर दी—यह लुकमान वडा धोखेवाज है चालाक है। वाजार के वीच मे हकीम का पुतला वनाया। सैकडो-सैकडो व्यक्ति एकत्रित हो गये। सवके सामने उस पुतले के सिर पर जूते मारने लगे। सर्वत्र लुकमान की अपनिंदा होने लगी।

सयोग से अचानक लुकमान का वहा आगमन हो जाता है। उसने रग-ढग देखा। सारा भेद जाना। तव उसे वहुत आश्चर्य हुआ। हकीम ने कहा—मैंने जो लिखा है, वह विल्कुल सत्य है। इसी पुस्तक के आधार पर मैं सवके सामने सोना वना रहा हू। जैसा कहा वैसा कर दिखाया। लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और सव लुकमान की प्रशसा करने लगे। हकीम वोला—वन्धुओ! नुस्खा लिखने मे दोष नही हैं। दोष है इसके समझने मे। वह व्यक्ति लज्जित होकर वडी विनम्र भाषा मे वोला—हकीम साहव आप सच्चे हैं। आपने जो भी लिखा है, वह यथार्थ है। मेरी समझ का ही दोष है। मेरे अज्ञान को आप ही दूर कर सकते है।

लुकमान उस पुस्तक को सोना वनाने वाली भट्टी मे सवके सामने डाल देता है। सवने आश्चर्य से पूछा—ऐसा आपने क्यो किया? हकीम वोला—अभी तक तो ऐसे कुपात्र के हाथ मे पुस्तक गई, मुझे जूतो की चोटे सहनी पडी। कल न जाने

यह पुस्तक किसके हाथ मे पहुच जाये, वह कुपात्र क्या कर बैठे। अत इस पुस्तक को जलाना ही उचित समझा। पुस्तक जलकर राख हो गई।

कोई कितना ही पुस्तको मे अध्ययन कर ले, उसका अध्ययन सफल नही होता। गुरु गम से प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है। केवल किताबी पडित प्राय अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं। अत पात्र देखकर ही विद्या दान करना श्रेयस्कर होता है।

गुरु गम से सप्राप्त जो, ज्ञान वही सद्ज्ञान।
'मुनि कन्हैया' पुस्तकीय, ज्ञान नही फलवान॥

दुष्कृत अनुरूप सजा

वेनातट नगर मे मूलदेव नाम का राजा राज्य करता था। उस नगर मे मडित नाम का चोर रहता था। वह चोर बिना दर्द ही पैरो पर पट्टा बाधकर पगु की भाति घर-घर फिरता और स्वर्णकार का काम करता। दिन मे घर की सारी जानकारी कर लेता और रात्रि मे उसी घर मे चोरी करता। गाव के बाहर तहखाना बनाया हुआ था। वहा पर वह सारा धन भेज देता था। तहखाने मे उस चोर की बहिन रहती थी। वहा पर एक प्रपच रचा हुआ था। धन माल किसी मजदूर के साथ तहखाने मे रखने के लिए भेजता था। बहिन कहती—धन यहा रख दो। तुम बाहर चलो कुए पर। वहा पर मैं आतिथ्य सत्कार करूगी। ऐसा कह कर कुए के तट पर उसे बिठा कर पैर धोती और धक्का मारकर कुए मे डाल देती। ऐसा क्रम निरन्तर चलता रहा। लेकिन चोर पकड मे नही आया।

राजा काफी चिंतित—क्या करू। चोर कैसे पकडा जाये। उसी चिंता-चिता मे डूबने लगा। आखिर वह मजदूर रूप बना कर शहर मे घूमने लगा। एक दिन मडित चोर से भेंट हो गई। चोर ने उसी मजदूर के साथ तहखाने मे रखने हेतु धन भेजा। वह श्रमिक (राजा) चला। तहखाने मे धन रखा। बाहर आया। कुए के तट पर बैठा। बहिन पैर धोने लगी। चरणाकित पद्मरेखा देखकर उसने सोचा—यह मजदूर नही है, राजा है। इसके साथ मेरी शादी हो जाय तो अच्छा। वह उससे मोहित व प्रभावित होकर बोली—देव! मैं समझ गई। आप राजा है। यदि आप मेरे भाई को जीवित छोड दे तो मैं आपके साथ विवाह करना चाहती हू। मेरा भाई सुनार का रूप बदल कर घर-घर मे फिरता है, रात्रि मे चोरी करता है। धन लेकर मजदूर यहा आता है, मैं उसको कुए के तट पर बिठा-कर आतिथ्य सत्कार करती हुई कुए मे ढकेल देती हू। आप शहर मे पधारे। मेरे

भाई से विवाह के सम्बन्ध मे बात कर लीजिए। यह सारा धन का खजाना आपश्री के चरणो मे अर्पित।

राजा शहर मे गया। मडित चोर को पकडा। वार्तालाप करते हुए राजा ने कहा—तेरी बहिन मेरे साथ शादी करना चाहती है। मै अभी बात करके आया हू। दोनो के विचार एक होते ही राजा के साथ उसका विवाह हो जाता है। धन का मालिक भी वह बन जाता है।

आखिर राजा ने मडित चोर को शूली का दण्ड देते हुए कहा—तेरे भयकर अपराध को क्षमा कैसे कर सकता हू। चोरी के साथ-साथ तूने अनेक व्यक्तियो के प्राण लूटे हैं। तेरा जैसा लुटाक मैंने आज तक नही देखा। मडित चोर ने जैसा दुष्कृत किया वैसा उसे फल मिल गया। वह मर कर नरकवासी बन जाता है।

जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिल जाता है। "पर धन धूलि समान" पराये धन को जो धूल के समान समझता है वह हर एक के लिए विश्वास का पात्र बन जाता है। विश्वासी मानव जहा जाता है वहा उसका सम्मान होता है। अत हर व्यक्ति को इन दुष्प्रवृत्तियो से दूर रहना चाहिए।

तस्कर नर लुटाक का, होना दुर्गति द्वार।
निम्न मनुज का जगत मे, जम न सके विश्वास।।

गुस्से की अचूक दवा

एक महिला को बहुत गुस्सा आता था। बडा तेज स्वभाव। आखे हर दम लाल। अधरावली मे कम्पन। सास कोई भी बात पूरी नही कह पाती, [illegible] वह उछलने लग जाती, बन्दर की भाति। घर मे कलह कदाग्रह होता रहता। सर्वत्र अशाति। सब परेशान हो गए। क्या करे, इसको कहा छोडे। सुख से खाना भी नही खाने देती, न ही पूरी नीद लेने देती है। [illegible] कब ! हर वक्त कौवे की भाति का-का करती रहती है। खाने के लिए [illegible] भाति दौडती है।

पास मे एक समझदार पडोसी रहता था। [illegible] दक्ष था। अनुभवी था। सुख-दु ख मे सहायता करता था। [illegible] उस चिकित्सक के घर जा पहुची। हाथ जोडकर बोली—[illegible] है। घर मे कदाग्रह होता रहता है। [illegible] मेरी सास परेशान, घर के सारे सदस्य परेशान [illegible] है। आप एक कुशल चिकित्सक है। इसका कोई चिकित्सा प्रारम्भ करे। [illegible]

ऐसी दवा दे, जिससे मेरा क्रोध शात हो जाए। घर का वातावरण शात बन जाए।

अनुभवी वैद्य ने कहा—बेटी ! एक दवा देता हू। पर उसका पथ्य कडा है। अगर तू ध्यान रखेगी तो तेरा सारा रोग शात हो जायेगा। वह बोली—महोदय ! आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूगी। वैद्य अन्दर कमरे मे गया, बोतल लाया और बोला—पुत्री ! यह लो दवा, इससे तुम्हारी सारी बीमारी दूर हो (मिट) जायेगी। जिस समय तुम्हे गुस्सा आये, उस समय यह दवा ले लेना, किन्तु पथ्य का ध्यान रखना। पन्द्रह मिनट तक इस दवा को मुह मे रखना पड़ेगा, जिससे अच्छी तरह पूरी लार उसके साथ मिल जाए। जो भी खाया जाता है, पीया जाता है, उसमे लार नही मिलती तो ठीक से पाचन नही होता। यह दवा तभी काम करेगी जब पन्द्रह मिनट तक मुह मे इसे घुमाती रहो। जब पूरी लार मिल जाएगी तो यह ऐसी कीमती दवा है कि पहले ही दिन अपना प्रभाव डाल देगी। विनयपूर्वक वह महिला बोली—वैद्य जी ! आपने मुझ पर बहुत अच्छी कृपा की। पथ्य का ध्यान रखूगी। दवा लेकर वह अपने घर चली गई। प्रतिदिन की भाति झगडा होना तो स्वाभाविक ही था। ऐसा क्रम बना हुआ था कि सास को बहू से, बहू को सास से लडे बिना शान्ति नही मिलती थी। परस्पर झगडा आरम्भ हुआ। किसी तुच्छ बात पर सास को गुस्सा आया। बहू भला कब चूकने वाली थी परन्तु आज तो दवा ले आई, सोचा दवा ले लू। भीतर गई। दो घूट मुह मे डाल कर वापिस बाहर आ गई। मुह भरा था। बोले तो कैसे बोले। बोलने वाली तो थी किन्तु पन्द्रह मिनट तक तो पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। पन्द्रह मिनट तक बिलकुल नही बोली। सास का गुस्सा पाच-सात मिनट मे ही शात हो गया। गुस्सा तब बढता है जब ईंधन मिले। ईंधन न मिलने से आग अपने आप बुझ जाती है। ईंधन न मिलने के कारण सास भी बोलती-बोलती बद हो गई।

बहू ने सोचा—दवा तो बहुत ही अच्छी है। पहले ही दिन चमत्कार। इसी प्रकार दो-चार दिन दवा का प्रयोग चालू रखा। झगडा बद। गुस्सा बद। सब कुछ समाप्त हो गया। वह दौडी-दौडी चिकित्सक के पास गई और बोली—पिताजी ! दवा तो बहुत बढिया दी। आपने कहा था कि पाच-दस दिन मे शाति हो जायेगी। लेकिन दवा ने तो पहले ही दिन अपना प्रभाव दिखला दिया। अब कुछ भी समस्या नही है। घर मे मानो स्वर्ग उतर कर आ गया हो। बडी शाति। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द।

वैद्य ने पूछा—बेटी ! पथ्य का पालन सम्यक् प्रकार किया ? उसने कहा—पिताजी ! जैसा आपने कहा वैसा ही किया।

गुस्से की अचूक दवा है मौन। समय पर जो व्यक्ति मौन को स्वीकार कर लेता है उसको बहुत ही सुमधुर फल मिलता है। गुस्सा आने पर हर व्यक्ति को

दो-चार मिनट का मौन लेना चाहिए, जिससे घर का वातावरण अपने आप शान्त हो जाता है।

गुस्सा आने पर त्वरित, मौनी रहो नितान्त।
'मुनि कन्हैया' क्रोध तो, होगा पुन प्रशान्त॥

बैंक मे सम्पत्ति

सेठ बुलाकीराम करोडपति सेठ था। घर मे किसी प्रकार की कमी नही थी। हर दृष्टि से सम्पन्न था। सेठजी ने अपने पुत्र का नाम रखा अमीरचन्द। कुछ दिनो पश्चात् मोटर दुर्घटना मे माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। अमीरचन्द घर मे अकेला रह गया। नाम से वह अमीरचन्द अवश्य था, किन्तु खर्च करने मे बडा कजूस था। उसकी कजूसी को देखकर साथियो ने उसका नाम कजूसचन्द रख दिया। जो भी आय होती वह उसे बैंक मे जमा करता जाता। समय-समय पर साथी उससे कहते रहते—मित्र! धन क्या साथ जाएगा? इतनी कजूसी करना उचित नही है। वह कहता—यह मेरी घरेलू बात है। किसी को भी हस्तक्षेप करने की अपेक्षा नही है। तुम लोगो की तरह मैं फालतू खर्च करने वाला नही हूँ और अधिक खर्च करना भी मुझे पसन्द नही है।

लोभी व्यक्ति का धन स्वय के उपभोग मे नही आता है, पर दूसरो के उपभोग मे आता है। अमीरचन्द के नौकर-चाकर भी परेशान होकर कहते—बाबूजी! खान-पान मे इतनी कजूसी वरतना बुद्धिमत्ता नही है। किन्तु वह किसकी मानने वाला था! धीरे-धीरे सारे नौकर वाबूजी से विदा हो गए। उसके सामने खाना वनाने की नई समस्या उत्पन्न हो गई। भूख लगी। बाबू होटल मे पहुँचा। उच्च स्तर का भोजन चाहिए, ऑर्डर दिया। भोजन समाप्ति के पश्चात् ज्यो ही बिल आया तो घवडा गया। इधर-उधर दौड जाने की सोचने लगा। होटल के मालिक ने कहा—वाबूजी! विल पेमेंट कीजिए। उसने कहा—मेरे पास पैसे नही हैं। इसके वदले मे वर्तन साफ करवा लीजिए।

लाखो-करोडो की सम्पत्ति का अधिनायक कजूसी के कारण होटल मे [illegible] करने लगा। अब वह वही रहने लगा और होटल का बचा-खुचा [illegible] करने लगा। उसके एवज मे प्रतिदिन दर्शन लाभ [illegible]। [illegible] उसने धीरे-धीरे अपना सारा इस्टेट बेच कर रुपये बैंक मे जमा करा [illegible] टूटी-फूटी झोपडी मे रहने लगा। कपडे तार-तार हो गए [illegible] दिए। कजूसचन्द अब भयकर रोग से ग्रस्त हो गया। [illegible] खर्च करना उसने उचित नही समझा। वही [illegible]

यमराज का अतिथि बन गया। उसकी सारी सम्पत्ति बैंक मे रह गई।

जो व्यक्ति कजूस व लोभी होता है वह यहा पर भी सुखी नही होता और परलोक मे भी सुखी नही होता है। अत लोभ सर्वथा त्याज्य है। लोभी आदमी न सुख मे जी सकता है न ही शयन कर सकता है।

नही सौख्य को पा सके, लोभी नर कजूस।
भोग न सकता वित्त को, मानव मक्खीचूस ॥

क्षमाशील बनो

सत तुकाराम बडे निस्पृही थे। शात स्वभावी एव क्षमाशील। भ्रमण करते-करते अचानक एक गन्ने के खेत मे जा पहुचे। खूब गन्ने काटे व सिर पर गन्नो का गट्ठर लादकर चल पडे पर मार्ग मे बच्चे पीछे लग गये व उनसे गन्नो की माग करने लगे। सत तुकाराम बडे उदार प्रकृति के थे—वे किसी को क्या अस्वीकार करते ! और फिर अबोध बच्चो का आग्रह। सभी को गन्ने देते चले गए—बच्चे भी गन्नो का रसास्वादन करते रहे। घर पहुचते-पहुचते महात्मा तुकाराम के पास सिर्फ एक गन्ना ही शेष रहा।

लेकिन सत श्री की धर्मपत्नी रखुबाई बडे ही तेज चिढचिढे स्वभाव की महिला थी। वाणी मे कर्कश, व्यवहार मे तीखी। माधुर्य व विनम्रता का उसमे नितान्त अभाव था। पतिदेव के कन्धे पर सिर्फ एक ही गन्ना देखकर गुस्से मे लाल हो गई। बुरी तरह जल-भुन गई। लगी अनर्गल बकवास करने। आपे से बाहर थी कि गन्ना छीन कर सत जी की पीठ पर मारा। गन्ना टूट गया, दो टुकडे हो गये।

परन्तु, सरल हृदय तुकाराम जी हसने लगे। पुलकित वचन बोल पडे—बहुत अच्छा हुआ। तुम समझदार हो, चिन्तनशील हो। दोनो के लिए गन्ने के दो टुकडे मुझे करने पडते। तुमने बिना कहे मेरा यह कार्य कर दिया। बडी शान्त साध्वी हो तुम। धन्य है तुम्हारे ज्ञान-व्यवहार को।

सत श्री का ऐसा कोमल मृदुल बर्ताव देख रखुबाई पानी-पानी हो गई। पति-देव के चरणो मे उनका सिर झुक गया। एकदम अवाक् हो गई।

यह है क्षमा की पराकाष्ठा। क्रोध पर क्षमा की अद्भुत विजय। किसी भी स्थिति मे इन्सान को क्रोध नही करना चाहिए। क्षमाशील मानव लोकप्रिय बन सकता है। क्षमा मानव का आभूषण है। अत क्षमाशील बनो।

सुन कर तुकाराम का, अनुपम नव दृष्टात।
'मुनि कन्हैया' हर कदम रखना क्षमा नितात ॥

बुद्धिमान

एक नगर मे एक बडे सेठजी थे। परोपकारी, गम्भीर और अत्यन्त बुद्धिमान। उनकी धर्मपत्नी भी वैसी ही चतुर, धर्म प्रवीण व गृह कार्य मे दक्ष-निपुण। बडी हवेली, नौकर-चाकर, चपरासी सब हर क्षण ड्यूटी पर तैनात, किन्तु सन्तान के अभाव मे सभी कुछ नीरस शुष्क।

एक दिन सेठानी सेठ पर बिगड पडी कि मैं एक लखपति नही, करोडपति की पत्नी हू, पर घर मे बेटा नही। नौकरो के भरोसे कब तक घर की चौकीदारी होगी? कैसे भी हो एक पुत्र तो होना ही चाहिए। बढते व्यवसाय की रखवाली तभी हो सकेगी। उस दिन चोर आए, नौकर सो रहे थे अत मनमाना धन लूटकर अपनी जेबे गरम कर गए।

आखिर दोनो ही पुत्र की खोज मे एक प्रख्यात साधु के पास पहुचे। साधु ध्यान मग्न थे। गहरी इन्तजारी के उपरान्त जब साधु ध्यान-मुक्त हुए तो अपनी समस्या साधु के समक्ष प्रस्तुत की। साधु ने वरदान दिया। साल भर के उपरात एक पुत्र की उत्पत्ति हुई।

बडी धूमधाम से पुत्र का नाम संस्कार हुआ। नाम रखा गया वाघसिह। वाघसिह बचपन मे ही होनहार था, कुशाग्र बुद्धि, चरित्र-निष्ठ, आज्ञाकारी।

एकदा रात्रि मे चोर घुस पडे। कोतवाल का नाम भी वाघसिह था, सेठजी ने चातुर्य से कोतवाल को आमन्त्रित किया।

वाघाजी ओ वाघाजी, पोटा आजो आपा जी।
साठ वर्ष की खजूरा के, ए कार फल लागा जी॥

कोतवाल आ धमका, चोर पकडा गया। सेठजी की बुद्धिमत्ता पर लोग दंग थे। सेठ के पुत्र वाघसिह ने सोचा— पिताजी मुझे बुला रहे हैं। वह भी आया। रहस्य खुला। सारे घर मे हर्ष की लहर दौड गई।

मूर्ख पुत्र

एक वृद्ध मानव था। उनके पाच पुत्र थे। पाचो की प्रकृति [illegible] थी। वृद्ध अचानक बीमार पड गया। एक पुत्र ने कहा—डॉक्टर [illegible] को बुलाना चाहिए। दूसरे ने कहा—डॉक्टर की अपेक्षा आयुर्वेदिक [illegible] होता है। [illegible] चूर्ण से पिताजी स्वस्थ बन जायेंगे। तीसरे पुत्र ने कहा—होम्योपैथिक [illegible] से तत्काल लाभ होता है। चौथे ने कहा—प्राकृतिक चिकित्सा [illegible]। [illegible]

परस्पर झगडा हो गया। अपने-अपने चिन्तन पर सब भाई अडिग थे। पाचवा भाई देख ही रहा था चारो की आपसी खीचातानी। वह जोर से बोल पडा—झगडो मत ! इस तनाव व लडाई का मूल कारण है यह बुड्ढा। यह बुड्ढा क्या काम आता है, निकम्मा है। इसे परलोक पहुचा दो। सारा झगडा खत्म हो जाएगा।

बुड्ढा सुन ही रहा था। वह धीमे स्वर मे बोल पडा—पुत्रो ! आपस मे लडो मत। मैं अपने आप स्वस्थ हो जाऊगा। मुझे किसी भी औषधि की अपेक्षा नही है। पुत्रो ! मुझे मार मत देना।

चारो पुत्रो ने कहा—पिताजी ! घबराइये मत। आप हमारे जन्मदाता हैं। पिता की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। हम तो आपस मे इसीलिए विचार-विनिमय कर रहे है कि कौन सी दवा से पिताजी का शरीर स्वस्थ बना रहे।

इतने मे ही पाचवा पुत्र उछल पडा। विवेकहीन बन कर बोला—क्यो इतनी बेकार बाते कर रहे हैं ? सचमुच वह मूर्ख बन्दूक लेकर पहुचा और पिता का सफाया कर दिया। सब देखते ही रह गये।

यह है विवेकहीनता की पराकाष्ठा। यह है नृशसता और निर्दयता का दुष्परिणाम। मूर्ख पुत्र के कारण बुड्ढे को बिना मौत मरना पडा। शिक्षा के अभाव मे पुत्र भी शत्रु बन जाता है।

ज्ञान बिना सुत तात का, बनता शत्रु महान्।
'मुनि कन्हैया' हो गया, बुड्ढे का अवसान॥

दक्षता से सफलता

एक छोटे जागीरदार थे ठाकुर रणजीतसिहजी। बुद्धि की स्फुरणा उनमे अधिक नही थी। एकदा वे ससुराल जा रहे थे। मार्ग मे सोचा—ससुराल मे तलवार की अपेक्षा नही रहेगी। अब इसको रखा क्या ? आखिर उन्होने एक गड्ढा खोदा। तलवार को छिपा कर वे अपनी ससुराल चले गये। दूरस्थ चौधरी नानूराम ठाकुर साहब की चालाकी को देख रहा था। उसने मन ही मन सोचा—तलवार तो बडी कीमत वाली है, ऐसी कोई कला दिखाऊ कि तलवार हजम हो जाए।

चौधरी हाथ मे दतारी थामे वहा पहुचा। चिन्तन करने लगा। आखिर उसने गड्ढे को खोदकर तलवार निकाल ली और उसकी जगह अपनी दतारी रख दी। घर चला गया। मन मे प्रसन्नता का पार नही। अच्छी कमाई हो गई।

इधर ठाकर साहब ससुराल से वापिस चल पडे। अपने गाव की ओर जाते-आते वहा पहुचे जहा तलवार को गड्ढे मे रखा था। गड्ढा खोदा तो तलवार के बदले मे दतारी को देख कर जोर से बोलने लगे—

"सीधा-साधा गल मेलग्यो आकी बाकी कण करग्यो।" सीधी सरल तलवार रख कर गया था, इसे टेढी-मेढी किसने कर दी ? कुछ समझ मे नही आ रहा है।

वह चौधरी कही आस-पास छिपा हुआ बैठा ही था। आगे बढ कर ठाकर साहब के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोला—

"बैसाखा रा पड्या तावडा, काचो लोहो पिघलग्यो।" बैशाख महीने मे भयकर धूप पडती है, ऐसा अनुभव कर रहा हू कि कच्चा लोहा पिघल कर वक्रत्व मे परिणत हो गया।

ठाकर साहब से रहा नही गया, वे अपनी भाषा मे बोल पडे—

"पिघलग्यो सो पिघलग्यो, लारै लकडो कुण धाग्यो।" लोहा पिघला सो पिघला, किन्तु इसके पीछे यह लक्कड किसने बाध दिया।

चौधरी साहब ने बडी गम्भीरता से उत्तर देते हुए कहा—जिस पर जिसका नाम लिखा हुआ होता है, वही व्यक्ति उसका उपयोग कर सकता है। ऐसा कह कर वह अपने घर चला गया।

जो व्यक्ति दक्ष होता है, वह हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त कर लेता है। सफलता का उपादान कारण है बुद्धि चातुर्य। अत हर व्यक्ति को हर क्षेत्र मे निपुण बनने का प्रयास करना चाहिये।

निपुण व्यक्ति का हर समय, होता सफल प्रयास।
'मुनि कन्हैया' बुद्धि से, मिलता नया प्रकाश॥

नीति का महत्त्व

राजा भोज सस्कृत का प्रकाड विद्वान था। विद्वता के साथ-साथ वह बडा दानवीर था। हर याचक को कुछ न कुछ देना अपना कर्त्तव्य समझता था। किसी कुम्हारिन ने राजा भोज की प्रशसा सुनी। राजभवन पर आकर बडी विनम्रता से द्वारपाल को निवेदन करते हुए कहा—हे द्वारपाल जी! मैं राजा भोज के दर्शनार्थ आई हू। कृपया इजाजत दीजिये। द्वारपाल ने कहा—तुम्हें राजा से क्या काम ? उसने कहा—मैं मेरी विचारधारा राजा भोज के सामने रखना चाहती हू, आपके सामने नही।

द्वारपाल सभा मे पहुचा। हाथ जोडकर बोला—राजन्! किसी कुम्हार की धर्मपत्नी आपका दर्शन करना चाहती है। द्वार पर खडी है। आपको कुछ

निवेदन करने की भावना लेकर आई है। राजा ने कहा—आने दो, रोको मत। वह आई नमस्कार कर बोली—

देव! मृत्खननाद् दृष्टं, निधानं वल्लभेन मे।
स पश्यन्नेव तत्रास्ते, त्वां ज्ञापयितुमभ्यगाम्॥

हे प्रभो! खेत में मिट्टी खोदते हुए मेरे पति को धन मिला है। वे उसी खेत में उस धन की सुरक्षा में पहरा दे रहे हैं। मैं आपके पास सूचना देने के लिये आई हूं।

राजा के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं था। धन से भरे हुए घड़े को मंगाया। उसके मुंह को खोलकर देखा। रत्नों से भरा हुआ था। रत्नों की उद्दीप्त ज्योति देखकर राजा ने कुम्हार से पूछा—हे कुम्भकार! यह क्या? वह कुम्हार बोला—

राजचन्द्र समालोक्य, त्वां तु भूतलमागतम्।
रत्न श्रेणीमिषात्मन्ये, नक्षत्राण्यभ्युपागमन्॥

हे प्रभो! मेरी समझ से चन्द्ररूपी आपको मृत्यु लोक में आया जानकर सब नक्षत्र गण भी रत्नों की पंक्ति रूप में आपके पास आये हैं।

इसी उज्ज्वल प्रशंसा सुनकर राजा ने सोचा—यह कुम्हार बड़ा संस्कृतज्ञ है। चतुर है। उसके मुख से ऐसे लोकोत्तर श्लोकों को सुनकर बड़ा खुश हुआ। रत्न से भरा हुआ घड़ा (कलश) उसी को दे दिया, क्योंकि कुम्हार की नैतिकता व प्रामाणिकता से राजा बड़ा प्रभावित हुआ।

जो व्यक्ति नैतिक और ईमानदार होता है, उसकी पूजा सर्वत्र होती है। उसका विश्वास होता है। सम्मान मिलता है। अतः हर व्यक्ति को नैतिकता के प्रति निष्ठा रखनी चाहिये।

नैतिक मानव का अमित, होता दिव्य विकास।
'मुनि कन्हैया' नीति से, जम जाता विश्वास॥

मूर्ख से दूर

पुत्र नीरस ने अपनी मां से पूछा—माताजी! मेरे पिताजी कहां गये? मां ने गद्गद् स्वर में कहा—बेटा! वे परलोक पहुंच गये। पुत्र ने कहा—मां! पिताजी क्या कार्य किया करते थे? मां बोली—पुत्र! वे नौकरी किया करते थे। पुत्र—मैं भी नौकरी करूंगा। मां—पुत्र! अभी तेरी अवस्था बहुत छोटी है। नौकरी करने

वालो मे निम्नोक्त गुण अवश्य होने चाहिये—

(१) नम्रतापूर्वक व्यवहार करना।
(२) मालिक की आज्ञानुसार चलना।
(३) अपने आपको छोटा समझना।
(४) मालिक की जय-जयकार करना।

पुत्र ने हाथ जोडकर कहा—माताजी ! इन चारो ही शिक्षाओ को मैं कभी नही भूलूगा। मा का आशीर्वाद लेकर वह नौकरी के लिए रवाना हो गया।

चलते-चलते वह जगल मे पहुचा। अनेक शिकारी मिलजुल कर हरिणो की खोज मे बैठे थे। उस लडके ने उन्हे देखकर जोर से जय-जयकार किया। हरिण सब भाग गये। उन्हे बहुत क्रोध आया। पकडकर लडके को पीटा। नीलम ने सारी बात बता दी। शिकारियो ने उसको शिक्षा देते हुए कहा—ऐसे अवसरो पर जोर से नही चिल्लाना चाहिए। चुपचाप मन्द गति से आना चाहिए।

वह आगे बढा। नदी के घाट पर धोबी कपडे धो रहे थे। लडका दबे पावो धोबियो की ओर चला। कपडो की प्रतिदिन चोरी होती थी। चोर का पता लग नही रहा था। उस नीलम को दबे पाव आते देख कर धोबियो ने सोचा—यह चोर होना चाहिए। धोबियो ने उसे पकड कर पीटना शुरु किया। उसने सारी बात सुनाई। धोबियो ने शिक्षा देते हुए कहा—ऐसे अवसर पर ऐसा बोलना चाहिए—'ऐसे प्रसग कभी न आये।'

वह आगे चला। बारात मिली। दुल्हा और दुल्हन को देख कर वह बोल पडा—ऐसे प्रसग कभी न आवे। वहा भी उसको पीटा गया। लोगो ने समझाते हुए कहा कि ऐसे समय पर कहना चाहिए—'ऐसे प्रसग बहुत से आयें, हमेशा मैं यही देखू।'

आगे चलते-चलते मार्ग मे एक कैदी मिला। पैरो मे बेडिया पडी हुई थी। उसे देखकर वह जोर से बोला—ऐसे प्रसग बार-बार आये। उसकी स्थिति गम्भीर हो गयी।

वह चलता-चलता किसी नगर मे पहुचा। ठाकुर साहब के घर पर नौकरी कर ली। एक दिन ठकुरानी ने उस लडके को कहा—ठाकुर साहब को बुला लो भोजन ठण्डा हो रहा है। वह गया। ठाकुर साहब अपने मित्रो मे बैठे गपशप कर रहे थे। लडके ने दूर से ही जोर से कहा—चलिये ठाकुर साहब, ठकुरानी जी भोजन के लिए बुला रही है। वे बडे लज्जित हुए। घर मे आकर बोले—अरे मूर्ख ! जहा व्यक्ति बैठे हो, धीरे से कान मे कहना चाहिये। घर मे अचानक आग लग गयी। लडका ठाकुर के पास पहुचा। धीरे से कान मे कहा—ठाकुर साहब, चलिये घर मे आग लग गयी है। ठकुरानी आपको बुला रही है। ठाकुर लडके की मूर्खता पर

बड़ा बिगड़ा। अरे मूर्ख! ऐसे समय में घर को छोड़ कर कहीं भी नहीं जाना चाहिये बल्कि हो सके तो पानी से, गोबर से, गो-मूत्र से वहीं रहकर आग बुझाना चाहिये। उसने कहा—अच्छा आपकी बात को कभी नहीं भूलूंगा। कदम-कदम पर ध्यान रखूंगा। एक दिन सर्दी के मौसम में ठाकुर साहब स्नान कर रहे थे। गर्मी के कारण उनके शरीर में से भाप निकल रही थी। उस लड़के ने समझा कि ठाकुर के शरीर में आग लग गयी है। बस वह गोबर, गो मूत्र, मिट्टी, पानी जो कुछ भी हाथ लगा, उठा-उठा कर ठाकुर साहब के शरीर पर फेंकने लगा। ठाकुर जोर से चिल्लाया। अनेक व्यक्ति एकत्रित हो गये। सब बात का पता लगते ही हंसते-हंसते सबके पेट दुखने लगे। समाज में कहावत है कि 'मूर्ख ने टाको देणो पर आन नहीं देणो'। मूर्ख मनुष्य से हरदम दूर रहना चाहिये। मूर्ख को जो नौकरी पर रख लेता है उसे ठाकुर साहब की तरह पश्चाताप करना पड़ता है।

मूर्ख मनुज से सर्वदा, रहता है जो दूर।
'मुनि कन्हैया' विज्ञ वह, होगा सफल जरूर॥

प्रकृति के अनुरूप गति

एक ब्राह्मण था। उसके तीन लड़कियां थीं। ब्राह्मण की अपेक्षा ब्राह्मणी बड़ी समझदार एवं दक्ष महिला थी। वह चाहती थी कि तीनों को अच्छा घर व अच्छा वर मिले जिससे सभी लड़कियां अपने जीवन को सुख से व्यतीत कर सकें। लड़कियों का बालकपन जवानी में परिणत हुआ, तीनों सयानी बनीं। एक दिन उपयुक्त अवसर देखकर मां ने अपनी बेटियों को प्रशिक्षण देते हुए कहा—प्यारी पुत्रियो! अब तुम अपनी ससुराल में जाने वाली हो। सास-ससुर की सेवा के साथ-साथ विवाह होते ही अपने पति को लात से मारना।

माता-पिता ने उचित घर व सुयोग्य वर देखकर तीनों की शादी कर दी। तीनों बहनें अपने-अपने ससुराल पहुंचीं। माता की शिक्षा के अनुसार पहली लड़की ने अपने पतिदेव को लात मारी तो वह उसके चरणों को हाथ से पकड़कर दबाने लगा और मधुर भाषा में बोलते हुए कहा—हे देवी! हे प्राणेश्वरी! तुम्हारे चरण फूल जैसे कोमल हैं और मेरे पैर पाषाण जैसे कठोर हैं। तुझे तकलीफ हुई होगी। लड़की ने मां को सारी बात बता दी। मां ने उसकी बात सुनकर कहा—निश्चिन्त! तुझे किसी भी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, पति दास बनकर रहेगा।

दूसरी लड़की ने भी वैसा ही प्रयोग किया। अपने पति को लात मारी। पति कुछ देर तक गुस्से से क्रुद्ध हो गया। कुछ ही समय के पश्चात् उसका गुस्सा शांत

हो गया। लडकी ने जाकर मा के सामने सारी घटना प्रस्तुत कर दी। मा बोली—बेटी! तू बडी किस्मत वाली है। पति तेरा दास बनकर रहेगा। लेकिन तुझे कुछ ध्यान रखना है। तेरे द्वारा ऐसा कोई काम नही होना चाहिये जिससे तेरा पति अप्रसन्न हो जाये। पति की आज्ञा मे चलते रहना तेरे लिए श्रेयष्कर होगा।

तीसरी लडकी ने भी उसी प्रकार मा के आदेश का पालन किया। जब उसने पति के ऊपर पाद-प्रहार किया तो उसके पति ने रुष्ट होकर उसको खूब पीटा। और वह गुस्से मे लाल-पीला होकर वहा से उठकर चल पडा। लडकी अपनी मा के पास घबराती हुई आई और बीती घटना से अवगति कराई। मा ने कहा—बेटी! तनिक भी चिता करने की जरूरत नही है। तुझे सर्वोत्तम वर मिला है। तू दक्षता से रहना। अपने पति की कभी भी अवज्ञा मत करना। उसकी देवता के समान पूजा करना, क्योकि नारी के लिए पति ही देवता है। आखिर अपने पति के पास जाकर क्षमा मागते हुए उसने कहा—हे प्राणदेव! मैंने आपका अविनय किया। कृपया आप मुझे क्षमा करेंगे, ऐसा आत्म-विश्वास है। हमारे कुल की परम्परा चली आ रही है, इसलिए मैंने ऐसा किया है। अन्यथा ऐसा दुर्व्यवहार कभी नही करती। पति-पत्नी दोनो आनन्द से रहने लगे।

जिसकी जैसी प्रकृति होती है उसी के अनुरूप जो गति करता है, वह हर क्रिया मे सफल होता है। मानव सामाजिक एव सासारिक क्षेत्र मे पारस्परिक प्रेम व शाति से तभी रह सकता है जब व्यक्ति अन्य की प्रकृति के अनुसार अपनी प्रकृति को मिलाकर चलता है।

प्रकृति मिलाकर प्रकृति से, चलता जो इन्सान।
'मुनि कन्हैया' सुख सही, मिलता उसे महान ॥

त्याग की पूजा

मगध देश मे खानुमुत्त ग्राम का राजा कूटदन्त विप्र बहुत बडा विद्वान था। वेदो का ज्ञाता था। उसके मधुर व सरल व्यवहार से सारा नगर बहुत ही प्रसन्न था। एकदा वहा पर बुद्ध भगवान् का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिवार के परिवार आने लगे। नृप भी तैयारी करने लगा। ज्ञाति जनो ने कहा—राजन्! आप बुद्ध के पास क्यो जाते है? वहा जाना श्रेयस्कर नही है। बुद्ध का गौरव बढेगा। अत आपको कुछ चिंतन करना चाहिए।

नृप ने कहा—ऐसा क्यो होगा? वे बोले—राजन्! आप वेदो के ज्ञाता हैं, नगर के सम्राट् हैं, सम्पत्तिशाली हैं, सर्व-शक्तिमान है। नृप ने मुस्कुराहट की भाषा से कहा—आपने केवल स्वार्थ भरी दृष्टि से सोचा है। बुद्ध मेरे से बहुत

महान है। मैं वेदो का ज्ञाता हू और उन्होने वेदो को जीवन मे उतारा है। वेदो के अनुरूप उनके आचरण है। वे ससार से निर्लिप्त हैं, मैं लिप्त हू। उन्होने वैभव और सम्पदा का त्याग किया है। सग्रह करने वालो की अपेक्षा त्याग करने वाला व्यक्ति महान होता है। उन्होंने आगे कहा—वुद्ध राजकुमार थे। उनका परिवार हर दृष्टि से शालीन था, फिर भी उन्होंने सव कुछ छोडा। आदर्श के पथ पर चल पडे। महात्मा वने। अध्यात्म मे रमण करते हुए जनता को दिशा-उद्वोधन देते हुए यहा पधारे है। हजारो लोग उनके सतसग मे लाभ उठा रहे हैं। मैं भी वहा जा रहा हू।

नृप भगवान् वुद्ध के पास गया और सतसग करने लगा।

इस आख्यान से यह प्रतीत होता है कि उस युग मे भी चरित्र का कितना सम्मान था, महत्व था। चरित्र ही मानव की सही सम्पदा है, निधि है। चरित्रवान की सर्वत्र पूजा है, प्रतिष्ठा है। अत हर मानव को अपनी चारित्रिक विशुद्धि का ख्याल रखना चाहिए।

पूजा होती त्याग से, मिलता अति सत्कार।
वुद्ध-चरण मे झुक गया, कूटदन्त नरपाल॥

दामाद का विवेक

एक वुद्धिशील दामाद था। स्वसुर का स्वर्गवास होने पर वह ससुराल गया। साले तथा उसकी धर्मपत्नी ने उसका वडा स्वागत किया। सम्मान दिया। भोजन के उपरान्त वह पलग पर लेटा-लेटा वोल पडा—स्वसुर गृह निवास स्वर्ग तुल्यो नराणा। ससुराल मे निवास करना स्वर्ग के समान सुखकर है। न तो यहा कमाई करनी पडती है और न ही कभी दुकान मे भी जाना पडता है। वडे सुख से नीद आती है। यहा जीवन वडा वेफिक्र रहता है। अव तो मुझे घर जाना ही नही चाहिए। यही पर स्थायी रहने मे आनन्द है।

साले की धर्मपत्नी वडी विदुषी थी। समझदार व विवेकशील थी। उसने सोचा—कही यह यही पर न जम जाये। वडी दक्षता से उत्तर देते हुए कहा—"यदि वा विवेकी पच वा पट् दिनानी" अर्थात् जो विवेकशील दामाद होते हैं, वे तो अपने ससुराल मे पाच या छह दिन ही रहते है, अधिक नही। किन्तु वह दामाद पक्का पावणा था, इस छोटे से वाक्य से वह कहा हिलने वाला था? जोर से वोल पडा—'दधि, घृत मधु लोभाद् मासमेक वसेच्चेत्" अर्थात् जिस ससुराल मे दही, घृत व पकवान मिलते है, वहा तो दामाद को एक महीना रहना चाहिए।

उसने सोचा ये तो एक महीना यहा रहने चाहते हैं। फिर भी उन्हे चतुराई से

समझाना मेरा कर्त्तव्य है। बडे कोमल शब्दो मे प्रत्युउत्तर देते हुए कहा—खैर ! एक महीना तो आप बडे आनन्द मे रहे, किन्तु एक दिन भी अगर ऊपर रह गये तो—"तदुपरि यदि दिनमेक पाद-रक्षा प्रयोग" आपका सत्कार जूतो से ही होगा। यहा अधिक रहने मे कोई लाभ नही है।

दामाद समझ गया। रहना किसको था ? दिल की बात निकालनी थी। उदारता का परिचय मिला। एक दो दिन रहकर ससुराल से विदाई ली। घर पहुचा। यह है बुद्धिमत्ता का परिणाम। यह है विवेक का दिव्य उदाहरण।

भगवान महावीर ने कहा है—"विवेगे धम्म माहिए" विवेक मे ही धर्म है। हर क्रिया मे, हर प्रवृत्ति मे विवेक की महती आवश्यकता है। विवेक मानव का मोल बढाता है। विवेक ही मानव जीवन की अमूल्य सम्पदा है, निधि है।

रखता जो हर कार्य मे प्रतिदिन हृदय विवेक।
'मुनि कन्हैया' विश्व मे, बन जाता नर छेक॥

लक्ष्मी स्थिर नहीं

राजा भोज दानवीर था। जो भी आता उसे मुक्त हाथो से दान देता। किसी को भी रिक्त हाथो नही लौटाता। प्रतिदिन लाखो-लाखो का दान देते हुए देखकर मुख्यमत्री ने सोचा—क्या करे, कैसे नृप को समझाये, इस प्रकार दान देना उचित नही है। राजा को साक्षात् कहने मे वह असमर्थ था। राजा के शयनागार की दीवार पर बडे-बडे अक्षरो मे उसने लिखा—

"अपदर्थं धन रक्षेत्" आपत्ति के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये। राजा नीद से उठा। राज्य सभा मे जाते-जाते दीवार पर अक्षरो को पढा। उसके नीचे स्वय दूसरा चरण लिख देता है—

"श्रीमत्तामापद कुत" श्रीमानो को आपत्ति कहां ? दूसरे दिन मत्री ने दूसरा चरण लिखा देखकर तीसरा चरण लिख दिया—

"साचेदपगता लक्ष्मी" यदि वह लक्ष्मी चली जाये तब ! फिर अगले दिन राजा ने चौथा चरण भी लिखा—

"सञ्चितार्थो विनश्यति" सग्रह किया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है।

मुख्यमत्री राजा के श्रीचरणो मे उपस्थित होता है। हाथ जोड कर अवनत-शिरसा बडे विनय भाव से बोला—राजन् ! मेरी त्रुटि पर ध्यान देने की अपेक्षा नही है। आप तीक्ष्ण बुद्धि के धनी हैं। विशेषज्ञ हैं। चिन्तनशील हैं। मेरे जैसे अल्पज्ञ के अपराध को क्षमा कीजिये। आपकी गहरी तत्त्व भरी विचारधारा का स्वागत कौन नही करेगा ?

लक्ष्मी स्थिर नही रहती। कभी कही, कभी कही! चाहे लाखो-करोडो का धन सचय कर लीजिये। उसका भी एक दिन विनाश अवश्य होता है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति धन का सग्रह कभी भी नही करते।

सचित धन का एक दिन, होगा स्वत विनाश।
लक्ष्मी चपला सम चपल, वीर वचन यह खास॥

मुनि-चर्या मे अटल

उज्जयिनी नगरी मे धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। उसके एक पुत्र था। दोनो के दिल मे वैराग्य का अकुर प्रस्फुटित हुआ। पिता ने पुत्र सहित दीक्षा ग्रहण की। शुद्ध मन से सयम का पालन करते हुए दोनो ही मुनि ग्रामानुग्राम विहरण कर रहे है। एकदा विहार करते-करते मार्ग मे भयकर अटवी आ गई। गरमी का समय था। पानी के अभाव मे वालक मुनि आकुल-व्याकुल हो गया। गला सूखने लगा। आगे जाते-जाते नदी आ गई। पिता के मन मे पुत्र के प्रति मोह था, उन्होने सोचा—मैं आगे चला जाऊ, पीछे से यह चेला नदी मे से पानी पी लेगा तो जीवित रह जायेगा। प्रायश्चित देकर शुद्ध कर दूगा।

गुरु ने शिष्य से कहा—तू धीरे-धीरे आ जाना। मैं आगे जाता हू। शिष्य पीछे रह गया। तृपा से अशात शिष्य नदी के पास आते ही विचलित हो गया। नदी के तट पर वैठा। निज पात्र से पानी निकालता हुआ चारो तरफ देखने लगा, कोई देख न ले। झट आत्म ज्ञान से चितन करने लगा—अरे! तू यह क्या कर रहा है? मुझे कोई नही देख रहा है, किन्तु तीर्थकर देव व सिद्ध भगवान तो देख ही रहे हैं। यह सचित पानी है, इसकी एक वूद मे असख्यात जीव है। असख्यात जीवो की हत्या करना वुद्धिमत्ता नही है। मरना स्वीकार है परन्तु सचित पानी श्रेयस्कर नही है। ऐसा चितन कर धीरे से पानी को वापिस नदी मे उडेल दिया और हाथो को सुखाकर वही पर अनशन कर दिया। आखिर काल धर्म को प्राप्त कर स्वर्ग मे पहुच गया।

अवधि ज्ञान के माध्यम से उसने अपना पूर्व भव देखा। सोचा तृपा परिपह मे अटल रहा उससे यह देव ऋद्धि सप्राप्त हुई। वह मृत कलेवर मे प्रविष्ट होकर सतो के पास पहुचा, सवको वन्दना करने लगा, किन्तु वह अपने पिता मुनि को वन्दना नही करता है। उन्होने कहा—तू सव सन्तो को वन्दना करता है किन्तु मुझे नही कर रहा है, इसका क्या कारण? वह वोला—आपने मुझे सचित पानी पिलाने की दृष्टि से पीछे छोडा। यह मोह आपके लिए उचित नही था। जव तक आप इसका प्रायश्चित नही कर लोगे तव तक मैं वन्दना नही करता। पिता मुनि

ने गहराई से चिंतन किया कि वास्तव मे इसका कहना यथार्थ है। झट प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुए।

उसी कलेवर मे से निकल कर वह देव प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट हुआ और बोला—गुरुदेव ! मैंने मेरे नियम को खण्डित नही किया। तृषा परिषह को समाधिपूर्वक सहन करता हुआ अनशन कर लिया। उसी दृढ धर्मानुष्ठान के कारण मैं उच्च ऋद्धि सम्पत्ति वाला देव बना और आपके श्री चरणो मे हाजिर हुआ हू। वह देव इतना कह कर अपने स्थान मे चला गया।

उपसर्ग व कष्ट आने पर भी जो साधु अपनी चर्या मे मजबूत रहता है, सयम के नियमो मे अडिग रहता है वह निश्चित रूप से धर्माराधक बनकर अपनी आत्मा का कल्याण करता है।

मुनि-चर्या मे अटल जो, रहता मुनि मतिमान।
धर्माराधक बन वही, करता आत्मोत्थान॥

धन का लोभी

एक चोर था। उसने अपने घर मे एक बहुत बडा कुआ खोदा। चोरी करके जो भी धन लाता वह उसे कुए मे छिपा देता। कुछ ही समय बाद उस चोर की शादी हुई। सासारिक सुखो का उपभोग करते-करते उसकी स्त्री गर्भवती बन गई। चोर ने सोचा—अगर उसके पुत्र हो गया तो वह मेरा अधिकार छीन कर घर पर आधिपत्य जमा लेगा। तब मैं क्या करूगा? ऐसा दुष्ट चिंतन कर उसने गर्भ सहित स्त्री को मारकर कुए मे डाल दिया।

चोर ने फिर दूसरा विवाह कर लिया। वह स्त्री भी गर्भवती बनी। उसको भी वैसे ही मारकर कुए मे डाल देता है। फिर तीसरी बार उसने अति सुन्दर कन्या के साथ विवाह किया। वह गर्भवती बनी। उसके साथ अत्यधिक मोह एव प्रेम होने के कारण वह विषय भोग मे इतना विह्वल बन गया कि मारने की इच्छा होते हुए भी वह उसे मार नही सका।

स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ। क्रमश वह बडा होने लगा। कुछ ही समय मे वह हर प्रवृत्ति मे दक्ष व निपुण बन गया। चोर मन ही मन सोचने लगा—हाय! काम अच्छा नही हुआ। अब यह मेरी स्त्री और मेरा लडका मेरे धन के कुए पर कब्जा कर लेंगे। बडी समस्या हो गई। अब क्या करू? यदि मैं इस नारी को भी पूर्ववत मारकर कुए मे डाल देता तो लडका होता ही नही। तब आज मुझे चिंता का शिकार क्यो होना पडता?

खैर! घबराने की जरूरत नही है। हुआ सो हुआ "गते शोको न कर्त्तव्यो"।

अव भी समय है। दोनो को मारकर कुए मे डाल दू। छह धन का लोभी कर्त्तव्य को भूलकर अपनी स्त्री को मारकर कुए मे डाल रहा है। उम नव वर्षीय वालक ने यह घटना देखी। जोर से चिल्लाया, आक्रन्दन करता हुआ वह वहा से दौडता-दौडता राज दरवार मे पहुचा। राजा ने सारी हकीकत पूछी। वालक द्वारा ययार्थ स्थिति का वोध होते ही गज मिपाही वहा पहुचे। चोर को पकडा। कुए की तलाशी ली गई। कुए मे से अगाध धन मिला और मनुष्य की हड्डिया भी प्राप्त हुई।

राजा ने चोर को ललकारते हुए कहा—अरे अधम ! अरे पापिष्ठ ! स्त्री को मारकर कुए मे डाला। ऐसा जघन्य काम करते तुझे तनिक भी सकोच नही हुआ ! धिक्कार है तेरे जीवन को। धिक्कार है तेरे लोभ को। क्या यह धन तेरे माथ जायेगा ? आखिर राजा के आदेशानुमार उमे शूली पर चढा दिया गया। मरकर वह नरक मे चला गया। सारी सम्पत्ति उम वालक को मिल गई।

जो लोभ करता है उमको इह भव और पर भव दोनो जगह दु ख पाना पडता है। अत धन का लोभी कभी भी नही वनना चाहिए।

मानव धन का लालची, पाता दु ख महान्।
इह भव पर भव विगडता, होता अति अपमान ॥

बुढ़िया के प्रश्नोत्तर

एक दिन राजा भोज और माघजी पडित दोनो पर्यटन हेतु शहर से काफी दूर चले गए। वापस आते समय नगर का मार्ग भूल गए। राजा भोज ने माघजी से कहा—किसी से मार्ग पूछने मे ही लाभ है। माघजी ने कहा—राजन् ! खेत मे वुढिया दिखाई दे रही है। वहा चले। अवश्य वह मार्ग वतला देगी। दोनो वहा पहुचे। पूछा—वहिन ! यह मार्ग कहा जाता है ?

वुढिया—भाई साहव ! मार्ग तो यही रहेगा, इस मार्ग से लोग इच्छित स्थल पर पहुच सकते है। मुझे वताइये, आप दोनो कौन हैं ?

माघजी—हम दोनो वटाऊ (मुसाफिर) है।

वुढिया—ससार मे वटाऊ तो दो हैं—सूरज और चन्द्रमा। आप कौन है ?

माघजी—वहिन ! हम मेहमान है।

वुढिया—आप मेहमान नही है। मेहमान तो ससार मे दो ही है—धन और यौवन।

माघजी—हम राजा हैं।

बुढिया—आप कौन से राजा हैं ? राजा तो दो हैं—पहला इन्द्र और दूसरा यम। वास्तव मे आप कौन हैं ?

माघजी—हम है भारी क्षमा।

बुढिया—वास्तव मे क्षमाशील है धरती और दूसरी है नारी। हर स्थिति मे क्षमा रखती है। बताइये तो सही कि आप कौन है ?

माघजी—बहिन ! हम साधु है।

बुढिया—साधु तो ससार मे दो हैं—एक शील और दूसरा सतोष। मेरी समझ मे नही आ रहा आप कौन है ?

माघजी—हम है चोर।

बुढिया—आप कौन से चोर हैं ? चोर तो वास्तव मे दो ही हैं—एक व्यभिचारी और दूसरा चुगलखोर। बताइये आप कौन है ?

माघजी—हम परदेशी हैं।

बुढिया—दुनिया मे परदेशी दो हैं—एक पवन और दूसरा जीव। आप [illegible] कौन है ?

माघजी—हम चतुर है।

बुढिया—आप कौन से चतुर है ? चतुर तो वास्तव मे दो है—एक [illegible] और दूसरा पाजी। बताइये आप कौन है ?

माघजी—हम कौन है, हम नही जानते। तू ही जानती है।

बुढिया—हा, मै समझ गई आप कौन है। आप एक तो राजा भोज है, दूसरे माघजी पडित है।

राजा भोज और माघजी पडित दोनो ही बुढिया की [illegible] ही प्रभावित हुए। बुढिया को अपने साथ नगर मे ले गए और [illegible] सम्मानित करते हुए उसकी वक्तृत्व कला की भूरि-भूरि प्रशसा की।

पावन प्रज्ञा की चतुरता ही मानव को आदर्शित करने मे [illegible]। बुद्धि के बिना मानव किसी भी क्षेत्र मे आगे नही बढ सकता। [illegible] कदम-कदम पर सम्मान होता है।

बुढिया को चातुर्य से, मिला [illegible]।
'मुनि कन्हैया' बुद्धि का, है [illegible]॥

मति-नैपुण्य

राजा भोज के राज्य मे [illegible]
मे ही नही, [illegible]

को सस्कृत भाषा वडी प्रिय लगती थी। उस भाषा के प्रचार-प्रसार मे महीपति का अपूर्व योगदान था।

एकदा राजा भोज स्नान करने के लिए तैयार हो रहे थे। दासी स्नान आदि की सामग्री लेकर आ रही थी। कामदेव-बाण से प्रताडित मद-विह्वला उस दासी के हाथ से अचानक स्वर्ण का घडा गिर पडा। तब राजा सभा मे उपस्थित होता है। अनेको-अनेक प्रकाड विद्वानो से सभा-हॉल खचाखच भर जाता है। राजा भोज ने कवि कालिदास को सम्बोधित करते हुए कहा—हे कविराज! मैं एक समस्या दे रहा हू। उसकी पूर्ति सम्यगतया होनी चाहिए। राजा ने समस्या पढते हुए कहा—"टट ट टट टट ट टट टम्"।

कवि कालिदास की प्रतिभा अद्वितीय थी। उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा चिंतन किया। गहराई से सोचा व अपने पाडित्य का प्रदर्शन करते हुए उस समस्या की पूर्ति ऐसे की—

राजाभिषेक मदविह्वलाया, हस्ताच्च्युतो हेम घटो युवत्या।
सोपान मार्गे प्रकटोति शब्द, टट ट टट टट ट टट टम्॥

यह सुनते ही राजा भोज के हृदय मे आश्चर्य का पार नही रहा। मन ही मन सोचने लगा—कालिदास जैसा कवि ससार मे विरला ही मिलेगा। महाराज को स्नान कराती हुई कामपीडिता तरुणी के हाथ से स्वर्ण का घडा सीढियो मे गिर पडा जिससे जोर से शब्द हुआ—ट ट ट ट······।

कविराज के मति-नैपुण्य से प्रभावित होकर उसको यथेच्छित पारितोषिक देते हुए राजा भोज ने राज्य सभा के उच्चतम सदस्यो मे मुक्त कठ से प्रशसा व स्तवना की व कहा—मुझे वडा गौरव है कलिदास जैसे तेजस्वी आशु कवि पर। ऐसे कवियो से राज्य की शोभा वढती है। ससार मे मति-नैपुण्य वाले व्यक्ति की सर्वत्र पूजा होती है। कदम-कदम पर उसे सम्मान मिलता है।

जग मे मति-नैपुण्य की, श्लाघा हुवे विशेष।
'मुनि कन्हैया' स्तुत्य है, पडित हृदय हमेश॥

वहरों से परहेज

सुन्दरपुर नगर मे मोटूराम नाम का एक कृपिकार रहता था। उसके परिवार मे चार ही व्यक्ति थे। मोटूराम तथा उसकी धर्मपत्नी, तीसरा उसका पुत्र एव पुत्र-वधू। चारो व्यक्ति वहरे थे। कानो से विलकुल ही सुनाई नही देता था। एक दिन मोटू का पुत्र खेत मे हल चला रहा था। एक पथिक इधर-उधर भटकता हुआ खेत

मे आ पहुचा । उस पथिक ने मृदु भाषा मे नगर का मार्ग पूछा । वह किसान-पुत्र बहरा था ही, उसने सोचा कि मुसाफिर कह रहा है कि तुम्हारा बैल लडाकू है । हल-वाहक ने कहा—अरे मूर्ख ! ऐसे कैसे बोलता है । मेरा बैल तनिक भी लडाकू नही है । फालतू बकवास करने की जरूरत नही है । मेरा बैल तनिक भी लडाकू नही है । पथिक ने कहा—भैया ! मै तो नगर का मार्ग पूछ रहा हू । बैल के विषय मे मैंने कुछ नही कहा लेकिन वह प्रत्युत अपना हल उठाकर बटोही को मारने दौडा । पथिक ने सोचा— यहा ठहरने मे लाभ नही है । यह तो पागल है । वह वहा से चल पडा ।

कुछ ही दिनो पश्चात किसान-पुत्र की पतिव्रता अपने वल्लभ के लिये खाना लेकर आयी । वह किसान-पुत्र जोर से बोला—देरी से क्यो आई ? उस महिला ने सोचा पतिदेव फरमा रहे है कि खाने मे नमक बहुत ही ज्यादा है । उसने कहा—मै कुछ नही जानती । यह खाना तुम्हारी मा ने बनाया है ।

वह औरत घर पहुची । सास को कहने लगी—तुम्हारा पुत्र कहता है कि खाने मे नमक कम है । उस समय उसकी सास सूत कात रही थी । उसने समझा कह रही है कि सूत मोटा है । उसने कहा—मेरी बात सुनो । सूत पतला हो या मोटा बूढे के काम मे आ जावेगा । उसने बूढे को बुलाकर कहा—यह सूत बहुत मोटा है, तुम्हारे काम आ जायेगा । बूढा उस समय तिलो की रखवाली कर रहा था । उसने समझा बुढिया कह रही है—तुमने तिल खा लिये है । बूढे ने कहा—मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हू मैंने एक भी तिल का भक्षण नहीं किया है ।

ऐसे बहरे मनुष्यो के सामने किसी प्रकार का प्रलाप करना वृथा है ।

जो व्यक्ति सोचे बिना, देखे बिना बोलते है उनको पश्चात्ताप करना पडता है । बहरो के सामने बोलना, उनको शिक्षा देना राख मे घृत उडेलना है ।

बहरे नर के सामने, करना वृथा प्रलाप ।
बिन सोचे जो बोलते, करते पश्चात्ताप ॥

मूल मे पानी

एक बुढिया थी । उसके एक ही लडका था । वह बडा विनीत [illegible] था । बेटे ने मा से निवेदन करते हुए कहा—माताजी ! आप वृद्ध है । [illegible] भी प्रकार का काम हो तो फरमाने की कृपा करना । मा बूढी [illegible] भी हो गई । मा को फूलो की बाडी बहुत प्रिय थी । उसने कहा—बेटा [illegible] शक्ति क्षीण हो गई है । अधिक लम्बा चौडा काम अब मैं [illegible] । इसलिए फूलो की बाडी मे जाओ और इसकी [illegible] करो ।

बेटा बाड़ी मे पहुचा और मन ही मन सोचने लगा—मा तो अनपढ है। मैं हू पढा लिखा। मैं हर कार्य मेरी बुद्धि से करुगा। मुझे किसी की सलाह लेने की अपेक्षा नही है। सुन्दर-सुन्दर फूल खिल रहे थे। मनमोहक सौरभ से दिशा-मण्डल सुरभित हो रहा था। उस लडके ने फूलो को सीचना प्रारम्भ कर दिया। पाच-सात दिनो के बाद वह बुढिया अचानक बगीचे मे पहुच जाती है, उसने बगीचे को ध्यानपूर्वक देखा, फूलो के पौधे सूख रहे हैं। फूल भी मूर्छित जैसे लगते हैं। बुढिया ने पूछा—बेटा ! क्या तूने पौधो को पानी नही पिलाया ?

बेटे ने बडे विनम्र भाव से कहा—मा ! मैंने मेरे दिमाग से सभी वृक्षो को पानी पिलाया है। मैंने तुम्हारी तरह फालतू पानी तनिक भी नही बहाया है। मां ने पूछा—बेटा ! पानी कैसे पिलाया है ? बेटा बोला—मा ! तुम पानी पिलाती हो नीचे और मैं पिलाता हू ऊपर। तुम्हारा पानी मिट्टी मे फालतू जाता है। और मैंने सारा का सारा पानी फूलो पर उडेला है।

मा मुस्कराहट की भाषा मे बोली—बेटे ! तुम बिलकुल अनभिज्ञ हो। वृक्षो को पानी कैसे सीचा जाता है, तुम नही जानते। पानी फूलो को नही सीचा जाता है। सीचा जाता है मूल को। जो व्यक्ति मूल को सीचता है, उसके फूल अवश्य ही खिलते हैं, फलते हैं। जो मानव फूलो को सीचता है, उसके फूल मुरझा जाते हैं।

मूल को सीचने वाला व्यक्ति हर दृष्टि से सफल होता है। मूल को सीचे बिना बगीचा नही खिल सकता है, न ही फल सकता है। अत बुद्धिमान मानव तो मूल को सीचने मे ही अपना समय लगाता है।

कभी मूल को सीचना, नही भूलता दक्ष।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, फल पाता प्रत्यक्ष ॥

मूर्खता की पराकाष्ठा

एक गरीब स्त्री किसी सेठ जी के घर जा पहुची। दीपमालिका का सुन्दर व मगल दिन था। इस शुभ अवसर पर सेठानी ने चूडा पहना। वह चूडा बहुत ही कीमती व हाथी दात का था। हाथी दात से निर्मित चूडे को देखकर आस-पास की महिलाएं उसे बधाइया देने लगी। उस चूडे को देखने के लिए सैकडो महिलाओ का याता-यात चालू रहा। यह सब रौनक देखकर वह गरीब की स्त्री भी सोचने लगी—मैं भी हाथी दात का चूडा पहनू और आस-पास की स्त्रियो की बधाइया प्राप्त करु। मेरे चूडे को भी देखने के लिए बहुत से लोग आयेगे। मेरी इज्जत व प्रतिष्ठा बढेगी।

वह अपने घर पहुची। पतिदेव के चरणो मे बडी विनम्रता पूर्वक निवेदन

करती हुई बोली—पतिदेव ! मुझे हाथी दात का चूडा चाहिए। कृपया बाजार मे खरीद कर जल्दी लाकर दीजिये। पति बोला—तेरे मे विवेक व अक्ल नही है। घर मे खाने के लिए पूरी रोटी नही है। कितनी कठिनाई से परिवार का पालन-पोषण कर रहा हू, मैं ही जान सकता हू। तुझे क्या पता ? हाथी दात का चूडा काफी महगा है। इसलिए चूडा नही ला सकता। फालतू बात करने मे कुछ भी लाभ नही है। समझदार व्यक्ति वही कहलाता है जो अपने घर की स्थिति को देखकर खर्चा करता है, अन्यथा उसे नुकसान उठाना पडता है।

पत्नी आवेश मे आकर जोर से बोली—पतिदेव ! सुन लीजिए मेरा निर्णय। यदि चूडा नही आयेगा तो घर मे चूल्हा नही जलेगा। घर का कोई भी काम नही करुगी। पति ने मीठे-मीठे स्वर मे समझाते हुए कहा—देखो, आग्रह करना अच्छा नही है। गहराई से सोचो। घर का काम किए बिना जीवन की गाडी कैसे चल सकती है ! बहुत कहने पर भी वह कहा मानने वाली थी। बेचारा बाजार मे गया और किसी सेठ से कर्ज लेकर चूडा लाया। स्त्री ने बडे प्रेम से चूडा पहना। झोपडी के दरवाजे पर आकर बैठ गई। हाथो को सामने लटका रही है। काफी [illegible] वहा बैठी रही किन्तु कोई भी व्यक्ति उसे देखने के लिए नही आया। चार-पाच दिन तक यही क्रम चला, कोई नही आया। तब उसके मन मे प्रदर्शन की [illegible] जागृत हुई। उसने झोपडी के आग लगा दी। देखते-देखते आग [illegible]। चारो ओर से लोग दौडे। लोगो ने आग पर तो काबू प्राप्त किया, किन्तु उसकी झोपडी जल कर राख हो गई। लोगो ने सवेदन प्रकट करते हुए पूछा—बहन जी ! आपके घर मे कुछ बचा या नही।

वह बोली—और कुछ भी नही बचा। केवल एक चूडा बचा है। लोग बोले—कब पहन लिया ? वह बोली—यदि यह बात आप लोग पहले ही पूछ लेते तो झोपडी मे आग क्यो लगती ? लोगो ने कहा—बहन, आग [illegible] लगाई है ? उसने कहा—हा जी ! मेरा चूडा देखने के लिए कोई आया नही [illegible] काम किया। लोग उसकी मूर्खता पर हसने लगे।

जो व्यक्ति मूर्ख होते है, उनमे हिताहित के चिन्तन [illegible]। वे कभी-कभी अपना नुकसान कर बैठते है। [illegible] लिए जो अपने घर को जला देते है, उनसे बढकर और क्या [illegible]

कई प्रदर्शन के लिए करते निज नुकसान।
उनसे बढकर कौन है [illegible]

अमूल्य सम्पदा

धनवत नाम का व्यापारी था। उसके तीन पुत्र थे। तीनो की परीक्षा हेतु पिता ने तीनो पुत्रो को हजार-हजार रुपये देकर कहा— तुम तीनो परदेश जाओ। वहा व्यापार करो। धन वृद्धि के लिए प्रयास करो। जब मैं तुम्हे वापिस बुलाऊ तब वापिस आ जाना। तीनो पुत्रो को सम्यग्तया प्रशिक्षण देकर सेठ ने तीनो को एक साथ रवाना कर दिया। तीनो चल पडे। तीनो ने आलग-अलग राह पकडी।

सबसे बडा पुत्र बडा होशियार था। बुद्धिमान था। उसने किसी शहर मे जाकर व्यापार आरम्भ किया। स्वल्प ही समय मे हजारो रुपये कमा लिए। दूसरे पुत्र ने सोचा—पिताजी द्वारा सप्राप्त मूल पूजी की सुरक्षा करना मेरा परम धर्म है। इसका मुझे कदम-कदम पर ध्यान रखना है। खाने-पीने मे जितना खर्च होता है, उतना वह कमा लेता है किन्तु मूल की पूजी को सुरक्षित रख ली। तीसरे पुत्र ने सोचा—मेरे घर मे धन की कोई कमी नही है। अभी ऐश आराम करने का समय है। खाना-पीना और मौज उडाना जीवन का सार है। क्या करना है व्यापार करके ? पिताजी की मृत्यु हो जाने के बाद धन का तीसरा हिस्सा तो मुझे मिलेगा ही। क्यो फालतू परिश्रम करु ? इसी विचार-विचार मे खा पीकर उसने हजार रुपये समाप्त कर दिए।

कई वर्षों के बाद सेठ ने तीनो पुत्रो को वापिस बुला लिया। तीनो आये। सेठजी को नमस्कार किया। आपस मे वार्तालाप चला। स्वास्थ्य के बारे मे पूछ-ताछ हुई। सेठ बोला—मैंने जो हजार-हजार रुपये की सम्पति दी थी, वह वापिस लाओ। बडे पुत्र ने कहा—पिताजी ! आपकी कृपा से व्यापार अच्छा चला। यह लीजिये लाख रुपये। दूसरे पुत्र ने कहा—पिताजी ! जितना खर्चा लगा उतना ही मैंने कमाया है मूल पूजी सुरक्षित है। यह लीजिये हजार रुपये। तीसरे ने कहा—मैंने तो सारी पूजी खाने-पीने मे लगा दी।

सेठ ने मन ही मन सोचा—तीनो की परीक्षा हो गई। ज्येष्ठ पुत्र को सारे घर का आधिपत्य सौप दिया। दूसरे पुत्र को खजाने की चाबिया सौप दी। तीसरे पुत्र को कुछ भी नही मिला। अब वह पश्चाताप करता है—हाय ! ऐसा पता होता तो मैं भी…।

मानव जन्म रूपी अमूल्य सम्पदा को प्राप्त कर जो व्यक्ति गवा देता है उसे भव-भव मे दुःख पाना पडता है। चतुर व विलक्षण वही कहलायेगा जो मूल सम्पदा को सुरक्षित रखता हुआ आगे बढता है।

दुर्लभ मानव जन्म का, खूब उठाओ लाभ।
आतम सम्पदा नाशकर, क्यो खोते हो आव॥

ज्ञानी की अवहेलना

गगा नदी के तट पर दो भाई रहते थे। उनके हृदय मे वैराग्य जागृत हुआ। दोनो ने किसी साधु के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। एक भाई पढ-लिखकर होशियार व विज्ञ बन गया। शास्त्रो का परगामी होकर दूसरो को भी अध्ययन कराने मे रुचि रखता था। दूसरा भाई बिलकुल अनपढ रहा। उसे अध्ययन करने मे तनिक भी रुचि नही थी। वह दोनो समय आहार पानी कर सुख से सो जाता। रात-दिन आराम करता। उसे किसी प्रकार की चिता नही थी। एक दिन उस विद्वान ज्ञानी ने चिन्तन किया—मेरा सारा समय दूसरो को पढाने मे व सयम की चर्या बताने मे ही पूरा हो जाता है। मैं सुख से पूरी नीद भी नही ले सकता। भूख लगती है तो खाने के लिए भी मुझे समय नही मिलता। विश्राम के लिए एक पल भी नही है। अच्छा तो यह होता कि मैं ज्ञानार्जन करता ही नही। यह मेरा भाई खा-पीकर सो जाता है, मौज उडाता है, क्योकि इसने अध्ययन नही किया। अज्ञानी मनुष्यो का शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है, क्योकि उनके दिमाग मे जरा भी चिन्ता व उलझन नही होती। ज्ञानी पुरुष चिन्ताग्रस्त होते हैं, उनका शरीर भी दुर्बल रहता है। अत अध्ययन करना अच्छा नही है। ऐसी विचारधारा मे अवगाहन करता हुआ वह आयुष्य पूर्णकर देवलोक मे चला गया।

वहा से आयुष्य पूर्णकर वह किसी गोपालक के घर पर जन्म लेता है। वहा साधु समागम से वैराग्य उत्पन्न हुआ। साधु बना। गुरु के पास अध्ययन करता है किन्तु अध्ययन मे सफलता नही मिलती है। वह बहुत परिश्रम करता है परन्तु एक भी अक्षर याद नही हो पाता। गुरु ने कहा—शिष्य ! पूर्व जन्म मे तुमने ज्ञान की आशातना की, वह ज्ञानावरणीय कर्म उदय मे आ रहा है, इसलिए तू अध्ययन नही कर सकता।

शिष्य ने हाथ जोडकर विनयपूर्वक पूछा—गुरुदेव ! ज्ञानावरणीय कर्म को खपाने का क्या उपाय है ?

शास्त्रो के पारगामी गुरु ने कहा—शिष्य ! आयबिल करो। ज्ञानी सन्तो की परिचर्या करो। ज्ञानवान की स्तुति व प्रशसा करो। जिससे सचित कर्मो की निर्जरा होगी। गुरु-वाणी को अगीकार करते हुए शिष्य ने विभिन्न प्रकार की तपस्या प्रारम्भ की। ज्ञानी पुरुषो की सेवा-शुश्रूषा मे ही अपने जीवन का अधिकतम भाग लगाना शुरू कर दिया। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना व चारित्राराधना करते-करते बारह वर्ष पूरे हो गये। आखिर शुभ परिणामो की श्रेणी पर चढे, कर्मो का अवसान किया। केवली बने। मोक्ष मे पहुचे।

ज्ञान और ज्ञानवान की कभी भी अवहेलना नही करनी चाहिए। अवहेलना

से कर्मों का वध होता है और कर्मों के योग मे जीव को ममार मे भटकना पडता है।

ज्ञानी की अवहेलना, करने मे नुकशान।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसका पतन महान ॥

समर्पण का महत्त्व

हकीम लुकमान प्रारम्भ से ही गुलाम थे। उनके हृदय मे अपने स्वामी के प्रति अच्छी श्रद्धा थी। वे वडे निरहकारी व मरल स्वभावी थे। उनका सारा जीवन समत्व की भावना से ओत-प्रोत था। अपने आराध्य देव के प्रति वे सर्वदा पूर्ण समर्पित थे। गुरु के इगित पर चलने के लिए वे अपना जीवन भी न्यौछावर कर देते थे। एक दिन की वात है, उनके स्वामी ने खाने के लिए ककडी मगाई।

हकीम लुकमान वाजार पहुचे। सब्जी वेचने वाले मे कहा—मुझे ककडी चाहिये। उन्होंने ककडी तोली। वे लेकर आये। स्वामी ने ककडी का एक टुकडा तोडकर मुह मे रखा तो वह वहुत ही कडवा लगा। स्वामी ने ककडी को छोडते हुए कहा—लुकमान ! यह ककडी तुम खा लो। लुकमान ने हाथ जोड कर विनयपूर्वक कहा—जो आज्ञा आपकी। वे वहुत ही प्रसन्नता पूर्वक हसते-हसते ककडी खा गये। उनके स्वामी ने सोचा—शिष्य वडा सुपात्र है। ननु नच किए विना ही कडवी ककडी को हसते-हसते खा लेना यह वहुत वडी विशेपता है। हृदय मे विस्मय का पार न रहा, वे मुस्कराहट की भापा मे वोले—अरे लुकमान ! तुझें यह ककडी खारी नही लगी।

लुकमान ने सुकोमल शव्दावली मे कहा—स्वामिन् ! खारी तो लगी। स्वामी—शिष्य ! तुम उसे कैसे खा गये ? स्वामी के इस गहरे प्रश्न का उत्तर देते हुए लुकमान ने जिह्वा पर अमृत टपकाते हुए कहा—हे मेरे प्राणदेव ! मेरे पर आपकी असीम कृपा है। जन्म जन्मान्तर मे भी उसे विस्मृत नही कर सकता। मेरे जैसे तुच्छ शिष्य पर आपका वात्सल्य भाव अनन्त हे। आप प्रतिदिन मुझें अच्छी-अच्छी स्वाद भरी चीजें देते है और मैं उन्हे प्रमुदित मन खा लेता हू। आज आपने मेरे पर मेहरवानी करा कर मुझे खाने के लिए ककडी दी, वह खारी है इमलिए यदि फैंक दू तो फिर मुझे मीठे-मीठे पदार्थ कौन देगा ?

स्वामी ने कहा—शिष्य लुकमान ! तेरे जैमा पूर्ण समर्पित व्यक्ति ससार मे कोई विरला ही होगा। तेरी नम्रता व विवेकशीलता देख कर मेरा हृदय गद्‌गद् हो रहा है। तुमने जो साम्य भाव का विकास किया है वास्तव मे यह प्रशसनीय। है। लुकमान वोला—प्रभो ! मैं आपकी महानता के सामने तुच्छ हू। आप मेरे

मालिक है। अपकी जैसी इच्छा हो वैसा प्रसाद मुझे देते रहिये। उससे मेरे जीवन को पावन पोषण मिलता रहे, बस मेरी यही आतंरिक तमन्ना है। सुनते हैं कि लुकमान के इस समर्पण व समता भाव भरे उत्तर से मालिक ने सदा-सदा के लिए उसे गुलामी से मुक्त कर दिया।

समता और समर्पण जीवन के दो पहलू है। इन दोनो मे जो व्यक्ति विकास कर लेता है वह अपनी साधना मे अवश्य ही सफल होकर साध्य को प्राप्त कर लेता है।

समता रस का पानकर, करना आत्म विकास।
सूत्र समर्पण का सुखद, करता परम प्रकाश॥

मन खाली : पिशाच

लाला धनीराम का पुत्र विजयकुमार बडा विवेकशील, विनीत और नीतिवान लडका था। विजयकुमार की धर्मपत्नी का नाम था सुप्रभा। धनार्जन के लिए विजयकुमार परदेश चला जाता है। सुप्रभा घर पर ही थी। वह बडी शौकीन थी। स्वादिष्ट भोजन करती थी, पान खाती, इत्र-फुलेल लगाती। विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषणो से सुसज्जित रहती थी। सारा समय साज-सज्जा मे व्यतीत करती थी। घर के काम मे उसका मन बिल्कुल भी नही लगता था। प्रतिदिन पतिदेव की माला फेरती थी, परदेश से कब आयेंगे? आखे फाड-फाडकर देखती रहती थी।

एक दिन सुप्रभा का मन बहुत चचल हो उठा। उसने अपनी दासी को बुलाकर कहा—किसी पुरुष को बुलाकर लाओ। मेरा मन वश मे नही है, न जाने मेरे पतिदेव कब आयेंगे।

दासी सेठ के पास गई। हाथ जोडकर बोली—सेठ साहब! आपकी पुत्र वधू का मन चचल हो गया। बहूजी ने किसी पुरुष को बुलाने के लिए कहा है। पुत्रवधू की भावना को सुनकर सेठजी बडे चिंतित हुए। उन्होंने सेठानी को बुलाकर कहा—तुम कुछ समय के लिए अन्यत्र जाकर विश्राम करो। सेठानी ने अपने पति की बात मान ली। दूसरे दिन सेठजी घर आये और सेठानी से भोजन मागा। सेठानी ने प्रत्युत्तर मे कहा—अभी भोजन तैयार नही है। सेठजी ने सेठानी को मारपीट कर घर से बाहर निकाल दिया।

सास-ससुर मे झगडा देखकर उनकी पुत्रवधू दौडी-दौडी आई और बोली—पिताजी! क्या बात है? सेठ ने कहा—बेटी! आज से मैंने तुमको घर की मालकिन बना दी है। घर का सारा उत्तरदायित्व तेरे कंधो पर है। पुत्रवधू सुप्रभा ने समधुर भाषा मे कहा—पिताजी! आपकी जैसी आज्ञा हो। अब वह काम मे इतनी व्यस्त

रहने लगी कि उसे भोजन करने का भी समय मुश्किल से मिलता। साज-शृगार करना वह सारा गई। एक दिन दासी ने हाथ जोडकर कहा—वहूजी ! आपकी कामना को क्रियान्वित करने हेतु मैंने एक पुरुष की खोज कर ली है। आपकी आज्ञा हो तो उसे वुलाऊ।

वहू ने कहा—दासी ! घर की सारी जिम्मेदारी मेरे पर है। सुवह से साय तक इतनी व्यस्त रहती हू कि इस समय तो मुझे मरने की भी फुरसत नही है, तू पुरुष की वात करती है।

खाली मन पिशाच का घर है। इस कहावत के अनुसार मेधावी लोग अपने आपको कभी भी खाली नही रखते। किसी न किसी कार्य मे अपने मन को जो व्यस्त रखते हैं। वे हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करते हैं। मानसिक चचलता व वुराई को दूर करने के लिए मन को कभी भी खाली मत छोडो।

खाली मन इन्सान का, वहुत वडा शैतान।
'मुनि कन्हैया' कार्य मे, रखता मन अम्लान ॥

समस्या का समाधान

महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी यात्रा कर रहे थे। रास्ते मे ईख के खेत आये। उनके मन मे ईख चूसने की भावना जागृत हुई और उन्होंने दो-चार ईख तोड लिये। खेत का मालिक देख ही रहा था, वह दौडा-दौडा आया। वह क्रोध के नशे मे चूर था। उसे भान नही रहा। क्रोध मे अन्धा होकर व्यक्ति कृत्याकृत्य को भूल जाता है, विवेकहीन वन जाता है। खेत के मालिक ने उनको पहचाना नही। वह आवेश मे आकर अकवक वोलने लगा—मेरी आज्ञा के विना ईख को तोडकर ले लेना, क्या मानवता है ? प्रामाणिकता है ? उसने गुरु रामदास के दो-चार चाटे जड दिये।

यह वात फैलती-फैलती शिवाजी के पास पहुची। दिल मे वडा दु ख हुआ और उस किसान को वुलाया। किसान थर-थर काप रहा है। पास मे गुरु रामदासजी वैठे है। महाराज शिवाजी ने कहा—तूने वहुत वडा अपराध किया है। तूने मेरे गुरु को विना मतलव पीटा है। अपमान किया है। वोल, तुझे क्या दण्ड दिया जाए ?

वह किसान भयभीत सा खडा है। थर-थर काप रहा है। वोले तो विचारा क्या वोले ? पहले वह क्रोध के आवेश मे था अव वह भय के आवेश मे है। शिवाजी के भी आवेश की कमी नही थी। गुरुदेव के अपमान को वे कैसे सहन कर सकते थे ? गुरु का तिरस्कार स्वय का तिरस्कार कहलाता है। शिवाजी ने दण्ड देते हुए कहा—इसका अपराध निम्न स्तर का अपराध है। इसने वहुत निदित व घृणित

कार्य किया है। अत इसको फासी के तखते पर लटका दिया जाये।

गुरु रामदास के कर्ण कुहरो मे जव यह शब्दावली टकराई तो उन्होने अपने सुशिष्य को सम्वोधित करते हुए कहा—शिष्य शिवा ! ऐसा कभी नही हो सकता। तुम इसको दण्ड नही दे सकते। इसने मुझे मारा है मैं ही इसको दण्ड दूगा। शिवाजी मौन हो गये। गुरु के सामने वे क्या वोल सकते थे ! उन्होने वडे विनम्र व सुकोमल शब्दो मे कहा—गुरुदेव ! आप ही इसे दण्ड दे। रामदास ने कहा—शिष्य ! तू मेरा कथन स्वीकार करेगा ? शिवाजी वोले—हा, गुरुदेव ! जैसा आप कहेगे वैसा ही मैं करुगा। रामदास ने कहा—शिष्य ! इस गरीव किसान ने मुझे पीटा है। मै उसके पीटने के कारण को जानता हू, समझता हू। इसे इस अपराध के फलस्वरूप पाच वीघा जमीन दान मे दे दी जाए।

रामदास के कथन को सुनकर सव अवाक् रह गये। शिवाजी के हृदय मे भी आश्चर्य का पार नही रहा। चाटे मारने वाले को पारितोषिक रूप मे पाच वीघा जमीन। यह विचित्र दण्ड। यदि यह दस चाटे मारता तो सम्भव है दस वीघा जमीन इसे मिलती। ऐसा आश्चर्यकारी निर्णय ! शिवाजी समझ नही सके कि गुरुदेव ने यह निर्णय क्यो किया ? अपने को पीटने वाले के प्रति ऐसा सुन्दर वर्ताव ! शिवाजी रहस्य को समझ नही सके। समझते भी कैसे ? उनका चिंतन दूसरे प्रकार का था। वे दण्डशक्ति मे विश्वास करते थे। रामदास का चिंतन भिन्न था। वे करुणा मे विश्वास करते थे।

रामदास ने रहस्य को समझाते हुए कहा—शिवा ! वात समझ मे नही आई होगी। किसान गरीव है, यदि गरीवी से ग्रस्त नही होता तो ऐसा व्यवहार कभी नही करता। यदि इसकी अपराध वृत्ति को मिटाना है तो इसकी गरीवी को मिटाना होगा। इसको पाच वीघा जमीन दे दो, फिर यह ऐसा व्यवहार कभी नही करेगा।

समस्या का समाधान तभी मिल सकता है जव मानव अन्तर रहस्य को प्राप्त करने का प्रयास करे। गहराई मे डुवकिया लगाने से ही समाधान रूपी मोती मिल सकते है, अन्यथा नही।

सकल समस्या मिट सके, यदि हो गहरा ज्ञान।
समाधान हर विषय का, देते हैं विद्वान ॥

आत्म निन्दा

चन्द्ररुद्र नाम के आचार्य अपनी शिष्य सम्पदा के साथ एक दिन उज्जयिनी नगरी मे पधारे। गुरुजी अधिक क्रोधी होने के कारण शिष्यो ने सोचा गुरुजी के लिए अलग प्रवास की व्यवस्था हो जाये तो अच्छा। साथ मे प्रवास होने मे कदाचित्

कोई न कोई दुविधा उत्पन्न होने की आशका रहेगी। गुरुजी के मन इच्छित मकान की व्यवस्था हुई। समय-समय पर गुरुजी की सेवा मे शिष्यगण उपस्थित हो जाते। समता की साधना करते हुए गुरु एकात मे ध्यान करते। जप-अनुष्ठान मे गतिशील बने।

एक दिन की बात है कि गुरुजी ने अपने अन्तेवासी शिष्य से कहा—शिष्य ! मै वृद्ध हो गया हू। आखो से मुझे सम्यग्तया दिखता नही और न ही घुटनो से चल सकता हू। अब मेरे जीवन मे समाधि नही रह पायेगी।

शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरे पर आपका अनन्त उपकार है। भव-भव मे भी आपके उपकार से उपकृत नही हो सकता। आपकी सेवा शुश्रुषा के लिए मेरा समस्त जीवन आपके श्री चरणो मे समर्पित है, रहेगा।

गुरु ने कहा—शिष्य ! मैं इस नगरी मे रहना नही चाहता। मुझे अन्यत्र कैसे ले जायेगा। क्या व्यवस्था है ? शिष्य ने करबद्ध होकर विनम्र भाषा मे कहा—पूज्य चरण ! आपको तनिक भी चिन्ता करने की जरूरत नही है। बैठ जाइये मेरे कंधो पर। जहा आपकी इच्छा होगी वही मैं ले जाने का प्रयत्न करूगा।

गुरुजी शिष्य के कधो पर आरुढ हुए। शिष्य चला। आगे जाते-जाते एक गड्ढा आ गया। शिष्य की कुछ स्खलना होने के कारण पैर गड्ढे मे पड गया। जोर से धक्का लगा, तब गुरुजी गुस्से मे लाल पीले होकर अधरावली को कपाते हुए उच्च स्वर से आक्रोश पूर्वक बोले—अरे पापिष्ठ शिष्य ! ऐसे कैसे चल रहा है ?

शिष्य ने बडी विनम्रता से कहा—आचार्य प्रवर ! मेरी त्रुटि पर आप ध्यान न दें। आप प्रभु है। अब भविष्य मे ध्यानपूर्वक चलूगा। किसी भी प्रकार की स्खलना नही होगी मेरी। इतना विनय करने पर भी गुरुजी कहा शान्त रहने वाले थे। उन्होंने क्रुद्धित होकर शिष्य के सिर पर यष्ठि का प्रहार किया। शिष्य के सिर से शोणित धारा बहने लगी। शिष्य मन ही मन पश्चाताप करने लगा—हाय ! मेरे योग से गुरुदेव को क्लान्त होना पडा। इस प्रकार स्वय धिक्कृत करते हुए आत्मा मे रमण करने लगा। क्षमा सागर मे झूलता-झूलता केवल ज्ञान को उपार्जित कर लिया। शिष्य ने कहा—हे गुरुदेव ! आपकी कृपा से मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ है।

गुरु ने पूछा—शिष्य ! ज्ञान प्रतिपाती हुआ है या अप्रतिपाती ?

शिष्य बोला—प्रभो ! अप्रतिपाती हुआ है। गुरु ने सोचा—क्या केवल ज्ञान हो गया। झट कधे से नीचे उतरे और नमस्कार करते हुए पश्चाताप करने लगे। काश ! मेरे योग से केवल ज्ञानी की आशातना हो गई। ऐसे आत्म-निन्दा करते वे भी केवल ज्ञानी बन गये।

शास्त्रो मे आत्म-निन्दा का बहुत बडा फल बताया है। आत्म-निन्दा हर एक

व्यक्ति नही कर सकता। जिसमे आत्मवल होगा वही व्यक्ति आत्म-निन्दा कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

आत्मालोचन से अमिन, मिलता सवको लाभ।
पर-निंदा से जगत मे, मिटती मानव-आव ॥

खाद्य-असंयम

एक मूर्ख किसान था। खाने-पीने मे वडा होशियार था। जव कभी मुफ्त का भोजन मिल जाता तो खूव डाट लगा-लगा कर खाता। अधिक भोजन करना ही अपनी जिन्दगी का सार समझता था। कभी-कभी अजीर्ण हो जाता तो भी वह सोचता रहता—

भोजन कुरु दुर्बुद्धे!, का चिन्ता मरणे तव।
मृते च प्राप्यसि जन्म, परान्न न पुन पुन ॥

मरने की मुझे तनिक भी चिन्ता नही है। क्योकि जो जन्मता है वह मरता ही है, यह सृष्टि का नियम है। मरूगा तो अगले भव मे अवश्य जन्म लूगा, लेकिन ये मधुर पकवान वार-वार नही मिलते हैं।

कभी-कभी तो वह जीभ का लोलुप वन कर इतना खा लेता कि रात्रि मे नीद भी नही आती। करवटे वदलता रहता। कभी-कभी पेट मे दर्द हो जाता। हाय त्राय करता। अचानक एक समझदार व्यक्ति वहा आ पहुचा। उसने पूछा—भाई किसान! क्या वात है? कैसे आलाप-विलाप कर रहा है? ससार मे धनी और गरीव सभी वसते है। अपने-अपने स्थान पर सवका महत्व है। पाचो अगुलियो मे कौन छोटी कौन वडी। छोटी का भी महत्त्व है वडी का भी महत्व है। तू कैसे आक्रन्दन कर रहा है, क्या वात है?

किसान वोला—पेट मे कुछ दर्द हो रहा है।

उस विज्ञ व्यक्ति ने अच्छी सलाह देते हुए कहा—भैया! भोजन करते समय बीच मे पानी पी लिया करो, जिससे तुम्हारी पेट की क्रिया अपने आप ठीक हो जायेगी। किसान वोला—बहुत अच्छी वात कही आपने। मूर्ख आदमी वात को बहुत जल्दी पकडता है। पकड लेने के वाद उसे छोडता भी नही। अब वह बीच मे पानी पीने लगा। चार रोटी खाता था, दो रोटी खाता और बीच मे पानी पी लेता। एक दिन वह भूल गया और मोटी-मोटी चार रोटिया खा गया। पत्नी से वोला—आज तो बीच मे पानी पीना भूल गया, याद नही दिलाया। पत्नी ! कोई खास वात नही है, पानी ले आओ। पानी पीना और फिर चार रोटिया खा

ली, क्योकि उसे शिक्षा मिली हुई है कि बीच मे पानी पीना। अब उसका पेट फटने लगा। दु ख करने लगा—हाय ! ऐसा मुझे पता होता तो मैं चार रोटी और क्यो खाता ? अब बिना मौत मरना पडेगा। कुछ ही समय के पश्चात् वह यमराज का अतिथि बन गया।

जो व्यक्ति खाने मे सयम नही रखता है, जो व्यक्ति सही शिक्षा को उल्टे रूप मे ग्रहण करता है उसे हर दृष्टि से पश्चात्ताप करना पडता है। अत सुखाभिलाषी इन्सान को खाने मे सयम रखना चाहिए।

सयम रखता खाद्य मे, जो मानव मतिमान।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसके लाभ महान ॥

राजा भोज का भाग्य

धारा नगरी मे सिन्धुल नाम के राजा ने वर्षों तक राज्य किया। वृद्धावस्था मे उनके भोज नाम का पुत्र हुआ। नृप ने सोचा, भोज पाच ही वर्ष का है, अत मुञ्ज नाम के छोटे भाई को राज्य का भार देना उचित होगा। मुञ्ज को राज्य देकर उसकी गोद मे भोज को सौप दिया। राजा सिन्धुल का स्वर्गवास होने के पश्चात् मुञ्ज ने मत्री बुद्धिसागर को हटाकर उसके पद पर दूसरे को रखा। राज्य सभा मे बहुत बडे ज्योतिषविद् का समागम हुआ। राजा मुञ्ज ने पूछा— हे ज्योतिषाचार्य ! भोज की जन्म-पत्री पर अपना विचार प्रकट कीजिये। विप्र ने कहा—

पञ्चाशत पञ्च वर्षाणि, सप्तमास दिन त्रयम्।
भोज राजेन भोक्तव्य, सगौडो दक्षिणापथ. ॥

पचपन वर्ष सात महीने और तीन दिनो तक गौड देशो के सहित दक्षिणपथ पर भोज राज्य करेंगे।

यह सुनते ही मुञ्ज नृप की आकृति निस्तेज हो गई। कुबुद्धि उत्पन्न हुई। ज्यो त्यो कर इसे मरवा दू। बगाल के राजा महाबली वत्सराज को आमन्त्रित किया। वह उपस्थित हुआ और बोला—फरमाइये मेरे लायक कार्य। मुञ्ज ने कहा—रात्रि के प्रथम प्रहर मे भोज को मार दो तथा उसका सिर अत पुर मे ले आओ। उसने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरा एक निवेदन है—

भोजे द्रव्य न सेना वा, परिवारो बलान्वित ।
पर पोत इवास्तेऽद्य, स हन्तव्य कथ प्रभो !

हे प्रभो ! भोज के समीप न तो द्रव्य, न सेना, न बलवान परिवार ही है तो वह बालक आज क्यो मारा जा रहा है। राजन् ! पुत्रवध कभी हितकर नही !

वत्सराज के वाक्यो को सुनते ही मुञ्ज के क्रोध का पार न रहा। वह बोला—तुम मेरे सेवक होकर मालिक जैसा रोब जमाते हो। एक कवि ने कहा है—

> स्वाम्युक्ते यो न यतते, स भृत्योभृत्य पाशक ।
> तज्जीवनमपि व्यर्थं, मजागल कुचाविव ॥

जो नौकर मालिक के आदेश को नही मानता वह नौकर अधम है। उसका जीना बकरे की गर्दन के कुचो के समान वृथा है।

वत्सराज का सिर लज्जा से झुक गया। नृप-आज्ञा-पालन मे सजग बना। भोज के अध्यापक को बुलाने के लिये सेवक भेजा गया। वह जाकर बोला—हे तात! आपको वत्सराज बुला रहे हैं। भोज के अध्यापक उसकी बात सुनकर उसी सेवक के हाथ को पकडकर वत्सराज के पास उपस्थित हुए। वत्सराज ने प्रणाम करते हुए उनका स्वागत किया। हे पण्डित तात! बैठिये। राजकुमार [illegible] को बुला लीजिये। पाठशाला मे आये हुए जयन्त को पूछा—क्या पढते हो? [illegible] उसे लौटा दिया। फिर उसने कहा—कुमार भोज को [illegible]। भोज को समस्त समाचारो की जानकारी मिल गई। [illegible] को कपाता हुआ वहा आया और जोर से बोला—[illegible]! [illegible]! [illegible] क्या अधिकार है? इस प्रकार का [illegible]! धिक्कार! [illegible] पैर से खडाऊ निकालकर वत्सराज के [illegible] मारी। [illegible] भोज! हम राजा के आज्ञाकारी हैं। ऐसी बातें [illegible] बैठाकर वह महामाया के मन्दिर की ओर चला। [illegible] गया"। हाहाकार मचा। सर्वत्र हला फैल गई। [illegible] चलते ही सैकडो-हजारो व्यक्तियो ने सेना का सामना किया। [illegible] यमराज के अतिथि बने। भोज की माता सावित्री ने [illegible] देखकर कहा—हे वत्स! तुम्हारे चाचा ने तुम्हारी [illegible], ऐश्वर्य को नष्ट कर दिया। अनेको महिलाओ का [illegible]। [illegible]! [illegible]! ऐसा कहकर वह पृथ्वी पर गिर पडी। कुछ ही [illegible] हुई।

वत्सराज बोला— हे भोज! [illegible] देश का मालिक भोज बनने वाला है। [illegible] आदेश दिया है।

भोज ने कहा— [illegible] का दोना बनाता। [illegible] दूसरे पत्ते पर [illegible] [illegible] दे देना। [illegible]

छोटा बधु भोज की मुखाकृति; देखकर कहने लगा—यह जीवन क्षणभगुर है। नाशवान है। दूसरो की हत्या स्वय की हत्या है। दूसरो का बुरा स्वय का बुरा है।

बान्धव वाणी मे वत्सराज के हृदय मे विरक्ति उत्पन्न हो गई। वह बोला—हे प्राणदेव भोज ! क्षमा करे। भोज को रथ मे बैठाकर शहर के बाहर घोर अन्धकार वाले घर मे नीचे की कोठरी मे भोज को रखकर वहा उसकी रक्षा की। उसके बाद उसने बनावटी वस्तु बनाने वालो से भोज कुमार का सिर बनवाकर उसे लेकर राजभवन पहुचा। मुञ्ज को प्रणाम कर कहने लगा—देव ! आपने जो आज्ञा दी थी, वह पूर्ण कर दी। मुञ्ज ने पुत्र मरा जानकर उससे पूछा—क्या प्रहार करते समय उस बालक ने कुछ कहा। वत्सराज ने उस पत्र को राजा को दे दिया। राजा ने अपनी धर्मपत्नी से दीपक मगवाकर पत्र को पढा—

मान्धाता च महीपति कृतयुगालङ्कार भूतोगत
सेतुर्येन महोदधौ विरचित क्वासौदशास्यान्तक
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रमृतयो याता दिव भूपते !
नैकेनापि सम गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति ॥

सतयुग का अलकार रूप महीपति मान्धाता चला गया। समुद्र के ऊपर पुल बाधने वाले तथा रावण को मारने वाले राम कहा हैं ? अन्य युधिष्ठरादि नृपतिगण मर गये, परन्तु वसुधा किसी के साथ नही गई। हे मुञ्ज ! तुम्हारे साथ यह वसुधा जायेगी ?

पत्राशय को समझते ही राजा पलग से पृथ्वी पर गिर पडा। रानी ने अपने अञ्चल द्वारा हवा डाली। राजा चैतन्य होकर कहने लगा—हे देवी ! मेरे जैसा अधम कोई नही है। मैंने पुत्र का वध करवाया। इस भयकर पाप से छुटकारा कैसे मिलेगा ? ब्राह्मणो से पूछा गया कि मैंने पुत्र का वध किया है। अब इसका प्रायश्चित बतलाइये। उन्होंने कहा—आप और राजा वत्सराज को अग्नि मे प्रवेश करना चाहिये। "पुत्र वध के प्रायश्चित मे राजा अग्नि मे प्रवेश करेंगे"। यह किवदन्ती सर्वत्र फैल गई। बडे-बडे सामन्त पुर वासी एकत्रित हुये। मन्त्री बुद्धिसागर ने द्वारपालो को बुलाकार कहा—अब कुछ कडाई से पहरा देने की आवश्यकता है। कोई भी राजभवन मे न आने पावे। राजा को रनिवास मे बिठाकर स्वय अकेला राज्य सभा मे चिन्तित मुद्रा मे बैठा है।

वत्सराज ने राजा के प्राण-त्याग की बात सुनी, वह सभा मे आया। बुद्धिसागर को कहने लगा—मैंने भोजराज को सुरक्षित रखा है। अचानक एक कापालिक नाम का योगी आया। अपना परिचय देते हुए बोला—समस्त पृथ्वी-मण्डल मे हम परिभ्रमण करते हैं। सर्प से काटे हुए प्राणी को, शस्त्र से कटे हुए सिर को,

विष से व्याकुलीभूत आदि को, एक ही क्षण मे सर्व व्याधियो से निवृत्त कर देता है। दीवार के पीछे से राजा सब वृत्तान्त सुनकर सभा मे उपस्थित हुआ। कापालिक को नमस्कार किया। हाथ जोड़कर बोला—हे योगीराज! मेरे जैसे महापापी द्वारा वध किये हुए पुत्र को चैतन्य कर दीजिये आपका उपकार नही भूलूगा। योगी ने कहा—राजन्! घबराइये मत! आपका पुत्र नही मरेगा। बुद्धिसागर के साथ श्मशान घाट पर हवन सामग्रिया भेज दीजिये। वैसा ही हुआ। रात्रि मे भोज को गुप्त रूप से नदी तट पर लाया गया। "योगी ने कुमार को जीवित कर दिया।" यह बात सर्वत्र फैल गई। बड़े हर्षोल्लास से उसे राजभवन मे लाया गया। राजा मुञ्ज ने उसे छाती से लगाकर [illegible] किया। राजा ने प्रसन्न होकर सिहासन पर बैठाकर उसको राज्य दे दिया। [illegible] निवृत्त होकर अध्यात्म मे रमण करने लगा।

जिस व्यक्ति की किस्मत अच्छी होती है उसका कोई भी बाल बांका नही कर सकता। उपचार औषध, देव सहयोग आदि बाह्य साधन तभी काम आते हैं जबकि मानव का भाग्य प्रबल हो।

भाग्यवान नृप भोज था, [illegible]।
'मुनि कन्हैया' भाग्य बिन, [illegible]॥

गीदड़ का चातुर्य

गीदड़ जगल मे इधर-उधर भटक रहा था। [illegible] उसकी नजर टिकी। वह मन ही मन सोचने लगा— [illegible] तकदीर के बिना ऐसे सुगम अवसर की [illegible] बड़े आराम से निश्चिन्त होकर खाऊंगा। [illegible] कल्पना कर ही रहा था कि अचानक [illegible] शब्दो मे कहा—अरे! भानजा! [illegible]

गीदड़ ने बड़ी विनम्र भाषा मे [illegible] दृष्टि से सब अच्छा है। सिंह ने पूछा— [illegible] बोला—मामाजी महाराज! [illegible] दिया। सिंह की बिना [illegible] इधर आते हुए [illegible] नही। [illegible]

[illegible] कुछ ही [illegible] पर गीदड़ [illegible] नही है। [illegible]

प्राण पखेरू लूट लिए गये। क्या कहू। शक्तिशाली की कदम-कदम पर विजय होती है। यह बात सुनते ही व्याघ्र ने अपना पथ पकड लिया।

कुछ ही समय के बाद वहा एक कौआ आ पहुचा। गीदड ने सोचा—इस कौए को यदि कुछ भी नही दूगा तो यह जोर-जोर से का-का करेगा। इसकी आवाज सुनकर अनेको कौए एकत्रित हो जायेगे। आस-पास के गीदड भी आ जायेंगे। मेरा भक्ष्य सब लेकर दौड जायेगे। मै भूखा का भूखा रह जाऊगा। अत इसे कुछ देकर टालना ही अच्छा है। बुद्धिमान अपनी चतुरता का प्रदर्शन किए बगैर नही रहता। गीदड ने कौए की तरफ मास का टुकडा फेंक दिया। कौआ उसे लेकर आकाश मे उड गया। तत्पश्चात वहा एक गीदड आ जाता है। उसे देखकर वह सोचने लगा—यह तो मेरे सदृश है। मेरे जैसा ही यह पराक्रमी है। हर दृष्टि से हम दोनो बराबर है। ज्यो-त्यो कर इसे यहा से ढकेलना ही मेरे लिए सुखद होगा। वह आक्रुद्ध होकर उसे ललकार सुनाता हुआ उस गीदड के जोर-जोर से लात जमाता है। वह गीदड आक्रन्दन करता हुआ वहा से भाग जाता है।

दक्षता से हर एक व्यक्ति अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। दक्षता जीवन का प्रशस्त पथ है। दक्षता व चतुरता के बिना कोई भी आदमी अपनी उन्नति नही कर सकता है।

इस दुनिया मे दक्षता, है जीवन का पथ्य।
गीदड कथा प्रलाप मे, मिलता निश्चित तथ्य ॥

धर्म का द्वेषी

मथुरा नगर मे इन्द्रदत्त नाम का राज पुरोहित था। वह जैन धर्म का पक्का द्वेषी था। जैनी सतो के साथ मे कुतर्क करने तैयार रहता था। एक दिन अपने भवन की ऊपरी मजिल के गवाक्ष मे बैठा-बैठा नगर का दृश्य देख रहा था। अचानक पाच महाव्रतधारी ईर्या समिति मे सजग साधु इस पुरोहित के भवन के नीचे से कही आगे जा रहे थे। मुनिश्रेष्ठ को देखते ही पुरोहित के हृदय मे द्वेष का पार नही रहा। वह अपनी पैरो की जूती हाथ मे लेकर मुनिराज को दिखाने लगा और मन ही मन मे सोचने लगा कि ऐसे सतो की पूजा तो जूतो मे ही होनी चाहिए। इतना भयकर अपमान होते हुए भी मुनिप्रवर तो समता रस का आस्वादन करते हुए आगे जाने के लिए रवाना हो गए।

तत्रस्थ एक जैन श्रावक ने देख लिया कि इस पुरोहित ने मुनि महाराज का कितना बडा अपमान किया है। उसके हृदय मे रोष का पार नही रहा। उसने सोचा—इसका बदला अवश्य लेना चाहिए। सतो की इसने जो आशातना की है

उसका फल इसे मिलना चाहिए। उसने अपनी तपस्या के माध्यम से [illegible] देव की आराधना की। देव उपस्थित होकर बोला—फरमाइये मेरे लायक कोई काम। श्रावक ने कहा—देव! इस पुरोहित ने मुनिवर का अपमान किया है [illegible] फल मिलना चाहिए।

देव बोला—पुरोहित ने नया मकान बनाया है। प्रवेश पर राजा भी [illegible]। ज्योंही राजाजी उसमें प्रवेश करे त्योंही तू कंधा खींच लेना। उसी समय मैं [illegible] भवन को ढहा दूंगा। जिससे नृपति तेरे वश में हो जायेंगे। राजाजी [illegible] दंडित करेंगे। कुछ ही दिनों के बाद पुरोहित ने नव-निर्मित भवन के प्रवेश [illegible] राजा को आमंत्रित किया। नृपति ज्योंहि भवन में प्रवेश करने लगे त्योंही [illegible] श्रावक ने पीछे आकर नृप का कंधा खींचते हुए कहा—[illegible] जाइये। ऐसा कहते ही भवन ढह गया।

आश्चर्य के सागर में डुबकियां लगाते राजा ने सेठ [illegible] कहा—श्रेष्ठिन्! तुमने मुझे मृत्यु की गोद में से बचा लिया [illegible] सेठ बोला—यह सब मेरे देव द्वारा ज्ञात हुआ है। [illegible] आपकी हत्या चाहता था।

आखिर राजा कुपित होकर उस पुरोहित [illegible] है। पुरोहित बोला—अरे कोई आओ। मुझे [illegible]। सेठ ने कहा—भाई पुरोहित! जो व्यक्ति [illegible] ही फल भुगतना पड़ता है। पुरोहित बोला—[illegible] करूंगा।

राजा ने कहा—तू मेरा राज पुरोहित [illegible] करेगा, विश्वास नहीं था। जैसा किया वैसा [illegible]।

जो व्यक्ति दूसरों को अपमानित करता है वह [illegible] मानित होता है। [illegible] धर्म को माने या न माने किन्तु किसी को [illegible]।

> अभिमानी [illegible]।
> 'मुनि कन्हैया' [illegible]॥

ज्ञान के अभाव में

[illegible]

कि बहुत कमजोर व कायर दिल का था। हर दृष्टि से वह डरपोक था। अब जहाज चलता है। समुद्र मे तूफान आया। धक्के लगते हैं। जहाज कभी ऊचा और कभी नीचा होता है। हिलोरे लेता है। सिपाही घबराया। थरथराने लगा। उच्च स्वर मे रोने लगा—हाय, अब क्या करू? बिना मौत मरना पडेगा। इस भीषण परिस्थिति मे कौन है मेरा सरक्षक?

बादशाह ने मन्त्री से पूछा—यह सिपाही क्यो रोता है? मन्त्री ने हाथ जोड कर विनय से कहा—जहापनाह! यह डरपोक है। इसे बडा भय लगता है। जैसे ही यह जहाज हिलता है, डगमगाता है, वह अपने दिमाग मे कल्पना करता है, सोचता है, अब प्राण पखेरू उडने वाले हैं। किसी का भी सहारा नही है। बादशाह ने कहा—उसे अच्छी तरह से समझाओ। मत्री सिपाही को समझाते हुए बोला—भैया! हाय-हाय करने की जरूरत नही है। समता रखो। हम तुम्हारे साथ हैं। अब कुछ ही समय के पश्चात् किनारा आने वाला है। तुम सिपाही हो। दूसरो को डराने वाले हो। अब तुम स्वय डरने लग गये, यह क्या बुद्धिमत्ता है?

थोडी देर बाद हवा फिर तेज हो गई। जहाज उलटता है, पलटता है, धक्के लगते हैं और वह जोर से चिल्लाने लगता है। उसे समझाते मत्री परेशान हो गया। तत्रस्थित सभी बडे लोग बडे चिन्तित हो गये। कैसा यह पागल पन कर रहा है। इसकी चिल्लाहट कानो को बेध रही है। मत्री ने सोचा—क्या करे? एक उपाय करू, जिससे इसकी चिल्लाहट मिट जाये। मत्री ने एक आदमी को समझाया। कुछ आदमी गये और उसे उठाकर समुद्र मे फेक दिया। अब वह ऊचे स्वर मे आक्रन्दन करने लगा—हाय! अब मेरा क्या होगा? डूबने लगा, डूबता है, तैरता है। आदमी कूदे, तैराक थे, उसे पकडकर ले आए। बिठा दिया। उसका गुस्सा शात हो गया, रोना भी बद हो गया। जहाज चल रहा है किन्तु उसका रुदन बन्द। हलचल बन्द। बादशाह मन ही मन सोचने लगा—अरे यह क्या? वह रोता नही है। बादशाह ने मत्री से कहा—मन्त्रिवर! तुमने क्या कर दिया। इसका रोना बन्द कैसे हुआ? मत्री ने कोमलता भरे शब्दो मे उत्तर देते हुए कहा—जहापनाह! अब यह नही रोयेगा। पहले उसे पता नही था कि जहाज मे कितनी सुरक्षा है। हम अथाह पानी मे जहाज मे बैठे हैं। पहले उसे पता नही था कि अथाह पानी मे जहाज हमारी कितनी सुरक्षा कर रहा है। इसका ज्ञान नही होने से जहाज के हिलोरे मे ही वह रोता था। जब पानी मे डूबने लगा, रोने लगा और डूबने की स्थिति का अनुभव हुआ तब पता चला कि जहाज का कितना मूल्य होता है। अब यह नही रोयेगा।

ज्ञान के अभाव मे कई व्यक्ति बिना मतलब चिन्तित रहते हैं, पीडित रहते हैं। सही जानकारी मिलते ही वे अपने आप मे तृप्त हो जाते हैं। अत हर विषय मे

गहरा चिन्तन होना चाहिए।

रहते ज्ञानाभाव में मानव चिन्तामग्न।
नहीं ज्ञान उपलब्धि में, बन जाता है स्वस्थ॥

मद्यपान से पागल

एक शराबी था। प्रतिदिन नशे में चूर रहता था। एक दिन धर्मपत्नी ने उसे शिक्षण देते हुए कहा—पतिदेव! शराब पीना स्वास्थ्य आदि हर दृष्टि से [illegible]कर नहीं है। जितनी भी आय होती है आप उसे नशे में [illegible] देते हैं। [illegible] का पालन पोषण भी एक विषम समस्या हो रही है। मुझे विश्वास [illegible] स्वल्प कथन को आप अपने जीवन में क्रियान्वित [illegible]।

पति बोला—प्रिये! तेरा कथन [illegible] है। [illegible] है। मैं इसे त्याज्य समझता हूं। [illegible] भी दृष्टि [illegible]। [illegible] विश्वास दिलाता हूं कि मैं भविष्य [illegible] कभी [illegible] नहीं [illegible]।

जिस व्यक्ति की जो आदत पड़ जाती है [illegible] जल जाती है पर उसकी ऐंठ नहीं जाती। [illegible] बार उसने शराब पी ली। पर [illegible] पत्नी को पता न लग जाये। [illegible] आज पत्नी को [illegible] भी पता नहीं [illegible] हुआ। [illegible] पत्नी दरवाजे के पास खड़ी [illegible]। [illegible] पूछ [illegible] बोला—पप्पू की मां! [illegible] तो तुमने [illegible] ही चोटी [illegible] है। [illegible] आते [illegible]। [illegible] रहे हैं। [illegible] पत्नी ने [illegible] दोनों ही [illegible] रही।

जो व्यक्ति शराब पी लेता है [illegible] मैं क्या बोल रहा हूं। [illegible] बन जाता है।

[illegible]
[illegible]

सच्ची भक्ति

शिवजी का एक मन्दिर था। वहा पर सैकडो व्यक्ति उपासना के लिए आते थे। शिवजी के मुख्य दो भक्त थे। एक था ब्राह्मण और दूसरा था भील। ब्राह्मण प्रतिदिन शिवजी का अभिषेक करता था। उन पर पुष्प आदि चढाता। चन्दन से उन्हे चर्चित करता था। उस गरीब भील के पास पूजा योग्य सामग्री कहा थी ? फिर भी भक्ति भाव से शिवजी की पूजा करने मे बडी तन्मयता रखता था।

एक दिन ब्राह्मण मदिर मे शिवजी की उपासना करने गया तो देखा शिवजी भील से वार्तालाप कर रहे थे। यह देखकर ब्राह्मण जलने लगा। मन मे ईर्ष्या का वेग बढने लगा। उसने सोचा—शिवजी की मैं इतनी सेवा-उपासना करता हू, विभिन्न प्रकार की अर्घ्य सामग्री चढाता हू, फिर भी मेरे पर शिवजी भगवान् की तनिक भी कृपा नही है। इस भील से वार्तालाप कर रहे है। उसने शिवजी से पूछा—भगवन् ! आप मुझसे असतुष्ट क्यो है ? मैं आपकी इतनी परिचर्या करता हू, फिर भी आप मेरे जैसे पवित्र व्यक्ति से वार्तालाप न करके इस गरीब व्यक्ति से बातचीत कर रहे है।

शिवजी ने उत्तर देते हुए कहा—प्रिय भक्त ! तुम्हारा कथन अक्षरश सत्य है परन्तु मेरे प्रति जितनी श्रद्धा-भक्ति इस भील की है उतनी तुम्हारे हृदय मे नही है।

एक दिन शिवजी ने अपनी एक आख फोड डाली। ब्राह्मण अपने निश्चित समय पर पूजा करने आया। उसने देखा शिवजी के एक आख नही है। ब्राह्मण पूर्ववत शिवजी की पूजा कर अपने घर चला गया। उसके बाद भील आया। उसने देखा शिवजी के एक आख नही है। भील के हृदय मे पीडा का पार नही रहा। उसने आव देखा न ताव। उसने झट अपनी आख निकालकर उनके लगा दी।

दूसरे दिन ब्राह्मण फिर उपासना हेतू आ पहुचा। शिवजी के पूर्ववत् दोनो आखें देखी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शिवजी ने सारा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि जैसी श्रद्धा-भक्ति भील के हृदय मे है वैसी भक्ति तेरे हृदय मे नही है। इसकी परीक्षा आज हो गई। अधिक कहने की अपेक्षा नही है। मेरे दृष्टि मे भील मेरा सच्चा भक्त है।

ससार मे दिखावटी भक्ति करने वाले बहुत है किन्तु हार्दिक भक्ति करने वाले कम है। अपने लक्ष्य मे वही व्यक्ति सफल होता है जो भगवान् की सच्ची भक्ति करता है।

शुद्धमना भगवान् की, करता सच्ची भक्ति।
'मुनि कन्हैया' भक्त वह, रखे धर्म अनुरक्ति।।

दृढ़ धर्मी

उदयपुर के महाराणा बडे दानवीर थे। कोई भी याचक आता वह खाली हाथ नही जाता। सर्वत्र राणाजी की प्रसिद्धि हो गई। राणाजी प्राय जगल मे ही रहते थे। एक दिन बादशाह फकीर का रूप बनाकर राणाजी के अतिथि-सत्कार व दान-शीलता का परीक्षण करने के लिए आया। उसने बडी विनम्र भाषा मे कहा—राणाजी! आपकी प्रशसा मैंने बहुत सुनी है कि आप जैसे दाता ससार मे विरले होंगे। कृपया मुझे चादी की थाली में मेवा की खिचडी खाने के लिए दीजिए। राणाजी की प्रतिज्ञा थी कि वह अपने अतिथि को निराश होकर नही जाने देते थे। राणाजी ने सोचा, क्या करू? इस समय तो मेरे पास मुट्ठी-भर अनाज भी नही है। ऐसी विकट वेला मे चादी के थाल मे मेवा की खिचडी का भोजन [illegible] पायेगा। इसी उधेडबुन मे चितातुर होकर राणाजी बैठे है।

राणाजी ने फकीर को पहचान लिया। चिन्ता-ही-चिन्ता मे [illegible] गये। [illegible] बादशाह फकीर बनकर बडी आशा लेकर मेरे पास आया है। [illegible] सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। लेकिन [illegible] है। आज मेरी प्रतिज्ञा भग हो जायेगी। प्रतिज्ञा-भग [illegible] अच्छा है। ऐसा चिंतन कर राणाजी ने फकीर से कहा—[illegible]। राणाजी पीछे के मार्ग से मरने के लिए जाना [illegible]। [illegible] मे एक आदमी मिला। वह बैल पर [illegible]। [illegible] साहब! मैं शारीरिक कार्य से निवृत्त होकर [illegible]। [illegible] पकडकर रखना। राणाजी ने तो सोचा—[illegible] श्रेयस्कर है। ऐसा चिन्तन कर राणाजी ने बैल को [illegible] लिया।

वह व्यक्ति बैल को पकडाकर [illegible]। [illegible] लेकिन वह मनुष्य लौटकर वापस आया ही नही। [illegible] निराश हो गये। सोचा—देखू तो सही [illegible]। राणाजी ने देखा तो आश्चर्य का पार नही [illegible]। [illegible] मेवा लदा हुआ था। अहो! [illegible]। राणाजी वहा से चले। फकीर के पास [illegible]। [illegible] परमेश्वर उनका [illegible] किया।

जो मनुष्य अपने नियम से [illegible] स्वय को जिसने अपने जीवन मे [illegible] मे [illegible] है। [illegible]

सच्ची भक्ति

शिवजी का एक मन्दिर था। वहां पर सैकड़ों व्यक्ति उपासना के लिए आते थे। शिवजी के मुख्य दो भक्त थे। एक था ब्राह्मण और दूसरा था भील। ब्राह्मण प्रति-दिन शिवजी का अभिषेक करता था। उन पर पुष्प आदि चढ़ाता। चन्दन से उन्हें चर्चित करता था। उस गरीब भील के पास पूजा योग्य सामग्री कहां थी ? फिर भी भक्ति भाव से शिवजी की पूजा करने में बड़ी तन्मयता रखता था।

एक दिन ब्राह्मण मंदिर में शिवजी की उपासना करने गया तो देखा शिवजी भील से वार्तालाप कर रहे थे। यह देखकर ब्राह्मण जलने लगा। मन में ईर्ष्या का वेग बढ़ने लगा। उसने सोचा—शिवजी की मैं इतनी सेवा-उपासना करता हूं, विभिन्न प्रकार की अर्घ्य सामग्री चढ़ाता हूं, फिर भी मेरे पर शिवजी भगवान् की तनिक भी कृपा नहीं है। इस भील से वार्तालाप कर रहे हैं। उसने शिवजी से पूछा—भगवन् ! आप मुझसे असंतुष्ट क्यों हैं ? मैं आपकी इतनी परिचर्या करता हूं, फिर भी आप मेरे जैसे पवित्र व्यक्ति से वार्तालाप न करके उस गरीब व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं।

शिवजी ने उत्तर देते हुए कहा—प्रिय भक्त ! तुम्हारा कथन अक्षरशः सत्य है परन्तु मेरे प्रति जितनी श्रद्धा-भक्ति उस भील की है उतनी तुम्हारे हृदय में नहीं है।

एक दिन शिवजी ने अपनी एक आंख फोड़ डाली। ब्राह्मण अपने निश्चित समय पर पूजा करने आया। उसने देखा शिवजी के एक आंख नहीं है। ब्राह्मण पूर्ववत शिवजी की पूजा कर अपने घर चला गया। उसके बाद भील आया। उसने देखा शिवजी के एक आंख नहीं है। भील के हृदय में पीड़ा का पार नहीं रहा। उसने आव देखा न ताव। उसने झट अपनी आंख निकालकर उनके लगा दी।

दूसरे दिन ब्राह्मण फिर उपासना हेतु आ पहुंचा। शिवजी के पूर्ववत् दोनों आंखें देखीं तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शिवजी ने सारा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि जैसी श्रद्धा-भक्ति भील के हृदय में है वैसी भक्ति तेरे हृदय में नहीं है। इसकी परीक्षा आज हो गई। अधिक कहने की अपेक्षा नहीं है। मेरी दृष्टि में भील मेरा सच्चा भक्त है।

संसार में दिखावटी भक्ति करने वाले बहुत हैं किन्तु हार्दिक भक्ति करने वाले कम हैं। अपने लक्ष्य में वही व्यक्ति सफल होता है जो भगवान् की सच्ची भक्ति करता है।

शुद्धमना भगवान् की, करता सच्ची भक्ति।
'मुनि कन्हैया' भक्त वह, रखे धर्म अनुरक्ति॥

दृढ़ धर्मी

उदयपुर के महाराणा बडे दानवीर थे। कोई भी याचक आता वह खाली हाथ नही जाता। सर्वत्र राणाजी की प्रसिद्धि हो गई। राणाजी प्राय जगल मे ही रहते थे। एक दिन बादशाह फकीर का रूप बनाकर राणाजी के अथिति-सत्कार व दान-शीलता का परीक्षण करने के लिए आया। उसने बडी विनम्र भाषा मे कहा—राणाजी! आपकी प्रशसा मैंने बहुत सुनी है कि आप जैसे दाता ससार मे विरले होगे। कृपया मुझे चादी की थाली मे मेवा की खिचडी खाने के लिए दीजिये। राणाजी की प्रतिज्ञा थी कि वह अपने अतिथि को निराश होकर नही जाने देते थे। राणाजी ने सोचा, क्या करू? इस समय तो मेरे पास मुट्ठी-भर अनाज भी नही है। ऐसी विकट वेला मे चादी के थाल मे मेवा की खिचडी का साधन कैसे बन पायेगा। इसी उधेडबुन मे चितातुर होकर राणाजी बैठे है।

राणाजी ने फकीर को पहचान लिया। चिता-ही-चिता मे डूब गये। यह बादशाह फकीर बनकर बडी आशा लेकर मेरे पास आया है। समागत मेहमान का सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। लेकिन सत्कार कैसे करू? सामग्री कुछ भी नही है। आज मेरी प्रतिज्ञा भग हो जायेगी। प्रतिज्ञा-भग की अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है। ऐसा चितन कर राणाजी ने फकीर से कहा—आप विश्राम करे। बैठें। राणाजी पीछे के मार्ग से मरने के लिए रवाना हुए। जगल मे पहुचे। वहा पर मार्ग मे एक आदमी मिला। वह बैल पर माल लादे जा रहा था। उसने कहा—भाई साहब! मैं शारीरिक कार्य से निवृत्त होकर अभी आता हू। थोडी देर इस बैल को पकडकर रखना। राणाजी ने तो सोचा—मरना तो है ही, पहले इसका कार्य करना श्रेयस्कर है। ऐसा चिन्तन कर राणाजी ने बैल को पकड लिया।

वह व्यक्ति बैल को पकडाकर चला गया। घटा, दो घटा, पाच घटे हो गये लेकिन वह मनुष्य लौटकर वापस आया ही नही। राणाजी खडे-खडे थक गये, निराश हो गये। सोचा—देखू तो सही, इस बैल पर क्या-क्या माल लदा हुआ है? राणाजी ने देखा तो आश्चर्य का पार नही रहा। उस पर चादी की थालिया और मेवा लदा हुआ था। अहो! यह किस्मत का चमत्कार। भाग्य ने सहारा दिया। राणाजी वहा से दौडे। फकीर के पास आये। चादी के थाल मे मेवे की खिचडी परोसकर उनका अतिथि-सत्कार किया।

जो मनुष्य अपने नियम मे मजबूत होता है 'प्राण जाहि पर प्रण नहि जाहि' सूक्त को जिसने अपने जीवन मे उतारा है, उसको हर तरफ से अनायास ही सहज मे सहायता मिल जाती है। अत हर व्यक्ति को दृढ प्रतिज्ञ बनकर आगे बढना

चाहिए।

दृढ़ धर्मी को सहज में, मिल जाता सहयोग।
'मुनि कन्हैया' नियम से, मिटता अन्तर रोग॥

बुरे का फल बुरा

हंसराज राजकुमार का दिल बड़ा उदार था। जो भी याचक आता उसे कुछ-न-कुछ दान अवश्य देता। कुछ चुगलखोरों ने राजा से निवेदन करते हुए कहा—राजन्! जो भी याचक आता है उसे हंसराज राजपुत्र दिल खोलकर खूब दान देता है। उससे लगता है कि आपका राज-भंडार खाली न हो जाये। राजा ने पुत्र को शिक्षा देते हुए कहा—पुत्र! भविष्य में किसी को कुछ भी नहीं देना है। एक दिन एक याचक आया। हंस ने सोचा—क्या दूं? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। किसी याचक को खाली लौटाना मेरा धर्म नहीं है। आखिर उसने अपने गले का हार निकालकर दे दिया।

चुगलखोर राजा के पास पहुंचे। कुंवर साहब ने हार का दान दिया है! नृप के दिल में क्रोध का पार न रहा। कुंवर को बुलाया गया। पूछा—दान में हार दिया? कुंवर ने स्वीकार की भाषा में कहा—क्या करूं, दान दिए बिना नहीं रह सकता। आखिर सोच-विचारकर कुंवर को देश-निकाला दे देता है। चुगलखोर सज्जन नाम का व्यक्ति हंसराज का दोस्त होने के नाते भी उसके साथ रवाना हो गया। ऊपर से तो वह हमदर्दी दिखा रहा था लेकिन सज्जन के हृदय में दुर्जनता का पार नहीं था। दोनों आगे बढ़े। भयंकर जंगल आ गया। सज्जन ने अवसर देखकर हंसराज की आंखों को नष्ट कर घोड़े पर अपने नगर की राह पकड़ी। हंसराज इधर-उधर भटकता-भटकता वट-वृक्ष के नीचे बैठ जाता है। ऊपर से आवाज आई कि पक्षी की बीटों व वृक्ष के पत्तों को रगड़कर आंखों में डालने से ज्योति आ जाती है। हंसराज ने प्रयोग किया। आंखें ठीक हो गयीं। पड़ोसी राजा ने घोषणा करते हुए कहा—यदि मेरी सुपुत्री कनकश्री की आंखों को ठीक कर देता है तो उसको अर्द्ध-राज्य देने के साथ-साथ सुपुत्री कनकश्री के साथ विवाह कर दूंगा। घोषणानुसार हंसराज वहां पहुंच जाता है। उपरोक्त औषध का प्रयोग करते ही राजकन्या की आंखों में ज्योति आ जाती है। अर्द्ध राज्य के साथ-साथ उसको राजकन्या मिल जाती है। अर्द्ध-राज्य का मालिक हंसराज अपनी धर्मपत्नी कनकश्री के साथ क्रीड़ा करता हुआ आनन्द से राजमहलों में रहने लगा।

एक दिन राजा हंसराज महलों के गवाक्ष में बैठा-बैठा नगर-अवलोकन कर रहा था। कार्यवश उस नगर में सज्जन का आगमन। हंसराज ने सज्जन को देखा,

पहचाना। अरे ! यह तो मेरा दोस्त है। नौकर के द्वारा उसे ऊपर बुलाया गया। सज्जन आया। बातचीत हुई। फिर भी सज्जन-मित्र हसराज को पहचान नही सका। आखिर भेद खुलते ही सज्जन के हृदय मे जलन उत्पन्न हो गई। मित्र हसराज ने तो मित्र सज्जन को हर दृष्टि से सम्मानित किया। सहयोग दिया। किन्तु बुरा व्यक्ति अपनी बुराई को छोड नही सकता। वह कुबुद्धि का धनी नृप-दरबार मे गया। बद्धाजलि प्रणमन करता हुआ बोला—राजन् ! आप अपने दामाद हसराज के वश को जानते हैं ? राजा बोला—मैं क्षत्रिय हू। मेरा दामाद भी क्षत्रिय है। सज्जन बोला—राजन् ! वह क्षत्रिय नही, चमार है ! आपने चिन्तन नही किया, नही पूछा। कुल पर काला धब्बा लग गया ? इतना कहकर सज्जन हसराज के पास चला गया। मनोरजन क्रीडा व आमोद-प्रमोद करने लगा।

इधर राजा ने सोचा—ऐसे चमार दामाद को मैं आखो से देख नही सकता। ज्यो-त्यो कर इसको मरवा दे ! पुत्री चाहे विधवा बने उसकी तनिक भी चिन्ता नही है ! चाण्डालो को आमत्रित किया। राजा बोला—ओ चाण्डालो ! अमुक भवन के नीचे छिपकर रहना। रात्रि मे दस बजे महलो मे (मेरा दामाद) जो व्यक्ति नीचे आता है उसकी गर्दन पर तलवार चला देना। इस कार्य मे सफल होते ही तीन हजार रुपये पारितोषिक !

राजा ने निजी सचिव के साथ अपने दामाद के पास सवाद भेजा—आज रात्रि मे दस बजे मेरे पास पहुच जाये। इधर चाण्डाल सुसज्जित होकर सीढियो के पीछे छिपकर उस व्यक्ति की टोह मे सस्थित है ! उधर हसराज ने सज्जन से कहा—मित्र ! नृप (ससुर) ने आज रात्रि मे कैसे मुझे याद किया ? इतना क्या आवश्यक कार्य है ? तुम जाओ ! पता कर आओ कि किस कार्य के लिए राजाजी बुला रहे है ! सज्जन बहुत खुश हुआ। दस बजे ! घोर अधेरा ! ज्यो ही वहा से रवाना हुआ, नीचे उतरा ! चाण्डालो की तलवार चली। गर्दन कटी। चाण्डाल दौडे। राजा के पास आकर घटना से अवगत किया। पारितोषिक लिया।

सूर्य उदय हुआ। प्रपच सामने आया। हसराज ससुर राजाजी के कमरा मे उपस्थित हुआ। बात चली। भेद खुला। राजा ने पूछा—क्या आप चमार कुल के है ! हसराज बोला—मैं अमुक राजाजी का लडका हू ! क्षत्रिय वश है ! उत्तम आचार है ! उत्तम विचार है ! चमार की बात किसने कही। राजा द्वारा रहस्योद्घाटन ! बुरे का फल बुरा !

जो व्यक्ति दूसरो का बुरा सोचता है बुरा स्वय का होता है। बुरे व्यक्ति का कदम-कदम पर नुकसान होता है। इसलिए किसी भी क्षेत्र मे दूसरो की बुराई-निन्दा नही करनी चाहिए। जो दूसरो का भला करते है उनका हर दृष्टि से

उत्थान व निर्माण होता है। वे समाज मे पूजनीय महापुरुष बन सकते है।

बुरा सोचना अन्य का, उसका बुरा हवाल।
'मुनि कन्हैया' कह रहा, हसराज का हाल॥

राजा पोपसिह

किसी एक नगर मे राजा पोपसिहजी का राज्य था। शासन व प्रशासन का उन्हे तनिक भी ज्ञान नही था। अचानक एक मकान गिर गया। मकान मालिक ने राजाजी से फरियाद करते हुए कहा—राजन्! अभी-अभी नया मकान बनाया था, वह गिर गया। राजा ने कारीगर को बुलाकर कहा—अभी तो तुमने मकान बनाया और अभी वह कैसे गिर गया? लगता है दोष तुम्हारा ही है। दड के लिए तैयार हो जाओ।

कारीगर क्रन्दन करता हुआ जोर से बोला—स्वामिन्! मेरी प्रार्थना सुनिए। दोष मेरा नही है। चूना गीला अधिक था। दोष चूने वाले का है। राजा ने झट उसको बुलाकर कहा—दोष तुम्हारा है, चूना गीला क्यो किया? वह बोला—गरीबनिवाज! दोष मेरा नही है। चूने मे जो पानी डाल रहा था, उसने पानी ज्यादा डाल दिया। चूना अधिक गीला हो गया, दोष उसका है।

राजा के आदेशानुसार पानी वाला हाजिर हुआ। वह बोला—स्वामीनाथ! इसमे मेरा तनिक भी दोष नही है। जब मै पानी डाल रहा था, उस समय उधर से बारात आ गई। सुमधुर तान मे बाजे बज रहे थे। मेरा मन ललचा गया। मैं उधर देखने लगा। पानी ज्यादा गिर गया। अत दोष बाजे बजाने वाले का है।

नरपति के निर्देश से वह उपस्थित हुआ और बोला—राजन्! मेरी गलती नही है, बाजे बनाने वाले की गलती है। यदि वे इतना बढिया नही बनाते तो सुन्दर गाना गाते ही नही। राजा ने सोचा—वास्तव मे इनका कहना न्यायसगत है। इसे भी दडित नही कर सके। अब इस शृखला का अन्त कैसे हो सकता है? सब एक-दूसरे पर दोष मढ रहे है। कोई भी अपना दोष स्वीकार करना नही चाहता। राजा से कुछ भी नही हुआ। एक-दूसरे का दोष बताते-बताते अन्त ही नही आया किसे भी दडित नही कर सके। सारे शहर म वातावरण फैल गया। लोगो ने मन-ही-मन सोचा—ऐसे राजा से कुछ भी होने वाला नही है। धीरे-धीरे पोपा बाई के नाम से राजाजी प्रसिद्ध हो गये।

प्रशासन एक कला है। राज्य का सचालन वही कर सकता है जो हर क्षेत्र म हर दृष्टि से निपुण है, दक्ष है, अनुभवी है राज्य सचालन म यदि तनीतापन

होता है, यदि सोचने की शक्ति का अभाव होता है तो वह सर्वत्र असफल होता है।

अच्छे अनुभव के बिना, काम न होता सिद्ध।
'मुनि कन्हैया' राज्य का, भार वहेगा वृद्ध॥

सहृदयता का महत्त्व

एक दिन राजा भोज ने कवि कालीदास से कहा—हे कवि मूर्धन्य! जब मैं यमराज का अतिथि बन जाऊंगा, तब आप क्या कविता बनायेंगे? वे श्लोक अभी पढकर सुना दीजिए। यह सुनते ही कालीदास के क्रोध का पार नही रहा, उसी क्षण विलासवती के साथ उस नगर को छोडकर शिला नगरी मे चला गया। वहा आनन्द से रहने लगा। इधर राजा भोज शोकाकुल होकर कालीदास की खोज करने लगा। खोज करते-करते योगी के वेश मे राजा भोज शिलानगरी मे जा पहुचा।

वहा पर परिभ्रमण करते हुए अचानक कालीदास से भेंट हो गई। कालीदास ने कहा—हे योगीराज! आप कहा रहते हैं? योगी—मेरा निवास-स्थल है 'धारा नगरी।' कवि—महाराज भोज सकुशल हैं? योगी—मैं क्या कहू, कहने जैसी बात नही है। कवि—और कोई विशेष बात हो तो सत्य कहिए। तब योगी ने कहा—भैया! दिल मे अत्यन्त दर्द है। प्रजा आकुल व्याकुल हो गई। राजा भोज का अचानक स्वर्गवास हो गया। यह सुनते ही कवि कालीदास दुखी होकर धरती पर गिर पडा व बिलखता हुआ हाय-हाय करने लगा। फिर करुण स्वर मे बोला—हे देव! आपके बिना मेरी स्थिति पृथ्वी पर क्षण भर भी नही, आपके बिना हम सब अनाथ हैं, अब किसका सहारा, किसका सहयोग व अब कौन कवियों की इज्जत करेगा? अब मैं भी आपके समीप पहुच जाऊं। इस प्रकार का आर्तनाद-विलाप करता हुआ वह अंतिम समय के श्लोक की रचना करता हुआ बोला—

अद्य धारा निरा धारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिता खण्डिता सर्वे, भोज राजे दिवगते॥

—आज भोज राजा के स्वर्गवासी होने पर धारा नगरी व सरस्वती आधार-रहित हो गई। समस्त पंडित मंडल खंडित हो गया।

जब कवि ने यह अन्तिम श्लोक पढा तब योगी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा। कालीदास ने उसे बेहोश देखकर 'यह भोज राजा है' ऐसा निश्चय किया और गद्गद् स्वर से कहा—अहो महाराज! आपने मुझे ठगा। ऐसा कहकर उसी

श्लोक को अन्य रीति से सुनाते हुए कहा—

अद्य धारा सदा धारा, सदा लम्बी सरस्वती।
पण्डिता मण्डिता सर्वे, भोज राजे भुवगते॥

—'भोज राजा के आज धरा पर रहने के कारण धारा नगरी व सरस्वती आधारमयी व पंडित वर्गों से विभूषित हो रही है।'

यह श्लोक सुनते ही राजा भोज ने उनको नमस्कार कर धारा नगरी मे प्रस्थान किया। नृप ने सोचा—मेरे प्रति कविराज के हृदय मे जो सहृदयता है वह उपास्य है। समाज मे ऐसे स्वामिभक्त मिलने वाले कोई-कोई हैं।

जिसके हृदय मे सहृदयता होती है उसका सर्वत्र सम्मान होता है अगर किसी को मित्र बनाना है तो अपने आपको सहृदयवान होना चाहिए।

भोज भूप के हृदय मे, कवियो प्रति सम्मान।
'मुनि कन्हैया' हृदयता, है जीवन की शान॥

कष्टो मे अडिग

मगध देश मे राजगृह नाम की सुरम्य नगरी थी। बडे-बडे बाजारो व विशाल प्रासादो से सुसज्जित थी। भगवान् महावीर ने जहा अनेको चातुर्मास सम्पन्न किए। उसी नगरी मे चतुर विद्वान व समझदार चार मित्र रहते थे। परस्पर मे अत्यन्त प्रेम था। एक प्रकृति से साथ रहते थे। एकदा उसी नगरी मे जन-जन के त्राता, आत्मा के विजेता ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए भद्रबाहुस्वामी पधारे। उनकी धर्म-देशना सुनने के लिए हजारो नर-नारी आये। चारो मित्र भी गये। प्रवचन सुना। वैराग्य अंकुर प्रस्फुटित हुआ। चारो ने दीक्षा ग्रहण की। साधना मे रमण करते हुए चारो मुनि विहरण करने लगे। गुरुदेव के पास विद्याभ्यास करते-करते चारो विज्ञ व तत्त्वज्ञ बन गये।

गुरु की आज्ञा प्राप्त होते ही चारो मुनि बहिर्विहारी बन गये। धर्म संघ की प्रभावना करने लगे। जहा जाते वहा अच्छा उपकार होने लगा। चारो ने विशेष साधना का लक्ष्य बनाते हुए एक कठोर अभिग्रह स्वीकार किया। 'दिन के तृतीय प्रहर मे भिक्षार्थ जाना अवशिष्ट सात प्रहर मे कायोत्सर्ग व ध्यान कर समय को सफल बनाना।' ऐसा संकल्प कर वे विहरण करते-करते राजगृह मे आ पहुंचे।

सर्दी का समय था। चारो तरफ शीत लहर ने अपना जाल बिछाना प्रारम्भ कर दिया। चारो मुनियो ने वैभारगिरि पर्वत की गुफा मे अपना धार्मिक अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। एक दिन की बात है दिन के तृतीय प्रहर मे राजगृह नगरी मे गोचरी के लिए गये। भिक्षा आदि की प्रमुख क्रिया से निवृत्त होकर वापस आते

लगे तो एक मुनि वैभारगिरि के ऊपर पहुचे तो चौथा प्रहर प्रारम्भ हो गया। मुनि वही स्थित होकर ध्यान करने लगे। दूसरे मुनि ज्योही उद्यान मे पहुचे, चौथा प्रहर आ गया। वही पर कायोत्सर्ग प्रारम्भ कर दिया। तीसरे मुनि उद्यान के पास पहुचे। चौथा प्रहर शुरु हो गया। उन्होंने वही पर अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। चतुर्थ मुनि प्रवर का समय नगरी मे परिभ्रमण करते-करते व्यतीत हो गया चौथा प्रहर आ गया। शहर मे ही निरवद्य भूमि का प्रतिलेखन कर वे ध्यानस्थ हो गये।

शीत निशाचर ने चारो ही सतो को विचलित करना चाहा। किन्तु चारो ही मुनि मेरु की भाति अडिग थे। ठिठुरती हुई सर्दी मे भी वे अपनी साधना पर चार चाद लगाने लगे। शीत परिषह को समाधिपूर्वक सहन कर लेना बहुत ही महत्व-पूर्ण कार्य है। चारो मुनियो ने सोचा 'चइज्ज देह न हु धर्म सासण' इस वाक्य मे रमण करते हुए स्थिर रहना है। परिषह को देखकर घबराना कायरता है। आखिर आयुष्य पूर्ण कर आराधक बनकर चारो ही मुनि स्वर्गवासी बन गये।

जिनका मन साधना मे रम जाता है वे भयकर से भी भयकर कष्टो के सामने भी अस्थिर नही बनते और अपने लक्ष्य की ओर बढते हैं।

सफल बनाते साधना, सहकर कष्ट अमाप।
'मुनि कन्हैया' विश्व मे, विजयी थे सत्पात्र॥

दृढ़ संकल्प

सामाजिक उत्क्रान्ति के उपदेष्टा गुजरात-प्रवासी रविशकर महाराज को तटस्थ जनता महापुरुष के रूप मे निहारती है। उन्होंने समय-समय पर समाज-सुधार के लिए अनेक प्रयत्न किये और जगह-जगह पर भाषण भी दिये। महाराज के अनुपम प्रयास से अनेक ठाकुरो ने शराब व ताडी नही पीने का सकल्प कर लिया। एक ठाकुर बोला—महाराज! मैंने शराब छोडने की तो प्रतिज्ञा की है किन्तु शराब ने मेरी रग-रग पकड रखी है। ऐसी स्थिति मे मुझे क्या करना चाहिए?

महाराज ने सुकोमल शब्दो मे उत्तर देते हुए कहा—भैया! अभी मुझे कही जाना है अत मेरे पास समय नही है। कल आ जाना। बैठकर धीरता से चर्चा करेंगे। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही सुबह-सुबह ठाकुर आया। धीमे-धीमे शब्दो मे आवाज लगाई। महाराज ने भीतर से कहा—'ये छोड दे तो आता हू।' ठाकुर ने समझा, किसी बच्चे ने महाराज को पकड रखा है। कुछ प्रतीक्षा की। खडा-खडा थक गया। फिर भी महाराज बाहर नही आये, तो ठाकुर ने फिर जोर से आवाज लगाई।

श्लोक का अन्त रीति से सुनाते हुए कहा—

अद्य धारा सदा धारा, सदा लम्बी सरस्वती।
पण्डिता मण्डिता सर्वे, भोज राजे भुवगते॥

—'भोज राजा के आज धरा पर रहने के कारण धारा नगरी व सरस्वती आधारमयी व पंडित वर्गों से विभूषित हो रही है।'

यह श्लोक सुनते ही राजा भोज ने उनको नमस्कार कर धारा नगरी में प्रस्थान किया। नृप ने सोचा—मेरे प्रति कविराज के हृदय में जो सहृदयता है वह अत्यन्त है। संसार में ऐसे स्वामिभक्त मिलने वाले कोई-कोई हैं।

जिसके हृदय में सहृदयता होती है उसका सर्वत्र सम्मान होता है अगर किसी को मित्र बनाना है तो अपने आपको सहृदयवान होना चाहिए।

भोज भूप के हृदय में, कविरों प्रति सम्मान।
'मुनि कन्हैया' हृदयता, है जीवन की शान॥

कष्टो मे अडिग

भारत वर्ष में राजगृह नाम की सुरम्य नगरी थी। बड़े-बड़े बाजारों व विशाल प्रासादों से सुसज्जित थी। भगवान् महावीर ने जहां अनेकों चातुर्मास सम्पन्न किये। उसी नगरी में चतुर विद्वान व समझदार चार मित्र रहते थे। परस्पर में बहुत प्रेम था। हर प्रवृत्ति में साथ रहते थे। एकदा उसी नगरी में जन-जन के मानस, आत्माओं को जगाता, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए भद्र बाहुस्वामी पधारे। उनकी धर्म-देशना सुनने के लिए हजारों नर-नारी आये। चारों मित्र भी गये। प्रवचन सुना। वैराग्य अंकुर प्रस्फुटित हुआ। चारों ने दीक्षा ग्रहण की। साधना में रमण करते हुए चारों मुनि विचरण करने लगे। गुरुदेव के पास विद्याभ्यास करते-करते चारों विज्ञ व तत्त्वज्ञ बन गये।

गुरु की आज्ञा प्राप्त होते ही चारों मुनि बहिर्विहारी बन गये। धर्म संघ की प्रभावना करने लगे। जहां जाते वहां अच्छा उपकार होने लगा। चारों ने विशेष साधना का लक्ष्य बनाते हुए एक कठोर अभिग्रह स्वीकार किया। 'दिन के तृतीय प्रहर में भिक्षार्थ जाना अवशिष्ट सात प्रहर में स्वाध्याय व ध्यान कर समय को सफल बनाना।' ऐसा संकल्प कर वे विचरण करते-करते राजगृह में आ पहुंचे।

सर्दी का समय था। चारों तरफ शीत लहर ने अपना जाल बिछाना प्रारम्भ कर दिया। चारों मुनियों ने वैभारगिरि पर्वत की गुफा में अपना धार्मिक अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। एक दिन की बात है दिन के तृतीय प्रहर में राजगृह नगरी में गोचरी के लिए गये। भिक्षा आदि की प्रमुख क्रिया से निवृत्त होकर वापस आ।

लगे तो एक मुनि वैभारगिरि के ऊपर पहुचे तो चौथा प्रहर प्रारम्भ हो गया। मुनि वही स्थित होकर ध्यान करने लगे। दूसरे मुनि ज्योही उद्यान मे पहुचे, चौथा प्रहर आ गया। वही पर कायोत्सर्ग प्रारम्भ कर दिया। तीसरे मुनि उद्यान के पास पहुचे। चौथा प्रहर शुरु हो गया। उन्होंने वही पर अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। चतुर्थ मुनि प्रवर का समय नगरी मे परिभ्रमण करते-करते व्यतीत हो गया चौथा प्रहर आ गया। शहर मे ही निरवद्य भूमि का प्रतिलेखन कर वे ध्यानस्थ हो गये।

शीत निशाचर ने चारो ही सतो को विचलित करना चाहा। किन्तु चारो ही मुनि मेरु की भाति अडिग थे। ठिठुरती हुई सर्दी मे भी वे अपनी साधना पर चार चाद लगाने लगे। शीत परिषह को समाधिपूर्वक सहन कर लेना वहुत ही महत्व-पूर्ण कार्य है। चारो मुनियो ने सोचा 'चइज्ज देह न हु धर्म सासण' इस वाक्य मे रमण करते हुए स्थिर रहना है। परिषह को देखकर घबराना कायरता है। आखिर आयुष्य पूर्ण कर आराधक वनकर चारो ही मुनि स्वर्गवासी वन गये।

जिनका मन साधना मे रम जाता है वे भयकर से भी भयकर कष्टो के सामने भी अस्थिर नही वनते और अपने लक्ष्य की ओर वढते हैं।

सफल वनाते साधना, सहकर कष्ट अमाप्र।
'मुनि कन्हैया' विश्व मे, विजयी थे सत्पात्र॥

दृढ़ संकल्प

सामाजिक उत्क्रान्ति के उपदेष्टा गुजरात-प्रवासी रविशकर महाराज को तटस्थ जनता महापुरुष के रूप मे निहारती है। उन्होंने समय-समय पर समाज-सुधार के लिए अनेक प्रयत्न किये और जगह-जगह पर भाषण भी दिये। महाराज के अनुपम प्रयास से अनेक ठाकुरो ने शराब व ताडी नही पीने का सकल्प कर लिया। एक ठाकुर बोला—महाराज! मैंने शराब छोडने की तो प्रतिज्ञा की है किन्तु तमाखू ने मेरी रग-रग पकड रखी है। ऐसी स्थिति मे मुझे क्या करना चाहिए?

महाराज ने सुकोमल शब्दो मे उत्तर देते हुए कहा—भैया! अभी मुझे कहीं जाना है अत मेरे पास समय नहीं है। कल आ जाना। बैठकर धीरजता से चर्चा करेंगे। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही सुवह-सुवह ठाकुर आया। धीरे-धीरे शब्दो मे आवाज लगाई। महाराज ने भीतर से कहा—'मैं छोड दे तो आना है।' ठाकुर ने समझा, किसी वच्चे ने महाराज को पकड रखा है। कुछ प्रतीक्षा की। खडा-खडा थक गया। फिर भी महाराज वाहर नहीं आये, तो ठाकुर ने फिर जोर से आवाज लगाई।

महाराज ने उत्तर की भाषा मे कहा—'भैया! मै बाहर नही आ सकता, तुम अन्दर आ जाओ। यह मुझे नही छोड़ता है।' ठाकुर अन्दर गया। देखा, महाराज दोनो हाथो से एक खम्भे को पकड़े खड़े है। ठाकुर को हँसी आ गयी। उन्होंने कहा, 'आप खुद तो खम्भे को पकड़े खड़े है और कहते है कि खम्भे ने आपको पकड़ रखा है! आप तो मेरे साथ मजाक कर रहे हैं।'

महाराज ने गभीर भाषा मे उत्तर देते हुए कहा—'ठाकुर! आपने भी मेरे साथ मजाक क्यो की? शराब को आपने पकड़ रखा है और आप कहते है कि शराब ने मेरी प्रत्येक रग को पकड़ रखा है।' ठाकुर साहब कुछ उत्तर न दे सके। असमजस मे पड़ गये। महाराज ने तो मुझे बड़ी निपुणता से समझाया है। धन्य है बुद्धि को। उसने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मै आपके बुद्धि-कौशल से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अब दृढ़ संकल्प करता हूँ कि शराब कभी भी नही पीऊँगा।'

हर व्यक्ति अपने स्वभाव को बदल सकता है। अपनी बुराइयों को भी धीरे-धीरे छोड़ सकता है। अपेक्षा है दृढ़ संकल्प की। संकल्प मे बहुत बड़ी शक्ति होती है। वर्षो से [illegible] व्यसन भी दूर हो सकते है। अतः जीवन को पावन रखने के लिए संकल्प की शक्ति आवश्यक है।

सादर दृढ़ संकल्प से, तन व्यसन से मुक्त।
ठाकुर साहब का सरस, उदाहरण है युक्त॥

सहानुभूति

एक [illegible] घूमने के लिए प्रतिदिन काफी दूर जाता था। उसकी ऐसी आदत पड़ गयी [illegible] नहीं रहता था, [illegible] परिभ्रमण व पर्यटन स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी हितकर माना गया है। एक दिन की बात है कि वह [illegible] घूमकर [illegible] रहा था। रास्ते मे [illegible] एक वृद्ध को चिन्ताग्रस्त [illegible] देख उसके [illegible] रहा नही गया। सुमधुर भाषा मे हमदर्दी दिखाता हुआ बोला—भैया! तुम्हारे बाह्य आकार-प्रकार की भाव-भंगिमा से लगता है तुम्हारे दिल मे किसी-न-किसी प्रकार की [illegible] नहीं है। [illegible] होने की जरूरत नहीं है। [illegible] है। मैं [illegible] प्रयत्न करूँगा। [illegible] की आवश्यकता नहीं है।

[illegible] मे पड़ गया। [illegible]
[illegible] हुआ [illegible] गया। [illegible]
[illegible] कहा—[illegible] तुम्हारी [illegible]

करने मे कुछ हाथ बटा सकू। उसकी सहानुभूति व सहृदयता देखकर बूढा कुछ आश्वस्त होकर बोला—हे आर्यवर! मै एक गरीब ब्राह्मण हू। बेटे के विवाह हेतु एक महाजन से कुछ कर्ज लिया था। लाख कोशिशे करने पर भी कर्ज नही चुका सका। अब उसने न्यायालय मे मुकदमा दायर कर दिया है। क्या करू, मेरी बुद्धि काम नही कर रही है। उसका कर्ज कैसे चुकाऊ?

उस महापुरुष ने उस गरीब ब्राह्मण से पूरा विवरण प्राप्त किया। न्यायालय का नाम व मुकदमे की अगली तारीख अपनी नोट-बुक मे नोट कर ली।

मुकदमे की तारीख आयी। ब्राह्मण ने सोचा, अब न्यायालय मे उपस्थित होना पडेगा। वह भयभीत-सा न्यायालय मे पहुच गया। हृदय मे विभिन्न प्रकार की तरगे उठने लगी। अदालत के एक कोने मे बैठकर अपने नाम का इन्तजार करने लगा। काफी समय हो गया। इन्तजार करते-करते वह थक गया। क्या हुआ, नाम की पुकार नही आ रही है। वह और भी चिन्तित हुआ। घबराने लगा। अदालत के अहलकारो से पूछा—क्या हुआ? मेरा नाम कैसे नही आया? राज कर्मचारियो ने कहा—भाई! चिन्तातुर होने की जरूरत नही, किसी एक व्यक्ति ने तेरे कर्ज की पूरी रकम जमा करवा दी है और मुकदमा खारिज हो गया है। यह सुनते ही विप्र के हृदय मे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और खुशी भी हुई। ब्राह्मण ने पता लगाया तो उसको जानकारी मिली कि कर्ज उतारने वाले महापुरुष वही थे, उन्होने एक दिन सडक के किनारे पर मुझसे पूछा था कि इतने चिन्ताग्रस्त क्यो?

महापुरुष वही होते है जो सबके प्रति सहानुभूति व सद्भावना रखते है। समय पर जो किसी का सहयोग करता है, उदारता का परिचय देता है, पीडित मनुष्यो को गले लगाता है—वह व्यक्ति इस धरातल पर दिवाकर की भाति चमक उठता है।

व्यथित मनुज का समय पर, करता जो उपकार।
वह मानव नक्षत्र सम, चमकेगा हर बार॥

गुरु-परिचर्या

एक बहुत बडे प्रभावशाली आचार्य थे। वृद्धावस्था आने के बाद शारीरिक बल नष्ट हो गया। इन्द्रिया हीन पड गयी। जघा मे शिथिलता आने के कारण वे जघाक्षीण आचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये। विहार करते-करते किसी शहर मे गुरुदेव का पदार्पण हुआ। ज्ञान-सम्पन्न, अर्थ-सम्पन्न व श्रद्धा-सम्पन्न श्रावको ने निवेदन करते हुए कहा—गुरुदेव! आप वृद्ध हो गये कृपया यही पर विराजने की अनुकम्पा करे।

अब आपकी स्थिति विहरण योग्य नही है। श्रावक समाज की विशेष प्रार्थना पर गुरुदेव ने स्थिरवास का निर्णय ले लिया। अपनी सेवा मे कुछ साधुओ को रखकर अन्य सतो का विहरण का आदेश फरमा दिया।

जो सत आचार्यवर की सेवा मे रहे थे, वे बडे विनीत थे। गुरु इगित पर चलने वाले थे। गुरु की परिचर्या मे वे हर दृष्टि से पूर्ण समर्पित थे। अम्लान भाव से सेवा-सुश्रूषा करने वाले सतो का प्रभाव श्रावको पर बहुत पडा। सब कहने लगे—ऐसी परिचर्या करने वाले सत विरले ही मिलेगे। चातुर्मास-परिसमाप्ति के बाद अन्य सभी सत भी वहा आ पहुचे। उन सतो के सामने श्रावको ने सेवा करने वाले सतो की मुक्त कठ से प्रशसा करते हुए कहा—चातुर्मास मे सतो ने अनहद सेवा-सुश्रूषा की है वह चिरकाल स्मरणीय रहेगी। इनका सुन्दर इतिहास बनेगा। ये शिष्य बहुत ही सुपात्र व सुयोग्य है।

जो [illegible] सत थे वे उनकी प्रशसा सुनकर प्रसन्न हुए किन्तु एक अविनीत शिष्य उन सतो की कीर्ति-गाथा सुनकर जल उठा, ईर्ष्या करने लगा और बोला—क्या हमको सेवा करनी नही आती है! हम उनसे अच्छी [illegible] है। तुम तो केवल उनकी गौरव-गाथा गा रहे हो। श्रावको ने [illegible]—[illegible] हाथी का भार हाथी उठा सकता है। आचार्यों की सेवा करना [illegible] नही है। वह अविनीत शिष्य बोला—इसमे कोई विशेष बात नही है। [illegible] गुरु की सेवा करूगा। फिर तुम मेरी परीक्षा करना।

[illegible] कर दिया गया। वह अकेला गुरु-सेवा मे रह गया। चार-[illegible] अच्छी की, किन्तु आखिर मे वह थक गया। मन [illegible]—गुरुजी [illegible] मै किसी से बात नही कर सकता, न ही गुरु [illegible] निद्रा [illegible] विश्राम नही। अब तो गुरुजी मृत्यु की शरण [illegible] अच्छा।

[illegible] जाता है। [illegible] जाता है, [illegible]-सुश्रूषा [illegible] बनाता रहता है कि अब गुरुजी सथारा [illegible] है। [illegible] परित्याग कर दिया है। [illegible] सथारा [illegible] है। [illegible]—[illegible] गया!

[illegible] विनीत शिष्य गुरु [illegible] आहार लाकर देता, [illegible] गुरु ने उस [illegible] कहा—[illegible] नही है। [illegible] बोला—गुरुजी! [illegible] है—

[illegible], [illegible], [illegible] निरधार।
[illegible], [illegible] निरधार॥

इसी प्रकार आप और मैं दोनो श्रावक समाज के लिए भारभूत बन रहे है। सरस व यथेष्ट भोजन सबके घर मे बनता है, फिर भी श्रावक गण देना नही चाहते है और कहते है—ये संत यहा पर कब तक रहेगे। एक दिन श्रावको ने कहा—गुरुवर! आपका शिष्य कहता है कि गुरुदेव ने रस का परित्याग किया है और रूक्ष आहार मगाते है। गुरुदेव, हम सब लोगो की यह इच्छा है कि आप अभी अनशन की न सोचे। जैन धर्म की प्रभावना करते रहे, आप सघ के शृगार है। ऐसा सब सुनकर गुरुजी समझ गये—यह अविनीत शिष्य सेवा-परिचर्या करता थक गया है इसलिए सारा प्रपच रच रहा है। मेरे योग से शिष्य पीडित हो रहा है, अब सथारा सलेखना करना ही श्रेयस्कर है।

ऐसा चिन्तन कर कुशिष्य के तनिक भी दुर्गुण प्रकट न करके आत्मालोचन करते हुए गुरुजी आत्मा मे रमण करने लगे। शुभ समय देखकर उज्ज्वल परिणामो से अनशन शुरू कर दिया। परिणामो की श्रेणी पर चढते-चढते कर्मों का अवसान होते ही केवलज्ञान उपार्जन कर लिया और सिद्ध बन गये। वह अविनीत शिष्य मरकर दुर्गति मे चला गया।

सेवा-सुश्रूषा वही साधक कर सकता है जो आत्मार्थी होता है। शास्त्रो मे सेवाधर्म का बहुत बडा फल अकित है। गुरुजी की जो सेवा करना नही चाहता है, वह अविनीत शिष्य की भाति प्रपच रचता है।

शास्त्रो मे उल्लिखित है, सेवाधर्म महान।
आत्मार्थी सेवा करे, निज कर्तव्य पिछान॥

मित्र-परीक्षा

एक सेठ था। उसके एक ही पुत्र था। सेठ अपने व्यापार मे व्यस्त रहता था। सेठ का पुत्र बडा हुआ। व्यापार मे हाथ बटाने लगा। सेठ ने अपने पुत्र को व्यापार आदि समस्त प्रवृत्तियो से अवगत करा दिया।

पुत्र का एक मित्र था। वह बडा चतुर व विलक्षण था। प्रतिदिन दुकान पर आ जाता था। सेठ का पुत्र भी उसके साथ इधर-उधर घूमने निकल जाता था। दोनो की मित्रता बढती गयी। सेठ के पुत्र का अधिकतम समय मित्र के साथ व्यतीत होता था। एक दिन सेठ ने बात-ही-बात मे बेटे से पूछा—यह जो तुम्हारा मित्र है, इसका स्वभाव कैसा है? यह क्या करता है? बेटा बोला—पिताजी! लगता है कोई छोटा-मोटा व्यापार करता होगा।

'क्या तुम्हे इसकी जानकारी अच्छी तरह से नही है?'

बिलकुल भी जानकारी नही है।'

'पुत्र ! मेरी एक शिक्षा है कि यदि किसी को मित्र बनाना हो तो सबसे पहले उसके बारे में पूरी जानकारी ले लेनी चाहिए।' सेठ ने सुकोमल शब्दों में अपने पुत्र को प्रशिक्षण देते हुए कहा।

'पिताजी आप तो बिना मतलब मेरे मित्र पर शक करते हैं। मैं अपने मित्र को अच्छी तरह जानता हूं। मेरा मित्र बड़ा ईमानदार है, प्रामाणिक है।'

सेठ ने सोचा—अब इसको बार-बार कहने में कोई लाभ नहीं है। काफी समय बीता। वह अपने मित्र के साथ घूमता रहा। इधर सेठ ने दूर-देश में जाकर व्यापार करने की सोची। सेठ ने पुत्र से कहा—पुत्र ! मैं परदेश जा रहा हूं। पीछे से चोरी का खतरा है। सोचता हूं तिजोरी किसी ईमानदार व्यक्ति के पास में रख दूं लेकिन ऐसा व्यक्ति कौन है? पुत्र बोला—पिताजी ! चिन्ता की क्या बात है, मेरा मित्र हर दृष्टि से योग्य है। यह तिजोरी मैं उसके पास रख आता हूं। सेठ ने तिजोरी दे दी। उसका बेटा अपने मित्र के घर पर तिजोरी रख आया। पिता-पुत्र दोनों परदेश के लिए रवाना हो गये। कई महीने बीते, सेठ ने काफी धन कमाया। फिर देश की ओर रवाना हुआ। घर पहुंचा। सेठ ने बेटे से कहा—मित्र के यहां से तिजोरी ले आओ। देखना उसका वजन उतना ही है जितना पहले था। सेठ का पुत्र मित्र के पास गया, वापस खाली हाथ आया और बोला—पिताजी ! आपने मेरे मित्र के साथ यह क्या किया? आपने तिजोरी में धन रखने के बजाय पत्थर क्यों रख दिये? मेरा मित्र बहुत नाराज है। कहता था कि क्या मुझे चोर समझा है?

सेठ ने [illegible] कहा—बेटा ! परीक्षा हो गयी। तेरे मित्र का धागा मैंने [illegible] मित्र ने। उसने बिना पूछे धागा तोड़ा है। धन को [illegible] किया है। अगर उसने तिजोरी नहीं खोली तो उसे कैसे पता [illegible]। तेरा मित्र ईमानदार नहीं है, धोखेबाज है। अब इस परीक्षा से [illegible] कि तुम्हारा मित्र कैसा है? इसीलिए मैंने कहा था कि किसी [illegible] चाहिए।

[illegible] मित्र की परीक्षा होती है। जो मित्र अनीति [illegible] धोखेबाज होता है, [illegible] नहीं करना है। आखिर उसका दुख पाना [illegible]।

[illegible]
[illegible]

निन्दा-स्तुति मे सम

पृथ्वीभूषण नगर मे उदायन नाम का राजा राज्य करता था। नीतिनिष्ठ होने के साथ-साथ वह हर क्षेत्र मे बहुत ही निपुण व दक्ष था। न्यायी राजा का योग मिलने से वहा की प्रजा बहुत ही सुखी थी। नगर की विशालता आकाश की विशालता को परास्त कर रही थी। नगर की सुन्दरता स्वर्ग की सुन्दरता को अपहृत कर रही थी। एक दिन शहर मे प्लेग की भयकर बीमारी फैल गयी। अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग शान्त नही हुआ। राजा के हृदय मे चिन्ता का पार नही था—कैसे रोग मिटेगा? कैसे शान्ति होगी? इतने मे तीन मत्रवादियो का आगमन हुआ। उन्हे सम्मानित करते हुए नृप ने पूछा—हमारा नगर रोग से सत्रस्त है। कैसे उपशान्त होगा? अगर इसका उपचार आप जानते है तो कृपया बताइये।

एक मत्रवादी ने कहा—'मैंने एक देवता को वश मे कर रखा है। वह आते ही नगर मे परिभ्रमण करेगा रोग को शान्त कर देगा। किन्तु वह देव अति रूपवान है, सुन्दर है। कोई भी व्यक्ति अगर उसको नजर से देख लेगा तो उसी समय वह उसको मार देगा।' यह सुनकर राजा मौन रहा।

दूसरे मत्रवादी ने कहा—'मैंने भी एक देव को साधा है। किन्तु वह कुरूप है। उसके एक पैर है, सिर पाच है, उदर मे गड्ढा है, कूब निकली हुई है, महाभयद पिशाच के तुल्य डरावना है। वह घर-घर जायेगा, लोग यदि उसकी स्तुति करेंगे तो रोग शान्त हो जायेगा परन्तु बीभत्स रूप देखकर यदि कोई उसका उपहास करेगा तो वह परलोक पहुच जायेगा।' राजा बिलकुल मौन।

सुकोमल शब्दो मे तीसरे मत्रवादी ने कहा—'राजन्! अपने देव की वस्तु-स्थिति से भी परिचित कराना चाहता हू। प्रभो! मेरा देव न ही अधिक रूपवान है, न ही अधिक कुरूप। वह घर-घर मे घूमेगा। चाहे कोई इसकी स्तुति करे चाहे कोई निन्दा, दोनो मे वह सम रहेगा। सबके रोग को उपशान्त कर देगा।

राजा ने तीसरे मत्रवादी को सम्मानित करते हुए आमन्त्रण दिया और रोग शान्त हुआ। सर्वत्र शान्ति की सौरभ महक उठी।

जो व्यक्ति निन्दा-स्तुति मे सम रहता है, उसको हर क्षेत्र मे सम्मान मिलता है।

निन्दा-स्तुति मे सम रहे, मिलता उसे महत्त्व।
मुनि कन्हया' साम्य ही जीवन का शुभ तत्त्व॥

संयम मे स्थिर

चपानगरी मे जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। ऋषिभद्र नाम का राजकुवर था। उसके हृदय मे वैराग्य का अकुर प्रस्फुटित हुआ। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह दीक्षित हो गया। गुरुदेव के पास विनय भाव मे उसने शास्त्रो का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। पूर्वधारी वना। शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरी इच्छा है कि मै पडिमा को स्वीकार करु, कृपया आज्ञा फरमाये। गुरु ने अपने शिष्य को योग्य समझकर आदेश देते हुए कहा—तुम जाओ और अपनी साधना मे सफल बनो।

गुरु का आशीर्वाद लेकर वह चल पडा। वृक्ष के नीचे भिक्षु की प्रथम महापडिमा अगीकार कर ध्यानस्थ हो गया। उसी वृक्ष पर मधुमक्खियो का छत्ता था। अचानक वे मक्खिया उड-उडकर मुनिवर के शरीर को डक मारने लगी। उसमे वेदना का पार नही रहा। मुनिराज अपने मन मे चिन्तन करने लगे—अरे जीव ! घवराने की अपेक्षा नही है। यह जीव अनत वार नरक निगोद मे भटका है। वहा की वेदना को याद कर। परमाधामी देव ने तीक्ष्ण-तीक्ष्ण भालो से तेरा छेदन-भेदन किया, गरम-गरम तेल की कडाही मे तुझे चनो की तरह भून दिया। परवशता मे उन सव कष्टो को सहन किया। फिर भी जीव का कल्याण नही हुआ।

अरे ऋषिभद्र ! आज तेरा अहोभाग्य है। ये मधुमक्खिया तेरे शरीर पर आकर वैठी है। डक मार-मार तेरा खून पी रही है। किन्तु नरकालय की वेदना के सामने यह वेदना कुछ भी नही है। प्रतिमा स्वीकार करने पर जो यह असह्य पीडा उत्पन्न हुई इसे देखकर मै कभी भी विचलित होने वाला नही हू। मैंने जो सयम स्वीकर किया है उसका कभी भी परित्याग नही करुगा।

इसी प्रकार के और भी अनेक भयकर उपसर्ग उत्पन्न हुए। मेरु पर्वत की भाति सम्पूर्ण रात्रि मे मुनिराज अटल रहे। शुभ परिणामो की श्रेणी मे झूलते हुए कर्मो की जजीरो को तोडने लगे। समता से सभी परिषहो को सहकर समाधिपूर्वक मुनिराज देवलोक पधार गये।

ससार मे महापुरुष वही होते है जो प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी अपने नियमो पर अटल रहते है। कदाचित् समुद्र अपनी मर्यादा का परित्याग कर सकता है, हिमालय हिल सकता है, फिर भी सत-गण भयकर उपसर्ग उत्पन्न होने पर अपनी साधना से नही हिल सकते।

साम्य भाव से सन्त-गण, सहते है उपसर्ग।
कर्मो का अवसान कर, पाते है अपवर्ग ॥

शास्त्रों का सार

वसन्तपुर नगर मे जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। वह न्यायप्रिय था। एक दिन नृप के हृदय मे शास्त्र-श्रवण की इच्छा जागृत हुई। राज्य-सभा मे चार पडित आये। ललाट पर तिलक छापे लगाये हुए थे। चारो ही अलग-अलग विषय के विशेषज्ञ थे। उनकी भिन्न-भिन्न विशेषता थी। उन्होने बुद्धि-कौशल मे चार महान ग्रन्थ बनाये। प्रत्येक के एक-एक लाख श्लोक थे। पडितो ने कहा—राजन्! इन चारो ही ग्रन्थो मे बहुत ही विस्तार से विभिन्न विषयो पर विश्लेषण किया हुआ है। कृपया इन चारो ग्रन्थो का आप गहराई से अध्ययन करे, जिससे देश की प्रजा को बडा लाभ मिलेगा।

राजा ने सुकोमल शब्दो मे उत्तर देते हुए कहा—पडितो! आपका कथन अक्षरश सत्य है, किन्तु इतने महान ग्रन्थो को सुनने और अध्ययन करने के लिए मेरे पास समय नही है। अत इन चारो ग्रन्थो का सार स्वल्पाक्षरो मे ही बनाने का प्रयास करे। तब चारो ही पडित सारभूत एक श्लोक बनाकर राजा के सामने उपस्थित हुए और बोले—स्वामिन्! एक श्लोक मे सभी ग्रन्थो का सार भर गया है। कृपया ध्यान से सुनिये—

जीर्णे भोजन मात्रेय, कपिल प्राणिना दया।
बृहस्पति रविश्वास पचाल स्त्रीषु मार्दव॥

आत्रेय नाम के विद्वान ने कहा—राजन्, भोजन पच जाने के बाद फिर दूसरी बार भोजन करना चाहिए। यह वैदिक ग्रन्थो का सारभूत तत्त्व है।

कपिल नाम के पडित ने कहा—सम्राट! जगत् के समस्त प्राणियो के प्रति दया रखना धर्मशास्त्र का परमार्थ है।

बृहस्पति नाम का विद्वान बोला—किसी भी स्थिति मे किसी का विश्वास नही करना चाहिए, यह नीतिशास्त्र का सार है।

पचाल नाम के विद्वान ने कहा—राजन्! स्त्रियो के साथ मृदुता का व्यवहार करना चाहिए और उनका अन्न नही लेना चाहिए, यह कामशास्त्र का रहस्य है।

स्वल्प अक्षरो मे शास्त्रो का सार सुनकर राजा बहुत ही खुश हुआ और चारो ही पडितो को दिल खोलकर पारितोषिक दिया सम्मानित किया। [illegible] ने चारो का गुण गाया।

थोडे मे शास्त्रो का सार बता देना यह बुद्धि-चातुर्य का परिचय है। भगवान महावीर ने जो कुछ भी कहा, वह सक्षेप मे कहा। उनकी सक्षिप्त [illegible] से जनता आज भी लाभान्वित हो रही है। [illegible] सक्षेप [illegible] भी बोध होना परम आवश्यक है।

जो कहते सक्षेप मे, उसका अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, पाता अनुपम तत्त्व ॥

प्रतिज्ञा का प्रताप

नेपोलियन एक विज्ञ व्यक्ति था। हर क्षेत्र मे निपुण एव समझदार था। ईमान व प्रामाणिकता को वह अपने जीवन का सुखद सवल मानता था। सत्य को अपनी सच्ची सपदा समझता था। सुना जाता है कि उसकी माता ने एक दिन उससे कहा—बेटे! अमुक कार्य करने के लिए मुझे इतनी धनराशि की परमावश्यकता है। नेपोलियन अपनी माता का विनीत व सुयोग्य अगज था। वह किसी भी स्थिति मे अपनी माता के आदेश का उल्लघन करना नही चाहता था। किन्तु उसके पास माता को सतुष्ट करने योग्य धन नही था। वह चिन्तन करने लगा—माता की आज्ञा-पालन करने की प्रतिज्ञा पहले ही कर चुका हू और इतना धन मेरे पास नही है। ऐसी स्थिति मे प्राणो का विसर्जन ही श्रेयस्कर है।

मन मे मरने की भावना लेकर वह घर से निकल पडा। चलता-चलता वह घने जगल मे जा पहुचा। व्यथित-मन होकर वह इधर-उधर भटक ही रहा था, अचानक रास्ते मे उसे एक अपरिचित व्यक्ति मिला। उस मुसाफिर ने एक थैली देते हुए कहा—भाई साहब! थोडी देर आप मेरी थैली को रखना, मैं शौचादि कार्य से निवृत्त होकर अभी आता हू। मुझे आप पर विश्वास है अत थैली सभला-कर जा रहा हू।

नेपोलियन ने उसकी आकृति आभा देखकर सोचा—यह व्यक्ति वास्तव मे भाग्यवान् है। चलो, मरना तो है ही, मरने से पहले इसका भी कुछ काम कर दू यह निर्णय लिया। नेपोलियन ने थैली अपने हाथ मे ले ली। उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करता-करता नेपोलियन थक गया। लेकिन थैली वाला वापस नही आया। समझ मे नही आ रहा है, वह व्यक्ति कहा गायब हो गया। आस-पास खोज की किन्तु वह नही मिला। आखिर नेपोलियन ने थैली खोली और देखा तो उसमे उतना ही धन था जितना उसकी माता ने उससे मागा था। नेपोलियन के हृदय मे आश्चर्य का ठिकाना न रहा—अहो! यह क्या कोई देव-माया है अथवा किस्मत का चमत्कार!

प्रतिज्ञा-पालन मे जो व्यक्ति दृढता का परिचय देता है उसकी कदम-कदम पर विजय होती है। उसको यथेच्छित फल मिलता है। विश्व मे सितारो की भाति वह चमकता है।

नियम निभाने मे सतत जो नर दृढ सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' चमकता उसका नव-नक्षत्र ॥

बुद्धि का नैपुण्य

राजा भोज ने एक आश्चर्यकारी घटना देखी—एक ब्राह्मण था। उसके पिता का श्राद्ध आया। भोजन-सामग्री तैयार हुई। उस विप्र की यह मान्यता थी कि पूर्वज लोग कौवा बनकर आते है। इसी चिंतन से वह कौवो को भोजन खिला रहा था। कौवे भोजन करने लगे। उस ब्राह्मण की स्त्री स्वभाव से कुछ कजूस थी। वह भोजन-सामग्री कुछ बचाना चाहती थी, अत कौवो को देखकर वह भयभीत होने लगी।

राजा भोज ने उस ब्राह्मणी को इस प्रकार कौवो से भयभीत होते देखकर विचार किया—जो स्त्री दिन मे ही कौवो से डरती है, देखे इसका चरित्र कैसा है? राजा छिपे वेश मे उस स्त्री के चरित्र का पता लगाने लगा।

ब्राह्मण जब कौवो को दे रहा था, तब उसकी पतिव्रता ने बडे कोमल शब्दो मे कहा—मुझे कौवो से डर लगता है, कौवो को देखते ही दिल थरथराने लगता है।

पति ने कहा—प्रिये! तुझे यदि इतना डर लगता है तो मैं कौवो को भोजन नही कराऊगा। इस तरह ब्राह्मणी की कामना साकार हुई।

रात्रि का समय हुआ। ब्राह्मणी ने बची हुई भोजन-सामग्री एक डिब्बे मे रख दी और डिब्बा सिर पर रखकर रवाना हुई। ब्राह्मणी अपने प्रेमी के पास जाना चाहती थी, मगर बीच मे नदी आती थी और नदी मे मगरमच्छ आदि जतुओं का भय था। उस स्त्री ने साथ लायी हुई सामग्री एक ओर नदी मे फेंक दी। मगरमच्छ आदि सभी जतु भोजन-सामग्री खाने लगे। वह नदी के परले पार चली गई। अपने प्रेमी के पास पहुचकर और मनोरथ पूर्ण कर वापस आ गई। राजा भोज ने यह सारी घटना देखी। राजा सोचने लगा—मैं तो इस घटना से परिचित हो गया, मगर इस प्रकार की घटना से लोगो की अवगति है या नही? राजा भोज राजसभा मे पहुचा। अपने प्रकाड मनीषियो के सामने युक्तिपूर्वक बोला—'दिवा काकरव भभात्' अर्थात् दिन के समय काक से डरती है। पडितो! इसका अगला पद आप लोग बनाए। अन्य सब पडित मौन रहे, किन्तु कवि कालिदास से रहा नही गया। वह खडा हुआ और बोला—'रात्रि तरति निर्मल जल' अर्थात् वही रात्रि के समय मे जल मे तैरती है।

यह सुनकर राजा ने कालिदास से कहा—'तत्र वसन्ति ग्राहादयो।'

जल मे तो ग्राह, मगरमच्छ आदि जल-जीव रहते हैं। इसके प्रत्युत्तर मे कालिदास ने कहा—'मर्म जानन्ति नानर्नीन्द्रिका।'

अर्थात् जो दिन मे कावे से डरती है और रात्रि मे नदी पार कर जाती है, वह स्त्री ग्राह, मगर आदि जतुओ से बचने का उपाय भी जानती है।

जैसे कवि कालिदास ने एक पद सुन दूसरा पद बना दिया और तीसरा पद सुनकर चौथा पद बना दिया था, यह सब विशिष्ट बुद्धिमत्ता का ही सुपरिणाम है। बुद्धि-नैपुण्य के बिना कोई भी पादपूर्ति कर नही पाता।

होता विज्ञ समाज मे, मति-नैपुण्य महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' विज्ञ नर, पा सकता है तत्त्व ॥

मृत्यु से पहले

एक ब्राह्मण था। अध्ययन करने के लिए काशी गया। पढ-लिखकर वह होशियार हो गया। अपने ग्राम मे आया। स्थानीय लोगो ने उस ब्राह्मण का अभिनदन करते हुए कहा—'हमारा अहोभाग्य है कि पडितजी सस्कृत विद्या मे पारगत होकर गाव मे पधार गये है।' स्वागत और अभिनदन के साथ-साथ कई महानुभावो ने इस खुशी मे उन्हे रुपयो की थैलिया भेट की। काफी मात्रा मे द्रव्य देखकर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री के लिए स्वर्णाभूषण बनवा लिये। ब्राह्मणी के हृदय मे प्रसन्नता का पार नही था। वह बासो उछलती हुई रात-दिन उन आभूषणो को पहनकर गाव मे भ्रमण करती रहती।

ब्राह्मण ने अपनी धर्मपत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—'प्रिये! रात-दिन आभूषणो से लदे रहना उचित नही है। जमाना बहुत खराब है। कदम-कदम पर ध्यान रखना है क्योकि ग्राम मे चोरो का भय बहुत है। कहावत है—डर काया को नही, माया को है। कोई त्योहार हो अथवा तू अपने पीहर जाने वाली हो या किसी शादी-विवाह मे जाना हो तो गहने भले ही पहन लेना किन्तु इस प्रकार रात-दिन पहनकर आडम्बर प्रदर्शित करना बुद्धिमत्ता नही है।'

किन्तु ब्राह्मणी अपने पति की हितकारी शिक्षा को जीवन मे कहा ढालने वाली थी! वह पहले की भाति ही रात-दिन आभूषणो के नशे मे चूर रहती। कुछ ही समय के बाद ब्राह्मणी शारीरिक दृष्टि से काफी मोटी हो गई। तब ब्राह्मण ने फिर अपनी धर्मपत्नी से कहा—'प्रिये! तेरी शारीरिक मोटाई के कारण ये आभूषण जल्दी मे खुल नही पायेंगे, अत इन सबको अभी धीरे-धीरे खोलकर आलमारी मे रख दे। इसी मे लाभ है।' किन्तु वह मूर्खा कहा मानने वाली थी! आवेश मे आकर जोर मे तडककर बोली—'आप तो बडे डरपोक है। आपको तनिक भी घबराने की अपेक्षा नही है। कदाचित् चोर भी आ जायेगे तो मै उसी वक्त आभूषणो को निकाल लूगी। किन्तु अभी मैं आभूषणो को नही खोलूगी।'

कुछ ही दिनो के बाद घर मे सचमुच चोर घुस गये। अब तो ब्राह्मणी घबरायी। चोर बोले—'जल्दी से आभूषण खोलकर हमको दे दो, अन्यथा हम

आभूषणो सहित तेरा ही अपहरण कर लेगे।' ब्राह्मणी आभूषणो को जल्दी निकाल नही सकी, तब चोर ब्राह्मणी का ही अपहरण कर ले गये। बाद मे आभूषण तो उन्होंने ले लिए, पर ब्राह्मणी के गले पर तलवार चला दी।

ज्ञानी सतो का कहना है कि मृत्यु आने से पहले-पहले जो व्यक्ति धर्म मे प्रवृत्त हो जाता है, उसे कभी भी पछताना नही पडता। यदि ब्राह्मणी ब्राह्मण का कहना मान लेती तो उसे बिना मौत क्यो मरना पडता !

यम के आने से प्रथम, कर लेना कुछ धर्म।
पछताओगे अन्यथा, है यह सच्चा मर्म।।

धूर्त्त की धूर्त्तता

एक बहुत बडा जागीरदार था। हर क्षेत्र मे वह निपुण एव विलक्षण बुद्धि का धनी था। सैकडो बीघा जमीन थी। हजारो मन अनाज व कपास होता था। पचायत समिति का होनहार पच था। ईमानदारी व प्रामाणिकता को वह सर्वत्र महत्त्व देता था। सरल स्वभावी था। लोकप्रिय था। एक दिन किसी ठग से मुलाकात हो गई। ठग बडी सुमधुर भाषा मे बोला—'जागीरदार साहब ! स्वास्थ्य कैसा है ? मेरे लायक कोई काम-काज हो तो कृपया फरमाइये।' जागीरदार के मन मे तनिक भी कुटिलता नही थी। वह अपनी सहजता मे रमण करता था। उसके हृदय मे किसी भी प्रकार का छल-प्रपच नही था। ठग ने कहा—'जागीरदारजी ! आपकी कृपा से मैं विभिन्न प्रकार की कलाओ मे पारगत हू। मैं पीतल को सोना बना सकता हू।'

जागीरदार ने कहा—'आज मेरी तकदीर खुल गई जो आप जैसे मेधावी मित्र का सहवास मिला।' ठग बोला—'आपके घर मे जितना भी सोना हो, वह सब मेरे पास लाओ तो मैं उसका दुगुना कर दूगा।' इस प्रकार का प्रलोभन देकर वह ठग जागीरदार को जगल मे ले गया और सारा सोना थाली मे रखने के लिए कहा। जब जागीरदार ने सारा सोना थाली मे रख दिया तो ठग बोला—'सोना दुगुना करने के लिए एक सुन्दर घोडी चाहिए, आपके पास हो तो ले आइये। उस सोने के चारो ओर घोडी की प्रदक्षिणा कराना आवश्यक है।'

जागीरदार बेचारा घर गया और सुन्दर-से-सुन्दर एक घोडी लेकर उपस्थित हुआ। ठग घोडी पर सवार होकर कुछ देर तो उस सोने के चारो तरफ घूमता रहा फिर सारा सोना उठाकर ऐसा भागा कि जागीरदार बेचारा आखे फाडकर देखता ही रह गया। मन-ही-मन पछताने लगा—हाय ! कैसा धूर्त ! कैसा ठग !

सोना भी गया। घोडी भी गई। ऐसा पता होता तो मैं ठग की छलना मे कभी नहीं फसता।

जो व्यक्ति ठग होते हैं, वे दूसरो को धोखा देने के लिए अपनी धूर्त्तता चलाए बिना नही रहते। किंतु बुद्धिमान वे हैं जो ठग व्यक्तियो के ससर्ग मे हरदम दूर रहते हैं।

धोखा देने अन्य को, करते धूर्त्त प्रयास।
भूल-चूक ठग मनुज का मत करना सहवास ।।

प्रमादी मत बनो

एक महाजन था। व्यापार मे बडा निपुण था। बुद्धिमान होने के साथ-साथ हर क्रिया मे बडा व्यावहारिक था। परदेश जाते हुए महाजन ने धर्मपत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—'प्रिये! घर का ध्यान रखना। पशु धन ही सच्चा धन है। सबकी सुरक्षा रखना तेरा परम कर्तव्य है।' इस तरह घर की सारी जिम्मेदारी देकर सेठ परदेश चला गया।

सेठानी का स्वभाव अच्छा नही था। बोली मे माधुर्य नही था। वह नौकरो को बिना मतलब कोसती रहती थी। व्यापार मे उसका दिल नही लगता था। खा-पीकर दिन मे घटो-घटो सो जाती थी। ऐश-आराम मे अपना समय बर्बाद करती थी। प्रमादवश नौकरो से भी अच्छी तरह से काम नही करा सकती थी। महीना पूरा होते ही नौकरो ने सेठानी से तनखाह मागी। सेठानी तडका-भडका करने लगी—'तुम लोगो ने अच्छी तरह से काम नही किया है।' सेठानी का ऐसा व्यवहार देखकर नौकर धीरे-धीरे खिसकने लगे। पशुओ को पूरी खुराक नही मिलती थी। भूख से पीडित होकर काफी जानवरो ने परलोक की राह पकडी। व्यापार मे भी काफी नुकसान हो गया।

कई महीनो के पश्चात् सेठजी लाखो की सपत्ति कमाकर घर पहुचे। सेठानी से वार्तालाप हुआ। व्यापार मे नुकसान देखकर सेठजी चमक उठे। अपनी अर्धांगिनी को ललकारते हुए कहा—'तुमने ध्यान नही रखा। तुम्हारे प्रमाद तथा आलस्य के कारण कितनी बडी क्षति हुई है।' सेठ ने गुस्से मे आकर सेठानी का परित्याग कर दिया और दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी को प्रशिक्षण देते हुए सेठ ने कहा—'अगर तुम भी प्रमाद व आलस्य रखोगी तो तुम्हारा भी वही परिणाम होगा।' स्त्री ने कहा—'पतिदेव! आप जैसा फरमायेंगे, उसी के अनुरूप मेरी गति होगी।'

दस-पन्द्रह नौकरो की अच्छी व्यवस्था कर सेठजी परदेश चले गये। पीछे

दूसरी स्त्री घर की जिम्मेदारी अच्छी तरह निभाती। नौकरो को भी हर दृष्टि से अच्छी सार-सभाल करती। समय-समय पर उन्हे पूछती कि किसी भी वस्तु की दरकार हो, अथवा पशुओ की व्यवस्था मे कुछ भी जरूरत हो तो बताते रहना। ऐसे मधुर व सुकोमल व्यवहार से सभी नौकर बडे प्रसन्न थे। पशु-पालन-पोषण मे दिल तोडकर श्रम करते थे। इससे दूध के व्यापार मे बहुत ही अच्छा लाभ होने लगा। कई महीनो के बाद सेठजी घर लौटे। व्यापार का निरीक्षण किया। इधर सभी नौकर सेठानी की प्रशसा करने लगे। व्यापार मे अच्छा लाभ देखकर सेठ बहुत खुश हुआ और घर की सारी बागडोर सेठानी के हाथो मे सौप दी।

इसी प्रकार जो प्राणी प्रमाद और आलस्य को छोडकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उद्यमशील रहता है, वह हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करता है।

परम प्रमादी पुरुष का, होता नही विकास।
नही मिले सत्ता उसे, कदम-कदम पर ह्रास॥

अभयदान

राजगृह एक विशाल सुरम्य नगर था। वहा पर श्रेणिक राजा राज्य करता था। मत्री आदि अनेक सुप्रतिष्ठित व्यक्तियो से सभा-स्थल खचाखच भरा हुआ था। अनेक विद्वान भी बैठे हुए थे। राजा श्रेणिक ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए पूछा, 'इस नगर मे कौन-सी वस्तु सुलभ व स्वादु है?'

मन्त्रियो ने कहा—'इस नगर मे स्वादु और सस्ता वस्तु यदि कोई है तो वह है मास। मास खाने से शरीर की पुष्टि होती है।'

अभयकुमार भी सभा मे बैठा था। क्षत्रियो की बात सुनकर वह चमका। गह-राई से सोचने लगा—ये सभी लोग निर्दयी है। इनके हृदय मे तनिक भी दया की भावना नही है। इन सबको ज्ञान के माध्यम से ऐसा समझाऊ कि वे पुन मास की सराहना भी न कर सके। ऐसा चिन्तन कर अभयकुमार रात्रि मे सभी क्षत्रियो के घर पृथक्-पृथक् रूप मे जाकर बोला, 'ओ क्षत्रियो! राजपुत्र के शरीर मे सहसा महाव्याधि उत्पन्न हुई है। अनेक उपचार करने पर भी बीमारी अभी तक शान्त नही हुई है। आखिर एक वैद्य ने कहा है कि मनुष्य के कलेजे का मास चाहिए। उस मास के साथ औषधि देने से राजकुमार का रोग शान्त हो जायेगा। कई दिनो तक औषधि का प्रयोग करना पडेगा। अर्थात् कम-से-कम दो सेर मासयुक्त दवा पेट मे पहुचनी चाहिए। ऐसा प्रयोग करने से राजपुत्र जीवित रह सकता है, अन्यथा नही। आप नृप के आश्रय मे अपने जीवन का पालन-पोषण करते है, अत आपका कर्तव्य है कि आप अपना मास देकर राजकुमार का जीवन बचाए।'

हर क्षत्रिय से अभयकुमार को एक ही उत्तर मिला—'मन्त्रिवर ! वदले मे एक हजार दीनार ले लीजिये, मुझे छोड दीजिये। मास मैं दे नही सकता।' इस तरह लाखो दीनारे लेकर अभयकुमार नृप सभा मे पहुचा। उन धन को क्षत्रियो को दिखाकर वोला—'आप लोगो ने कहा था कि मास सुलभ है किन्तु आज तो इतनी धनराशि मे भी मास नही मिला।' अभयकुमार द्वारा प्रताडित सारे क्षत्रिय लज्जित हो गये और सवने मास-भक्षण का नियम ले लिया। सव जीवो के प्रति अभयदान !

सभी प्राणी जीना चाहते है, मरना कोई नही। ससार के समस्त जीवों को आत्म-तुल्य समझना, सवको अभयदान देना मानव का परम कर्तव्य है।

सव जीवो को सर्वदा, समझे आत्मसमान।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, करता निज कल्याण ॥

प्रतिबोध

तेतलीपुर मे कनककेतु नामक राजा राज्य करता था। राज्य के लोभवश उत्पन्न होते ही वह अपने पुत्रो को मार देता था। उस राजा के तेतलीपुत्र नामक अमात्य था। उसकी पोट्टिल्ला नाम की स्त्री थी। वह मत्री को पहले तो अत्यन्त प्रिय थी, पीछे कुछ कारणो से वह रुष्ट हो गया। एक दिन की वात है कि उसके घर मे भिक्षा के लिए साध्वीश्री का पदार्पण हुआ। साध्वीश्री को वदन करती हुई विनय-पूर्वक मत्री की स्त्री ने कहा—'साध्वीप्रवर ! मेरे पति मेरे वश मे कैसे हो सकते हैं, कृपया इसका कोई उपाय वताये।' साध्वीश्री ने उत्तर दिया—'धर्म का सेवन करो। धर्म ही जीवन की अमूल्य सपदा है। धर्म के प्रताप से यथेच्छित फल मिलता है।' साध्वीश्री के उपदेश का प्रभाव उस पर पडे विना कैसे रह सकता था ? हृदय मे वैराग्य-भावना जागृत हुई। ससार से विरक्त होकर उसने दीक्षा ग्रहण करने के लिए पति से पूछा—'स्वामिन ! मै दीक्षा लेना चाहती हू, कृपया आदेश फरमाये।' मत्री ने कहा—'तू दीक्षा ग्रहण कर। यदि तू देवलोक मे चली जाती है तो मुझे प्रतिवोध जरूर देना।' दीक्षा ले, विभिन्न प्रकार की साधना कर, आयु को समाप्त कर, मत्री-पत्नी स्वर्ग-लोक मे पहुच गयी।

मत्री राजा के एक पुत्र को अपने घर पर ले गया। उसे प्रच्छन्न रूप से रखा। राजपुत्र वडा हुआ। कनककेतु नृप का अचानक देहान्त हो गया। तव मत्रीश्वर ने कनकध्वज राजकुमार को सिंहासन पर वैठाया। छोटी वय होने के कारण राजा कनकध्वज ने राज्य का समस्त उत्तरदायित्व मत्री को सौप दिया। अव मत्री रात-दिन राज्य की सार-सभाल व व्यवस्था मे व्यस्त रहने लगा। धर्म-ध्यान मे वह

तनिक भी समय नही लगाता। देव-गति प्राप्त पोट्टिला ने राज्यासक्त मत्री को देखकर सोचा, 'मेरा कर्तव्य है कि मैं उसे प्रतिबोध दू।'

देव सयोग मे अचानक राजा स्वय तथा अन्य कर्मचारी लोग मत्री से पराड्-मुख हो गये। मत्री राजभवन मे जाता, राज्य-सभा मे जाता, कही भी उसको आदर-सत्कार नही मिलता। वह तिरस्कार को सहन नही कर सका। घर आया। आत्महत्या करने की सोचकर अपने हाथो से वह गले मे फासी खाने के लिए तैयार हुआ, लेकिन देव-योग से उसे सफलता नही मिली। मत्रीश्वर को पीडित और व्यथित देखकर देव प्रकट होकर बोला—'ओ मत्रिन्! ऐसा है ससार का स्वरूप! वास्तव मे कोई किसी का स्वजन नही है। सब मतलब के साथी है। मतलब के अभाव मे कोई किसी को नही पूछता। सारा समय प्रमाद मे गवा देना बुद्धिमत्ता नही है। जीवन को चचल समझकर धर्म मे समय लगाने से कल्याण होगा।' मत्री को प्रतिबोध देकर देव अपने स्थान मे चला गया।

मत्री ने गहराई से सोचा। वैराग्य-भावना जागृत हुई। समस्त सपदा का परित्याग कर उसने दीक्षा ग्रहण की।

जैसे साध्वी पोट्टिला अपने कथन पर अटल रही, पति को आकर प्रतिबोध दिया, जिससे उसका उद्धार हो गया, वैसे ही हर व्यक्ति को अपने कथन पर कायम रहना चाहिए। कथनी और करनी मे जिसके एकरूपता है, वह व्यक्ति हर क्षेत्र मे अपने जीवन का विकास कर सकता है।

रहता अपने कथन पर, निश्चल जो मतिमान।
'मुनि कन्हैया' कर सके, वह नर निज निर्माण॥

नित्य नियम मे अटल

विभिन्न प्रकार के बाजारो से सुसज्जित चपा नाम की नगरी थी। प्रतिदिन लाखो रुपयो का व्यापार चलता था। नगर के चारो ओर विशाल एव रमणीय उद्यान थे। जैन धर्म के अनुयायी हजारो परिवार वहा पर निवास करते थे। अनेक साधु-साध्वियो का समय-समय पर वहा पदार्पण होता रहता था। उनका प्रवचन सुनने के लिए सहस्रो लोग दौडे-दौडे आते थे। अमृत-सी देशना से जनता आनन्दित होती थी। चपानगरी मे साजनसिह नामक एक सुप्रतिष्ठित एव सुश्रावक श्रेष्ठि भी रहता था। वह जैन धर्म का विज्ञाता था। तत्त्वज्ञान के प्रति उसकी अच्छी अभिरुचि थी। स्वाध्याय-ध्यान मे अपने समय को वह सार्थक बनाता था। दोनो समय सुनिश्चित वेला मे प्रतिक्रमण किए बिना भोजन नही करना, ऐसा उसने नियम ले रखा था।

सेठ साजनसिह के हाथो से कुछ राजकीय अपराध हो गया। राजा [illegible]

वादशाह को पता लगते ही उसने सेठ माजनसिंह को दड सुनाते हुए कहा—'यह सेठ वहुत वडा अपराधी है, इसे कारागार मे डाल दो।' सेठ को कारागार का अतिथि वना दिया गया। सेठ ने सोचा—अव प्रतिक्रमण कैसे करूगा ? वडी विकट समस्या थी। वडी विनम्रता से सेठ ने आरक्षको के सामने अपनी हृदयस्थ भावना को रखते हुए कहा—'वन्धुओ ! मैं जैन हू। सुवह और शाम दोनो समय नित्य नियम (प्रतिक्रमण) किए विना पानी भी नही पी सकता। इस नियम को किसी भी स्थिति मे मैं नही तोडूगा। अत आप लोग मेरे इस पवित्र कार्य मे सहायक वनेंगे, ऐसा विश्वास है।' इसके वदले मे पचास-पचास सुवर्ण मोहरे उन सवको सेठ ने दी और प्रतिदिन की भाति प्रतिक्रमण करता रहा।

साजनसिंह सेठ की धार्मिक निष्ठा एव अडिगता को देखकर धर्मसहायक देवता ने अपने सामर्थ्य से सेठ को निगडित वन्धनो से मुक्त कर दिया। देव द्वारा वह हर दृष्टि से सम्मानित हुआ। यह सारा दृश्य देखकर आरक्षक गण घवराये। सेठ को महापुरुष के रूप मे समझकर सव वोले—'महाशय ! आप द्वारा प्रदत्त ये मोहरे वापस ले लीजिए।' सेठ वोला—'घवराने की जरूरत नही है। आप लोग मेरे धर्म-सहायक उपकारी हैं। आपके उपकार को मैं कभी नही भूल सकता। आप लोगो की करुणा से ही मैं समय पर प्रतिक्रमण कर सका। अमूल्य प्रतिक्रमण सपदा के सामने यह धन कुछ भी नही है।'

जो व्यक्ति अपने नित्य नियम पर दृढ रहता है, उसकी सहायता करने के लिए देवता भी दौडे-दौडे आते हैं। अत प्रत्येक मानव को भयकर परिस्थिति मे भी विचलित नही होना चाहिए।

मानव सकट समय पर, नही तजे जो धर्म।
उसने समझा है स्वत, जीवन पावन मर्म॥

समन्वय का विकास

महाराजा रणजीतसिंहजी वहुत वडे अनुभवी शासक थे। उनकी गौरव-गाथा दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे हर दृष्टि से सुयोग्य एव उदार वृत्ति वाले महापुरुष थे। उनके राज्य मे छोटे-वडे का कोई भेद-भाव नही था। हिन्दू एव मुसलमान भी उनके राज्य मे सुख का अनुभव करते थे। मुसलमानो का त्योहार आया। ताजिया निकलने वाले थे, सारे शहर मे वडी चहल-पहल थी। जिस मार्ग से ताजिया निकलने वाले थे, वहा एक स्थान पर वहुत वडा वट-वृक्ष था। मार्ग सकरा था। ताजिये का ऊपरी हिस्सा वट-वृक्ष से टकरा रहा था। मुसलमान भाइयो ने उस वट-वृक्ष की टाली को काटना चाहा, जिससे ताजिया वहा से निकल सके।

वट-वृक्ष की शाखा को काटने की वात हिन्दुओ को चुभ गयी। वे अकडकर वोले—किसी भी स्थिति मे शाखा को नही काट सकते। दोनो ओर से उत्तेजना वढने लगी। मर-मिटने के लिए दोनो ओर से व्यक्ति तैयार हो गये। वात परस्पर मे तन गयी। स्थिति ने भयकर रूप ले लिया। महाराजा रणजीतसिंह जी को पता लगते ही वे तत्काल वहा पहुचे और स्थिति का अध्ययन किया। दोनो का समन्वय कैसे हो, गहराई से चिन्तन चला। समस्या का समाधान खोजते-खोजते अचानक एक उपाय उनके मस्तिष्क मे उभर आया। उन्होंने तेज आवाज मे कहा, 'हिन्दू भाई अपने स्थान से सौ कदम पीछे हट जाए और मुसलमान भाई भी अपने स्थान से सौ कदम पीछे हट जाए।' यह सुनते ही दोनो दल वाले उछल पडे, पर क्या किया जाये। आदेश आदेश होता है। इच्छा नही होते हुए भी दोनो पीछे हट गये।

महाराजा ने अपने कर्मचारियो को आदेश दिया कि जो सडक ऊची है, उसे खोदकर नीची कर दो। सडक की खुदाई हुई। जमीन को ठीक कर दिया। फिर महाराजा ने मुसलमानो को आदेश देते हुए कहा—'अव ताजियो को धीरे-धीरे आगे वढाए।' ताजिये वट-वृक्ष की शाखा को विना छुए आगे वढ गये। उनके हृदय-पटल मे खुशी का पार न रहा। इधर हिन्दू भाइयो के दिल मे भी तनाव नही रहा, सव मे आनन्द छा गया।

शाखा को काटने की नौवत नही आयी। दोनो पक्षो को समाधान मिल गया। रास्ता ऊचा था, तव तक वट-वृक्ष वाधक था। रास्ता नीचा होते ही वाधा समाप्त हो गयी। सारा तनाव मिट गया। आपस मे सौहार्द वढा।

जो व्यक्ति समन्वय की भावना से चिन्तन करता है, उसे अवश्य सफलता मिलती है। कठिन कार्य भी सरल वन जाता है, अत समन्वय की चेतना का विकास परम आवश्यक है।

सुखद समन्वय भाव का, होता जहा विकास।
'मुनि कन्हैया' प्रेम का, मिलता वहा प्रकाश॥

पशु-हत्या

एक गोपालक था। उसके घर मे एक वैल, एक गाय और गाय का वच्चा था। वह गोपालक गाय का दोहन कर छोड देता। वच्चे को भी खाने के लिए पूरा चारा नही डालता, न ही उसे समय पर पानी पिलाता। वैल की वह वडी सेवा करता। सुवह-शाम दोनो समय उसे स्नान कराता। अच्छा-अच्छा खाने को देता। क्रीडा-हेतु उद्यान मे भी घुमाने के लिए ले जाता। इस प्रकार वह वैल का वडा सत्कार

और आदर करता। यह सब देखकर वह बछडा अपनी मा गाय से कहने लगा—'हे माता! यह ग्वाला कितना पक्षपात करता है! इस बैल की इतनी सेवा इतनी टहल! तेरी और मेरी तो कोई पूछ भी नही। तू दूध देती है, फिर भी तुझे पूरा खाना नही देता। मै भी क्षुधाग्रस्त भटकता रहता हू। यह अन्तर क्यो?'

गाय बोली—'हे लाल! हे अगज! अपने को जो सूखा घास मिलता है, इसी मे लाभ है। अपने को कुछ भी कहने की अपेक्षा नही है। बैल को जो अच्छा-अच्छा भरपेट भोजन मिलता है, इसके पीछे रहस्य है।'

धीरे-धीरे वह बैल खा-पीकर शरीर से हृष्ट-पुष्ट बन गया। शरीर से मानो शोणित की धारा बह रही हो। ग्वाला मन-ही-मन सोचने लगा—अब कोई मेहमान आ जाये तो मेरे पास खाद्य की अच्छी सामग्री है।

सयोग से कुछ ही समय के पश्चात् कोई मेहमान आ गया। गोपालक ने उस बैल को मारकर मेहमान को भोजन कराया। यह सब देखकर बछडा घबडाया और अपनी माता से कहने लगा—'अपने साथ मे जो बैल रहता था, आज उसे मारकर उसका गोश्त पकाकर वह मेहमानो का स्वागत कर रहा है। क्या अपन को भी वह मारेगा?' गाय ने सान्त्वना भरे शब्दो मे कहा—'वत्स! घबराने की जरूरत नही है। अपन को वह नही मारेगा, क्योकि तुझे और मुझे सूखा खाद्य मिलता है। बदले मे मैं दूध देती हू। दूध की आशा से वह अपन पर तो दयावान ही सिद्ध होगा। बैल तो दूध नही देता था। अच्छा-अच्छा सरस भोजन भी उसे मिलता था। अत. अपन को तनिक भी डर नही है।'

पशु-हत्या के भयकर पाप के फलस्वरूप आखिर वह ग्वाला मरकर नरक मे चला गया।

स्वार्थी मानव अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए निरपराध प्राणी की जो हत्या करता है, उसे गोपालक की भाति दुर्गति मे जाना पडता है।

इस दुनिया मे है बडा, पशु-हत्या का पाप।
ग्वाला मरकर भोगता, नर्क धाम का ताप॥

समभाव

हस्तिशीर्ष नगर मे दमदत नाम का राजा राज्य करता था। हस्तिनापुर के स्वामी थे पा व और कौरव। दोनो मे राज्यो की सीमा आदि को लेकर परस्पर कुछ मनमुटाव और विवाद प्रारम्भ हो गया। कुछ ही समय के पश्चात् राजा दमदत जरासध नृप की सेवा के लिए चला गया। पीछे से पाडवो और कौरवो ने दमदत के राज्य को तहस-नहस कर अपने अधिकार मे करने का प्रयास किया। देश की

भग्नावस्था के बारे मे सुनते ही राजा दमदत के क्रोध का पार न रहा। अपनी सेना लेकर उसने हस्तिनापुर पर चडाई कर दी। भीषण सग्राम होने लगा। पाडवो-कौरवो की सेना के सामने दमदत की सेना कुछ भी नही थी। बल, सख्या, शक्ति आदि हर दृष्टि से पाडव सेना का अपने आप मे विशेष महत्त्व था, किन्तु भाग्यवश दमदत राजा की विजय हो गयी। दमदत विजय की पताका लहराता अपने महलो मे लौट गया।

एक दिन राजा दमदत ने सध्या समय मे पच वर्ण बादलो का स्वरूप देखकर चिन्तन किया कि ससार का स्वरूप भी बादलो की भाति असार है, क्षणभगुर है। वैराग्य भावना जागृत हुई। उसने सयम ले लिया। दमदत मुनि ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए एक बार हस्तिनापुर के बाहर पधारे और कायोत्सर्ग मे सस्थित हुए।

सयोग की बात, पाडव लोग उसी मार्ग से कही जा रहे थे। घोडो से उतरकर पाडवो ने दमदत राजर्षि को वदन करते हुए उनके अध्यात्म-बल की प्रशसा की और रवाना हो गये।

कुछ ही समय के पश्चात् दुर्योधन आदि कौरव भी उधर से कही जा रहे थे। दमदत मुनि को देखा तो अनर्गल शब्दो द्वारा उनका तिरस्कार करते हुए, उनके सामने बीज, फल आदि सचित चीजे रखकर चले गये।

'यथा राजा तथा प्रजा'—इस कहावत को चरितार्थ करते हुए सभी सैनिको ने मुनिवर के सामने काठ, पाषाण का ढेर लगा दिया जिससे बडे चबूतरे जैसा बन गया।

पाडव उसी मार्ग से वापस आये। मुनिवर के सामने बडे चबूतरे-सा ढेर देखा। लोगो द्वारा पता लगा कि यह सारी करतूत कौरवो की है। पाडवो ने पाषाणादि के ढेर को दूर किया। मुनिप्रवर को वदन कर चले गये।

पाडवो द्वारा मुनिवर को सम्मान मिला, कौरवो द्वारा अपमान मिला। फिर भी मुनिराज दोनो ही स्थान पर सम रहे, तनिक भी रागद्वेष नही किया।

साम्य की साधना जीवन की साधना है। इसके अभाव मे कोई भी व्यक्ति महान् नही बन सकता।

अत हरेक को समता का व्यवहार करना चाहिए।

साम्यभाव की साधना, जीवन का शृगार।
इस आभूषण के बिना, मानव भव बेकार॥

दाता का भाग्य

वसतपुर नगर मे जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। मूलदेव नाम का राजकुमार था। वह हृदय का वडा उदार था। जो भी उससे याचना करता, उसे यथेच्छ की उपलब्धि हुए विना नही रहती। उसी नगरी मे एक कृपण रहता था। उसे यह परम्परा उचित नही लगी। ईर्ष्या और जलन की चिनगारिया उछलने लगी। उसने राजा से निवेदन करते हुए कहा—'राजन्! आपका पुत्र मुक्त हाथो से जो दान देता है वह मेरी दृष्टि से श्रेयस्कर नही है। किसी भी समय मे राज्य का वहुत वडा नुकसान हो सकता है।' राजा ने कुवर को वुलाकर कहा—'पुत्र! तू दान देता है किन्तु जो मागता है उससे आधा दिया कर।'

पुत्र ने करवद्ध होकर कहा—'पिताजी! आपकी जो आज्ञा है, उसी के अनुरूप चलूंगा।' कुवर मूलदेव की कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। ऐसा दानी ससार मे विरला ही होगा। राजकुवर की दानशीलता की कीर्ति सुनकर दूर देश से एक चारण आया। उस समय सवा लाख का हार पहने हुए राजकुवर सिंहासन पर वैठा था। वह याचक चारण मुक्तकठ से सुरम्य पद्यो मे राजकुवर की यशोगाथा गाने लगा। मूलदेव प्रसन्न मुद्रा मे वोला—'अरे चारण! तेरी इच्छा हो वह माग सकता है।' चारण ने कहा—'आपके गले मे जो हार है, वह दे दीजिए।' राजकुवर आधा हार देने लगा, तव चारण वोला—'हे गरीवनिवाज! हे दाता! आपकी उदारता की गाथा सुनकर वहुत दूर से यहा आया हू। आप अपनी कीर्ति को कायम रखने के लिए याचित दान पूरा दीजिए।'

यह सुनकर मूलदेव राजपुत्र ने वह हार उसे दे दिया। दुष्ट अपनी दुष्टता को नही छोडते। कुछ चुगलखोर राजा को कहने लगे—'राजपुत्र द्वारा आपकी आज्ञा का उल्लघन हुआ है।' राजा ने गुस्से मे आकर राजपुत्र को देश-निकाला दे दिया।

पिता के आदेशानुसार राजकुवर वहा से रवाना हो गया। भयकर अटवी को लाघता हुआ वह आगे वढा। क्षुधा मे आकुल-व्याकुल हो वह एक ग्राम मे पहुचा। याचना करना जानता नही था। जो कुछ भी कही से मिला, लिया। धर्मशाला मे पहुचा। सो गया। अर्धनिद्रा मे स्वप्न आया। सूर्योदय होते ही किसी विद्वान स्वप्न-पाठक मे स्वप्न का अर्थ पूछा। स्वप्न-पाठक ने कहा—आज से सातवे दिन तुझे नगरी का राज्य मिल जायेगा। यह स्वप्न शुभ है।'

नगरी के राजा का देहावसान हो गया। पुत्र नही होने के कारण मत्री ने उद्घोषणा करवा दी—'जिसके गले मे हथिनी माला डाल देगी, वही इस नगरी का राजा वन जायेगा।' हथिनी नगर मे घूमने लगी। अनेक व्यक्ति वाजार मे

खडे थे। राजा बनने की उत्कठा द्विगुणित हो रही थी। मूलदेव राजपुत्र भी मार्ग मे जाकर खडा हो गया। हथिनी आयी और उसके गले मे माला डाल दी। मत्री द्वारा मूलदेव का राज्याभिषेक हो गया। सारे शहर मे घोषणा हो गयी कि इस नगरी का राजा मूलदेव है। मूलदेव आनन्द से रहने लगा और सारी दुविधाए दूर हो गयी।

हर व्यक्ति का भाग्य अपने-अपने पास होता है। भाग्यशाली कही पर भी चला जाता है, उसका सम्मान हुए बिना नही रहता। दिलदार दाता का दिल समुद्र की भाति विशाल होता है। वह अपने भाग्य के सहारे कुछ-न-कुछ देता ही रहता है। भाग्यवान की कदम-कदम पर अवश्य विजय होती है।

भाग्यवान की हर कदम, होती विजय महान्।
'मुनि कन्हैया' भाग्य ही, सुख-सपत आस्थान ॥

सन्त-वाणी-सत्य

तुरीमणी नगरी मे जितशत्रु नाम का एक राजा राज्य करता था। वहा पर भानेज-दत्त नाम का पुरोहित रहता था। वह बडा कपटी और धूर्त था। उसने भयकर छल-प्रपच रचकर अपने स्वामी जितशत्रु नृप को कारागार मे डाल दिया और स्वय राज्य-भार को ग्रहण कर नगर का अधिपति बन बैठा। अचानक उस नगरी मे कालिकाचार्य का पदार्पण हुआ। मातुश्री की प्रेरणा से वह गुरुदेव के पास चला गया, लेकिन वह अपने आपको बहुत बडा समझता था। उसने अहकार तथा क्रोधपूर्वक गुरुदेव से पूछा, 'भगवन्! अगर कोई व्यक्ति यज्ञ करता है तो उसका क्या फल मिलता है?'

आचार्यवर ने धैर्यपूर्वक उत्तर देते हुए कहा—'यज्ञ मे विभिन्न प्रकार की हिंसा होती है, उसी भयकर हिंसा के कारण मानव को नरक मे जाना पडता है। यह बिलकुल सत्य है।'

दत्त पुरोहित ने कहा, 'आपकी बात पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? किसी ने आखो से देखा नही कि याज्ञिक हिंसा से व्यक्ति को नरकावास मे जाना पडता है।' गुरु ने कहा—'दत्त! आज से सातवे दिन तुझे कुम्भी मे पकाया जायेगा और तेरे शव को कुत्ते खायेगे।' दत्त ने कहा, 'गुरुदेव! यह बात भी समझ मे नही आती और आपके कथन पर भी विश्वास नही होता। इसका आपके पास क्या प्रमाण है।' गुरु ने कहा, 'प्रमाण है। उसी दिन तेरे मुख मे अकस्मात् विष्टा पडेगी।' यह सुनते ही दत्त के क्रोध का पार नही रहा। आखे लाल करते हुए वह जोर से बोला, 'महाराज, आपकी मौत कैसे होगी?' बहुत ही [illegible]

मे उत्तर देते हुए गुरुवर ने कहा, 'दत्त ! मेरी मृत्यु हर दृष्टि मे समाधिपूर्वक होगी और मरकर मैं स्वर्गलोक का अतिथि बनूगा।'

दत्त राजमहल मे पहुचा। सैनिको को निर्देश देते हुए कहा, 'उस गुरु के चारो तरफ से घेरा डाल दो। वह कही इधर-उधर भाग न जाए।' स्वय अपने घर मे आकर छिप गया। ऐसे करते-करते मति की मूढता से सातवे दिन को आठवा दिन समझ घर से निकला। मन मे सोचा—कुछ भी नही हुआ, गुरु की वाणी सब मिथ्या हो गई। अचानक उसी समय उसी मार्ग से एक माली ने नगरी मे प्रवेश किया। पेट मे अचानक गडबडी होने के कारण राजमार्ग मे ही मलोत्सर्ग कर उस मल को पुष्पो से आच्छादित कर दिया। उसी माग मे जाते हुए दत्त के घोडे के खुर से उछला हुआ विष्टा दत्त राजा के मुख मे पड गया।

इधर दत्त नृप के दुष्कृत्यो और दुर्व्यवहार से सारा मन्त्रिमण्डल बहुत खिन्न था। उन्होंने जितशत्रु नृप को कैद से निकालकर राज्यासन पर पुन स्थापित कर दिया। दत्त को बाधकर राजा के सामने हाजिर किया। जितशत्रु नृप ने दत्त को कुभी मे डाला। नीचे अग्नि जलाकर उसे भूनकर कुत्ते छोड दिए। कुत्ते उस परिपक्व शव को खाने लगे। वह मरकर नरक मे गया।

सत, ऋषि और ज्ञानी जनो की वाणी कभी मिथ्या नही हो सकती। अत. सत-वाणी पर श्रद्धा रखना हर मनुष्य का कर्तव्य है।

सत वचन पर सर्वथा, रहता श्रद्धावान।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, बहुत बडा नुकसान ॥

युक्ति का सम्मान

राजा भोज को परिभ्रमण का बडा शौक था। एक दिन राजा भोज बगीचे मे जा रहे थे। रास्ते मे एक महिला मिल गई। मैले कपडे पहने हुई थी। मुख पर उदासी की किरण थी। आकृति मूच्छित फूलो की भाति मुरझा रही थी। उसे व्यथित-मना देखकर राजा ने पूछा—'का त्व पुत्रि इति ?'—हे वत्स ! तुम कौन हो ? उसने उनके मुख की रम्य प्रभा से उन्हे राजा भोज समझकर प्रसन्न मन से उत्तर देते हुए कहा—'नरेन्द्र ! लुब्धक वधू'—हे राजन् ! लुब्धक की स्त्री हू।

राजा ने उसके मुख से ऐसी सुरम्य रचना सुनकर मुग्ध व प्रभावित होकर पूछा—'हस्ते किमेतत्'—हाथ मे क्या है ? उसने उत्तर दिया—'पलम् (मास)।' राजा ने पूछा—'क्षाम किम्'—सूखा हुआ क्यो है ? उसने अपनी सुकोमल भाषा मे उत्तर देते हुए कहा, 'हे राजन् ! मैं मेरी भावना आपके सामने रखना चाहती हू, यदि आप उसे आदरपूर्वक सुनें तो।' राजा ने कहा—'क्यो नही सुनूगा ? ये दोनो

कान उतावले हो रहे है तेरी हृदय-भावना को सुनने हेतु।' वह बोली—

'गायन्ति त्वदरिप्रियाऽश्रुतटिनी, तीरेषु सिद्धाङ्गना।
गीतान्धा न तृण चरन्ति, हरिणास्तेनामिष दुर्बलम्॥

—'आपके विपक्षियो की स्त्रियो के अश्रुओ की नदी के तट पर सुरागनाये गीत गाती है, जिस गीत के श्रवण से मुग्ध होकर हिरण घास नही चरते है, इसलिए मास सूखा हुआ है।'

राजा—'बात सजाकर रखने की तेरे मे अनुपम युक्ति है, कला है। ये ले प्रति अक्षर लाख-लाख रुपये।'

ससार मे युक्ति-शक्ति का अपूर्व महत्त्व है। युक्तिपूर्वक अलकृत भाषा मे बोलने से मानव का सर्वत्र सम्मान बढता है।

सरस युक्ति युक्त वचन से, मानव का सम्मान।
'मुनि कन्हैया' युक्ति युत, वाणी सुधा समान॥

कर्तव्य-बोध

एक राजा के मन मे यह भावना जागृत हुई कि मेरी प्रजा हर दृष्टि से योग्य है, नियन्त्रित है। आदेश-पालन के साथ-साथ इनमे कर्तव्य-बोध की चेतना जागृत हुई या नही, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योकि जिन नागरिको मे कर्तव्य-बोध का विकास नही है, उनका समाज कभी भी उन्नति नही कर सकता।

राजा ने मन्त्री को आमन्त्रित करते हुए कहा, 'मन्त्रिवर ! समस्त नागरिको की परीक्षा लेनी है कि इनमे कर्तव्य-बोध कितना है ? परीक्षा कैसे ले, कोई उपाय बताओ।' मन्त्री ने चिन्तन कर एक मार्ग ढूंढ निकाला। दूसरे दिन सारे शहर मे घोषणा करवा दी, 'नगर मे जितने भी स्त्री-पुरुष है, वे आज रात्रि के प्रथम प्रहर बीतने से पूर्व नवनिर्मित तालाब मे एक-एक लोटा दूध डाले। वहा कोई निरीक्षक नही रहेगा। न ही कोई राजकीय व्यवस्था रहेगी। यह आत्मानुशासन का परीक्षण है। कर्तव्य-बोध का परीक्षण है कि हर व्यक्ति अपने कर्तव्य-पालन मे कितनी सजगता रखता है। राजा के निर्देश पर जनता कितनी न्योछावर है। एक-एक लोटा दूध तालाब मे डालना कोई भी नही भूलेगा ऐसा विश्वास है।'

यह घोषणा सर्वत्र हो गई। सबने सुनी। हर नागरिक के दिल मे विचारो की लहरे उठने लगी—राजा की आज्ञा का पालन तो करना ही है, किन्तु नगर मे हजारो स्त्री-पुरुष है। सब दूध डालेगे, तालाब भर जायेगा। यदि मै एक लोटा पानी डाल दू तो क्या अन्तर पडेगा ? कौन देखेगा ? वह पानी मे [illegible]

कान उतावले हो रहे है तेरी हृदय-भावना को सुनने हेतु।' वह बोली—

'गायन्ति त्वदरिपियाऽश्रुतटिनी, तीरेपु सिद्धाङ्गना।
गीतान्धा न तृण चरन्ति, हरिणास्तेनामिप दुर्बलम्॥

—'आपके विपक्षियो की स्त्रियो के अश्रुओ की नदी के तट पर सुरागनाये गीत गाती है, जिस गीत के श्रवण से मुग्ध होकर हिरण घास नही चरते है, इसलिए मास सूखा हुआ है।'

राजा—'वात सजाकर रखने की तेरे मे अनुपम युक्ति है, कला हे। ये ले प्रति अक्षर लाख-लाख रुपये।'

ससार मे युक्ति-शक्ति का अपूर्व महत्त्व है। युक्तिपूर्वक अलकृत भाषा मे वोलने से मानव का सर्वत्र सम्मान वढता हे।

सरस युक्ति युक्त वचन से, मानव का सम्मान।
'मुनि कन्हैया' युक्ति युत, वाणी सुधा समान॥

कर्तव्य-बोध

एक राजा के मन मे यह भावना जागृत हुई कि मेरी प्रजा हर दृष्टि मे योग्य हे, नियन्त्रित है। आदेश-पालन के साथ-साथ इनमे कर्तव्य-वोध की चेतना जागृत हुई या नही, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योकि जिन नागरिको मे कर्तव्य-वोध का विकास नही है, उनका समाज कभी भी उन्नति नही कर सकता।

राजा ने मन्त्री को आमन्त्रित करते हुए कहा, 'मत्रिश्वर! समस्त नागरिको की परीक्षा लेनी है कि इनमे कर्तव्य-वोध कितना है? परीक्षा कैसे ले, कोई उपाय वताओ।' मत्री ने चिन्तन कर एक मार्ग ढ़ूढ निकाला। दूसरे दिन सारे शहर मे घोपणा करवा दी, 'नगर मे जितने भी स्त्री-पुरुप है, वे आज रात्रि के प्रथम प्रहर वीतने से पूर्व नवनिर्मित तालाव मे एक-एक लोटा दूध डाले। वहा कोई निरीक्षक नही रहेगा। न ही कोई राजकीय व्यवस्था रहेगी। यह आत्मानु-शासन का परीक्षण है। कर्तव्य-वोध का परीक्षण है कि हर व्यक्ति अपने कर्तव्य-पालन मे कितनी सजगता रखता है। राजा के निर्देश पर जनता कितनी न्योछावर है। एक-एक लोटा दूध तालाव मे डालना कोई भी नही भूलेगा, ऐसा विश्वास हे।'

यह घोपणा सर्वत्र हो गई। सवने सुनी। हर नागरिक के दिल मे विकल्पो की लहरे उठने लगी—राजा की आज्ञा का पालन तो करना ही है, किन्तु शहर मे हजारो स्त्री-पुरुप हे। सव दूध डालेगे, तालाव भर जायेगा। यदि मे एक लोटा पानी डाल दू तो क्या अन्तर पडेगा? कौन देखेगा? वह पानी से भरा लोटा लेकर

मे उत्तर देते हुए गुरुवर ने कहा, 'दत्त ! मेरी मृत्यु हर दृष्टि मे समाधिपूर्वक होगी ओर मरकर मै स्वर्गलोक का अतिथि वनूगा।'

दत्त राजमहल मे पहुचा। सैनिको को निर्देश देते हुए कहा, 'उस गुरु के चारो तरफ से घेरा डाल दो। वह कही इधर-उधर भाग न जाए।' स्वय अपने घर मे आकर छिप गया। ऐसे करते-करते मति की मूढता से सातवे दिन को आठवा दिन समझ घर से निकला। मन मे सोचा—कुछ भी नही हुआ, गुरु की वाणी सव मिथ्या हो गई। अचानक उसी समय उसी मार्ग से एक माली ने नगरी मे प्रवेश किया। पेट मे अचानक गडवडी होने के कारण राजमार्ग मे ही मलोत्सर्ग कर उस मल को पुष्पो से आच्छादित कर दिया। उसी माग से जाते हुए दत्त के घोडे के खुर से उछला हुआ विष्टा दत्त राजा के मुख मे पड गया।

इधर दत्त नृप के दुष्कृत्यो और दुर्व्यवहार से सारा मन्त्रिमण्डल वहुत खिन्न था। उन्होने जितशत्रु नृप को कैद से निकालकर राज्यासन पर पुन स्थापित कर दिया। दत्त को वाधकर राजा के सामने हाजिर किया। जितशत्रु नृप ने दत्त को कुभी मे डाला। नीचे अग्नि जलाकर उसे भूनकर कुत्ते छोड दिए। कुत्ते उस परिपक्व शव को खाने लगे। वह मरकर नरक मे गया।

सत, ऋषि और ज्ञानी जनो की वाणी कभी मिथ्या नही हो सकती। अत सत-वाणी पर श्रद्धा रखना हर मनुष्य का कर्तव्य हे।

सत वचन पर सर्वथा, रहता श्रद्धावान।
'मुनि कन्हेया' अन्यथा, वहुत वडा नुकसान॥

युक्ति का सम्मान

राजा भोज को परिभ्रमण का वडा शौक था। एक दिन राजा भोज वगीचे मे जा रहे थे। रास्ते मे एक महिला मिल गई। मैले कपडे पहने हुई थी। मुख पर उदासी की किरण थी। आकृति मूर्च्छित फूलो की भाति मुरझा रही थी। उसे व्यथित-मना देखकर राजा ने पूछा—'का त्व पुत्रि इति ?'—हे वत्स ! तुम कौन हो ? उसने उनके मुख की रम्य प्रभा से उन्हे राजा भोज समझकर प्रसन्न मन से उत्तर देते हुए कहा—'नरेन्द्र ! लुब्धक वधू'—हे राजन् ! लुब्धक की स्त्री हू।

राजा ने उसके मुख से ऐसी सुरम्य रचना सुनकर मुग्ध व प्रभावित होकर पूछा—'हस्ते किमेतत्'—हाथ मे क्या हे ? उसने उत्तर दिया—'पलम् (मास)।' राजा ने पूछा—'क्षाम किम्'—सूखा हुआ क्यो है ? उसने अपनी सुकोमल भाषा मे उत्तर देते हुए कहा, 'हे राजन् ! मैं मेरी भावना आपके सामने रखना चाहती हू, यदि आप उसे आदरपूर्वक सुनें तो।' राजा ने कहा—'क्यो नही सुनूगा ? ये दोनो

मे उत्तर देते हुए गुरुवर ने कहा, 'दत्त ! मेरी मृत्यु हर दृष्टि मे समाधिपूर्वक होगी और मरकर मैं स्वर्गलोक का अतिथि बनूगा।'

दत्त राजमहल मे पहुचा। सैनिको को निर्देश देते हुए कहा, 'उस गुरु के चारो तरफ से घेरा डाल दो। वह कही इधर-उधर भाग न जाए।' स्वय अपने घर मे आकर छिप गया। ऐसे करते-करते मति की मूढता से सातवें दिन को आठवा दिन समझ घर से निकला। मन मे सोचा—कुछ भी नही हुआ, गुरु की वाणी सब मिथ्या हो गई। अचानक उसी समय उसी मार्ग से एक माली ने नगरी मे प्रवेश किया। पेट मे अचानक गडबडी होने के कारण राजमार्ग मे ही मलोत्सर्ग कर उस मल को पुष्पो से आच्छादित कर दिया। उसी मार्ग से जाते हुए दत्त के घोडे के खुर मे उछला हुआ विष्टा दत्त राजा के मुख मे पड गया।

इधर दत्त नृप के दुष्कृत्यो और दुर्व्यवहार से सारा मन्त्रिमण्डल बहुत खिन्न था। उन्होने जितशत्रु नृप को कैद से निकालकर राज्यासन पर पुन स्थापित कर दिया। दत्त को बाधकर राजा के सामने हाजिर किया। जितशत्रु नृप ने दत्त को कुभी मे डाला। नीचे अग्नि जलाकर उसे भूनकर कुत्ते छोड दिए। कुत्ते उस परिपक्व शव को खाने लगे। वह मरकर नरक मे गया।

सत, ऋषि और ज्ञानी जनो की वाणी कभी मिथ्या नही हो सकती। अत सत-वाणी पर श्रद्धा रखना हर मनुष्य का कर्तव्य है।

सत वचन पर सर्वथा, रहता श्रद्धावान।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, बहुत बडा नुकसान ॥

युक्ति का सम्मान

राजा भोज को परिभ्रमण का बडा शौक था। एक दिन राजा भोज बगीचे मे जा रहे थे। रास्ते मे एक महिला मिल गई। मैले कपडे पहने हुई थी। मुख पर उदासी की किरण थी। आकृति मूर्च्छित फूलो की भाति मुरझा रही थी। उसे व्यथित-मना देखकर राजा ने पूछा—'का त्व पुत्रि इति ?'—हे वत्स ! तुम कौन हो ? उसने उनके मुख की रम्य प्रभा से उन्हे राजा भोज समझकर प्रसन्न मन से उत्तर देते हुए कहा—'नरेन्द्र ! लुब्धक वधू'—हे राजन् ! लुब्धक की स्त्री हू।

राजा ने उसके मुख से ऐसी सुरम्य रचना सुनकर मुग्ध व प्रभावित होकर पूछा—'हस्ते किमेतत्'— हाथ मे क्या है ? उसने उत्तर दिया—'पलम् (मास)।' राजा ने पूछा—'क्षाम किम्'—सूखा हुआ क्यो है ? उसने अपनी सुकोमल भाषा मे उत्तर देते हुए कहा, 'हे राजन् ! मैं मेरी भावना आपके सामने रखना चाहती हू, यदि आप उसे आदरपूर्वक सुनें तो।' राजा ने कहा—'क्यो नही सुनूगा ? ये दोनो

कान उतावले हो रहे है तेरी हृदय-भावना को सुनने हेतु।' वह बोली—

'गायन्ति त्वदरिप्रियाऽश्रुतटिनी, तीरेषु सिद्धाङ्गना।
गीतान्धा न तृण चरन्ति, हरिणास्तेनामिष दुर्बलम् ॥

—'आपके विपक्षियो की स्त्रियो के अश्रुओ की नदी के तट पर सुरागनाये गीत गाती हैं, जिस गीत के श्रवण से मुग्ध होकर हिरण घास नही चरते है, इसलिए मास सूखा हुआ है।'

राजा—'बात सजाकर रखने की तेरे मे अनुपम युक्ति हे, कला हे। ये ले प्रति अक्षर लाख-लाख रुपये।'

ससार मे युक्ति-शक्ति का अपूर्व महत्त्व है। युक्तिपूर्वक अलकृत भाषा मे बोलने मे मानव का सर्वत्र सम्मान बढता हे।

सरस युक्ति युक्त वचन से, मानव का सम्मान।
'मुनि कन्हैया' युक्ति युत, वाणी सुधा समान ॥

कर्तव्य-बोध

एक राजा के मन मे यह भावना जागृत हुई कि मेरी प्रजा हर दृष्टि मे योग्य है, नियन्त्रित है। आदेश-पालन के साथ-साथ इनमे कर्तव्य-बोध की चेतना जागृत हुई या नही, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योकि जिन नागरिको मे कर्तव्य-बोध का विकास नही है, उनका समाज कभी भी उन्नति नही कर सकता।

राजा ने मन्त्री को आमन्त्रित करते हुए कहा, 'मन्त्रिश्वर! समस्त नागरिको की परीक्षा लेनी है कि इनमे कर्तव्य-बोध कितना है? परीक्षा कैसे ले, कोई उपाय बताओ।' मत्री ने चिन्तन कर एक मार्ग ढूढ निकाला। दूसरे दिन सारे शहर मे घोषणा करवा दी, 'नगर मे जितने भी स्त्री-पुरुष है, वे आज रात्रि के प्रथम प्रहर बीतने से पूर्व नवनिर्मित तालाब मे एक-एक लोटा दूध डाले। वहा कोई निरीक्षक नही रहेगा। न ही कोई राजकीय व्यवस्था रहेगी। यह आत्मानुशासन का परीक्षण है। कर्तव्य-बोध का परीक्षण है कि हर व्यक्ति अपने कर्तव्य-पालन मे कितनी सजगता रखता है। राजा के निर्देश पर जनता कितनी न्योछावर है। एक-एक लोटा दूध तालाब मे डालना कोई भी नही भूलेगा, ऐसा विश्वास है।'

यह घोषणा सर्वत्र हो गई। सबने सुनी। हर नागरिक के दिल मे विकल्पो की लहरे उठने लगी—राजा की आज्ञा का पालन तो करना ही है, किन्तु शहर मे हजारो स्त्री-पुरुष है। सब दूध डालेगे, तालाब भर जायेगा। यदि मै एक लोटा पानी डाल दू तो क्या अन्तर पडेगा? कौन देखेगा? वह पानी से भरा लोटा लेकर

चला और तालाब मे डाल दिया। इसी प्रकार का विकल्प हर नागरिक के दिमाग मे उठ सकता है। दूसरे आदमी ने सोचा, तीसरे और चौथे ने भी यही सोचा। तालाब भर गया। हजारो लोटे उसमे उडेले गये।

प्रात काल हुआ। राजा मन-ही-मन फूल रहा था—सर्वत्र पानी का तालाब होता है किन्तु मेरे राज्य मे दूध का तालाब होगा। यह इतिहास की एक अनुपम घटना कहलायेगी। मेरा नाम भी स्वर्णाक्षरो मे अकित होगा।

दूध से भरे तालाब को देखने के लिए सब उत्सुक थे। राजा मन्त्रिमडल के साथ वहा पहुचा। राजा ने देखा, तालाब लबालब भरा है—लेकिन दूध से नही, पानी से। राजा ने मन्त्री से पूछा—'यह क्या ? क्या आदेश नही सुनाया गया ?' मन्त्री ने कहा—'स्वामी, आदेश सबने सुना है, आदेश-पालन सबने किया है। दूध के बदले पानी से तालाब भर गया है। ऐसा इसलिए हुआ है कि हम अपने नागरिको मे कर्तव्य-बोध की चेतना नही जगा पाए और जहा कर्तव्य-बोध की चेतना नही जागती, वहा ऐसा ही होता है, दूध के बदले पानी से तालाब भर जाता है।'

सामाजिक उन्नति तथा आत्मोन्नति के लिए कर्तव्य-बोध आवश्यक माना गया है। अपने दायित्व के पालन मे जो व्यक्ति सजग रहते है, उनका सर्वत्र सम्मान होता है।

जिसे बोध कर्तव्य का, उसका अति सम्मान।
'मुनि कन्हैया' चमकता, वह नर सूर्य समान॥

काल्पनिक समस्या

पति-पत्नी मे झगडा हो गया। पत्नी ने पति के चरणो मे निवेदन करते हुए कहा, 'हे प्राणदेव ! मैं कहती हू वह बहुत गहरी बात है। आप थोडा-सा गहराई से चिन्तन करे, जिससे आपसी झगडा अपने आप शान्त हो जायेगा। मैं लडके को डॉक्टर बनाना चाहती हू।' पति बोला—'नारी मे चिन्तन करने की शक्ति नही होती। वह छोटी-छोटी बातो मे अपने दिल को उलझा देती है। बुद्धि की स्फुरणा नही होने से बिना मतलब समस्या खडी कर देती है। हे प्रिये ! तेरा कहना सामयिक नही है। जिस कार्य मे लाभ नही हो, उसे करना अबुद्धिमत्ता है। मैं लडके को डॉक्टर न बनाकर वकील बनाना चाहता हू।' इसी प्रकार दोनो मे भयकर विग्रह खडा हो गया। कोलाहल होने लगा। पडोसी इकट्ठे होने लगे। लोगो ने कहा, 'बात क्या है ?'

पत्नी ने अपना गहरा चिन्तन देते हुए कहा—'भाइयो ! सुनिये मेरी बात। पतिदेव तो अपनी अकड मे फूले नही समा रहे है। मेरी बात पर तनिक भी ध्यान

नही दिया जा रहा है। मैंने उनके सामने एक ही बात रखी कि मैं अपने लडके को डॉक्टर बनाऊगी, क्योकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नही रहता है। आये दिन डॉक्टर बुलाना पडता है। हजारो रुपये खर्च हो गये। लडका डॉक्टर बन जाये तो सारी समस्या अपने आप समाहित हो जायेगी। मैं कह-कह कर थक गयी किन्तु पतिदेव के दिमाग मे जच नही रहा है।'

पति ने कहा, 'केवल इनकी बात सुनकर आप फैसला न दे दे, मेरी बात भी आप लोग सुन लीजिए। आप लोग स्वय व्यापारी है। आज के युग मे वकीलो की महती आवश्यकता है। इन्कमटैक्स, सेल्सटैक्स आदि कई प्रकार के टैक्स हो गये है। रात-दिन दिमाग पर वहुत बोझ रहता है। दिनोदिन इतनी समस्याए वढ रही है जिनका कोई पार नही है। प्रतिदिन वकीलो के चक्कर मे फसा रहता हू। इस चिन्ता से मैं अस्वस्थ भी रहने लगा। इसलिए मैंने यह निर्णय लिया है कि अगर मेरा लडका वकील हो जाये तो मेरी सारी समस्या अपने आप समाहित हो जाये।'

लोगो ने कहा, 'हमने आप दोनो की बाते सुनी। यह डॉक्टर बनाना चाहती है, आप उसे वकील बनाना चाहते है। पर लडके की इच्छा क्या है हम उससे पहले वात कर लें, फिर फैसला सुनायेंगे। वताइये, लडका कहा है?' तव दोनो ने कहा, 'लडका तो अभी पैदा ही नही हुआ है।' सब हसने लगे।

जीवन मे वास्तविक समस्याए वहुत थोडी होती है, किन्तु काल्पनिक समस्याओ का कही भी अन्त नही आता है। अत विना मतलव मनमुटाव करने मे तनिक भी समझदारी नही है।

किंचित् भी कारण विना, करते जो सघर्ष।
'मुनि कन्हैया' वे नही, पा सकते निष्कर्ष॥

गुरु-शिक्षा

तुग देश मे दत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था। उनके अरणिक नाम का पुत्र था। हर क्षेत्र मे हर दृष्टि से वह सुखी था। धार्मिक सस्कारो से वह ओत-प्रोत था। एक वार वहा मित्राचार्य नामक सत-शिरोमणि पधारे। उनका उपदेश सुनने के लिए सैकडो लोग वहा पहुचे। दत्त सेठ भी अपने परिवार-सहित गुरुदेव की शरण मे पहुचा। गुरुदेव ने ससार की नश्वरता व मनुष्य जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला। प्रवचन से प्रभावित होकर सेठ, सेठानी और पुत्र तीनो ने गुरुवर के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

पिता ने सोचा—'मैं वृद्ध हू। विद्याध्ययन कर नही सकता, पुत्र पढकर विद्वान् हो सकता है। अत इस दृष्टि से सहयोग करना मेरा कर्तव्य है।' गोचरी के लिए

भी उसे नहीं भेजते। आहारादि की सारी व्यवस्था वे ही करते। काफी समय व्य-तीत होने के पश्चात् एक दिन अन्य साधुओं ने दत्त मुनि से कहा—'मुनिवर! आप अपने पुत्र से गोचरी आदि कुछ भी नहीं कराते हैं, साधुत्व की अन्य क्रियाओं से भी उसे दूर रखते हैं, यह आपके लिए उचित नहीं है।'

दत्त मुनि ने कहा—आप सबका कहना बिलकुल ठीक है किन्तु लघु शिष्य की सेवा-शुश्रूषा करना बहुत बड़े लाभ का हेतु है। इसलिये इसका सारा कार्य मैं कर लेता हूं। यह अपना समय ज्ञानार्जन में लगा देता है।'

दत्त मुनि काफी वृद्ध हो गये। सोचा—काल का भरोसा नहीं है। आखिर अनशन करके देवलोक पधार गये। मोह के वशीभूत होकर मानव अपने कृत्याकृत्य को भूल जाता है। अरणिक मुनि से रहा नहीं गया। मोहाकुल होकर हाय-हाय करने लगा। 'हाय! पिताश्री का स्वर्गवास हो गया, अब मेरी कौन परिचर्या करेगा? अब मैं संयम की साधना कैसे कर पाऊंगा? इस असहाय बालक का अब कौन सहायक बनेगा?' इसी उधेड़बुन में वह कहीं भी स्थिर नहीं हो रहा था। ऐसी विचलित अवस्था देखकर ज्ञानचन्द मुनि ने कहा—'अरे अरणिक मुने! घबराने की जरूरत नहीं है। संयम में स्थिर बनो। मैं हर दृष्टि से हर समय तुझे सहयोग देता रहूंगा। चलो मेरे साथ गोचरी।' दोनों गोचरी गये। ऊपर से दिनराज अपना प्रखर तेज बरसा रहा था। नीचे से धरती अंगारों की भांति तप्त हो रही थी। अरणिक मुनि के शरीर से स्वेद का स्रोत बहने लगा। ज्यों-त्यों कर स्थान पर पहुंचे। दिल में विभिन्न प्रकार की कल्पना उठने लगी।

वह गुरु के पास आकर बोला—'महाराज! लम्बे काल तक संयम को नहीं निभा सकता। आप मुझे ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मैं स्वल्प समय में ही आत्मा का कल्याण कर सकूं।'

गुरुदेव ने कहा—'शिष्य! यह जीव अनन्तकाल से संसार में भटक रहा है। बड़ी मुश्किल से संयमरत्न की उपलब्धि हुई है। नरक निगोद की असहाय वेदना के सामने संयम के कष्ट कुछ भी नहीं हैं। अतः तुम संयम में रमण करो। यदि तुम स्वल्प ही समय में जीवन का मार्ग निकालना चाहते हो, तो पादोपगमन संथारा स्वीकार कर लो।'

गुरुदेव की शिक्षा को स्वीकार करता हुआ वह मध्याह्न में तप्त शिलापट्ट पर अनशन अंगीकार कर लेता है। अन्त में आराधक होकर देवलोक में पहुंच जाता है।

गुरु की शिक्षा को जो साधक अपने जीवन में ढाल लेता है, वह शिष्य हर क्षेत्र में उन्नति करता है। उसकी साधना पर चार चांद लग जाते हैं।

गुरु-शिक्षा के योग से, निश्चित है उत्थान।
अस्थिर मुनि भी स्थिर बने, मुनि अरणिक आख्यान॥

जैसे को तैसा

एक माली ककडिया बेचने के लिए चल पडा। मार्ग मे एक धूर्त मिला। उसने माली से पूछा—'अरे माली ! यदि इन सब ककडियो को कोई खा ले तो तुम उसे क्या दोगे ?' माली ने अपनी मधुर भाषा मे उत्तर देते हुए कहा—'उसको मैं इतना बडा लड्डू दूगा जो दरवाजे के भीतर न जा सके।'

धूर्त ने उन सब ककडियो को चख-चख जूठा कर डाला और बडी प्रखर भाषा मे जोर से बोला—'माली ! मैंने तुम्हारी सब ककडिया खा ली है। अब लड्डू लाओ।' माली ने कोमल शब्दो मे कहा—'तुमने मेरी ककडिया खायी ही नही तो फिर मैं लड्डू कैसे दू ?' कपटाई से परिपूर्ण भाषा मे धूर्त ने कहा—'मेरी बात पर यदि तुम्हे विश्वास नही है तो तुम इन ककडियो को बाजार मे ले जाकर इनकी परीक्षा कर लो।'

माली अपनी सारी ककडिया लेकर बाजार पहुचा। ग्राहक जब ककडिया खरीदने आये तो वे ककड़ियो को देखकर कहने लगे कि ये तो खायी हुई ककडिया हैं। उस धूर्त ने माली से लड्डू मागा। माली उसे लड्डू के बदले एक रुपया देने लगा परन्तु वह धूर्त कहा मानने वाला था ! आपस मे तकरार होने लगी। तू-तू की नौबत आ गयी। बेचारा माली सौ रुपया देने के लिए तैयार हो गया। लेकिन उस धूर्त ने कहा—'मुझे और कुछ नही चाहिए, मुझे तो लड्डू ही चाहिए।'

माली असमजस मे पड गया—क्या करू ? मैं तो उल्टा फस गया। इसी उधेडबुन मे उसकी अचानक एक दूसरे धूर्त से भेट हो गयी। माली ने उससे अपनी दुविधा का समाधान पूछा तो उसने एक युक्ति बताई। माली हलवाई की दुकान से एक लड्डू मोल ले आया और उसे दरवाजे के बीच मे देहली के ऊपर रखकर कहने लगा—'अरे लड्डू भाई ! चल !' परन्तु वह लड्डू अपनी जगह से टस से मस नही हुआ।

माली ने कई नीतिवान और मतिवान महानुभावो को बुला लिया और उनसे कहने लगा—'मैंने इस धूर्त को इतना बडा लड्डू देने का वादा किया था जो दरवाजे के अन्दर से नही जा सके। लड्डू आपके सामने है। मैंने कितनी बार कहा, फिर भी यह दरवाजे के अन्दर से नही जाता। यह लड्डू मैं इसे देने को तैयार हू, पर यह स्वीकार नही करता।' आखिर वह धूर्त अपना-सा मुह लेकर अपने घर चला गया। माली की दुविधा खत्म हो गई।

जैसे को तैसा मिलने से ही समाधान मिलता है। 'शठे शाठ्य समाचरेत्'—शठ के साथ शठता किये बिना कार्य की सिद्धि नही हो सकती, लेकिन धार्मिक पुरुष वह है जो सबके साथ सद्व्यवहार करे।

जैसे को तैसा मिले, बने काम सब मित्र।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा सफल न होता बुद्ध ॥

वाक्-चातुर्य

राजा भोज ने किसी मनुष्य को देखा। सिर पर लकडियों का भार था। नदी को पार करता हुआ उस पार पहुच जाता है। आकृति से ब्राह्मण जानकर राजा ने उससे पूछा—'कियज्मान जल विप्र!' हे विप्र! जल कितना गहरा है? वह बोला—'जानुदघ्न नराधिपा—देव! घुटने डूबने लायक। चकित होकर राजा बोला—'ईदृशी किमवस्था ते'—आपकी ऐसी स्थिति क्यो है? उसने उत्तर देते हुए कहा—'न हि सर्वे भवादृशा'—सब आपके समान नही हो सकते।

राजा ने कुतूहलपूर्वक कहा—'हे पडितजी! तुम कोपाध्यक्ष के पास जाकर मेरा नाम लेकर एक लाख धन-राशि की याचना करो।' राजा के आदेशानुसार लकडियो का गट्ठर जमीन पर रखकर कोपाध्यक्ष के पास आकर वह पडित बोला—'मुझे राजा भोज ने भेजा है। उनकी आज्ञा है कि आप मुझे एक लाख रुपये दें।' कोपाध्यक्ष ने कुछ हसकर कहा—'हे विप्र! आपकी आकृति एक लाख के लायक नहीं है।' तब वह विप्र राजा के पास आकर बोला—'देव! कोपाध्यक्ष तो मुझे देखकर हसने लग गये। रुपये नही देते है।' तब फिर राजा ने आदेश दिया कि तुम जाओ। दो लाख मागो, अवश्य देगा। फिर उसने कोपाध्यक्ष से जाकर कहा—'मुझे दो लाख रुपयो की धन-राशि मिल जानी चाहिए, राजा का ऐसा आदेश है। कृपया दो लाख दीजिये।' कोपाध्यक्ष ने फिर उपहास किया। रुपये नहीं दिये। वह विप्र पुन राजा के पास आकर बोला—'स्वामिन्! वह तो वैसा ही उपहास करता है। रुपये नही मिले।' राजा ने फिर कहा—'भैया! तुझे निराश होने की जरूरत नहीं है। आशा अमरधन है। फिर जाओ। तीन लाख मागो। अवश्य देगा।' वह फिर चला। वहा पहुचा। बोला—'तीन लाख की आज्ञा है। दीजिये।' कोपाध्यक्ष फिर हस दिया। फिर वह क्रोधाकुल होकर राजा के पास आकर बोला—'हे प्रभो! वे नही देते है।'

राजन् कनकधाराभि, त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्र ,सच्छन्ने मयि नायान्ति बिन्दव ॥

—हे राजन्! आपके द्वारा सर्वत्र स्वर्णधारा बरस रही है। किन्तु अभाग्य-रूपी छतरी के आच्छादन मे मेरे ऊपर एक बूद भी नही पडती है।

राजा ने कहा—

शीघ्र मातुस मद्वाक्याद्, गत्वा कोशाधिकारिणम्।
लक्षयत गजेन्द्राश्च, दश ग्राह्या त्वया द्विज॥

—हे विप्र ! रोष मत करो, मेरे वाक्य से पुन कोषाध्यक्ष के पास जाओ। वे लाख और दस गजेन्द्र देगे।' राजा ने कोषाध्यक्ष के पास नौकर भेजकर कहलाया। तब कोषाध्यक्ष ने धर्म-पत्र पर लिखा—

लक्ष लक्ष पुनर्लक्ष मत्ताश्च दश दन्तिन ।
दश भोजेन तुष्टेन, जानुदघ्न प्रभाषणात् ।।

—राजा ने लाख, लाख, पुन लाख रुपये और दस हाथी केवल 'घुटने मात्र' इतना कहने वाले विप्र को दिया।

जिस व्यक्ति मे बोलने की कला होती है, उस व्यक्ति का हर दृष्टि से सम्मान होता है। ससार मे वाक्-चातुर्य का बहुत बडा महत्त्व है।

जग मे वाक्-चातुर्य का, निश्चित अमित महत्त्व।
वचन-निपुणता का सुनो, उदाहरण नवतत्त्व ।।

शरीर में मत उलझो

युवराज भद्रबाहु अपने मित्र सुकेशी के साथ जा रहे थे। देखा, श्मशान मे मुर्दा जल रहा है। भद्रबाहु ने अपने साथी से कहा—'अरे मित्र ! यह आग कहा लग गयी ? क्या बात है ? लोग खडे-खडे देख रहे है, कोई भी बुझा नही रहा है। यह दृश्य तो निराला ही है।' सुकेशी बडे विनम्र शब्दो मे बोला—'मित्र मुर्दे को जलाया जा रहा है।' भद्रबाहु के हृदय मे आश्चर्य का पार नही रहा। नाक को सिकोडते हुए कुमार पुन बोले—'कोई कुरूप होगा, इसलिए लोग इसे जला रहे होगे।' सुकेशी ने मार्मिक शब्दो मे उत्तर दिया—'मित्रवर ! वह तनिक भी कुरूप नही था, हर दृष्टि मे वह बहुत ही सुन्दर था।' भद्रबाहु ने फिर पूछा—'तो फिर इसको क्यो जलाया जा रहा है ?

सुकेशी ने उत्तर दिया—'मित्र ! मरने के बाद जलाना ही होता है, चाहे कोई कामदेव के रूप को भी परास्त करने वाला हो। परन्तु जो मर गया, मरने के बाद उसमे दुर्गन्ध आने लग जाती है। शरीर गल जाता है। उसे जलाने के सिवाय और कोई उपाय नही है।'

मित्र की रहस्यमयी वाणी सुनते ही भद्रबाहु का अहकार चूर-चूर हो गया। उसे अपने सौंदर्य पर बहुत गर्व था। वह अपने आपको कामदेव का अवतार मानता था। दर्पण मे जब स्वय की मजुल आकृति निहारता, अपने मन मे सोचता—अहो ! मेरे-जैसा रूपवान मानव इस धरातल पर कोई नही है। मेरी सुन्दर और सौम्य रूपाकृति के सामने सब विद्रूप-से लगते है। अपने सौन्दर्य के प्रति मन मे बडा अह था। वह एकदम चूर हो गया।

उसने सोचा—क्या इस सुन्दर शरीर को भी जलाना होगा? क्या यह भी एक दिन जल जायेगा?

भद्रबाहु जो सदा प्रसन्न रहता था, जो फूल सदा विकस्वर था, वह मुरझा गया। उसमें सिकुड़न पैदा हो गयी। प्रतिदिन यह मनोदशा सताने लग गयी। मित्र सुकेशी ने सोचा—काम अच्छा नहीं हुआ। महाराज भी चिंतित हो गये कि राजकुमार को क्या हो गया? क्या किया जाय? बहुत समझाया, पर कुछ फल नहीं निकला। आखिर सिद्धाचार्य, सिद्धयोगी, महाचार्य के पास ले गये। उन्होंने सारी स्थिति जानी और कहा—'कुमार! तुम अभी भूल रहे हो। शरीर सुन्दर नहीं होता है, सुन्दर होता है शरीर में होने वाला चैतन्य। शरीर का क्या असुन्दर? थोड़ी गम्भीरता से चिन्तन करो। शरीर में मत उलझो। यह मात्र उपकरण है, साधन है। इसे उतना ही मूल्य दो, जितना इसका मूल्य होता है।'

जो व्यक्ति शरीर में उलझ जाता है, बाह्य सुन्दर आकृति को देखकर जो अकड़ता है, अहंकार के नशे में जो चूर हो जाता है, वह चैतन्य को भूल जाता है और संसार में भटकता रहता है।

उलझो मत इस देह में, इसको देख सुरूप।
'मुनि कन्हैया' एक दिन, बनता रूप कुरूप॥

अनाड़ी वैद्य

राजवैद्य का स्वर्गवास होने से राजा ने राजवैद्य के पुत्र से कहा कि देखो, यदि तुम कुछ पढ़-लिख लो तो हम तुम्हें तुम्हारे पिता के स्थान पर नियुक्त कर दें। वैद्य पुत्र के हृदय में आनन्द की तरंगें उछलने लगीं। अध्ययनार्थ वह परदेश चला गया।

वैद्य-पुत्र ने किसी वैद्य के पास रहकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। एक बार की बात है, एक बकरी के गले में ककड़ी अटक गयी। बकरी का मालिक अपनी बकरी को उस वैद्य के पास ले आया। बोला—'मेरी बकरी को ठीक कर दो।' वैद्यजी ने पूछा—'तुम्हारी बकरी कहां चरती थी?' उसने कहा—'बाड़े में चरती थी, इससे गले में ककड़ी अटक गयी।' वैद्यजी ने बकरी के गले में एक कपड़ा बांधकर उसे खूब जोर से खींचा। ककड़ी टूटकर गले से बाहर आ गयी। वैद्य-पुत्र भी सारा दृश्य देख रहा था। उसने सोचा—यह कोई वैद्यक की विशेष प्रक्रिया होनी चाहिए जो इतनी जल्दी बकरी के गले की ककड़ी टूटकर बाहर आ गयी।

वह वैद्य-पुत्र पढ़-लिखकर होशियार हो गया। आयुर्वेदाचार्य बनकर अपने नगर में आ गया। राजा ने वैद्य-पुत्र को सम्मानित कर राजवैद्य के पद पर नियुक्त कर दिया।

एक दिन रानीजी के गले मे एक फोडा निकल आया। राजवैद्य को बुलाकर कहा गया कि रानीजी की बीमारी को जल्दी से दूर करे। राजवैद्य ने राजकर्मचारियो से पूछा—'बताओ, महारानी कहा चरती थी ?'

कर्मचारियो का दिमाग उलझ गया। वैद्यजी ऐसे कैसे पूछ रहे है, बात कुछ समझ मे नही आ रही है। उत्तर दे, तो क्या दे ? सोच ही रहे थे कि इतने मे वैद्यराजजी ने एक वस्त्र लेकर उसे रानी के गले मे लपेटकर खूब जोर से खीचा कि रानी की सास घूटने लगी और क्षण भर मे वह परलोक सिधार गयी।

बिना विचारे इस प्रकार के व्यक्तियो को जो सम्मान देता है, उसे बार-बार पश्चाताप करना पडता है। सुयोग्य पात्र देखे बिना अगर कोई बढावा दे देता है तो उसके द्वारा बहुत बडा अनर्थ हो जाता है। अत हर काम सोच-समझकर करना चाहिए।

वैद्यराज यमराज से, रहो निरन्तर दूर।
नरपति अपने हृदय मे, करता दुख भरपूर॥

हवाई महल

बादशाह की सभा जुडी हुई थी। सभा का सचालन बीरबल द्वारा हो रहा था। किसी प्रसग पर बादशाह ने कहा—बीरबल ! इस धरा पर तुम-जैसा बुद्धिमान और प्रज्ञाशील व्यक्ति कोई नही है। तुम कभी-कभी असभव कार्य को भी सभव बना देते हो। मेरे मन मे एक स्वप्न है, एक कल्पना है, उसे तुम अपनी विलक्षण मति से साकार करो।' बीरबल ने कहा, 'प्रभो ! फरमाइये। मेरे लायक कार्य होगा तो अवश्य ही क्रियान्वित करने का प्रयास करूगा।' बादशाह बोला, 'मेरी इच्छा है कि तुम 'हवाई महल' बना दो।' बीरबल ने कहा—'जहापनाह ! आपका आशीर्वाद मेरे साथ है। मैं जरूर बना दूगा।'

बीरबल ही ऐसा प्रतिभावान व्यक्ति था कि कोई काम कह दो, अस्वीकार करना जानता ही नही था। बीरबल ने स्वीकार कर लिया। चिन्तन की गहरी सरिता मे डुबकिया लगाते उसे उपाय सूझ गया। उसने चिडीमार बुलाए और उन्हे आदेश की भाषा मे कहा—'सौ-दो सौ तोते पकडकर लाओ।' स्वल्प समय मे ही सैकडो तोते पकडकर बीरबल के चरणो मे वे उपस्थित हुए। बीरबल ने उनको पुरस्कृत किया और तोतो को सुरक्षित रखने के लिए पिंजडे बना दिये।

बीरबल की लडकी भी बडी विदुषी थी। हर क्रिया मे निपुण थी। बीरबल ने अपनी लडकी को बुलाकर कहा, 'बेटी ! इन तोतो को प्रशिक्षित करना है। ये आदमी की भाषा बोलना जानते हैं।' लडकी ने अपने बुद्धि-प्राबल्य मे सब तोतो

को प्रशिक्षित कर दिया।

पूर्व-निर्णयानुसार दो महीने का समय बीता। बीरबल ने बादशाह से कहा, 'प्रभो! हवाई महल का कार्य प्रारम्भ हो गया है। आपकी इच्छा हो तो एक बार चलकर देख लीजिए, कितना काम आगे बढा है।' बादशाह के हृदय में आश्चर्य का पार न रहा। मन-ही-मन सोचने लगा—आकाशी महल कैसे बन सकता है? बात समझ मे नही आ रही है। कैसे बनाया है? प्रकट मे बोला—'चलो, अभी चलो।'

एक विशाल प्रागण मे बादशाह पहुचे। सामन्त भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। बीरबल का आदेश होते ही भृत्यो ने सैकडो पिंजडे लाकर रख दिये और पिंजडो के दरवाजे खुलते ही आकाश मे तोते ही तोते छा गये। सब आपस मे बोलने लगे—'जल्दी ईंटे लाओ! जल्दी पत्थर लाओ, चूना लाओ, हथौडा लाओ, मकान जल्दी बनाओ!' ऐसी ध्वनियो से आकाश और धरती एक होने लगी। बादशाह ने पूछा—'बीरबल! वह हवाई महल कहा है?' बीरबल बोला—'सरकार! ये मजदूर लगे हुए है, सारा काम हो रहा है।' बादशाह ने कहा, 'क्या ये ही हवाई महल बनायेंगे?' बीरबल बोला, 'जहापनाह! ये ही बनायेंगे, क्योकि आकाश मे उडने वाला ही हवाई महल बना सकता है।'

ससार मे बुद्धि-निपुणता का बहुत बडा महत्त्व है। बुद्धिमान व्यक्ति अकल्पित कार्य को भी कल्पित कर देता है। बीरबल जैसा आज्ञाशील मानव का सर्वत्र स्वागत तथा अभिनन्दन होता है।

बुद्धि-प्रबलता से हुए, अमित असभव काम।
'मुनि कन्हैया' विज्ञ का, बढे सुयश हर धाम॥

मूर्ख से शास्त्रार्थ

एक पडित था। संस्कृत भाषा का अध्ययन कर वह किसी गाव मे जा पहुचा। संस्कृत के कुछ श्लोक भी याद कर लिये। ग्रामीण जनता पर अपना रौब जमाने के लिए वह समय-समय पर संस्कृत भाषा का प्रयोग करता था। सारे गाव मे पडितजी की विद्वता की धाक जम गयी। गाव के लोगो ने मिल-जुलकर पडितजी की आजीविका का सुन्दर प्रबंध कर दिया। उनके दिन बडे सुख से बीतने लगे। अपने भाग्य की सराहना करते हुए पडितजी ने कहा—'आहा, मेरे जैसा शास्त्रो का ज्ञाता इस ससार मे विरला ही मिलेगा। मै हर मनीषी मानव के साथ शास्त्रार्थ कर सकता हू।'

एक दिन उस गाव मे पुस्तको से लदे हुए अपने छात्रो को लेकर व्याकरण-

विज्ञाता एक विद्वान् आया। गाववालो ने पूछा—'आप कौन है ?' शिष्यो ने कहा—'ये धुरधर विद्वान् है। सरस्वती कठाभरण है। हर विषय का प्रतिपादन करने मे वडे निपुण है। व्याकरण के अद्वितीय मेधावी है।' गाववालो ने सोचा—'वहुत अच्छा मौका है। हमारे गाव मे एक असाधारण विद्वान् है। क्यो नही आपस मे शास्त्रार्थ हो ?'

शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित हो गयी। निर्णीत स्थल पर दोनो ही पडितो का आगमन हुआ। किसी एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछते हुए कहा—'पडितजी, कृपया वताइये काग को सस्कृत मे क्या कहते है ?' व्याकरणज्ञाता पडितजी ने उत्तर दिया कि काग को सस्कृत मे 'काक' कहते है। गाव के पडितजी जोर से हस पडे और वोले, 'महाशय ! काक तो सभी लोग कहते है। कृपया यह बताइये सस्कृत मे उसे क्या कहते हैं ?'

व्याकरण-विज्ञाता ने वही उत्तर देते हुए कहा—'सस्कृत मे ही तो कहते है 'काक'।'

पडिनजी करतल-ध्वनि के साथ और भी जोर से खिलखिलाकर हस पडे और वोले—'वस, आपका यही पाडित्य है ? आपका सस्कृत का अध्ययन अधूरा है। सस्कृत मे काक को कहते है 'क्रीकाक'।'

यह सुनते ही गाववाले जोर-जोर से पडितजी महाराज की जय-जयकार वोलकर गगन-धरा को एक करने लगे—वास्तव मे हमारे पडितजी ही सस्कृत भापा के सच्चे विज्ञाता है। व्याकरण-अध्येता का सिर लाज-शर्म से झुक गया। वह कछ वोल नही मका और अपना-सा मुह लेकर वहा से रवाना हो गया।

मूर्ख मनुष्य से हरदम दूर रहना चाहिए। जो व्यक्ति विना विचारे, विना चिन्तन किये किसी मूर्ख से शास्त्रार्थ कर लेता है तो वह तिरस्कृत हुए विना नही रहता। उमे लज्जित होना पडता है।

मूर्ख मनुज के साथ मे, जो करता शास्त्रार्थ।
उन मानव को तनिक भी, मिलता नही यथार्थ।।

वचन की प्रामाणिकता

गुजरात-प्रवामी भैंसाशाह एक व्यापारी था। हर दृष्टि मे वह प्रामाणिक था। उमे अनैतिक व्यापार कभी भी पसन्द नही था। वह राजस्थान से चलकर गुजरात मे व्यापारार्थ गया वहा उसे अचानक एक लाख रुपये की आवश्यकता पड गयी। आज के युग मे तो लाख रुपयो का कोई महत्त्व नही, किन्तु पाच-सात सौ वर्षो पहले एक लाख मुद्रा का वडा महत्त्व माना जाता था। भैंसाशाह एक वडे सेठ के पास

जाकर बड़े विनय भाव से बोला—'हे उदार वृत्ति वाले दाता! मुझे व्यापारार्थ एक लाख मुद्रा की बहुत जरूरत है।' उसने पूछा—'आपका नाम क्या है?' 'मेरा नाम भैंसाशाह है।'

'आपका नाम तो सुप्रसिद्ध है, ले लीजिए लाख रुपये। लेकिन फिर भी मैं चाहता हूँ कि कुछ आप अनुबन्ध कर लें तो अच्छा होगा।' उसने कहा—'कोई जरूरत नहीं। अगर आपको विश्वास न हो तो मेरी मूँछ का यह एक बाल रख लें और रुपया दे दें।' सेठ ने तत्काल एक लाख रुपया निकालकर दे दिया।

कुछ ही महीनों के बाद भैंसाशाह सेठजी के पास जाकर बड़े सुकोमल शब्दों में बोला—'सेठजी! मैं आपके उपकार को भूल नहीं सकता, आपकी उदारता को देखकर दानवीर कर्ण की करुण कहानी याद आ जाती है। धन्य है आपके अवतार को। धन्य है आपकी गौरव गरिमा को। ये लीजिए अपना एक लाख रुपया वापस। आपके इस सहयोग की जितनी भी प्रशंसा करूँ, थोड़ी है।'

सेठजी पर भैंसाशाह का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। सोचा—यह कितना नैतिक और प्रामाणिक व्यक्ति है। जैसा कहा, वैसा ही समय पर सब कुछ कर दिया। यह है वचन की प्रामाणिकता का सजीव चित्रण।

जो व्यक्ति अपने वचन की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखता है, वही विश्वास का पात्र बन जाता है। जो बात मुँह से कह दी, वह लोहे की लकीर बन गयी।

जो मानव निज वचन पर, अटल रहे सर्वत्र।
चमकेगा जग में वही, नभ में ज्यों नक्षत्र॥

उपसर्गों में अडिग

हस्तिनापुर नगर में कुलदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसके हृदय में धर्म के प्रति अच्छी श्रद्धा थी। नित्य नियम किए बिना वह पानी भी नहीं पीता था। एक बार वहाँ पर बहुश्रुत आचार्य का आगमन हुआ। सैकड़ों-सैकड़ों श्रद्धालु प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। राजा भी पहुँचा। गुरु-प्रवर ने अपने भाषण में कहा—

चलाऽलक्ष्मी चला प्राणा, चले जीवित मन्दिरे।
चलाचले च संसारे, धर्म-एको हि निश्चल॥

—'लक्ष्मी चंचल है, जीवन चंचल है। इस चलायमान संसार में धर्म ही एक निश्चल तत्त्व है।' आगे उन्होंने संयम की महत्ता पर प्रकाश डाला। गुरुदेव की ओजस्विनी वाणी का कुलदत्त पर गहरा असर पड़ा। संसार का परित्याग कर वह दीक्षित हो गया। गुरुदेव के चरणों में विनयपूर्वक अध्ययन करने लगा। बुद्धि का

प्रावल्य होने से स्वल्प ही समय मे अच्छा ज्ञानार्जन प्राप्त कर लिया। शास्त्रो का सम्यक् अभ्यास होने के पश्चात् कुलदत्त मुनि ने करवद्ध होकर सुकोमल शब्दो मे गुरुदेव के चरणो मे निवेदन करते हुए कहा—'प्रभुवर ! आपकी आज्ञा हो तो मै एकल विहारी बनना चाहता हू।

गुरु ने कहा—'शिष्य ! एकल विहारी अवस्था मे विभिन्न प्रकार के उपसर्ग उत्पन्न होने की आशका रहती है। क्या उन उपसर्गो को सम्यक्तया सहन कर पायेगा ?'

शिष्य ने सम्मानित भाषा मे कहा, 'आचार्य देव ! आपकी कृपा से सब सहन करने की क्षमता रखता हू। आपके आशीर्वाद की परम अपेक्षा है।'

गुरु ने योग्य तथा उचित समझकर आज्ञा प्रदान की। गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त कर कुलदत्त मुनि अकेले ही विहरण करने लगे। एक बार किसी उद्यान मे आकर पाच प्रहर का मौन लेकर पद्मासन मे ध्यान करने लगे। उसी समय कई चोर गायो को चुराकर उसी मार्ग से जा रहे थे, जहा मुनिप्रवर ध्यान कर रहे थे।

गायो की खोज करते-करते गायो के मालिक वहा आये और मुनिराज से पूछने लगे—'महाराज ! मेहरवानी कर वताइये, गौंवो को चोर कौन से मार्ग से ले गये हैं ?' मुनिराज बिलकुल मौन थे।

गौवो के मालिको ने कहा—'ये महाराज उत्तर नही दे रहे है इसलिए इनके सिर पर धधकते हुए अगारे रख दो, अभी उत्तर दे देगे।' ऐसे वचन सुनकर भी मुनिराज अपनी ध्यान-साधना से विचलित नही हुए। मेरु पर्वत की भाति अडिग रहे। उन आचार्यो ने न आव देखा न ताव, मुनिराज के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाधकर प्रज्वलित अगारे रख दिये।

असह्य वेदना होने पर भी मुनिराज अन्यत्व-भावना मे रमण करते हुए चिन्तन करने लगे—यह शरीर मेरा नही है, जड है, पुद्गल है। आग से जड का विनाश हो सकता है परन्तु चेतना का नही। इस पुद्गल के योग से जीव अनन्त काल मे भटक रहा है। वह दिन धन्य होगा जब इस पुद्गल से मुक्ति मिल जायेगी। इस प्रकार आत्म-रमण करते-करते कर्मो को काटकर वह केवलज्ञानी बन गये। सिद्ध हो गये।

जो व्यक्ति कष्टो मे स्थिर रहते है, उपसर्गो मे अडिग रहते है, वे निश्चित ही अपने लक्ष्य की उपलब्धि मे सफल होते है। अत उपसर्ग तथा कष्ट आने पर भी मनुष्य को घबराना नही चाहिए।

उपसर्गो मे जो मनुज, निश्चल है सर्वत्र।
'मुनि वन्देया' एक दिन, वह वनता जग छत्र ॥

सपनों से क्या ?

एक पुजारी था। वह प्रतिदिन मदिर मे भगवान की पूजा करता था। रात्रि मे अर्धनिद्रा मे उसे सपना आया—'आज मेरा मदिर घेवरो से भर गया। अब क्या करू ? इतने घेवर कौन खाएगा ? उसने सोचा—समूचे गाव को भोज दू। छोटा गाव था। सबको खिलाऊ। योजना बना ही रहा था, अचानक नीद टूटी। सपना मिटा। तत्क्षण उठा और सबको निमत्रण दे आया—आज किसी को खाना नही बनाना है सबका भोजन मेरे घर पर है। लोगो ने सोचा कि गरीब आदमी है, क्या खिलाएगा ? किसी ने पूछ भी लिया—'पुजारीजी ! आपका निमत्रण भोजनार्थ मिला। क्या खिलाओगे ? उसने कहा—'तुम इसकी चिन्ता मत करो। ऐसे ही निमत्रण देने थोडे आया हू। कुछ है तभी तो निमत्रण दिया है। तुम चिन्ता क्यो करते हो ?

लोगो ने सोचा—यह पुजारी तो सदा से ही गरीब है। भोजन की इतनी बडी व्यवस्था कैसे कर पायेगा ? बात समझ मे नही आयी। सारे गाव को निमत्रण देना कोई सुगम कार्य नही है। बडी हिम्मत ! बडा साहस ! बडा दिल ! लगता है कही से भेंट-पूजा आ गयी होगी। इसीलिए यह बडा भोज दिया गया है। सारे गाव मे एक ही चर्चा, एक ही बात—चलो भाई पुजारी के घर। उस दिन गाव मे कोई चूल्हा नही जला। पुराने जमाने की बात है, चाय-पानी होता नही था। चूल्हा जलाने की जरूरत नही हुई।

सब लोगो की दृष्टि भोजन पर टिकी हुई थी। न्योता मिला था। पुजारी मदिर मे आया। देखा, तो घेवर एक भी नही है। सोचा—अब क्या करू ? सबको न्योता दे आया और घेवर है ही नही। समस्या खडी हो गयी। लोगो को मुह कैसे दिखाऊगा ? उदास होकर बैठ गया। दस बज गये। ग्यारह बज गये। बारह बजने को आये। सबने सोचा—निमत्रण तो दे दिया, परन्तु अभी तक तो मदिर मे कुछ दिखाई ही नही दे रहा है। क्या बात है ? जाकर देखे तो सही। दो-चार लोग आये। मदिर के दरवाजे को खटखटाया। बोले—भोजन कब कराओगे ? इतनी देर हो गयी।

पुजारी लज्जित होता हुआ बोला—अरे भाई ! क्या करू, भूल हो गयी। जरा सुस्ताए, फिर सपना आये और घेवर बन जाये तो भोजन कराऊगा।

सपनो के सहारे निमत्रण देने वाले मनुष्य की क्या स्थिति बनती है, इस सचाई को कौन नही जानता ? ससार मे महापुरुष वही कहलायेग जो सपनो के सहारे को छोडकर यथार्थ की पावन धरा पर चरण बढाते रहेगे।

ज्ञानी पुरुषो ने कहा, यह जग स्वप्न समान।
सपने टूटते ही उसे, नही मिला सामान॥

अनन्त ज्ञान का धनी

एक बहुत बडा सेठ था। घर मे किसी भी प्रकार की कमी नही थी। हर दृष्टि मे सपन्न था, प्रतिष्ठावान था, मतिमान था, सज्जन था, दूरदर्शी था। अचानक वह काल-कवलित हो गया। पति-विरह मे व्याकुल होकर सेठानी यमराज को प्यारी हो गयी। घर मे अकेला सेठानी का पुत्र रहा। घर की सारी सपत्ति समाप्त हो गयी। घर नही। खाने को रोटी नही। पहनने को कपडे नही। हाय ! कैसे बीतेगी जिन्दगी ?

आखिर वह भिखारी बनकर दर-दर घूमने लगा। एक दिन पुराने मित्र से मार्ग मे भेट हुई। उसने उसे पहचान लिया। भिखारी के वेश मे देखकर आश्चर्य के आकाश मे विहरण करने लगा। उसने बहुत ही सुकोमल शब्दो मे पूछा—'यह क्या ? तुम वैभवशाली सेठ के सुपुत्र ! यह अवस्था कैसे ?' उसने कहा—'मित्र ! पिताजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् सारी सपत्ति नष्ट हो गयी। मेरे पास कुछ भी नही रहा।'

मित्र बोला—'तुम्हारा कथन बिलकुल असत्य है। अब भी तुम्हारे पास बहुत वैभव है। तुम भिखारी नही, धनी हो। तुम्हारे गले मे यह क्या है ?' उसने कहा—'मित्र ! मेरे पिताजी ने मेरे गले मे एक तावीज बाधा था। पर इससे क्या ?' मित्र बोला—'तू अभी तक इस तावीज के महत्त्व को जानता नही है। इसमे बहुत बडा रहस्य है। हथौडा लाओ। इसको तोडो। सही स्थिति का पता लग जायेगा।' तावीज को तोडा गया। पहले पीतल की खोल उतर गयी, फिर चादी की खोल, फिर सोने की खोल दूर होते ही चमकीला अमूल्य हीरा अपनी आभा बिखेरने लगा।

मित्र बोला—'तुम अपने आपको भिखारी कैसे मानते हो ? जिसके पास ऐसा कीमती हीरा हो उसे भिखारी कौन कहेगा ? तुम्हारे पास लाखो की सम्पदा है, गले मे बाधे फिरते हो। कौन कहेगा दरिद्री ! तुम वास्तव मे धनी हो।' वह बोला—'मित्र ! तुम बडे ज्ञानी हो। तुम्हारे प्रताप से ही आवरण दूर हटा। हीरा प्रकटा। कैसे भूल सकता हू तुम्हारे अनुपम उपकार को।'

हर व्यक्ति अनन्त ज्ञान का धनी है, फिर भी वह अपने को अज्ञानी मानता है। खुद के पास सब कुछ होते हुए भी अपने आपको जो दरिद्री समझता है, वह अज्ञानी है। आवरण को दूर करने की अपेक्षा है। आतम-आभा का रूप स्वत प्रकट हो जायेगा।

मानव चेतनवान है, इसमे ज्ञान अनन्त।
'मुनि कन्हैया' आवरण, करना दूर भवन्त ॥

सपनों से क्या ?

एक पुजारी था। वह प्रतिदिन मदिर मे भगवान की पूजा करता था। रात्रि मे अर्धनिद्रा मे उसे सपना आया—'आज मेरा मदिर घेवरो मे भर गया। अब क्या करू ? इतने घेवर कौन खाएगा ? उसने सोचा—समूचे गाव को भोज दू। छोटा गाव था। सबको खिलाऊ। योजना बना ही रहा था, अचानक नीद टूटी। सपना मिटा। तत्क्षण उठा और सबको निमत्रण दे आया—आज किसी को खाना नही बनाना है सबका भोजन मेरे घर पर है। लोगो ने सोचा कि गरीब आदमी है, क्या खिलाएगा ? किसी ने पूछ भी लिया—'पुजारीजी ! आपका निमत्रण भोजनार्थ मिला। क्या खिलाओगे ? उसने कहा—'तुम इसकी चिन्ता मत करो। ऐसे ही निमत्रण देने थोडे आया हू। कुछ है तभी तो निमत्रण दिया है। तुम चिन्ता क्यो करते हो ?'

लोगो ने सोचा—यह पुजारी तो सदा से ही गरीब है। भोजन की इतनी बडी व्यवस्था कैसे कर पायेगा ? वात समझ मे नही आयी। सारे गाव को निमत्रण देना कोई सुगम कार्य नही है। बडी हिम्मत ! बडा साहस ! बडा दिल ! लगता है कही से भेट-पूजा आ गयी होगी। इसीलिए यह बडा भोज दिया गया है। सारे गाव मे एक ही चर्चा, एक ही वात—चलो भाई पुजारी के घर। उस दिन गाव मे कोई चूल्हा नही जला। पुराने जमाने की वात है, चाय-पानी होता नही था। चूल्हा जलाने की जरूरत नही हुई।

सब लोगो की दृष्टि भोजन पर टिकी हुई थी। न्योता मिला था। पुजारी मदिर मे आया। देखा, तो घेवर एक भी नही है। सोचा—अब क्या करू ? सबको न्योता दे आया और घेवर है ही नही। समस्या खडी हो गयी। लोगो को मुह कैसे दिखाऊगा ? उदास होकर बैठ गया। दस बज गये। ग्यारह बज गये। बारह बजने को आये। सबने सोचा—निमत्रण तो दे दिया, परन्तु अभी तक तो मदिर मे कुछ दिखाई ही नही दे रहा है। क्या वात है ? जाकर देखे तो सही। दो-चार लोग आये। मदिर के दरवाजे को खटखटाया। बोले—भोजन कब कराओगे ? इतनी देर हो गयी।

पुजारी लज्जित होता हुआ बोला—अरे भाई ! क्या करू, भूल हो गयी। आप जरा सुस्ताए, फिर सपना आये और घेवर बन जाये तो भोजन कराऊगा।

सपनो के सहारे निमत्रण देने वाले मनुष्य की क्या स्थिति बनती है, इस सचाई को कौन नही जानता ? ससार मे महापुरुष वही कहलायेंगे जो सपनो के सहारे को छोडकर यथार्थ की पावन धरा पर चरण बढाते रहेगे।

ज्ञानी पुरुषो ने कहा, यह जग स्वप्न समान।
आखे खुलते ही उसे, नही मिला सामान॥

अनन्त ज्ञान का धनी

एक बहुत बडा सेठ था। घर मे किसी भी प्रकार की कमी नही थी। हर दृष्टि मे सपन्न था, प्रतिष्ठावान था, मतिमान था, सज्जन था, दूरदर्शी था। अचानक वह काल-कवलित हो गया। पति-विरह मे व्याकुल होकर सेठानी यमराज को प्यारी हो गयी। घर मे अकेला सेठानी का पुत्र रहा। घर की सारी सपत्ति समाप्त हो गयी। घर नही। खाने को रोटी नही। पहनने को कपडे नही। हाय! कैसे बीतेगी जिन्दगी?

आखिर वह भिखारी बनकर दर-दर घूमने लगा। एक दिन पुराने मित्र से मार्ग मे भेट हुई। उसने उसे पहचान लिया। भिखारी के वेश मे देखकर आश्चर्य के आकाश मे विहरण करने लगा। उसने बहुत ही सुकोमल शब्दो मे पूछा—'यह क्या? तुम वैभवशाली सेठ के सुपुत्र! यह अवस्था कैसे?' उसने कहा—'मित्र! पिताजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् सारी सपत्ति नष्ट हो गयी। मेरे पास कुछ भी नही रहा।'

मित्र बोला—'तुम्हारा कथन बिलकुल असत्य है। अब भी तुम्हारे पास बहुत वैभव है। तुम भिखारी नही, धनी हो। तुम्हारे गले मे यह क्या है?' उसने कहा—'मित्र! मेरे पिताजी ने मेरे गले मे एक तावीज बाधा था। पर इससे क्या?' मित्र बोला—'तू अभी तक इस तावीज के महत्त्व को जानता नही है। इसमे बहुत बडा रहस्य है। हथौडा लाओ। इसको तोडो। सही स्थिति का पता लग जायेगा।' तावीज को तोडा गया। पहले पीतल की खोल उतर गयी, फिर चादी की खोल, फिर सोने की खोल दूर होते ही चमकीला अमूल्य हीरा अपनी आभा बिखेरने लगा।

मित्र बोला—'तुम अपने आपको भिखारी कैसे मानते हो? जिसके पास ऐसा कीमती हीरा हो उसे भिखारी कौन कहेगा? तुम्हारे पास लाखो की सम्पदा है, गले मे बाधे फिरते हो। कौन कहेगा दरिद्री! तुम वास्तव मे धनी हो।' वह बोला—'मित्र! तुम बडे ज्ञानी हो। तुम्हारे प्रताप से ही आवरण दूर हटा। हीरा प्रकटा। कैसे भूल सकता हू तुम्हारे अनुपम उपकार को।'

हर व्यक्ति अनन्त ज्ञान का धनी है, फिर भी वह अपने को अज्ञानी मानता है। खुद के पास सब कुछ होते हुए भी अपने आपको जो दरिद्री समझता है, वह अज्ञानी है। आवरण को दूर करने की अपेक्षा है। आत्म-आभा का रूप स्वत प्रकट हो जायेगा।

मानव चेतनवान है, इसमे ज्ञान अनन्त।
'मुनि कन्हैया' आवरण, करना दूर भवन्त॥

विशाल खजाना

एक वैभवशाली व्यक्ति था। करोडो रुपयो की सपत्ति व्यापार मे लगी हुई थी। घर मे किसी भी प्रकार की कमी नही थी। अशुभ कर्मों के उदय से सारा व्यवसाय चौपट हो गया। व्यापार-धन्धा चलता नही था। घर तो बहुत लम्बा-चौडा, किन्तु खाने को कुछ भी नही मिलता। विवशता आ गयी। भीख मागने की इच्छा नही थी, पर करे क्या ? क्षुधा से सपीडित होकर रोटी के लिए भी दूसरो के सामने हाथ पसारना पड रहा था। घर-घर भीख माग रहा था।

मार्ग मे एक ज्योतिषी से भेट हो गयी। ज्योतिषी ने उसकी आकृति, भव्य ललाट तथा चमकीली आखे देखकर सोचा—यह व्यक्ति बडा भाग्यशाली है। किस्मत वाला है। फिर भी भीख माग रहा है। उसने पूछा—भाई ! ऐसा क्यो कर रहे हो ? वह बोला—'मागना तो नही चाहता पर क्या करु, पापी पेट के लिए सब कुछ करना पडता है। बहुत बडे घराने का हू। शर्म भी आती है हाथ पसारने मे। पर और कोई उपाय भी तो नही है।'

ज्योतिषी बोला—'आपकी बात समझ मे नही आ रही है। चलो, तुम्हारा घर कहा पर है ?' वहा पहुचे। ज्योतिषी ने अपनी विद्या-शक्ति से अवलोकन किया। पुराने ज्योतिषियो मे एक विशेषता होती थी वे भूगर्भ के भी विशेषज्ञ होते थे। उसने कहा—भाई ! एक हथौडा लाओ। एक कमरे के भीतर ले गया। खुदाई करवाई। एक शिला निकली। दूसरी-तीसरी-चौथी निकली। खोदते-खोदते एक सीमा आयी कि इतना विशाल रत्नो का भडार पडा है। इतनी सपत्ति, इतना वैभव देखकर वह बोला—'ज्योतिषी जी ! यह सब आपका ही प्रताप है। आप अगर यहा नही पधारते, मुझे नही पूछते, मुझे नही सहयोग करते तो जमीन का धन जमीन मे ही रह जाता। आपने बडी कृपा की। आपके उपकार से मैं कभी भी उपकृत नही हो सकता। आप जैसे उपकारी पुरुष इस धरातल पर नही मिलेंगे। कोटि-कोटि अभिवन्दन।'

इस आत्म-रूपी खजाने मे विभिन्न प्रकार की सपत्ति भरी पडी है। इसे वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो निपुण है, सयमी है। चाबियो के बिना ताला खुल नही सकता। अत चिन्तन करो। तुम्हारे घर मे सब-कुछ भरा पडा है। विशाल खजाना है। फिर भी आदमी भीख माग रहा है। आश्चर्य !

अमित खजाना है भरा, तेरे घर मे मित्र।
फिर भी भिक्षा मागता, है यह बात विचित्र॥

पांच के पांच सौ

रामलाल नाम का एक सेठ था। स्थान-स्थान पर उसका व्यापार चलता था। थोडे ही समय मे वह अच्छा लखपति वन गया। लेकिन वह लालची और कजूस था। एक पैसा भी खर्च करना मौत के वरावर समझता था। न ही स्वय खर्च कर सकता था और न ही दूसरो को खर्च करने देता था। लोग कहते—'सेठ साहव ! धन यही का यही रह जायेगा। साथ मे एक दमडी भी नही जायेगी। इतनी कजूसी करना आपको शोभा नही देता।' किन्तु सेठ कहा मानने वाला था। खान-पान, रहन-सहन आदि प्रवृत्तियो मे भी वडी कजूसी करता था। सेठ ने एक वृक्ष लगाया। वह वृक्ष जव वडा हुआ तो उसका आधा हिस्सा मकान के आगन मे तथा आधा हिस्सा सडक पर आता था।

सेठ ने एक दिन देखा कि एक मजदूर सडक की तरफ पडने वाले वृक्ष के हिस्से की छाया मे विश्राम कर रहा है। सेठ ने सोचा इस वृक्ष को मैंने पानी पिलाया, मेरे पानी से ही यह वृक्ष वडा हुआ है। अव इसकी छाया मे यह मजदूर आराम क्यो कर रहा है? मुफ्त मे ही छाया का उपयोग क्यो कर रहा है? सेठ ने मजदूर को ललकारते हुए कहा—'अरे भैया ! यहा क्या कर रहे हो?' मजदूर वोला—'सेठ साहव ! काम करता-करता थक गया, अत विश्राम कर रहा हू।' सेठ वोला—'मुफ्त मे आराम क्यो कर रहे हो? अपने कुए से इस पेड को पानी मैं पिलाता हू, श्रम के साथ-साथ इसकी सार-सभाल मैं करता हू। इसकी छाया मे आराम तुम करते हो। यहा विश्राम करने की जरूरत नही है। इसकी छाया का मालिक मैं हू। उठो और यहा से चले जाओ।' मजदूर कुछ सस्मित होकर वोला—'सेठ साहव ! आप इस छाया को वेच क्यो नही देते?' 'क्या तू खरीदेगा? ला पाच रुपये।' सेठ वोला। मजदूर यह सुनकर वोला—'पाच रुपये मैं दे दूगा। पर शहर के चार-पाच महानुभावो के सामने ताकि वात पक्की रहे।' आखिर दो-चार महानुभावो के सामने पाच रुपये लेकर सेठ ने छाया मजदूर को वेच दी। अव मजदूर दो-चार साथियो के साथ वहा पर ताश खेलता, गप्पे लडाता और वारह वजे के वाद जव छाया सेठ के अन्दर चली जाती तो वह अन्दर वैठने को जिद्द करता।

प्रतिदिन की किलकिलाहट देखकर सेठ ने न्यायालय मे मुकदमा दायर कर दिया। न्यायाधीश ने मजदूर के हक मे फैसला सुनाते हुए कहा—'लोभ मे फसकर पेट की छाया वेची, अव खरीदने वाले का हक है वह उसमे वैठे।' मजदूर वोला—'सेठ साहव ! फैसला न्यायसगत हुआ है। जव तक आप पाच सौ रुपये नही देंगे, हम रोजाना यहा आकर ताश खेलेंगे और शोर भी मचाएगे।' आखिर पाच के वदले पाच सौ रुपये देकर सेठ ने छुटकारा पाया।

जो व्यक्ति लालची होते है, उनको सदा-सदा के लिए पश्चात्ताप करना पडता है। लालच का परिणाम दु खद होता है। अत हरेक को लालच का परित्याग कर सतोपामृत का पान करना चाहिए।

अति लालच का अन्त मे, निश्चित दुष्परिणाम।
दिये पाच के पाच सौ, प्रत्युत दु ख प्रकाम ॥

परोपकार का महत्त्व

राजा भीमसेन के तीन पुत्र थे। नृप ने सोचा—तीनो मे से कौन-सा लडका राज्यासन के योग्य है, इसकी परीक्षा किये बिना राज्यभार सौप देना उचित नही है। राजा बडा विवेकशील तथा तीक्ष्ण बुद्धि का धनी था। गहराई से सोचा। तीनो मे से एक को ही राज्य सिहासन पर बैठना था, परन्तु अपनी ओर से वह निश्चय नही कर पाता था कि कौन-सा पुत्र राज्य करने योग्य है।

परीक्षा हेतु एक दिन राजा ने तीनो राजकुमारो को खीर की तीन थालिया परोसी और सिह के समान भयानक कुत्तो को उन पर छोड दिया। जोर-जोर से भौकते हुए कुत्ते राजकुमारो के पास आए और क्षुधा-सग्रस्त थालियो मे मुह डालने लगे।

पहला राजकुमार भय से आक्रान्त होकर आर्त स्वर मे चिल्लाने लगा। अपने अगरक्षको को सम्बोधित करते हुए बोला, 'तुम देख क्या रहे हो ? मैं तो भोजन करने बैठा और ये भयानक कुत्ते मुझ पर टूट पडे। तुम लोग खडे-खडे मुह ताक रहे हो। क्या यही तुम्हारा विवेक है ?'

अब दूसरे राजकुमार की थाली पर ज्यो ही वे कुत्ते भोजनार्थ टूट पडे, वह राजकुमार हाथ मे डडा लेकर निर्दयी बनकर जोर-जोर से कुत्तो को मारने लगा। इधर-उधर कुत्तो को खिसकाकर वह स्वय भोजन करने लगा, परन्तु उसने कुत्तो को नही खाने दिया।

तीसरा राजकुमार यह सारा दृश्य देखकर मन ही मन सोचने लगा कि अकेले-अकेले खाना इन्सानियत नही है। स्वय का पेट तो सब ही भरते हैं, किन्तु ससार मे महान वह होता है जो पर के उपकार के लिए खपता है। अपने स्वार्थ का परित्याग करता है। अत उसने अकेले न खाकर कुत्तो को भी खिलाया। राजा तीसरे राजकुमार के व्यवहार से बडा प्रसन्न हुआ। उसने गहराई से चिन्तन किया कि वास्तव मे यह तीसरा पुत्र ही राज्यासन के योग्य है। शुभ वेला देखकर नृप ने उसे राजपद पर अभिषिक्त कर दिया।

जो व्यक्ति परोपकारी होता है, वह हर क्षेत्र मे अपनी उन्नति करता है और

हरेक के लिए स्तवना का पात्र वनता है।

जग मे परोपकार का, निश्चित अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, सवको भाता सत्व॥

पारस में दुर्गन्ध

एक सन्यासी था। वह वडा परोपकारी था। निस्पृही, निष्कचन था। सरल आत्मा होने के साथ-साथ वह सहजानन्द मे रमण करने वाला एक अद्वितीय महा-मानव था। उसकी कीर्ति-गाथा सर्वत्र फैल रही थी। हरेक के प्रति उसका अच्छा व्यवहार था। अपनी कुटिया मे बैठा वह भजन करता रहता था। अचानक एक गरीव व्यक्ति वहा आया और हाथ जोडकर वडे विनम्र भाव से वोला—'वावा! मै गरीव हू। खाने के लिए मेरे पास भरपेट रोटी नही है, पहनने के लिए कपडे नही हैं। कृपया मुझे ऐसा कोई वरदान दीजिए, जिससे मै अपने परिवार का अच्छी तरह से पालन-पोषण कर सकू।'

सन्यासी ने कहा—'भैया! मै तुझे क्या दे सकता हू? मैं स्वय अपरिग्रही हू। निष्कचन हू। मेरे पास कुछ भी नही है।' वह गरीव पुन अपनी भावना प्रस्तुत करता हुआ करुण स्वर मे वोला—'हे दीनवधो! मै तो वहुत वडी आशा लेकर आपकी शरण मे आया था। आप मुझे निराश कर रहे हैं। मुझे यह भरोमा नही था कि खाली हाथ लौटना पडेगा। लेकिन जव तक कुछ न कुछ वरदान नही मिलेगा, तव तक यहा से नही जाऊगा। आपकी सेवा का आनन्द लेता रहूगा। गरीव का उद्धार आपके हाथो मे है।'

वावा ने सोचा—यह तो जाने वाला नही है। चिंतन किया। उल्लसित भाषा मे वह वोला—'तुम जाओ। नदी के किनारे पर पारस का एक टुकडा पडा है, उसे ले जाओ। मैंने उसे फेका है। उसमे वहुत वडी शक्ति है। उस टुकडे से लोहा सोना वन जाता है। तेरा सारा दारिद्रय दूर हो जायेगा। तेरी भावना साकार वन जायेगी। तुझें कुछ चिंता नही करनी पडेगी।'

वह दौडा-दौडा नदी के किनारे गया। पारस का टुकडा उठाकर लाया। वावा को नमस्कार करता हुआ वोला—'प्रभो! आपकी कृपा से यह पारम लेकर जाता हू। अवश्य ही मुझे सुख-शाति मिलेगी।' घर की ओर वह चला। कुछ आगे वढा। मन मे विभिन्न प्रकार के विकल्पो-सकल्पो की तरगें उठने लगी। वापस मुडकर उन्ही पैरो सन्यासी के पास आकर वोला—'वावा! यह लो अपना पारस, मुझे नही चाहिए।'

सन्यासी मुसकराहट की भाषा मे वोला—'भैया! क्या वात हुई? विचारो

मे कैसा परिवर्तन हुआ ? तेरे हृदय मे धन के प्रति कितनी लालसा थी। अव धन के स्रोत को ठुकरा रहा है। क्या हो गया चन्द मिनटो मे ?' उसने कहा—'वावा ! मुझे तो वह चीज चाहिए जिसे पाकर आपने पारस को ठुकराया। मुझे लगता है कि पारस से भी वढकर आपके पास कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु है, कृपया वही दीजिए।'

सन्यासी ने अन्तर्चेतना को विकसित करने का उद्‌वोधन देते हुए सही दिशा मे निर्देशन दिया और कहा—'इस पारस मे मुझें दुर्गन्ध आ रही है।'

जिस व्यक्ति की अन्तर्चेतना जागृत हो जाती है, उसकी समस्त कामनाए तथा लालसाए अपने आप नष्ट हो जाती है। अत हर व्यक्ति को नि स्पृहत्व की साधना करनी चाहिए।

पारस से आती अमित, निस्पृह की दुर्गन्ध।
वावा सहजानद मे, करता रमण अमन्द ॥

बुद्धिमान मानव

एक मुसाफिर अपने गाव की ओर जा रहा था। मार्ग मे अचानक किसी कवि से भेंट हो गई। वार्तालाप चला। मुसाफिर ने कहा—'हे मनीषि ! मैंने कई विद्वानो के समक्ष कुछ प्रश्न रखे थे। समाधान नही मिला। क्या आप मेरे प्रश्नो का उत्तर दे सकते है ?'

मनीषी ने कहा—'पथिकराज ! ससार मे चिन्तनशील मेधावी वहुत है। फिर भी मै अपनी मति के अनुसार अवश्य ही उत्तर देने का प्रयत्न करूगा।'

पथिक ने अपनी स्पष्ट भाषा मे प्रश्नो को रखा। प्रश्न तथा उत्तर सवको एक श्लोक मे अकित करते हुए मेधावी वोल पडा—

विप्रास्मिन् नगरे महान् वसति क ? ताल द्रुमाणा फल।
को दाता ? रजको ददाति वसन प्रातगृहीत्वा निशि ॥
को दक्ष ? परदार-वित्त हरणे सर्वेऽपि पौरा जना।
त्व किं जीवसि भो सखे ! विपक्रमि न्यायेन जीवाम्यहम् ॥

प्रश्न—नगर मे सवसे वडा कौन है ?

उत्तर—मेरी दृष्टि मे सवसे वडा ताड वृक्ष होता है।

प्रश्न—दाता कौन है ?

उत्तर—धोवी दाता है। सुवह वस्त्रो को ले जाता है और साय वस्त्रो को देता है।

प्रश्न—ससार मे दक्ष कौन है ?

उत्तर—पर-दारा और पर-धन को लूटने मे शहरवासी वडे दक्ष होते हैं।

प्रश्न—विप्र, तू इस नगर मे जीवित कैसे है ?

उत्तर—नीम का कीडा नीम मे ही खुश रहता है, इसी न्याय से मैं यहा पर निवास करता हू, जीता हू।

प्रश्नो का उत्तर सुनकर पथिक वहुत ही प्रमुदित हुआ। बुद्धि-विलक्षणता की पशसा करते हुए उसने कविराज को पुरस्कृत किया।

बुद्धिमान मानव हर क्रिया मे सफल होता है, जहा जाता है वहा सत्कार पाता है। सम्मान मिलता है। प्रश्नो का समाधान भी सुचारु रूप से प्राप्त होता है।

बुद्धिमान हर क्षेत्र मे, होता सफल महान।
'मुनि कन्हैया' प्रतिकदम, मिलता है सम्मान॥

प्रज्ञावान की पूजा

वीकानेर के महाराजा सूरतसिहजी वडे यशस्वी नृप हुए थे। वे हर क्षेत्र मे ईमान को महत्त्व दिया करते थे। आध्यात्मिकता उनके जीवन मे टपकती थी। हर सिद्धान्त के अध्येता थे। एक दिन उन्होने राज्यकवि नारायण सिह को आमन्त्रित किया। राज्य सभा मे कविराज उपस्थित हुए, साष्टाग प्रणाम किया, करवद्ध वोले—'राजन् ! आज मुझे किसलिए याद फरमाया ?'

राजा ने कहा—'कविवर ! इन चार प्रश्नो का उत्तर मुझे चाहिए—

पहला प्रश्न—घटती क्या है ?

दूसरा प्रश्न—वढती क्या है ?

तीसरा प्रश्न—वह, जो घटती भी है, वढती भी है ?

चौथा प्रश्न—वह, जो न घटती है, न वढती है ?

सही उत्तर मिलते ही पुरस्कृत करना मेरा कर्तव्य है।'

राज्यकवि ने चिन्तन किया। गहराई से सोचा और वोला—'राजन् ! इन प्रश्नो का उत्तर मैं अपने पद्य मे दे रहा हू, कृपया ध्यान से सुने—

आयु घटै तृष्णा वढे, मन घट-वढन हमेश।
भावी घटै न जीव की, सुन नरपति सुरतेश॥

राजन् ! मेरी वात समझ गये होंगे ? प्रश्नो का उत्तर—

(१) आयु हमेशा घटती ही रहती है।

(२) तृष्णा निरन्तर वढती रहती है।

(३) मन घटता है, वढता भी है।

(४) भवितव्यता न घटती है न वढती है।'

कवि नारायण सिह के उत्तर से राजा वडा खुश हुआ। कविराजजी की प्रशसा करने लगा। विभिन्न प्रकार के पुरस्कारो मे पुरस्कृत किया गया।

ससार मे विद्वानो की सर्वत्र पूजा होती है। विद्वान जहा जाता है वहा प्रतिष्ठा का पात्र वन जाता है ! सत्कार पाता है।

पूजा प्रज्ञावान की, होती है सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' जगत मे चमके ज्यो नक्षत्र॥

आत्मा में अनंत शक्ति

महात्मा कवीर साधनाशील योगी थे। उनके सुमधुर भजन आज भी जन-जन के मानस को आकर्षित कर रहे है। एक वार पहाडी क्षेत्र मे वे परिभ्रमण कर रहे थे। अचानक कुछ महिलाओ पर दृष्टि पडी, सिर पर पानी के घडे थे।

उन्होने महिलाओ से पूछा—'पानी कहा से लाती हो ?'

महिलाओ ने कहा—'योगिराज ! यहा नजदीक पानी नही है, दो-तीन मील से पानी लाना पडता है।'

इस वात पर कवीर जी को काफी दु ख हुआ। इतनी दूरी से पानी लाना, कोई मामूली वात नही है।

कवीरजी कुछ आगे वढे। वहा पर उन्हे पानी का आभास हुआ, गाव वाले लोगो को वुलाकर कहा—'यहा पर नीचे पानी का झरना वह रहा है। पत्थर को हटाओ, पानी की समस्या स्वत ही दूर हो जायेगी।'

पत्थर को हटाने के लिए गाव वाले जुट गये, क्रमश गाव वालो को भी पानी का आभास होने लगा। जव सव पत्थरो को हटाया गया और पानी पर आई हुई काई को दूर कर दिया गया तो सुमधुर शीतल सलिल का स्रोत उमडने लगा। सभी तृषा शान्त करने, पानी पीने लगे। सवके हृदय-पटल मे आनन्द की तरगे तरगित होने लगी, मुक्त कठ से कवीरजी की कीर्ति की प्रशसा होने लगी।

कवीरजी अपनी मुस्कराहट की भाषा मे कहने लगे—'वर्षो से पानी का स्रोत वह रहा था, किन्तु ज्ञानाभाव के कारण उपलब्धि असभव थी।'

आत्मा मे अनन्त शक्ति का झरना निरतर वह रहा है, इसे प्राप्त करने के लिए मोहरूपी पर्दे को दूर करने की महती आवश्यकता है। जव तक यह प्रकट नही होगा, तव तक आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति नही होगी।

आत्म-शक्ति पाने लिए, दूर करो सव मोह।
'मुनि कन्हैया' एक दिन, मिटे सकल विद्रोह॥

सूई में क्या वजन

गुरुनानक सुप्रसिद्ध महात्मा थे। वे एक बहुत बडे वर्चस्वशाली सत थे। एक बार वे तलवडी से कही जा रहे थे। मार्ग मे उन्होने किसी भवन पर सात झडे लगे हुए देखे। जिज्ञासा जागृत हुई। उन्होंने अपने शिष्यो से पूछते हुए कहा—'यह प्रासाद किसका है? इस पर जो ये सात झडे लग रहे हैं, इसका क्या कारण है?'

शिष्यो ने करबद्ध होकर कहा—'गुरुदेव! वैभवशाली सेठ की यह कोठी है। जब इसके पास एक लाख की सम्पत्ति अर्जित हो जाती है, तब यह अपने मकान पर एक झडी लगा देता है। वर्तमान मे इसके भवन पर सात झडिया फहरा रही हैं। प्रतीत होता है कि इसके पास सात लाख रुपयो की सम्पदा है, दिनोदिन यह अह के अश्व पर चढता जा रहा है।'

गुरुनानक उनकी कोठी पर पहुचे। दरवाजे पर खडे है। मालिक को पता लगते ही वह नीचे आया और विनम्र शब्दो मे गुरुनानक से प्रार्थना करता हुआ बोला—'आप यहा पर क्यो खडे है? कृपया ऊपर पधारिये।'

गुरुनानक देव ने कहा—'अभी समय नही है। काफी दूर जाना है। हमारे पास एक सोने की सूई है। रास्ते मे भय है डाकुओ का। अतः इस सूई को आप अपने पास सुरक्षित रख लीजिए। इस सूई को आप हमे वापस अगले जन्म मे देवलोक मे दे देना।'

सेठ के हृदय मे आश्चर्य का पार नही रहा। कोमल भाषा मे हाथ जोडकर बोला—'आप ऐसे कैसे बोल रहे है। परलोक मे तो मैं तनिक भी साथ नहीं ले जा सकता। सब यहा का यही रह जायेगा।'

तब गुरुनानक ने कहा—'जब आप सात लाख की सम्पति को साथ ले जा सकते हैं तो मेरी इस सूई मे क्या वजन है? इसे भी साथ ले जाना।'

यह सुनते ही उसे वास्तविक ज्ञान हुआ। अन्तर की आखे खुली। अह का नाश खत्म हुआ। निवेदन करते हुए कहा—पूज्यवर! आपने मुझे सही रास्ता बताया। मैं नहीं भूल सकता आपके उपकार को।'

जो आता है, वह जाता है, मानव किसी भी पदार्थ को साथ नहीं ले जा सकता। जो खाली हाथ आते है वे खाली हाथ जाते हैं।

गुरुनानक की सीख मे, घट मे हुआ प्रकाश।
अन्तर की आखे खुली, हुआ तिमिर का नाश॥

माया के बाजार में

नगरी का राजा वहुत ही बुद्धिमान था। विवेकशील था। हर कार्य चिन्तनपूर्वक करता था। सतान नही होने से ऐसे-वैसे व्यक्ति को राज्य देना नही चाहता था। वह किसी विवेकशील और प्रज्ञाशील मानव की खोज मे चल पडा। आखिर उसने एक कला सोची, नृप की ओर से राजमहल के सन्निकट भाग मे 'मायावाजार' की व्यवस्था की गई। उस वाजार मे इन्द्रियाकर्पक व मन को सम्मोहित करने वाली चीजे रखवा दी गई। जिससे हर एक मानव विमूढ हुए वगैर न रह सके, नरपति ने सारे शहर मे घोपणा करवा दी कि मायावाजार मे होता हुआ सातवे दिन सवसे पहले जो व्यक्ति मेरे पास आयेगा उसे मैं राज्य का भार सौप दूगा।

मायावाजार की हर वस्तु का उपयोग हर एक व्यक्ति यथेच्छ कर सकता है। किसी भी प्रकार के शुल्क की अपेक्षा नही है। लोग आने लगे, भौतिकता के प्रति सब मे सहज आकर्पण होता ही हे। मायावाजार के मायाजाल मे फसने लगे। लोगो ने सोचा। अभी क्या जल्दी है! सातवे दिन चले जायेंगे, राज्य उपलब्धि हो जाएगी। पहले मायावाजार की वस्तुओ का उपभोग कर लें! मनमोहक पदार्थों मे लुब्ध हो गये। भोगो मे आसक्ति वढी। स्व-कर्तव्य को भी भूल गये। सातवे दिन राजा के पास पहुचना है, किसी को भी याद नही रहा।

उसी नगर मे एक चिन्तनशील व्यक्ति रहता था। उसने सोचा—अगर मैं राज्य का मालिक वन गया तो ये सारी भोग सामग्रिया मुझे सहज ही मे मिल सकती है। चेतना जागृत हुई, इन्द्रियो का चापल्य मिटा। वह व्यक्ति मायावाजार होता हुआ अपने निर्णीत स्थल पर जा पहुचा। राजा ने उसका स्वागत किया। सुकोमल शव्दो मे वह वोला—'तुम्हारे जैसा निर्लिप्त और अनासक्त मानव ही राज्य का अधिकारी वन सकता है। यह लो राज्य का नया उपहार।'

ससार मायावाजार के तुल्य है। राजा के समान आत्मा है। सातवे दिन आत्मा के पास पहुचने के लिए मायावाजार के भौतिक अशाश्वत सुखो मे नही डूवना है। मुग्ध नही होना है। अन्तर्मुखी व्यक्ति ही आत्म-निर्देशन मे सफल हो सकता है।

मायावी वाजार मे, जो रखता आसक्ति।
मिल सकता उसको नही, राज्य भार अभिव्यक्ति॥

पुरुषार्थी

एक व्यक्ति वहुत ही पुरुपार्थी था। उद्यमी था। आलस्य को अपना शत्रु समझता

कार्य था। वह एक गाव मे गया। निरीक्षण किया। सब सुखी है। आनन्दित है। किसी भी प्रकार की वहा कमी नही है। पहाड के पीछे एक दूसरा गाव था, वहा गया। लोगो का जीवन पढा, देखा। सबके चेहरे पर विषाद की रेखा। निराशा की झलक, उसने पूछा— क्या बात है ? इतनी व्यथा क्यो ?'

लोगो ने कहा—'हम सब पानी के अभाव मे पीडित है, व्यथित है। खेती सूख रही है, पशु मर रहे है।'

उस व्यक्ति ने कहा— 'इस पहाडी के पीछे पानी बहुत है। आप सब ऐसा करे कि मै तो मत्र पढूगा, आप सब यत्रो से पहाड को खोदे। अवश्य ही हमे सफलता मिलेगी। वर्षो की दुविधा खत्म हो जाएगी।'

सब काम मे जुट गये। मन मे बडा उत्साह। चेहरे पर आशा की झलक। दृढ सकल्प। मत्रोच्चारण का कार्य चलता ही था। धीरे-धीरे पहाड मे सुरग बन गई और वह पानी के किनारे तक पहुच गई। स्वप्न साकार होने लगा। निर्मल जल का स्रोत बहने लगा। सबकी आकृतियो पर प्रसन्नता की लहर दौडने लग गई। सबको मनचाहा पानी मिला। जीवन मिला। मगलगान की झकार से सारा गाव झकृत हो उठा। सबने उस पुरुषार्थी व्यक्ति का स्वागत किया—'आप नही आते तो हम पानी के बिना तरसते ही रह जाते। अच्छा योग मिला।'

जो व्यक्ति पुरुषार्थी होता है वह प्रत्येक क्षेत्र मे सफल होता है। 'उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथै' उद्यम से ही सिद्धि उपलब्ध होती है। इसलिए हर एक को पुरुषार्थ कभी भी नही छोडना चाहिए।

जीवन मे सुखकर सतत, होता है पुरुषार्थ।
'मुनि कन्हैया' उद्यमी, पाता सिद्धि यथार्थ॥

विनय की अपूर्व शक्ति

एक शालीन परिवार था। सबमे बहुत अच्छी एकता थी। सगठन था। घर मे अनेको सदस्य थे। सारा परिवार विनयशील था। आपस मे कभी भी तनाव वैमनस्य नही होता था। घर का वातावरण बडा शान्त रहता था। सारे नगर मे पारिवारिक सगठन की अनुपम महिमा थी। अच्छी प्रतिष्ठा थी। एक विज्ञ पत्रकार वहा पर आया। दरवाजे मे प्रवेश करते ही एक व्यक्ति से भेट हुई। पत्रकार ने कहा— 'बन्धुवर ! मैं आपके परिवार के विषय मे कुछ जानकारी करने के लिए आया हू कि आपका इतना बडा परिवार एक साथ कैसे रहता है ?'

उसने कहा—'आप अन्दर चले जाइये, मेरे पिताजी वहा है। पूछ लीजिए। समाधान मिल जायेगा।'

पत्रकार अन्दर गया। पिताजी को नमस्कार किया। उमी प्रश्न को प्रस्तुत करते हुए कहा—'कृपया समाधान दीजिए।'

पिताजी ने कहा—'मेरे पिताजी ऊपर है। आप वहा चले जाइए। समाधान अवश्य मिलेगा।' पत्रकार ऊपर पहुचा। उच्च आसन पर सम्स्थित महामानव को निवेदन की भाषा मे उसने कहा—'वावाजी! मेरा छोटा-सा प्रश्न है कि आपका इतना विशाल परिवार सारा एक साथ मे रहता है, वडा प्रेम है। इसका क्या रहस्य है? पत्रकार के नाते मेरी यह छोटी-सी जिज्ञासा है। कृपया शान्त कीजिए।'

वावाजी ने एक पत्र पर सौ वार 'विनय' व 'सहनशीलता' लिखकर दिया।

पत्रकार ने पूछा—'सौ वार आपने क्यो लिखा?'

उस वृद्ध ने कहा—'मेरे परिवार मे सौ सदस्य हैं इसलिए सौ वार लिखता हू। सवमे विनय सहिष्णुता है। दरवाजे पर मेरे पौत्र ने कहा—'पिताजी अन्दर है, समाधान मिल जायेगा। पिता ने भी सीधा आपको मेरे पास पहुचा दिया। आप समझ गये होगे रहस्य को। मेरे परिवार मे वडो के प्रति इतना विनय है कि वे स्वय किसी का उत्तर नही देते। प्रश्नकर्त्ता को वडो के पास भेज देते है। परिवार के सभी सदस्यो मे सहिष्णुता और विनय के भाव वहुत गहरे भरे हुए है। इसका नमूना आपने देख ही लिया। नम्रता और सहिष्णुता के कारण सारे परिवार मे एकता है। सप है। प्रेम है। यही सुख का अनुपम साधन है।'

प्रश्न का समाधान सुनकर पत्रकार वडा खुश हुआ। हाथ जोडकर प्रशसा करते हुए कहा—'हे महामानव! धन्य है आपकी सूक्ष्म बुद्धि को! धन्य है आपके धैर्य को! पुन पुन अभिवदना।'

ससार मे विनय और सहिष्णुता ये दोनो वहुत वडे गुण हैं। इन गुणो से जो व्यक्ति अलकृत होता है, वह हर क्षेत्र मे पूजा और प्रतिष्ठा का पात्र वनता है।

सहनशीलता नम्रता, सद्‌गुण भव्य प्रधान।
'मुनि कन्हैया' ऐक्य का, है यह हेतु महान॥

गुणग्राही

एक वर्चस्वशाली गुरु थे। उनके दो शिष्य थे। दोनो मे परस्पर विवाद खडा हो गया। एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से कहा—'मैंने गुरुजी की सेवा तुमसे ज्यादा की है। इसलिए मैं तुमसे श्रेष्ठ हू। महान हू।' दूसरे शिष्य ने कहा—'तुम जो कह रहे हो, विलकुल असत्य है। मैंने तुमसे अधिक सेवा की है गुरुदेव की। मेरे पर जो कृपा गुरुवर की है, वह तुम पर नही है। इस दृष्टि से मैं सवसे वडा हू। तुम झूठा अह कर रहे हो।'

आपस मे ऐसे वाद-विवाद होने लगा। अपनी-अपनी वात दोनो ने गुरु के समक्ष रखी। गुरु ने सारा वाद-विवाद सुनकर उनसे कहा—'तुम कए दूसरे के गुण लिखकर लाओ।' दोनो अपने-अपने कक्ष मे गये। चिन्तन करने लगे। दोनो ने विस्तार से एक-दूसरे के गुणो को लिखना प्रारम्भ किया। आखिर दोनो गुरुजी के पास पहुचे। गुरु ने पूछा—'क्या लिखकर लाये हो ?' दोनो शिष्यो ने अपना-अपना लिखा हुआ भेट किया। गुरु ने पढा। दोनो मे एक-दूसरे के गुणो का वर्णन था। गुरु का दिल प्रमुदित हुआ। मधुर कोमल शब्दो मे गुरु ने कहा—'अब तुम दोनो ही श्रेष्ठ हो। क्योकि तुम्हारी दृष्टि मे परिवर्तन आ गया।'

हर इसान मे गुण-अवगुण होते हैं। हमारा दृष्टिकोण गुणो की ओर होना चाहिए। गुणग्राही मानव हमेशा गुणो को झाकता है। जहा अच्छाई होती है, वहा उसकी नजर अपने आप चली जाती है।

गुणग्राही नर जगत मे, कहलाता है श्रेष्ठ।
दृष्टि रखो गुण पर सदा, बनना हो यदि ज्येष्ठ॥

भेद-भाव से अवनति

शिष्य और गुरु ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए किसी नगर मे पधार रहे थे। मार्ग मे नृत्य हो रहा था। ताल, वाद्य, मृदग आदि की ध्वनि जन-जन को आकर्षित कर रही थी। शिष्य ने गुरु से प्रश्न करते हुए कहा—'गुरुदेव ! यह मृदग 'धिक्तान् धिक्तान्' क्यो कर रहा है ? इसके पीछे क्या रहस्य है ?'

गुरु ने जिज्ञासा का समाधान देते हुए कहा—'शिष्य ! जो व्यक्ति कुरान और पुरान मे, राम और रहीम मे, वीर और बुद्ध मे भेदभाव रखते हैं, मताग्रह मे कृत्या-कृत्य को जो भूल जाते है, साम्प्रदायिक मोह के कारण जो अन्य सम्प्रदायो को घृणित दृष्टि से निहारते है, एक-दूसरे की निन्दा करते हैं, मन-मुटाव रखते हैं, उन सब महानुभावो को यह मृदग अपनी भाषा मे बडे उच्चस्वर से ललकारता हुआ कह रहा है—

मृदगोऽवदत् धीर गभीर घोषै,
पुराणे कुराने च रामे रहीमे।
यदीयान्तरे वर्त्तते भेदभाव,
धिक्तान् धिक्तान् धिक्तान् धिगेतान्॥

जो मानव भेदभाव रखते हैं उन सबको यह मृदग धिक्कार देता रहता है। वास्तव मे भेद दृष्टि ही समाज को अवनति की ओर ढकेलने वाली होती है। अभेद दृष्टि ही मानव को उन्नति की ओर अग्रसर करने वाली सिद्ध हुई है।

समाधान मिलते ही शिष्य वहुत ही प्रसन्न हुआ और करवद्ध वोला—'गुरुदेव ! धन्य है आपकी बुद्धि को ! धन्य है आपकी पटुता को ! आपकी कल्पना वास्तव मे वहुत ही प्रशसनीय है।'

मृदग की ललकार से हर एक को शिक्षा लेनी चाहिए। सभी सम्प्रदायो के प्रति भेद-दृष्टि न रखकर अभेद दृष्टि रखने मे लाभ है। हित है।

मृदग की उद्घोषणा, सुन करके साकार।
भेदभाव की दृष्टि का, करना है परिहार॥

अनुभव के साथ विद्वता

काशी मे अध्ययन करके पडित ज्वालाप्रसादजी अपने नगर के लिए रवाना हुए। मार्ग मे एक गाव आ गया। वहा पर एक ज्ञानीराम पडित रहता था। उसने पूछा—'आप कहा से आ रहे हैं ?'

ज्वालाप्रसाद बोला—'मै काशी से वारह वर्षों तक अध्ययन करके आया हू।'

वह बोला—'मेरे साथ चर्चा करनी पडेगी, अन्यथा आपको जाने नही दूगा। करिए शास्त्रार्थ।' ज्ञानीराम ने कहा—'तुम्वक-तुम्वक तुम्वा है जी, तुम्वक-तुम्वक तुम्बा है। दीजिए इस प्रश्न का उत्तर।'

पडित ज्वालाप्रसाद घवरा गया। उत्तर नही आने से उसकी हार हो गयी। सारी पुस्तकें छीन ली गयी।

वह व्यथितमना, अपने घर पहुचा। पिताजी को नमस्कार किया। 'पुत्र ! उदासी क्यो ?'

ज्वालाप्रसाद बोला—'पिताजी, शास्त्रार्थ मे पराजित हो गया। पुस्तके भी चली गयी।'

सारी कहानी सुनायी।

पिता वोला—'पुत्र ! ऐसे अनाडी पडित के साथ मैं चर्चा करूगा।'

वह चला उस पडित से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। गाव वाला पडित बोला—'तुम्वक-तुम्वक तुम्वा है जी, तुम्वक-तुम्वक तुम्वा हे।'

गह क्रोधारुण होकर दो चाटे लगाकर वोला—'मूर्ख ! वीच के सारे पाठ खा गया, शास्त्रार्थ करना जनता ही नही है सुन ! मेरी वात, सवसे पहले खेत होता है।

(१) खेतस खेतस खेता है जी, खेतस-खेतस खेता है।
(२) मेहस-मेहस मेहा है जी, मेहस-मेहस मेहा है।
(३) वीजस-वीजस वीजा है जी, वीजस-वीजस वीजा है।
(४) उगस-उगस उगा है जी, उगस-उगस उगा है।

(५) वेलस-वेलस वेला है जी, वेलस-वेलस वेला है।
(६) फूलस-फूलस फूला है जी, फूलस-फूलस फूला है।
(७) अव तुम्वक-तुम्वक तुम्वा है जी, तुम्वक-तुम्वक तुम्वा है।

यह सुनते ही वह आवाक् रह गया, सिर झुक गया और लज्जित होकर वोला—'मेरी हार हो गयी, आज तक मुझे हराने वाला कोई नही आया, धन्य है आपके वुद्धि नैपुण्य को, धन्य है आपके चातुर्य को!'

सारी पुस्तके लेकर वह अपने गाव पहुचा और पुत्र को विजय का कारण वतलाया।

जिस व्यक्ति की वुद्धि अनुपम होती है वह मानव हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त कर सकता है, वुद्धि के साथ-साथ अनुभव भी कामयाव होता है, अनुभव के अभाव मे केवल विद्वता काम नही आती। विद्वता के साथ अनुभव परम आवश्यक है। राजस्थानी कहावत है—'पढ्योडै रे सागै कढ्योडो चाहिजै।'

गहरा अनुभव चाहिए, विद्वता के साथ।
'मुनि कन्हैया' सफलता, मिलती हाथो-हाथ॥

घड़ा कैसे बना ?

घड़े ने कवि से कहा—'मान्यवर! आज आप मेरी गौरव-गाथा गा रहे हैं। दुनिया मुझे सिर पर रखती है। आपको सभवत पता नही है, मुझे किन-किन कष्टो का सामना करना पडा है। सुनिये मेरी कहानी—

सवसे पहले मैंने अपने कुल का परित्याग किया। फिर मुझे गधे पर विठाया। पीट-पीटकर सीधा किया गया। चाक पर चढा। शीष को काटकर धरा पर रखा गया। शीत और धूप को सहना पडा। अवाडे मे रखा गया। फिर मुझे वाहर निकाला गया। मेरे रूप मे परिवर्तन हुआ। आकृति निखरी। मुझे खरीदने के लिए ग्राहक आये। मुझें ठोक-ठोककर वजा-वजाकर परीक्षापूर्वक खरीदा गया।

इतने भयकर-भयकर कष्टो के सामने भी मैंने अपनी सहनशीलता का परित्याग नही किया। सव भूचालो को प्रमुदित मना सहा, कुछ नही कहा किसी को। गम खाई। चुप रहा। तव जाकर जन-जन के मस्तक पर चढा। वैठा। यह है मेरी तपस्या का अनुपम फल।'

कवि ने कविता मे वाधते हुए लिखा है—

पहले तो हम कुल तज्यो, रासभ हुए सवार।
कूट पीट सीधो कियो, दियो चाक पर डार॥
सीस काट भूपे धर्यो, सह्यो सीत अरु धूप।
तोक अवाडे फिर दियो, निकस्यो रूप अनूप॥

धनी ग्राहक दोनो मिले, लीन्हा ठोक वजाय।
इतना सकट मैं सह्या, चढा शीश पर आय ॥

जो व्यक्ति कष्टो को चीरकर आगे वढता है, वही महापुरुष वनता है। पूज्य कहलाता है। सहिष्णुता जीवन की अमूल्य सम्पदा है। निधि है। सहनशीलता रखने वाला मानव कभी भी पराजित नही हो सकता। हर क्षेत्र मे उसकी विजय होती है।

महिष्णुता के योग से, घडा चढा है शीश।
गम खाओ हर समय मे, तजकर दिल की टीस ॥

अवसर की मौन

एक वुढिया थी। घर मे चोर आया। घवराई। अव क्या होगा ? दिल धडकने लगा। श्वास की गति तेज हो गई। वुढिया के पास लाखो रुपयो की सम्पदा थी। शोर सुनकर अडोसी-पडोसी इकट्ठे हो गये। लोगो ने पूछा—'वुढिया ! कौन है ? क्या वात है ?'

वुढिया वोली—'वीरा ! मुझे क्या पता कौन है ? कौन नही। ऊपर का राम जानता है।'

उन चोरो मे से जो राम नाम का चोर था, वह ऊपर छिपा हुआ था। वुढिया की वात सुनकर वह घवराया। उसने मन ही मन सोचा—मेरे नाम का पता वुढिया को लग गया, इसलिए यह जोर से वोल रही है, मैं पकडा जाऊगा। उससे रहा नही गया, जोर से वोल पडा—

'रामे की वलाय जाणै, जाणै चौधरी ओटो।
जिणरै खाधै ऊपर जेवडो ने, माथे ऊपर कोठो' ॥

यह तुक्का सुनते ही चौधरी ओटा उधेड-वुन मे पड गया। अव तो मैं पकडा जाऊगा। उससे भी रहा नही गया। अपनी सुरक्षा हेतु वह भी एक दोहा वोल पटा—

'ओटे री वलाय जाणै, जाणै खाती पाचो।
जिण रै खाधे ऊपर वसोलो नै, माथे ऊपर माचो' ॥

यह सुनते ही सुतार पाचा चमका। उसने सोचा अव तो विना मौत मरना पडेगा। विवेकहीनता की भी सीमा नही रही किन्तु मुझे तो अपना वचाव करना चाहिए। उससे भी रहा नही गया। गीत गाना प्रारम्भ कर दिया—

'पाचे री वलाय जाणै, जाणै वाणियो जीवो।
जिण रै खाख माहि पागडी, माथे ऊपर दीवो ॥'

इन सबकी बाते सुनकर बुढिया ने सोचा यह क्या कुतूहल ! कौन बोल रहे है ? परिवार वालो को जगाया गया। आखिर चारो चोर पकडे गये। हाय ! बोले ही क्यो ? राजा के सामने पेश किये गये। चारो को मत्यु-दण्ड हुआ।

जो व्यक्ति अवसर को देखे बिना बोल पडते है, उनकी जबान का तनिक भी महत्त्व नही है। अन्ततोगत्वा दु ख पाना ही पडता है। समय पर मौन रखने से बहुत बडा लाभ होता है। 'मौन स्वार्थ साधकम्'।

अवसर को देखे बिना, बोल रहा जो व्यक्ति।
'मुनि कन्हैया' अन्ततो, निश्चित दुख अभिव्यक्ति ॥

कुत्ते का झूठा अहं

प्रोफसर साहब कॉलेज जा रहे थे। मार्ग मे एक कुत्ता मिला। वह प्रोफेसर साहब को इगित करता हुआ बोला – 'मैं बडा जबरदस्त हू। शक्तिशाली हू। मेरे जैसा बलिष्ठ प्राणी ससार मे नजर नही आ रहा है।'

प्रोफेसर बोला—'आप किस बात मे जबरदस्त है ?'

कुत्ता बोला—'मै दुनिया को भौंकता हू, लेकिन मुझे कोई नही भौकता है, अत मैं हर दृष्टि से समर्थ हूं।'

प्रोफेसर ने मुस्कराते हुए कहा—'भैया, कुक्करसिह ! दुनिया आप जैसी नही है, इसलिए दुनिया आपको नही भौकती है। आपको वही भौंकेगा जो आपके सदृश होगा। आप अपनी बहादुरी पर, विजय पर भले ही गर्व करें। किन्तु दुनिया आपको जानती है, आपकी क्या वृत्ति है ? आपका क्या स्वभाव है ?' प्रोफेसर साहब का उत्तर सुनते ही वह कुत्ता हताश हो गया। आशा निराशा मे परिणत हो गई। घमण्ड पानी की भाति बह गया।

जो व्यक्ति अपने आपको बडा मानते है, अपनी जबान से अपनी श्लाघा व प्रशसा करते है उनका कही भी सम्मान नही होता है। जो व्यक्ति कुछ नही चाहता है, उसे सब कुछ मिलता है। जिसमे तनिक भी गुण नही होता और अपने आपको महान समझता है, उसका कथन गगनकुसुम की भाति निष्फल होता है।

कुत्ता अपने गर्व पर रहता मद मे मस्त।
सुनकर वार्ता विज्ञ की, पल मे बना निरस्त ॥

शिक्षा के योग्य बनो

एक सन्यासी थे। बहुत ही उच्च कोटि का प्रवचन करते थे। एक बार किसी गृहस्थ के घर भिक्षार्थ गये। बहन ने नमस्कार करते हुए कहा— हे गुरुदेव ! आज आप

मेरे घर पर पधारे है। यह आपकी दया भावना का ही परिणाम है। मैं आपक कृपादृष्टि को भूल नही सकती। आप मुझे उपदेश दे तो भिक्षा दू, अन्यथा असभव है।'

महात्माजी ने वहन की मन स्थिति का अध्ययन किया। यह वहन उपदेश के योग्य नही है। मन मे विकार भरे हुए हैं।

महात्माजी वाहर आये। कमडल को ककर-मिट्टी से भरकर पुन घर मे आये और वोले—'वहन ! पहले तुम भिक्षा दो उसके पश्चात् मैं तुमको शिक्षा देने का प्रयास करूगा।'

वहन ने उस दिन खीर मालपुवा वनाये थे। वहन भिक्षा देने लगी। महात्माजी ने अपना कमडल सामने रखा तो वहन विस्मय मे पड गई। मिट्टी और ककड देखा। हाथ रुक गया। सन्यासी ने कहा—'वहन ! क्या वात है ? दान देते-देते कैसे रुक गई ?'

उसने कहा—'गुरुराज ! आपके कमडल मे तो मिट्टी भरी हुई है। मेरी खाद्य सामग्री उच्च स्तर की है। स्वादिष्ट पकवान है। कैसे डाल सकती हू ?'

महात्माजी ने कहा—'वहन ! मेरी वात समझ मे आ गई ? जरा गहराई से सोचो। कमडल मे मिट्टी-ककड देखकर खीर डालने मे हिचकिचाहट कर रही हो, कुछ चिन्तन करो। तुम्हारा दिमाग अनेको वर्षो से क्रोध, मान, माया लोभ रूपी ककड-मिट्टी से भरा हुआ है। ऐसो को उपदेश देना, शिक्षा देना, राख मे घृत उडेलना हे। इसलिए सबसे पहले मानसिक विकारो को दूर कर पवित्र वनो। तभी तुम शिक्षा के योग्य पात्र वन सकती हो, अन्यथा नही।'

दूर करो मस्तिष्क से, ककड रूप विकार।
वन जाओगे सहज मे, शिक्षा पात्र उदार॥

जैसा संग

एक जगल मे दो तोते रहते थे। दोनो सहोदर थे। दोनो मे अच्छा सौहार्द था। एक साथ दोनो पले-पुषे थे। दोनो का स्वभाव वहुत ही समीचीन व शालीन था। दोनो मुक्त विहरण करते हुए आनन्द के पारावार मे डुवकिया लगा रहे थे। अचानक वहा डाकू आ गये। एक तोते को लेकर वे दौड गये। एक तोते को ऋषि अपने आश्रम मे ले गये। एक तोता तो डाकू की कुसगति से डाकू-सा व्यवहार करने लग गया। कोई भी व्यक्ति उस रास्ते से जाता है, वह तोता वोलता है—'इसे पकडो, लूटो।'

एक दिन उसी मार्ग से नगर सम्राट का आगमन हुआ। वह तोता जोर से

बोल पडा—'चोर जा रहा है, पकडो ! लूटो ! ऐसा अवसर बार-बार नही आयेगा।'

वह दूसरा तोता ऋषियो की देख-रेख मे पल रहा है, बडा हो रहा है। ऋषियो की भाति शालीन एव शिष्ट शब्दो का व्यवहार करता है। कोई भी मुसाफिर तथा मेहमान उस मार्ग से जाता है तो वह समागत व्यक्तियो का सम्मान एव सत्कार करता है। उच्च स्वर मे पुकारता हुआ अपनी मृदु भाषा मे बोलता है—'आओ सा, पधारो सा, भाग्यशाली पुरुषो के घर पर ही मेहमान पधारते है। आइए, विराजिये।'

एक दिन उसी मार्ग से राजाजी का आगमन हो गया। राजा ने तोते की कोमल वाणी सुनकर बहुत ही आश्चर्य प्रकट किया। यह क्या बात ! उस तोते की भाषा मे कर्कशता और इस तोते की भाषा मे इतनी कोमलता। यह अन्तर क्यो पडा ? आखिर राजा ने पूछ ही लिया। तोता अपनी भाषा मे स्पष्ट करता हुआ बोला—

माताप्येको पिताप्येको, मम तस्य च पक्षिण।
अह मुनिभिरानीतो, सोत्रानीतो गवाशनै ॥

—हम दोनो के माता-पिता एक हैं। मुझे मुनिवर ले गये और मेरे उस सहोदर को डाकू ले गए।

गवाशनाना स वच ऋणोति, अह च राजन ! मुनिपुगवाना।
प्रत्यक्षमेतद् भवतापि दृष्टा, ससर्गजा-दोष गुणा भवन्ति ॥

—उसने चोरो के शब्द सुने और मैंने मुनिजनो के। आपने देख ही लिया जिसको जैसा योग मिला, वह वैसा ही बन गया। ससर्ग मे गुण भी दोष हो जाते है।'

हर एक इसान को सगति का ध्यान रखना चाहिए। जिसको जैसा सग मिलता है, वह वैसा ही बन जाता है।

'मुनि कन्हैया' जगत मे, मिलता जैसा सग।
वैसा ही उस मनुज पर, चढ जाता है रग ॥

ज्ञान का महत्त्व

एक करोडपति सेठ था। व्यापार मे नुकसान लगा। रहने के लिए केवल एक मकान बचा। मकान की दूसरी मजिल पर एक वकील परिवार सहित रहता था। वकील की पत्नी के गले मे हार देखकर सेठानी ईर्ष्या करने लगी। सेठजी से निवेदन करती हुई बोली—'मुझे हार मगा दीजिए। जब तक घर मे हार नही आयेगा, तब तक भोजन नही करूगी। आखिर कुए मे गिरकर मर जाऊगी।'

सेठ बडा चतुर था। चिंतन व मनन करके आखिर उसने पीतल पर सोने का झोल चढाकर सेठानी को दे दिया। सेठानी बहुत ही खुश हुई। हार मिल गया पहनने को।

वहा पर एक किरायेदार रहता था। सेठजी उसे निकालना चाहते थे किन्तु वह निकल ही नही रहा था। एक दिन का किस्सा है, किरायेदार की नजर सेठानी के हार पर पडी, उसके विचार मलिन हुए। कभी-न-कभी इस हार को चुराकर यहा से भाग जाना है।

सेठानी स्नान-गृह मे स्नानार्थ गयी। वहा हार भूल गयी। किरायेदार उस हार को लेकर दौड गया। सेठानी ने खोज की परन्तु हार नही मिला। सेठानी उदास हो गयी। सेठ खुश हुआ। अच्छा हुआ, कमरे का पाच रुपया मासिक देने-वाला भाग गया। अब कमरे का पचास रुपया मासिक आयेगा। हार तो केवल तीस ही रुपयो का था, मुझे तो लाभ ही हुआ है। लेकिन सेठानी को इसका ज्ञान नही था। अज्ञानवश वह चिंतामग्न व चिंतातुर हो विषाद करने लगी। सेठजी प्रसन्न मुद्रा मे इसलिए खुश थे कि उनको सबका ज्ञान था।

ज्ञान का महत्त्व सर्वत्र सन्निहित है। ज्ञान बिना अधेरा है। सम्यक् ज्ञान के माध्यम से मानव अपना चतुर्मुखी विकास कर सकता है।

हर ग्रन्थो मे ज्ञान का मिलता अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान बिन, मिले न गहरा तत्त्व॥

जग की विचित्रता

एक ठाकुर था। उसकी धर्मपत्नी का नाम लीलावती था। दोनो मे अच्छा प्रेम था। एक-दूसरे के बिना कोई भी अकेला नही रह सकता था। एक दिन ठाकुर साहब ने कहा—"लीला! मुझे गाव जाना है। तू अच्छी तरह से रहना।'

लीला ने कहा—'पतिदेव! आपके बिना मेरा मन नही लगेगा। नीद भी नही आयेगी। खाना भी स्वादिष्ट नही लगेगा।'

आखिर ज्यो-त्यो समझाकर वह कमरे मे छिप गया और लीला की विचित्र लीला देखने लगा। ठकुरानी ने नौकर से कहा—'ठाकुर गया गाव, मने नही भावै धान' जोर-जोर से ऐसी रट लगाती-लगाती गन्ना चूसने लगी। घी, खिचडी और दाल-बाटी का स्वाद भी लेने लगी। मक्की के फुले भी तैयार किये। अच्छी तरह खा-पीकर डाट लगाकर आगण में बैठी-बैठी फिर जोर से बोली—'ठाकुर गया, गाव, मनें न भावै धान।'

इतने मे ही मौका देखकर ठाकुर अचानक कमरे से बाहर आया और बोला—

'लीला ! तेरा अहो भाग्य है, तेरा सुहाग अमर रहना ही था। आज तो मार्ग मे एक भयकर गन्ने जैसा वडा सर्प खेत मे चल रहा था, मानो खिचडी मे घृत की धारा वह चली हो। उस सर्प का फण वडी-वडी वाटी जैसा प्रतीत हो रहा था। उसके शरीर मे तन-तनाहट मानो मक्की के फूले सिक रहे हो। भगवान की कृपा से मै तो वाल-वाल वच गया, अन्यथा तुझे कोने मे वैठना ही पडता।'

ठकुरानी ठाकुर की वात समझ गयी और पैरो मे गिर पडी, हाथ जोडकर वोली—'मुझसे गलती हो गयी।'

ठाकुर वोला—'देख लिया मैने तेरा दिखावटी पेम। केवल नकली वाते, नकली प्यार। कमरे मे वैठा-वैठा तेरी लीला निहार रहा था।'

ठकुरानी का सिर लज्जा से झुक गया। जवान वद हो गयी।

ससार मे सच्चा प्रेम निभाने वाले विरले ही मिलेगे। सव मतलव के साथी है। ढोग है ज्यादा, और असलियत है कम। इस स्वार्थ भरे जगत की विचित्र लीला देखकर अध्यात्म मे रमण करना ही मानव का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

स्वार्थ भरे ससार की, लीला देख विचित्र।
'मुनि कन्हैया' धर्म मे, करना गमन पवित्र॥

नीति का पक्ष

सेठ सत्यवादी व सज्जन था। उसका पुत्र कुभग से चोर वन गया। चोरी करने के लिए वह शहर मे निरन्तर जाता था। चोर पकडा गया। चालाकी से उसने वचने की कोशिश की। राजा के सामने हाजिर किया गया। राजा ने कहा—'यदि इसके पिताजी साक्षी दे तो मै इसे छोड सकता हू, अन्यता नही।'

पुत्र ने पिताजी को निवेदन की भाषा मे कहा—'पितृवर ! क्या आप मुझे मारोगे ?'

पिताजी ने कहा—'वेटा ! पिता कभी नही चाहता पुत्र-मृत्यु। तुझे मरवाने वाला मै नही हू। तुझे तेरा व्यसन मार रहा है। अत आत्म-निरीक्षण कर। चिन्तन कर।'

पिता के प्रशिक्षण का पुत्र पर वहुत ही असर हुआ। विवेक जागृत हुआ दिल को टटोला। भान हुआ, करवद्ध वोला—'पिताजी ! अव मै भविष्य मे कभी भी चोरी नही करुगा। यमराज के घर से वचाइए। आप मेरे परम उपकारी है।' पिता की साक्षी होते ही पुत्र मरता-मरता वच गया।

राजा ने प्रसन्न मुद्रा मे कहा—'पिता ऐसा नीतिवान होना चाहिए। पुत्र का सुधार और विगाड पिता पर आधारित है।'

पुत्र समग्र व्यसनो से मुक्त हुआ। सत्यवादी वना, सारे शहर मे पिता के साथ-साथ पुत्र की भी वडी प्रशसा होने लगी।

जो व्यक्ति न्याय व नीति का पक्षपाती होता है, उसका हर क्षेत्र मे विश्वास वढता है। जनता उसे उच्च दृष्टि से निहारती है। सफलता उसके पीछे-पीछे दौडती है। अत हर व्यक्ति को न्याय का पक्षपाती रहना चाहिए। सत्य वोलने से जो लाभ होता है, वह किसी से भी छिपा हुआ नही है।

जग मे लेता जो मनुज, न्याय नीति का पक्ष।
उसका गौरव हर समय, वढता है प्रत्यक्ष ॥

सत्य की शक्ति

एक व्यापारी था। वह वहुत ही ईमानदार व सत्यनिष्ठ था। नगर मे उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि नगर मे कोई भी व्यापारी आता है—उसका माल यदि नही विकता है तो मै उसे अवश्य खरीदूगा।

एक दिन एक व्यापारी आया। उसके पास वहुत माल था। विक गया, ओधस्या और सुदशा दो पुतलिया थी। सुदशा तो विल गयी किन्तु ओधस्या को कोई भी खरीदना नही चाहता था।

आखिर वह व्यापारी उस सेठ के पास पहुचा और वोला—'सेठ साहव ! आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है। तो यह मेरी पुतली विक नही रही है। कृपया आप खरीदे।'

वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था। पुतली खरीदी, घर मे उस ओधस्या (फूट) का प्रवेश होते ही लक्ष्मी दौड गयी। सत्य भी जाने के लिए तैयार हो गया। सेठ वोला—'हे सत्य ! मैंने तेरे लिए सवको छोडा, आज तू ही मुझे छोडकर जा रहा है। यह उचित नही है। मुझे भरोसा था कि तू तो मुझे धोखा नही देगा।'

सेठजी के तीर सत्य के हृदय मे चुभ गये। और सत्य वोला—सेठ साहव ! आपकी दृढता और मजवूती देखकर मैं प्रसन्न हू। आपकी आत्मीयता मुझे आर्कापित कर रही है। अव मैं सान्निध्य छोडकर कही भी नही जाऊगा।'

सत्य का चिरवास होते ही लक्ष्मी भी दौडी-दौडी वापस आ गयी। सेठ की अभिलाशा पूर्ण हुई। घर मे आनन्द से रहने लगा।

जो व्यक्ति सत्य को नही छोडता, उसकी विजय सुनिश्चित है। जहा सत्य है, वहा सव कुछ है। सत्य जीवन की निधि है।

हर ग्रन्थो मे सत्य की, महिमा है सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' सत्य से, मिलता सौख्य पवित्र ॥

संकट में सहायक

फ्रास देश के एक स्कूल मे बहुत से विद्यार्थी अध्ययन करते थे। अध्यापक ने एक दिन छात्रो को प्रशिक्षण देते हुए कहा—'छात्रो ! स्कूल मे शान से रहना है। कोई भी यदि बदमाशी करेगा तो सजा दी जायेगी।' फ्रासिस और एलगिन नाम के दो मित्र वहा पर पढते थे। फ्रासिस के हाथ से नक्शा फट गया। मास्टर ने पूछा, कोई नही बोला। आखिर, मास्टर ने कहा—'सबको बीस-बीस बेंत मारो।'

एलगिन ने सोचा, गलती तो है मित्र की और सजा सबको। यह उचित नही, वह जोर से बोला—'मास्टर साहब ! मैं अपराधी हू। केवल मुझे यह सजा दी जाये, औरो को नही।'

जोर-जोर से बेंते पडी, किन्तु आखो मे आसू भी नही आये—मुस्कराता रहा।

छुट्टी हुई, सब छात्र अपेने-अपने घर जाने लगे। एलगिन ने फ्रासिस से कहा—'फिर ऐसा काम कभी मत करना।' उसके आसू आ गये। दोनो की पढाई पूरी हुई। कई वर्षो तक दोनो का मिलन नही हुआ। अब फ्रास मे फ्रासिस सबसे बडा जज बना। बडे उल्लासपूर्ण वातावरण मे वर्षगाठ मनायी गयी। उसने अपने मित्र एलगिन को याद किया। मित्र-मिलन कब होगा ?

एक सिपाही ने कहा—'साहब ! एक डाकू को पकडकर लाया हू। डाकू को देखते ही वह रो पडा। जज साहब ने हथकडिया और बेडिया खुलवायी। उसे अपने पास बैठाया। कोर्ट मे मुकदमा चला। फ्रासिस ने फैसला देते हुए कहा—'अपराधी ने राज्य का भारी अपराध किया अत मौत की सजा दी जाती है, लेकिन सात दिन की मोहलत दी जाती है कि बादशाह से छुटकारे की अपील की जाये।'

फ्रासिस के न्याय पर सब आश्चर्य चकित रह गये। एलगिन भी हस पडा। फ्रासिस ने बादशाह के समक्ष इस्तीफा पेश किया। बादशाह ने पूछा—'क्या कारण ? किसलिए इस्तीफा दे रहे हो ?' उसने सारा हाल सुनाया, बादशाह बडा प्रसन्न हुआ। डाकू की रिहाई का आदेश दे दिया। इधर छह दिन पूर्ण हुए। सातवे दिन डाकू को फासी के तख्ते पर खडा किया गया। बादशाह सहित वह दौडा-दौडा आया और रिहाई का हुक्म दिया। उस डाकू एलगिन को एक प्रान्त का गवर्नर बना दिया। दोनो मित्रो के प्रेम मे और अधिक अभिवृद्धि हुई।

मित्र ऐसा होना चाहिए जो कि सकट मे भी सहायक हो। सुख-सम्पत्ति मे सब साथी होते हैं, किन्तु दुःख-दुविधा मे कोई किसी को पूछने वाला नही है।

सुख मे साथी हैं सभी, नही दुःख मे साथ।
दुःख मे भी जो साथ दे, वही मित्र साक्षात् ॥

समझदार की सजगता

एक गाव मे एक बाबा रहता था। सत्सग करता था। भजन भी सुनाता था। भेट मे कुछ रुपये इकट्ठे हो गए। उसने सोचा—रुपये इधर-उधर हो जायेगे। सुरक्षा की दृष्टि से उसने रुपयो की मोहरे बना ली। पचीस मोहरे हो गयी। वह प्रतिदिन तालाब मे स्नान करने के लिए जाता। साथ-साथ मोहरो को भी पानी मे धोता।

उसी गाव मे एक चौधरी रहता था। उसकी भैंस गुम हो गई। खोज करते-करते वह थक गया, किन्तु भैंस नही मिली। आखिर वह निराश होकर एक दिन तालाब के पास जो वृक्ष था उस पर चढा। चारो तरफ नजर दौडाने लगा मगर भैंस दृष्टिगत नही हुई। इधर बाबा निरतर की भाति तालाब मे स्नान हेतु पहुचा, मोहरो को भी स्नान कराने लगा। चौधरी की दृष्टि मोहरो पर पडी। चौधरी के हृदय मे मोहरो को हडपने की भावना प्रकट हुई। वह पेड से नीचे उतरा। बाबा के पास आया। हाथ जोडकर निवेदन की भाषा मे बोला—'बाबाजी महाराज! आप कल का भोजन मेरे घर पर करने की कृपा करे।' बाबा की स्वीकृति हुई। बाबा भोजनार्थ पहुचा। चौधरी ने हलवा बनाया। बाबा बोला—

'सीरो सतानै सुखदाई, जिणमे दूणी खाड मिलाई।
थोडो और पुरस दे भाई, म्हार दाता री कच्चाई॥'

बाबा को फिर हलवा परोसा गया। इतने मे चौधरी ने जोर से हल्ला किया—'मेरा मोहरो का बटवा कहा गया?' जाटनी को कोसते हुए कहा—'तेरे पीहर वाले मेरा बटवा ले गये।'

क्यो, मेरे पीहर वालो पर झूठा आरोप दे रहे हो। मै आपका तथा बाबा का सभाल लूगी।'

बाबा ने सोचा आज तो इज्जत मिट्टी मे जायेगी। प्रतिष्ठा बचाने के लिए उसने बटवा फेका। चौधरी ने ले लिया। थोडी-बहुत दक्षिणा देकर बाबा को रवाना किया। कुछ ही दिनो पश्चात चौधरी ने बाबाजी से प्रार्थना की—'आप भोजन हेतु मेरे घर पधारें।' बाबा स्मित आनन बोल पडा—'भाई चौधरी! अभी तक साठ मोहरें हुई नही है, उसके बाद देखेंगे। समझदार व्यक्ति की एक बार स्खलना हो सकती है। बार-बार नही। बाबा एक बार चौधरी के चक्कर मे फस गया था, अब नही।

स्खलना हो सकती कदा, समझू की इक बार।
'मुनि कन्हैया' वह कभी, हुवै न बारम्बार॥

चोर को सजा

एक चोर था। लडकियो को चुरा-चुराकर ले जाता और गुफा मे वन्द कर मार देता। शहर मे हाहकार मचा। राजा के पास फरियाद पहुची। नरपति ने घोषणा करते हुए कहा—'इस चोर को जो पकडेगा, उसे एक हजार रुपये पारितोपिक मिलेगा।' कोतवाल ने घोषणा स्वीकार कर ली। चोर को मालूम पडा कि कोतवाल ने मुझे पकडने का निश्चय किया है।

एक दिन का किस्सा है कि उस चोर ने नारी का रूप वनाया। विभिन्न प्रकार के जेवर पहनकर अर्ध निशा मे घूमने लगा। इधर-उधर कोतवाल भी तो घूम रहा था। सयोग वश दोनो का मिलन हुआ। आभूपणो से सुसज्जित नारी के रम्य रूप को देखकर कोतवाल मोहित हो गया। मन विगडा, कामदेव के वाणो से परास्त होकर धीमे स्वर मे वोला—'ठहरो, अभी कहा जा रही हो?' वह धीरे से वोली—'पीहर जा रही हू।' वह कामान्ध वनकर वोला—'अभी घर चलो, सुवह पहुचा दूगा।' कोतवाल उसे घर ले गया। घर मे चोरो को वाधने हेतु खोडा था, उस चोर ने पूछा—'यह क्या है?' कोतवाल ने कहा—'इसमे चोरो के पैर फसाते हैं।'

उसने अपना पैर रखा, वोला—'पैर तो निकलता है।' कोतवाल ने कहा—'कीली लगानी पडती है।' कृपया मुझे वताए, कैसे होता है?' कोतवाल ने वताया तो खुद का पैर खोडे मे फस गया। निकाल नही सका। उस चोर ने कोतवाल का मुह काला करके दाढी-मूछ काटकर दौड गया। सारे शहर मे हवा फैली कि उस चोर ने कोतवाल को ठग लिया और चकमा देकर भाग गया। सभी लोग उस चोर की चतुरता पर वहुत ही आश्चर्य चकित हुए।

राजा ने भिखारी का रूप वनाकर पहरा देना प्रारम्भ कर दिया। आखिर राजा जी के हाथो द्वारा वह चोर पकडा गया। फासी की सजा मिली। मरकर यमराज का अतिथि वना।

जो व्यक्ति पर का वुरा करता है, वह स्वय का वुरा करता है। जो पर को धोखा देता है, वह स्वय धोखा खाता है। इसलिए सवका भला करना सीखो।

चोरी कर्ता मनुज का, पग-पग पर नुकसान।
नरकालय मे पहुचना, पाता दुख महान॥

संत-समागम

राजा का पुत्र लाड मे विगड गया। साथो ही कुव्यसनो ने उसे घेर लिया। गुडागर्दी व वदमाशी करने मे वह हर वक्त उद्यत रहता था। नगर के प्रतिष्ठित सज्जनो ने

राजा के आगे पुकार रखी—'राजकुमार का स्वभाव शालीन नही है। आप इस पर नियन्त्रण रखे, अन्यथा वहुत वडा अहित हो सकता है।' राजा चिंतित हुआ। व्यथा की रेखा से आकृति मे विकृति उत्पन्न हो गई। एक वार वहा मुनि-जनो का समागम हुआ। नरपति सत्सग मे पहुचा और नम्र निवेदन करते हुए कहा—'मुनिवर्य ! आप मेरे लडके का सुधार कर दे तो आपके उपकार को जन्म-जन्म नही भूलूगा।'

दूसरे दिन मित्रो के साथ कुवर मुनि प्रवर के प्रवचन मे पहुचा, भापण वहुत ही रुचिकर लगा। दो-चार दिनो मे उसकी भावना मे परिवर्तन आया। एक दिन मुनिश्री सत्य वोलने से क्या-क्या लाभ है, वतलाया। राजकुमार वहुत ही प्रभावित हुआ। असत्य न वोलने का नियम ले लिया।

साथी आये, वोले—'चलो शराव पिये। खजाने से पैसे लो। राजकुमार वोला—'मैं झूठ नही वोलूगा।' सव मित्र छोडकर चले गये। वास्तव मे सच्चा मित्र वह होता है—

'पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्य निगूहति गुणान् प्रकटी करोति।'
आपद्गत च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिद प्रवदन्ति सन्त।'

—जो पापकारी प्रवृत्ति से वचाता है। हितकारी कार्य मे जोडता है। गुप्त वात को छिपाकर रखता है। गुणो को प्रकट करता है। विपदा मे भी छोडता नही है, सहयोग देता है—सत्पुरुपो ने मित्रो के ये लक्षण वताये हैं।

राजकुमार का सुधार हो गया। सव व्यसनो से मुक्त होकर अध्यात्म मे रमण करने लगा। यह है सत्सग का अगम्य प्रभाव। सत समागम से पापी भी धर्मनिष्ठ वन सकता है।

पापी भी धर्मी वना, पाकर सत सुयोग।
'मुनि कन्हैया' झट मिटे, अन्तर के सव रोग॥

श्री कृष्ण का वाक्-चातुर्य

पुरुपोत्तम श्रीकृष्ण महाराज एक वार नदी के तट पर विहरण कर रहे थे। मधुरी-मधुरी स्वर लहरी मे वशी की मधुर रागिनियो का रसास्वादन करने मे लीन वन रहे थे। अचानक वहा पर आठो गोपियो का आगमन हुआ। वे विनम्रतापूर्वक

हाथ जोडकर पहली ने निवेदन की भाषा मे कहा—'मुझे गोद मे लो।'

बडे कोमल शब्दो मे दूसरी बोली—'हे जीवननाथ! मुझे फूल दो।'

तीसरी—'प्राणेश! मुझे कान मे मोती पहनाओ।'

चौथी—'मुझे पत्तल दो।'

पाचवी—'मुझे अग्नि तपाओ।'

छठी—'मुझे पानी पिलाओ।'

सातवी—'मुझे झरोखे मे बैठा दो।'

आठवी—'आज मेरी शैय्या को पवित्र करो।'

आठो के प्रश्न भिन्न-भिन्न थे। श्रीकृष्ण ने अपने वाक्-चातुर्य से आठो को एक ही शब्द 'वारीना' द्वारा निम्नोक्त उत्तर दिया जो कि सबके समझ मे आ गया।

(१) हे गोपिका, 'वीराना' संस्कृत भाषा के नियमानुसार 'र' को 'ल' भी बोल सकते है। इस दृष्टि से 'वालीना'—तू बालिका तो है नही, गोद मे तुझे कैसे लू?

(२) 'वारीना' अर्थात् 'वाडीना' यहा आसपास कोई वाडी, बगीचा दिखाई नही दे रहा है, फूल कहा से लाऊ?

(३) 'वारीना' 'वालीना' वाली जिसमे मोती डालकर पहना जाता है वह है ही नही, तो मोती किसमे पहनाऊ?

(४) 'वारीना' जो पत्तल बनाती है उस कोम को बारी कहा जाता है। जब बारी है ही नही तो पत्तल कहा से लाऊ?

(५) 'वारीना' अर्थात् 'वालीना' राजस्थानी मे जलाने को बालना कहते हैं। आग जलाई (बाली) ही नही तो तपाऊ कैसे?

(६) 'वारीना' संस्कृत मे 'वारी' को पानी कहते हैं। अभी हमारे पास जल है नही तो पानी कैसे पिलाऊ?

(७) 'वारीना' अर्थात् 'वारी' झरोखा है ही नही तो बिठाऊ कैसे?

(८) 'वारीना' अर्थात् आज तेरी वारी (नम्बर) नही है तो कैसे जाऊ शैय्या पर।

श्रीकृष्ण कन्हैया का यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुनकर आठो ही गोपिकाए बडी खुश हुईं। केवल एक शब्द 'वारीना' से अलग-अलग समाधान पाकर गोपिया अपने-अपने स्थान पर लौट गईं।

चातुर कन्हैयाजू पै बाला जुर आई आठ,
कहो जू कन्हैया आज हमको दिलादे।
गोद' ले हो फूल' दे हो कान' मे पहनाओ मोती,
पातल' की पातरी, हुताश' प्यास' लादे।

ऊचे से झरोखे[७] बीच, मोहन ! बिठाओ मोहि,
रती पति की सूरत से चलो सेज[८] जाइये।
'वारीना' उत्तर एक दयो, भेद मभी ने लह्यो,
ऐसी जगलाल ! तेरी जुगति को सराहिए ।।

उत्तर देने की कला भी एक कला होती है। जिसकी वुद्धि विलक्षण होती है वह अपने वाक्-चातुर्य से थोडे मे वहुत कुछ कह देते है। महामनीषियो की मेधा का सर्वत्र स्वागत होता है।

वुद्धिमान का वुद्धि से, होता है सम्मान।
'मुनि कन्हैया' कृष्ण का, मुना रहा आख्यान ।।

एकता का महत्त्व

एक वैभवशाली महाजन था। उनका परिवार भी विशाल था। सारा परिवार सेठ की आज्ञा मे चलता था। अनुशासन करने की कला भी सेठ मे अनुपम थी, कोई भी काम सेठ की आज्ञा के प्रतिकूल नही होता था। सव मे सौहार्द प्रशसनीय था। नगर मे श्रेष्ठी की अच्छी प्रतिष्ठा थी। मज्जन थे, गभीर थे। ममय ने पलटा खाया। 'सव दिन होत न एक ममान' मव दिन एक समान नही होते है। उतार-चढाव आता रहता है। सेठ को भयकर नुकसान लग जाने से आर्थिक स्थिति डगमगा गई। परिवार का पालन-पोपण भी कठिन हो गया। फिर भी पारस्परिक प्रेम के कारण अनुभव नही हो रहा था। सेठजी सारे परिवार को साथ लेकर परदेश के लिए रवाना हुए। वैल-गाडियो से यात्रा करते हुए मार्ग मे एक विशाल वट-वृक्ष की छाया मे विश्राम लिया। उस जगल मे सरकडे वहुत उगे हुए थे।

सेठ ने अपने परिवार के सभी सदस्यो को आदेश देते हुए कहा—'सरकडो को काटना प्रारम्भ करो।' आज्ञा प्राप्त होते ही सव नि मकोच काम मे जुट गये। सरकडो का ढेर जमा हो गया। फिर उन्हे भिगोया गया, फिर उमे कूटकर तार निकालने लगे। कुछ सदस्य रस्सी वनाने मे जुटे। वृक्ष के तने मे लपेटकर उसमे वट देने लगे। वृक्ष अधिष्ठित यक्ष प्रकट होकर वोला—'आप लोग यह क्या कर रहे है?' सेठ ने वडी चतुरता से कहा—'यक्षराज ! हम सव आपको वाधना चाहते है। धनाभाव के कारण दु खी है। अगर आप वन्धन मे आना नही चाहते है तो हमारा दारिद्रय दूर करें।

उनकी एकता से प्रभावित होकर यक्ष वोला —'यहा से जमीन को दम-वारह हाथ खोदें। धन का भण्डार मिलेगा।' उन्होने वैमा ही किया। करोडो की सम्पदा मिली। अपने नगर मे आये। दुकाने चलने लगी। अद्वितीय सम्पन्नता देखकर मेठ

के मित्र ने सारी बाते पूछी। उस मित्र ने भी अपने परिवार को एकत्रित किया। उसी वट वृक्ष के नीचे पहुचे। उसने पुत्रो को कहा—'सरकडो को काटकर लाओ।' छोटा पुत्र बोला—'मेरे हाथ मे दर्द है। बडे पुत्र से मगाइए।' बडा पुत्र बोला—'मैं नही लाऊगा और किसी से मगाइए।' परस्पर तनाव बढा। आखिर वे सरकडे काटकर लाये। रस्सी गूथने का कार्य पुत्र-वधूओ को सौपा। वे देवरानी-जेठानी आपस मे लडने लगी। एक-दूसरे का मुह ताकने लगी। खीचा-तानी बढी। फिर भी सबको समझाकर ताने मे बाधकर सेठजी रस्सी गूथने लगे। इतने मे यक्ष प्रकट हुआ और बोला—'क्या कर रहे हो ?' सेठ बोला—'धनाभाव मे हम इस रस्सी से तुझे बाधेंगे।'

यक्ष बोला—'मैं निहार रहा था, तुम्हारे परिवार मे एकता नही है। फूट है। चले जाओ यहा से। अन्यथा सबके हाथ इस वृक्ष से चिपक जायेंगे।' वे सब बोले—'हम धन लिये बिना नही जायेंगे।' यक्ष को रस्सी से बाधने लगे। कुपित यक्ष ने सभी के हाथ वही के वही चिपका दिये। आखिर अत्यधिक प्रार्थना पर छुटकारा मिला। खेद-खिन्न होते हुए वे सब अपने नगर मे चले गये।

जहा एकता है, साम्य है, वहा लक्ष्मी प्रवास करती है। सगठन मे जो बल है, वह फूट मे नही है। संगठित व्यक्ति हर जटिल कार्य मे भी सफल होते हैं। सघे शक्ति कलियुगे'।

फूस बुहारी काढ दे, रखकर एको साथ।
'मुनि कन्हैया' फूट मे, बिगडे सगली बात॥

सच्चा साथी : धर्म

बिन्दु और सिन्धु दो मित्र थे। परस्पर अच्छा प्रेम था। हर प्रवृत्ति मे साथ रहते थे। बिन्दु धार्मिक प्रवृत्ति का था। प्रतिदिन नित्य नियम करना, प्रवचन सुनना, उसकी दैनिक चर्या बन गई। एक दिन वह सिन्धु से कहने लगा—'मित्र ! धर्म किया कर ! यही साथ जायेगा और कुछ भी साथ जाने वाला नही है। माता-पिता, भाई-बहन, नारी सब मतलब मे साथ देने वाले हैं। स्वार्थ के अभाव मे कोई किसी को पूछने वाला नही है।'

सिन्धु ने कहा—'मित्र बिन्दु ! ऐसी बात नही है। मेरा सारा परिवार मेरे लिए प्राणो की बलि देने को तैयार है। अभी मुझे धर्मार्थ का समय नही है।'

पारिवारिक परीक्षा हेतु उसने सिन्धु को श्वास चढाने की प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे दिया। एक दिन वह बेहोश होकर सो गया। बडे-बडे वैद्यो को बुलाया गया। डाक्टर भी पहुचे। किसी की भी औषधि काम नही कर रही थी। घर मे हाहाकार

मचा। सव रोने लगे। आखिर मित्र को बुलाया गया। विन्दु आया। मित्र की नाडी को देखकर वह वोला—'आक्रन्दन, करने की जरूरत नही है। मैं ठीक कर दूगा।' मेहदी मगाई। दो सेर दूध औटाकर मगाया। कमरे मे से सवको दूर कर दिया। कमरा वद करके उसने दूध पर मेहदी बुरका दी। कमरा खोला। परिवार वाले आये। विन्दु ने कहा—'मैंने इनका रोग निकालकर प्याले मे भर लिया है। अव पन्द्रह-वीस मिनट मे यह विलकुल स्वस्थ हो जायेगा।' मित्र के पिता की ओर सकेत करते हुए कहा—'यह आपके पुत्र का रोग है, इसे आप पीजिए।' वह वोला—'यह कैसे पिया जाये ?' माता, भगिनी, ज्येष्ठ वधु से भी कहा गया। वे भी इन्कार हो गये। आखिर प्राण प्यारी अर्द्धांङ्गिनी को बुलाकर कहा गया। 'आप अपने पति के रोग को पी लीजिए—स्वस्थ हो जाएगे।' उसने कहा—'मैं नही पी सकती। जिन्होने कर्म वाधे हैं उनको ही भोगने पडते है, मुझे क्या मतलव '।'

वह सबकी वाते सुन ही रहा था। स्वार्थ भरे ससार की विचित्र लीला पर वह कुठित-व्यथित हो रहा था। मित्र का इशारा मिलते ही वह उठा और जोर से वोल पडा—'ससार मे कोई किसी का नही है। सव मतलव के साथी हैं। मित्र विन्दु ! तूने जो कहा, विलकुल सत्य है। अव मैं अपना समय धर्म मे ही व्यतीत करूगा।'

यह है स्वार्थ की कथा। स्वार्थ परायण व दु ख भरे विश्व मे किसी को किसी का सहारा नही है। कोई किसी का साथी नही है। धर्म ही सच्चा साथी है—सुख-दुख हर स्थिति मे सहयोगी है।

स्वार्थ भरे ससार मे, स्वजन नही है त्राण।
'मुनि कन्हैया' धर्म ही, जन-जन का है प्राण ॥

अतर-रोग

एक करोडपति सेठ था। उसकी मा खान-पान मे वडी लोलुप थी। जीभ की चटोरी होने के कारण प्रतिदिन विभिन्न प्रकार का पकवान उडाती थी। एक वार वह रोग ग्रस्त हो गई। वडे-वडे वैद्य आये। उपचार प्रारभ हुआ। एक वैद्य ने कटुक चिरायता वतलाया। अन्य किसी ने मिक्श्चर दिया। दवा कडवी होने के कारण वुढिया सेवन नही करती थी। सैकडो ही वैद्य आये। किसी का भी उपचार कामयाव नही हुआ, क्योकि वह औपधि को इधर-उधर फेक देती थी। एक दिन वुढिया के अनुकूल वैद्य आया। वोला—'माजी ! मैं आपको विलकुल ठीक कर दूगा। पन्द्रह दिन वादाम के हलवे मे मकरध्वज लेना पडेगा। दस वजे गूद के

लड्डू खा लेना।' बुढिया बहुत खुश हुई, मुस्कराती हुई बोली—'आप जैसे बुद्धिशाली वैद्य ही मेरे रोग को शात कर सकते है। धन्य हे आपके चातुर्य को। धन्य है आपके अनुभव को। अब मै अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊगी।'

मन-इच्छित दवा मिलने से बुढिया का चित्त अति प्रसन्नता मे रमण करने लगा। मानसिक अनुकूलता ही प्रसन्नता व स्वस्थता का लक्षण है। मनोनुकूल सामग्री उपलब्ध होने से असाध्य रोगी भी स्वस्थता का अनुभव करने लग जाते है।

मन-इच्छित जब ही मिले, रसयुत खाद्य पदार्थ।
'मुनि कन्हैया,' तब मिटे, अन्तर रोग यथार्थ ॥

गुण-अवगुण

दो दार्शनिक थे। दोनो ने अध्ययन एक ही साथ किया। पारस्परिक अभिन्न मित्रता के कारण वे प्राय प्रतिदिन साथ ही रहते थे। एक-दूसरे की सलाह बिना कोई भी काम नही होता था। हर क्रिया-प्रक्रिया मे चिंतन चलता ही रहता था। एक दिन दोनो किसी नगर की ओर जा रहे थे। मार्ग मे गुलाब का पौधा देखा। एक ने कहा—'पौधे मे फूल कितने सुन्दर है! सौरभ से सारा दिशा मण्डल सुरभित हो रहा है।' उसने गुलाब के पौधे की खूब ही प्रशसा करते हुए गुण गरिमा का वर्णन किया।

दूसरे दार्शनिक ने झुझलाहट की भाषा मे कहा—'मित्रवर! इस छोटे से पौधे मे देखो कितने काटे है? केवल प्रशसा से क्या? काटो की चुभन कितनी कष्टप्रद होती है।'

उसी समय एक कवि के मुख से—

'गुणी गुण वेत्ति न वेत्ति निर्गुण बली बल वेत्ति न वेत्तिनिर्बल।
पिको वसन्तस्य गुण न वायस, करीच सिहस्य बल न मूषक ॥

—गुणवानो की दृष्टि गुणो पर पडती है और अवगुणी की दृष्टि अवगुण पर। गुणी गुण को जानता है निर्गुणी नही। बलवान ही बल को पहचानता है, निर्बल नही। बसत के गुण को कोयल जानती है, कौवा नही। सिंह के बल को हाथी पहचान सकता है मूषक नही। गुणवानो की दृष्टि गुणो पर पडती है अवगुणो पर नही। अवगुणी की दृष्टि अवगुण पर ही जाती है, गुणो पर नही। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

गुणवानो की हर समय गुण पर दृष्टि निक्षेप।
छिद्रान्वेषी देखता, पर के छिद्र हमेश ॥

निस्पृही बनो

एक अद्भुत वावा था। वह वडा निस्पृही था। कुटिया मे अकेला ही रहता था। अर्ध निशा मे ऊपर से आवाज आई।'मै आती हू।' वावा वोला—'तू कौन है ?' वह वोली—'मैं लक्ष्मी हू। आपकी कुटिया मे निवास करना चाहती हू।' वावा वोला—'मुझे जरूरत नही है। मै त्यागी हू। लक्ष्मी का क्या करूगा।' लक्ष्मी वोली—'जो इच्छा करते है उनके पास नही जाती हू। जो मुझे पीठ दिखा देते है वहा अवश्य जाती हू।' वावा वोला—'जैसी आपकी इच्छा।' कुटिया मे चारो तरफ स्वर्ण मुद्रा ही मुद्रा हो गई। कोई भी मागने के लिए आता है, वावा उसे यथेच्छित मोहरे देने लगा। सारे शहर मे वात प्रसारित हो गई कि वावा के चरणो मे तो नव निधि और अष्ट सिद्धि है। अनेको व्यक्तियो का ताता सा जुडा रहता, मुह मागे स्वर्ण मुद्रा मिलने लगी।

वावा ने सोचा—'वडी व्याधि लग गई। जव माला जप करने वैठता हू तो मागने वाले तैयार रहते है। न खाने का समय मिलता है न ही नीद लेने को। कैसे होगा इस लक्ष्मी से छुटकारा।'

गाव के ठाकुर साहव को कुछ धनराशि की आवश्यकता थी। वावा से परिचित एक व्यक्ति ने कहा—'ठाकुर साहव ! गाव के वाहर एक वावा रहता है, उसके पास इतना वैभव है कि कभी खूटता ही नही। मागने वालो को खुले हाथ देता है। ज्यो-ज्यो देता है त्यो-त्यो लक्ष्मी वढती रहती है। आप भी किसी कर्मचारी को भेज दीजिए। यथेच्छित स्वर्ण मुद्राए मिल जायेगी।' ऐसी वाते सुनते ही ठाकुर साहव आश्चर्य के सागर मे डूव गये। उन्होंने विशिष्ट कर्मचारी को प्रेषित करते हुए कहा—'तुम जाओ और वावाजी से यथेच्छित स्वर्ण मुद्राए लेकर आओ।'

कुछ ही समय के पश्चात् एक दिन देव वाणी हुई—'वावा ! अव मैं जा रही हू।' वावा वोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा। जहा जाना चाहती हो वहा जा सकती हो। क्योकि तुम्हारा नाम भी चचला है, एक जगह स्थिर रहने का सवाल ही नही है।' लक्ष्मी चली गई। वावा खुश हुआ। उपाधि मिटी।

सुवह होते ही ठाकुर साहव का कर्मचारी पहुचा, याचना की। 'महात्माजी ! आपके पास सव कुछ है। ठाकुर साहव की अभिलाषा पूर्ण करे।' वावा वोला—'आप देरी से पहुचे। कल आते तो कुछ न कुछ मिल जाता।' आखिर ठाकुर साहव भी वहा आये। वावा ने सारी कहानी सुनाई। ठाकुर साहव ने वावा को पीटना शुरू किया। वावा हसने लगा। ठाकुर साहव ने हसने का कारण पूछा। वावा ने लक्ष्मी की सकल कथा सुनाते हुए कहा—'मुझे हसी इसीलिए आई कि यह लक्ष्मी आती है तव भी उपाधि और जाती है तव भी उपाधि। अत इसका

नाम दौलत है, दो (लातो) पैरो की मार खानी है तो लक्ष्मी (दौलत) से प्यार करो। लक्ष्मी, निस्पृही मानव के पीछे-पीछे दौडती है। जो लक्ष्मी की चाह करता है वहा से वह कोसो दूर चली जाती है अत लक्ष्मी के दास बनने मे लाभ नही है। लक्ष्मी को दासी बनाकर रखने मे लाभ है।'

दौलत से जो दूर है, मानव वही महान्।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसका अति सम्मान ॥

दृष्टि का अन्तर

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनो ही विनीत थे। गुरु और शिष्य मे अच्छा सम्बन्ध था। गुरुदेव ने एक शिष्य से पूछा—'बोलो, जगत कैसा है? तुझे यह जगत कैसा लग रहा है?' शिष्य ने हाथ जोडकर अवनत शिरसा कहा—'गुरुवर! यह जगत बहुत बुरा है। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है। आप देखे, एक दिन होता है और राते दो। दो रातो के बीच एक दिन। पहले रात थी। अधेरा ही अधेरा। फिर दिन आया। उजाला आया। प्रकाश हुआ। फिर रात आयेगी। अधेरा छा जाएगा। एक बार उजाला दो बार अधेरा, अधेरा अधिक प्रकाश कम। इस जगत का यह अनोखा माया जाल।'

गुरुदेव ने दूसरे शिष्य से भी यही प्रश्न पूछा। उस शिष्य ने गहराई से चिन्तन कर कहा—'पूज्यवर! जगत बहुत अच्छा है। प्रकाश ही प्रकाश है। रात बीती, उजाला हुआ। सर्वत्र प्रकाश फैल गया। प्रकाश आते ही अन्धकार का अवसान हो गया। लोगो का यातायात प्रारम्भ हो गया। सबमे स्फूर्ति का अभिसचार हो गया। प्रातकाल का समय सबको बडा सुहावना लगता है। सुबह का शान्त समय मनमोहक होता है। यह जगत् कितना अच्छा है कि इसमे ऐसा प्रकाश है। मैने गहराई से देखा—दिन व्यतीत होते ही रात आयी। रात बीती, दिन आया। इस प्रकार दो दिनो के बीच एक रात। इसका हार्द यह है कि प्रकाश अधिक, अन्धकार कम। दो बार प्रकाश आता है तो एक बार अन्धेरा। इस दृष्टि से मै समझता हू कि यह जगत् बहुत अच्छा है।'

गुरु ने दोनो के उत्तर सुने। सोचा, प्रश्न सदृश था। उत्तर भिन्न-भिन्न। दोनो के सामने दिन और रात सम थी लेकिन दृष्टि का अन्तर होने से एक को प्रकाश अधिक दिखाई दिया दूसरे को अधकार। एक ने प्रकाश को अधिक महत्त्व दिया और दूसरा अधकार के चक्र मे फस गया। यह सब दृष्टिकोण का ही अन्तर है।

जिस व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है वह उसे उसी रूप मे परिलक्षित [illegible]

है। हर एक का चिन्तन सद्-असद् दृष्टि पर आधारित रहता है।

जिसकी जैसी दृष्टि है, उसको वैसा ज्ञान।
दृष्टि-भेद का जगत मे, अन्तर मिले महान्॥

कुटिलता का दुष्परिणाम

कच्छ जैसे देश मे पानी लाने के लिए गधो का उपयोग किया जाता था। अत वहा लडकी को दहेज मे भी गधे देने की परम्परा थी। सेठजी के लडकी का विवाह हुआ। सेठ ने दहेज मे एक गधा भी दिया। लडकी ससुराल गई। नौकर उस गधे पर पानी लाने लगा। वह गधा बडा बदमाश था। कहीं-न-कहीं टक्कर लगाकर घडो को फोड देता था। सेठ ने नौकर से कहा—'यह गधा नालायक है। अत ताबा अथवा पीतल के वर्तन ले जाओ। फूटने का डर नही रहेगा।' नौकर ने वैसा ही किया, लेकिन वह शैतान मार्ग मे लेट जाता। पीतल के वर्तनो का नुकसान हो चाहे न हो लेकिन पानी ढुलककर सारा बह जाता था। नौकर तग आ गया।

आखिर सेठ ने नौकर से कहा—'उस गधे के कान का थोडा-सा भाग काटकर 'वुटकना' बनाकर छोड दो।' नौकर ने वैसा ही किया। अब वह स्वतत्र निरकुश होकर तालाव के आस-पास भ्रमण करता है। खाता-पीता है। मौज उडाता है। चद ही दिनो मे वह मोटा-ताजा बन गया। एक दिन कुछ वोरे बैलगाडी पर व्यापारार्थ कही जा रहे थे। मार्ग मे विश्राम हेतु उसी तालाव पर रुके। बैलो को भी चरने हेतु खुला छोड दिया। दोनो बैल आपस मे मामा-भानजा थे। इतने मे वहा गधा आ गया। उसने दोनो बैलो को अपनी करतूत व कहानी सुनाते हुए कहा—'तुम भी कुटिलता करो। शैतानी करो। आजादी मिल जायेगी। सुखी बन जाओगे। प्रवचना की वाते भानजे बैल को रुचिकर नही लगी। किन्तु मामा बैल ने उसके कथनानुसार गति करना स्वीकार कर लिया। भोजनादि से निवृत्त होकर रवाना हुए। अपनी लीला दिखलाते हुए वह कुटिल बैल पसर गया। मालिक ने सोचा हराम होने (मरने) से पहले इसे हलाल कर दिया जाये तो मास खाने मे काम आ जायेगा। छुरा भोककर उस बैल को मारकर गाडी मे रख दिया। भार अधिक होने से एक बैल से गाडी कैसे चले। उस तदुरुस्त हृष्ट-पुष्ट गधे को पकडकर उन्होने गाडी मे जोत लिया। चलने मे वह आनाकानी करने लगा तो मालिक ने चाबुक मारने शुरू कर दिये। वडी द्रुतगति से दौडने लगा। यह सब देखकर भानजे बैल ने व्यग्य कसते हुए कहा—

'रे व्युत्कर्ण! दुराचारिन् मातुलो घातितस्त्वया।'
चलसि वायु वेगेन कौटिल्य न करोषि किम्॥

—ओ दुराचारी बुटकने ! तूने मेरे मामा को मरवा दिया। अब तू वायु वेग से चल रहा है। अब कुटिलता क्यो नही करता है ! बुटकने ने उत्तर देते हुए कहा—

कौटिल्य तत्र कर्त्तव्य यत्र धर्म प्रवर्तते।
सार्थवाहो महादुष्ट कण्ठच्छेद करोति मे ॥

—कुटिलता वहा करनी चाहिए जहा कुछ धर्म का प्रवर्तन हो। काम बनता हो। यह मालिक इतना दुष्ट है कि यदि कुटिलता करू तो मुझे भी हलाल कर दे।

बुरी सगति का परिणाम कभी भी लाभप्रद नही होता है। बुरा व्यक्ति खुद भी दु ख पाता है और दूसरो को भी पीडित किये बिना नही रहता। अत सज्जन व्यक्ति बुरे आदमी के सग से हरदम दूर ही रहता है।

बुरे व्यक्ति के सग मे, रहो निरन्तर दूर।
'मुनि कन्हैया' फायदा, इसमे है भरपूर ॥

सतो को मत सताओ

कुणाल प्रदेश के भयकर जगल मे दो मुनि तपस्या कर रहे थे। ध्यान और स्वाध्याय मे लीन रहते थे। भीषणतम तप के कारण उन्हे विभिन्न प्रकार की लब्धिया एव सिद्धिया उत्पन्न हो गयी। वर्षा काल आया। सर्वत्र वर्षा हुई। लेकिन उस कुणाल प्रदेश मे वर्षा नही हुई जहा तपस्वी सत तपस्या मे सस्थित थे। गाये चराने वाले ग्वाले बडे चिंतित हो रहे थे। वर्षा के अभाव मे गाये क्या चरेगी ? पालन-पोषण कैसे करेगे। कुछ शरारती ग्वाले तपस्वी सतो के पास जाकर अकबक बोलने लगे कि इन सतो (मोडो) ने वर्षा को बाध रखा है। वे अनभिज्ञ ग्वाले एक दोहा जोर-जोर से बोलने लगे—

आर गाव मे मेह बरसे, कुणाल मे तरसे।
आ सता रा पात्तर फोडे तो, सौ-सौ आगल मेह बरसे ॥

—अन्य प्रदेशो मे अच्छी वर्षा हो रही है—हम कुणालवासी पानी के लिए तरस रहे है। इन सतो के पात्तर फोड दे तो अवश्य ही सौ-सौ अगुल वर्षा हो सकती है। वे सभी गुस्से से लाल होकर सतो पर टूट पडे। मुनियो पर लकडी-पत्थर की ताडन शुरू कर दी। विभिन्न प्रकार के निदनीय कष्ट देने लगे। मारपीट करने से भी वे नही सकुचाये। तपस्वी सतो के शरीर से शोणित की धारा प्रवाहित होने लगी। इतने हृदय-विदारक कष्टो मे भी दोनो ही मुनि क्षमा की सुरसरिता मे झूलते रहे। आखिर ! मुनि छद्मस्थ थे। क्षमा की भी सीमा होती है। वे क्रोध से लाल-पीले हो गये और पहले तपस्वी मुनि ने अपनी तपो-शक्ति दिखाते हुए कहा— वर्षा मेघ ! कुणालायाम्—हे मेघ ! तू कुणाल प्रदेश मे बरस। दूसरे तपस्वी मुनि ने कहा

तपोबल प्रकट करते हुए कहा—'दिनानिपचदश च—पन्द्रह दिनो तक बरसते रहना।' पहले मुनि ने फिर घोषणा करते हुए कहा—'धारा सार प्रणानायाम्—द्रुतगति से मूसलाधार पानी बरसो।' पुन वे मुनि बोल पड़े—'यथा रात्री तथा दिवा—रात और दिन निरालम्ब गति मे बरसते ही रहना।'

संतो की वाणी अकाट्य होती है, चारो तरफ से पानी मूसलाधार बरसने लगा। कुछ ही समय के पश्चात् नदियो मे बाढ आ गयी, तालावो के बाध टूट गये। सर्वत्र पानी-ही-पानी हो गया। सारे प्रदेश मे हा-हाकार मच गया। पन्द्रह दिनो की स्वल्प अवधि मे ही कुणाल प्रदेश पानी मे विलीन हो गया।

जो मानव संतो को सताते है उनका हर दृष्टि से नुकसान ही होता है। एक कवि ने कहा—

संत सताया जात है, नाम ठाम और वश।
पीपा परतख देख ल्यो, यादव कौरव कम॥

—मुनि जनो की जो निंदा करता है। दु ख देता है वह सर्प के मुख मे हाथ डालता है। पर्वत से अपना सिर फोडता है। उसे किसी भी स्थिति मे शाति उपलब्ध नही हो सकती।

मुनि को देता कष्ट जो, मिलता उसको कष्ट।
'मुनि कन्हैया' लोक मे, उक्ति शुभकर स्पष्ट॥

चन्दन और कीचड़

एक दिन चदन और कीचड का मिलन हो गया। दोनो अपनी-अपनी प्रशसा के पुल बाधने लगे। चदन बोला—'भाई कर्दम! मेरी बराबरी तू नही कर सकता। मेरी शीतलता से सारा ससार परिचित है। मेरे मे इतनी बडी शक्ति है कि भयकर दाह ज्वर की पीडा को भी मैं शात कर सकता हू। आग मे झुलसते हुए मानव के लिए मैं त्राण हू। रक्षक हू। मेरे संसेवन से मानव का मानस शीतलता से भर जाता है। मैं बड़ा मूल्यवान् हू। हर एक व्यक्ति मुझे नही खरीद सकता। मेरी सौरभ की महक हर व्यक्ति को आकर्षित करने मे सफल हो रही है।'

कीचड ने रोष भरी भाषा मे कहा—'चदन! तू आत्म-प्रशसा करने मे बडा दक्ष है। केवल अपनी गुण-गाथा गा-गाकर मन-ही-मन फूल रहा है। मेरे मे जो वैशिष्ट्य है वह तेरे मे नही है, मैं सदा मुसकराता रहता हू।' ऐसे आपस मे बात तन गयी। कोई भी झुकने को तैयार नही है। आखिर दोनो ने सोचा—ऐसे परस्पर झगडे मे समाधान नही मिलेगा। किसी निर्णायक के सामने बहस करना उचित रहेगा। वहा अवश्य ही सही समाधान मिलेगा। आखिर दोनो की सलाह से मेढक को ही निर्णायक के रूप मे स्थापित किया गया।

मेढक ने दोनो पक्ष की बाते सुनी। गहराई से सोचकर अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—'चदन ! तुम चाहे कितनी ही आत्म-श्लाघा करो, किंतु कीचड की बराबरी नही कर सकते। ससार मे सबसे शीतल तत्त्व कीचड है।' आखिर मेढक से अन्य निर्णय की आशा भी क्या की जा सकती थी ? रात-दिन कीचड मे ही आनन्द अनुभूति करने वाला मेढक बेचारा चदन के मूल्य का क्या अकन कर सकता है ? कदापि नही।

गोबर का कीडा गोबर मे ही खुश रहता है। जो व्यक्ति जिसके गुणो से अपरिचित होता है वह उसकी प्रशसा कभी भी नही कर सकता। वह उसे घृणा की दृष्टि से निहारता है। अत हर एक के गुणो की जानकारी रखना प्रत्येक का कर्तव्य होता है।

गुणवानो के सुगुण का, जिसे नही है ज्ञान।
'मुनि कन्हैया' वह उसे, देता क्या सम्मान॥

शुक की चतुरता

किसी राजा की रानी पर एक पक्षी ने बीठ कर दी। रानी ने ऊपर झाका तो तोता दिखायी दिया। रानी क्रोधाकुल होकर औंधा मुह करके लेट गयी। राजा आया, पूछा—'क्या हो गया ? ऐसे कैसे सो रही हो ?' रानी बोली—'तोते ने मेरे ऊपर बीठ कर दी। कितना बडा अपमान। मैं सहन नही कर सकती अत देश मे जितने भी तोते है, उन सबको मरवा दीजिए अन्यथा मैं मरूगी।' रानी की बात सुनते ही राजा ने यह आदेश प्रसारित कर दिया कि देश मे जितने भी तोते है, उन सबको यहा एकत्रित किया जाये। राज्य-कर्मचारियो द्वारा सैकडो ही तोतो को राज्यसभा मे हाजिर किया गया। राजा ने पूछा—'क्या तुम्हारे मे कोई राजा तोता है ?' मनुष्यभाषी तोते ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'हा, है। वे एक घटा बाद आयेंगे।'

कुछ ही प्रतीक्षा के पश्चात् शुकराज पहुचे। राजा बोला—'शुकराज ! विलम्ब से क्यो आये ?' शुकराज ने कहा—'कई तोते झगडते हुए और विवाद करते हुए मेरे पास आये और बोले—'दुनिया मे नर अधिक है ? या नारी ? इस प्रश्न के समाधान मे देरी हो गयी। अब हाजिर हू।' नृपति के मन मे जिज्ञासा जागृत हुई—'शुक ! क्या उत्तर दिया ? मुझे भी सुना दो।' शुकराज बोला—'नर कम है, नारिया ज्यादा है।' राजा बोला—'इसका प्रमाण क्या है ?' शुकराज बोला—'वही नर कम, नारिया अधिक और वही नर अधिक और नारिया कम है। किन्तु जो नर होते हुए भी नारियो के कथन पर चलते है, वे वास्तव मे नर होते हुए भी नारियो की कोटि मे आते है अत नर कम और नारिया अधिक।'

व्यग्य भरे उत्तर से राजा का सिर लज्जा मे झुक गया। इसने तो मुझे नारी की सज्ञा मे अवतरित कर दिया, रानी के कथन मे ही तोतो को मरवाने की सोची थी। राजा के पुन आदेश से सब तोतो को जीवन-दान दे दिया गया। यह सब रानी को ज्ञात होते ही रानी ने राजा को बुलाकर कहा—'तोतो को मृत्यु-दण्ड मे मुक्त क्यो कर दिया? यह है आपका दिखावटी प्यार? अन्न और जल लेने का त्याग है।' राजा ने वहुत समझाया, रानी आग्रह पर डटी रही। पहले की भाति तोतो को वापस इकट्ठा किया गया। लकिन शुकराज दो घटे वाद आया। राजा वोला—'विलम्व से क्यो आया?'

शुकराज ने कहा—'मेरे सामने तोतो द्वारा एक जटिल प्रश्न आ गया कि मुखद्वार ज्यादा है या मलद्वार, उसमे उलझ गया। समाधान देने मे काफी समय लगाना पडा।' राजा वोला—'अरे! समाधान कैसे दिया?' शुकराज वोला—'मुखद्वार की अपेक्षा मलद्वार ज्यादा है। क्योकि जो मानव वचन देकर वदल जाता है, उसका मुख, मुखद्वार न रहकर मलद्वार वन जाता है।' व्यग्यपूर्ण उत्तर से राजा लज्जित हो गया। वापस सब तोतो को बन्धन मे मुक्त कर दिया और रानी को भी समझा दिया। जिसकी वुद्धि विलक्षण होती है वह हर कार्य मे सफल होता है। शुकराज की वाक्-चतुरता से समस्त तोते मरते-मरते वच गये।

शुक वोला मुखद्वार से, ज्यादा है मलद्वार।
'मुनि कन्हैया' व्यग्य से, लज्जित हुआ नृपाल॥

क्रोध को मन्द करो

एक तपस्वी मुनि थे। उनको क्रोध वहुत आता था। गुरुजी उनको समय-समय पर शिक्षा फरमाते थे—शिष्य! क्रोध करने से तपस्या एव साधना भस्मसात् हो जाती है। तेरे हित के लिए जव कभी शिक्षा देता हू, तव तू आग की भाति गरम हो जाता है। मुख से अनर्गल वोलता रहता है। यह तेरे लिए शोभास्पद नही है। तू स्वय अन्तर्द्रष्टा वन। क्रोध से कितनी हानि होती है। अत मेरा वार-वार कहना है कि प्रकृति मे परिवर्तन करो।

एक दिन तपस्वी ने गुरुदेव से निवेदन करते हुए कहा—'मुझे आज्ञा दीजिए, मै तपस्या करना चाहता हू।' गुरु ने कहा—'पतलीपाड।' तपस्वी ने सोचा—गुरु की दृष्टि मे मै वहुत ताजा-मोटा हू। अत गुरुदेव फरमाते है कि 'पतलीपाड' अर्थात् शरीर को दुर्वल वनाओ। सात दिन का थोकडा (उपवास) कर लिया। पारणा करने की इच्छा मे वह शिष्य फिर गुरुवर के पास आया और वोला—'पूज्यवर! पारणा करू या तपस्या चालू रखू?' गुरु ने कहा—'पतलीपाड' तपस्वी ने सोचा—गुरु की दृष्टि मे अभी तक मोटा-ताजा की कोटि मे हू। फिर मुनि ने

चौदह दिन के उपवास किये। दो-तीन बार पूछने पर गुरुजी ने वही उत्तर दिया। 'पतलीपाड' मास खमण (तीन दिन के उपवास) पूर्ण हुआ। पारणा के लिए आज्ञा दीजिए। गुरुजी का वही कथन। 'पतलीपाड' 'पतलीपाड' यह सुनते ही मुनि की आखे तन गई। क्रोधाकुल होकर बोला—'क्या आप मुझे मारना चाहते है? इतना दुबला-पतला हो गया फिर भी आप कह रहे है पतलीपाड, पतलीपाड। क्या पतली पाडू?' अगुली को तोडकर गुरु के चरणो मे रख दी। फरमाइये और क्या पतली पाडू?

शान्त स्वभावी गुरु ने कहा—'इसीलिए तो कह रहा हू, पतलीपाड। मेरे कहने का उद्देश्य शरीर को दुर्बल करने से नही है। क्रोध को पतला (मन्द) करो। क्षमाशील बनो। क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची तपस्या है।' शिष्य को सही ज्ञान हुआ।

काषाय, विषय और आहार का त्याग करने से ही सच्चा उपवास होता है। अन्यथा केवल लघन मात्र है। अत तप के साथ-साथ क्षमावान बन जाने से स्वर्ण मे सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

क्षमा बिना ससार मे, तप-जप सब बेकार।
'मुनि कन्हैया' शान्त नर, वसुधा का शृगार॥

बद-नीति और शुद्ध-नीति

सुरेन्द्र और नरेन्द्र मे अच्छी दोस्ती थी। सुरेन्द्र सम्पत्तिशाली सेठ था। नरेन्द्र की स्थिति कमजोर थी। एक दिन की बात है—नरेन्द्र सुरेन्द्र के घर मिलने के लिए आया, कुछ समय ठहरकर वापस चला गया। गेडिया भूल गया। सुरेन्द्र की नीति मे विकृति उत्पन्न हो गई। सोचा, नवगाठ का गेडिया कहा मिलता? छिपा लिया। कुछ ही समय बाद नरेन्द्र आया, बोला—'मेरा गेडिया कहा है?' सुरेन्द्र ने कहा—'मित्र! मुझे क्या पता? मैंने तो हाथ नही लगाया।' नरेन्द्र बेचारा इधर-उधर देखकर खाली हाथो लौट गया।

बदनीति से सुरेन्द्र का धन धीरे-धीरे जाने लगा। पुत्रवधू बडी समझदार चतुर थी। उसने अपने जेवर डब्बे मे डालकर पीहर रख दिया। जिन सुरेन्द्र के सामने दस-बीस नौकर खडे रहते थे, उनकी हालत एकदम बिगड गई। रोटी की एक समस्या बन गई। बडी मुश्किल से परिवार का गुजारा चलने लगा। चिन्ता से शरीर का सौन्दर्य खत्म हो गया। एक दिन [illegible] घर [illegible]। [illegible] कर चला गया। पीछे हार भूल गया। सुरेन्द्र का दिल साफ हुआ। नीति मे परिवर्तन हुआ। हार वापस लौटा दिया। फिर धन की [illegible] लगा। [illegible]

पलटा खाया। पुत्रवधू ने आभूषण लाकर दे दिया। उनमे पालन-पोषण चलने लगा। छोटी-सी दुकान खोली। विश्वास जमने लगा। धीरे-धीरे मपत्ति वापम आने लगी। उस गेडिये पर सोने का पात चढाकर नरेन्द्र मित्र को दे दिया और उससे अपनी जीवन-लीला सुनाते हुए कहा—मित्र! शुद्धनीति ही मानव की उन्नति मे सहायक सिद्ध होती है।'

वदनीति वाले मनुष्यो का कभी भी भला नही हो मकता। कदम-कदम पर उनकी हार होती है। नीति मे विशुद्धि का सचार होते ही विजय दौड-दौडकर आती है। हर क्षेत्र मे विकाम होता है।

शुद्ध नीति से मनुज का, होता है उत्थान।
'मुनि कन्हैया' नीति विन, सवका है अवमान॥

सम्यग्-ज्ञान

एक व्यापारी ने व्यापार हेतु किसी द्वीप पर पानी की जहाज द्वारा जाने की तैयारी की। वहा पर गौ की नस्ल नही होने के कारण व्यापारी ने गौ साथ ली। नगर मे पहुचा। भेटणा लेकर राजा के पास गया। साथ चादी का कटोरा भरकर मिसरी से सपूरित दूध भी ले गया। राजा ने पूछा—'यह क्या है धोला-धोला?' वह वोला—'राजन्! मैं अपने साथ एक वृक्ष लाया हू, उसी का यह फल है। इसे आप पी लीजिए। शरीर हृष्ट-पुष्ट वन जायेगा।' राजा ने उस फल का रसास्वादन करते हुए कहा—'आज तक मैंने अपनी जिन्दगी मे ऐसा मधुर फल कभी नही खाया।' राजा ने खुश होकर समूचे माल की कर (ड्यूटी) माफ कर दी।'

दूसरे दिन खीर वनाकर लाया। उसमे केसर, इलाइची, पिश्ता आदि डाले हुए थे। राजा के पास पहुचा।

राजा—'यह क्या है?'

व्यापारी—'राजन्! उसी वृक्ष का दूसरा फल है। इसके विभिन्न प्रकार के फल लगते है, समय-समय पर भेट करता रहूगा। राजा ने आस्वाद लिया, मन की कलिया खिलने लगी। थोडा-सा फल महारानी को भी दिया। वह भी वहुत प्रसन्न हुई। अव वह प्रतिदिन कभी कलाकन्द, कभी रसगुल्ले, छन्ना आदि भेट करता गया।

एक वर्ष वहा पर रहा। कमाई अच्छी हुई। वापस अपने देश जाने लगा, तो राजा ने कहा—'उस वृक्ष को तो मैं रखूगा, वडे स्वादिष्ट फल देने वाला है। कीमत चाहे जितनी ले सकते हो।'

व्यापारी—'मैं आप से क्या कीमत लू, मुझे आपकी कृपा चाहिए। वृक्ष व।

कैसे रखना, खाने के लिए क्या देना सब वतला दिया किन्तु दूध निकालने की विधि नही वतलाई ।

व्यापारी चल पडा । समुद्र के किनारे जहाज मे माल लगाने लगा । इधर राजा ने अपने नौकरो को स्वर्ण पात्र देकर कहा—'ध्यान रखना । यह वृक्ष जो भी फल देता है, उसे स्वर्ण पात्र मे लेकर मुझे दे देना । नौकरो ने वैसा ही किया । इतने मे गाय ने पेशाव किया । गौ-मूत्र लेकर राजा के पास आये, राजा ने चखकर देखा । मुह कडवा हो गया । हाय यह क्या ? थोडी देर वाद गाय ने गोवर किया । नौकर लेकर आये । थोडा-सा जीभ पर रखा । जी मचलाने लगा । व्यापारी को धूर्त समझकर उसे वापस वुलवाया गया । राजा वोला—'सेठ साहव ! आप तो मुझे धोखा देकर चले गये । यह देखो वृक्ष का फल । कितना कटु ।' व्यापारी हसने लगा और करवद्ध होकर वोला—'स्वामिन् ! वृक्ष तो वही है । फल लेने की विधि से आप अपरिचित हैं ।' उसने तत्काल दूध निकालकर वतलाया । राजा ने स्वाद चखा, वडा मीठा लगा । राजा अपनी अनभिज्ञता पर पश्चाताप करने लगा ।

जव तक सम्यग्-ज्ञान की उपलब्धि नही होती है, तव तक मानव किसी भी प्रक्रिया मे सफल नही हो पाता । अत सामाजिक व आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी ज्ञानाराधना की परम अपेक्षा है ।

ज्ञान विना होता नही, सही तत्त्व आभास ।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान से, होता आत्म विकास ॥

सहयोगी मित्र

अरुण राजा का पुत्र था, किरण सेठ का । दोनो मे अच्छा प्रेम था । पारस्परिक मित्रता का उन्नयन । राजकुमार अरुण ने पूछा—'साथी किरण ! क्या वात है ? तेरा शरीर दिनो-दिन कृश क्यो हो रहा है ? किरण करवद्ध होकर वोला—'मित्र ! क्या करू, व्यापार नही चलता है । आय के विना परिवार का भरण-पोषण भी एक समस्या वन गई । ताकडी वद हो गई । तू जानता है, महाजन की ताकडी चालू रहने मे ही लाभ है । कोई काम हाथ मे नही है । इसलिए कोई काम मुझे वताओ ।'

अरुण ने किरण को घोडे की लीद उठाकर वाहर डालने का कार्य सौंपा । वह लीद को सूंघकर फिर वाहर डालता है । घोडो के प्रचालको ने पूछा—'लीद सूघने का क्या मतलव ? किसलिए ?' किरण ने कहा—'मैं तुम सवकी परीक्षार्थ सूघ रहा हू । तुम लोग दाना कम देते हो । सवको हटवाऊगा ।' सव घवराये । रुपयो की थैली देकर किरण को खुश कर दिया । समुद्र की लहरे गिनने का दूसरा काम और मिल गया । जहाज चालको से भी पैसे ऐठने प्रारम्भ कर दिए । कोई नही देता है,

तो जहाज को रोक लेता है और कहता है कि लहरे गिनने का काम मुझे सौंपा गया है। ऐसी बाते बना-बनाकर चातुर्य मे कमाई करने लगा।

एक दिन मित्र अरुण ने पूछा—'किरण! कमाई अच्छी हो रही है?'

मित्र तेरी कृपा से सब अच्छा है, तूने मुझे जो काम सौंपे, उसमे अच्छी आय है। तेरे जैसे साथी के प्रताप से मेरा सारा सकट दूर हो गया।'

सच्चा मित्र वही होता है जो तकलीफ मे भी सहयोग की भावना रखता है। आपात काल मे भी मित्र को मित्र की दृष्टि से निहारता है, उसका हर दृष्टि मे गौरव बढता है। सम्मान होता है।

सहयोगी हर समय मे, बनता है जो मित्र।
दुनिया मे उस मित्र का, गौरव बढे पवित्र॥

सबसे खराब क्या

एक दु खी व्यक्ति इधर-उधर भटकता हुआ एक सन्यासी के पास आ पहुचा। हाथ जोडकर बोला—'महात्माजी! मैं ससार से ऊब गया। ससार मुझे गरल की भाति कटु लगता है। मुझे निकालिये। ससार-समुद्र से पार लगाइये।' महात्माजी बोले—'मुसाफिर!' सबसे पहले यह निगाह करके आओ कि दुनिया मे सबसे खराब चीज क्या है? उसके पश्चात् मैं तुझे सन्यास दूगा।' वह मुसाफिर खराब चीज की खोज मे चल पडा। खोज करते-करते वह थक गया। आखिर वह फिरता-फिरता अशुचि-गृह मे पहुचा। उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगा। नाक पर कपडा लगाया, सोचा—सबसे खराब चीज यही है।

गदगी बोली—'अरे भैया! तू मुझसे घृणा क्यो कर रहा है, क्यो नाक पर कपडा डालकर मुह बिगाड रहा है? इसमे मेरा दोष तनिक भी नही है। यह सब दोष है मानव के शरीर का। मुझे खराब करने वाला मनुष्य ही तो है। मनुष्य के योग से ही मेरा तिरस्कार व अपमान हो रहा है।'

मुसाफिर चौका। आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह दौडा-दौडा महात्मा जी के पास पहुचा। विनय के कोमल शब्दो मे बोला—'गुरुदेव! प्रश्न के समाधान हेतु बहुत घूमा। आखिर उत्तर लेकर आया हू। छान-बीन करने पर यही तत्त्व मिला—'सबसे खराब मनुष्य का शरीर।' उत्तर सुनकर महात्माजी बहुत खुश हुए और आशीर्वाद देते हुए बोले—'मुसाफिर! तू ठीक समझा। मुझे सही ज्ञान मिला। अब मुझे सन्यास देने मे तनिक भी हिचकिचाहट नही है।' उसे सन्यास दे दिया गया।

मनुष्य को जब यह ज्ञान हो जाये कि सबसे खराब मेरा शरीर है, तब वह इस

शरीर (चमडी) से कभी भी मोहित नही होगा। न ही पर-रूप मे पागल बनेगा, वास्तव मे यह सच्चा ज्ञान ही आत्म-विकास का प्रशस्त सोपान है।

मानव का यह गात्र ही, सबसे बहुत खराब।
ऐसे पावन ज्ञान से, बढती अविरल आब॥

भोज की उदारता

उज्जयिनी नगरी थी। वहा के प्रभावशाली सम्राट् राजा भोज थे। सस्कृत भाषा के विशेषज्ञ थे। दूसरो को दान देने मे बडे उदार-चेता थे, उदारता के विषय मे राजा भोज की अनेक घटनाये आज भी प्रचलित है। जो कोई भी आता, वह खाली हाथ नही जाता था। मुक्त-हस्त से दान मिलता था।

सचिव ने यह देखकर सोचा कि अगर राजाजी इस प्रकार दान देते रहेगे तो खजाना शीघ्र ही खाली हो जायेगा। अब कोई ऐसा उपाय सोचू, राजा दान देने से निवृत्त हो जाए।

मत्री ने राजा के शयन-कक्ष पर एक पट लगाना निश्चित किया। उस पर लिखा गया—'आपदर्थे धन रक्षेत्—आपत्ति के लिए धन को सुरक्षित रखना चाहिए।' पट्ट वहा लगाकर मत्री चला गया। राजा भोज शयन-कक्ष मे सोने के लिए आये। उन्होने पट्ट पर लिखा हुआ वाक्य पढा और मन मे सोचा कि इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। उस वाक्य के नीचे अपनी बुद्धि से एक वाक्य लिखा—'श्रीमतामापद कुत —सपत्तिशाली व्यक्तियो के लिए आपत्ति कहा है?'

दूसरे दिन का सूर्य उदय हुआ। मत्री महलो मे पहुचा। अपने वाक्य के नीचे उसी पट्ट पर एक नया वाक्य पढने को मिला। हृदय मे दु ख का पार नही रहा। यह क्या? चिन्तन किया। आखिर उसने एक वाक्य उसके नीचे फिर लिख दिया—'कदाचिद् रुष्यति दैव —कभी भाग्य भी रुष्ट हो जाता है।' यह जीवन समुद्र की भाति विशाल है। उतार-चढाव आता रहता है। 'सब दिन होत न एक समान—सबके दिन समान नही होते है।'

सध्या के समय जब राजा वहा पहुचा, पट्ट पर अन्तिम वाक्य को पढा। उसी समय प्रश्न का समाधान देते हुए पट्ट पर लिख डाला—'सचितमपि नश्यति—इकट्ठा किया हुआ धन भी नही रहता। तीसरे दिन मत्री पहुचा। उस वाक्य को पढा मत्री समझ गया कि राजा के व्यवहार मे अन्तर आने वाला नही है। राजा भोज सपत्ति से उन्नत थे तो मन की उदारता भी बहुत थी।

उदारता के अभाव मे कोई भी किसी को कुछ भी नही दे सकता। कजूस व्यक्ति नही खाता है न ही देता है। धन किसी के साथ जाने वाला नही है।

रिक्त हाथ आये हो रिक्त हाथ जाओगे।

सचित धन भी साथ मे, नही चलेगा तार।
'मुनि कन्हैया' भोज की, सुनो कथा सुखकार ॥

गम से लाभ

वादशाह ने वीरवल से पूछा—'ये साहूकार लोग क्या खाते है ? कितने हृष्ट-पुष्ट रहते है।' वीरवल वोला—'जहापनाह ! ये लोग जो खाते है, वह आप नही खा सकते।' वादशाह—'वीरवल ! वताओ तो सही क्या खाते है ?' वीरवल—'अवसर आने पर वताऊगा।' एक दिन वादशाह और वीरवल हाथी के हौदे पर शहर मे भ्रमणार्थ निकल पडे। वाजार मे पहुचे। इधर सेठ की दुकान पर भीखमगो की जमात मागने के लिए आई। एक आने की याचना की। सेठ वोला—'एक पैसा दूगा।' याचको ने कहा—'एक आना लिये विना नही जायेगे।' सेठ ने मन ही मन सोचा, वादशाह की सवारी आ रही है। ये मगजपच्ची कर रहे है। यह लो एक आना।

याचक—'अव हम नही लेगे एक आना। दो आना लेकर जायेगे।' वीरवल ने वादशाह को सेठ की दुकान का सकेत किया। कुछ ही समय के पश्चात् सेठ दो आना देने लगा।

याचक—'आपने हमारा अमूल्य समय कितना नष्ट कर दिया। अव हम दो आना नही, चार आना लेगे।' सेठ ने देखा वादशाह वहुत निकट आ गये है। ये पागल वेवकूफ दुकान से हट नही रहे है। इसी खीचातानी व उधेडवुन मे सेठ खिन्न हो गया। कैसे इनसे छुटकारा मिलेगा। अखिर मागते-मागते वे एक रुपया तक पहुच गये। सेठ वडा क्षुब्ध हुआ। विवशता से उनको एक रुपया देना पडा। मागने वाले एक रुपया लेकर रवाना होते-होते सेठ के वदन पर थप्पड मारकर भाग गये। सेठ की पगडी नीचे गिर पडी। वादशाह विलकुल नजदीक पहुच गये। सेठ झट अपनी पगडी वाधकर दुकान पर वैठ गया। आकृति पर तनिक भी विपाद की रेखा नही। वही मुस्कराहट, वही उल्लास की लहर मानो कुछ अघटित घटना घटी ही नही। वीरवल सव निहार ही रहा था।

वादशाह की सवारी आगे वढ रही थी। वीरवल वडी विनम्रता से वोला—'गरीव निवाज ! देखा आपने अनूठा ताडव। मागने वाले रुपया भी ले गये और सेठ के थप्पड भी जमा गये। सेठजी का इतना अपमान होते हुए भी उन्होंने गुस्सा नही किया। कितनी खामोशी रखी। दुकान पर ज्यो के त्यो रोव से प्रफुल्लितमना वैठे हैं। इस प्रकार ये साहूकार लोग गम खाते है। उसी का फलित है कि ये लोग

शारीरिक दृष्टि से पुष्ट व ताजे-मोटे रहते हैं। क्या ऐसा गम आप रख सकते है ?' बादशाह बोला—'बीरबल ! ऐसा गम मै नही रख सकता। तनिक अपमान पर भी मुझे क्रोध आ जाता है। इसी कारण दुबला-पतला रहता हू।'

जो व्यक्ति गम खाते है। खामोशी रखते हैं, वह मानव हर क्षेत्र मे सफल होता है। उसकी सर्वत्र पूजा होती है, प्रतिष्ठा बढती है। 'मौनेन कलहो नास्ति—मौन (गम) से पारस्परिक तनाव वैमनस्य व कलह अपने आप समाप्त हो जाता है।'

गम रखने से मनुज को मिलता लाभ महान।
'मुनि कन्हैया' जगत मे मौन सौख्य की खान॥

स्मरण से मरण

चार मित्र धन कमाने के लिए परदेश जा रहे थे। मार्ग मे किसी एक गाव मे ठहरे। वहा होटल आदि की व्यवस्था भी नही। केवल एक बहन के घर पर यात्रियो के लिए भोजन की व्यवस्था थी। वह उचित धन राशि लेती थी। चारो मित्रो ने वही पर भोजन किया। चारो ने अच्छे रुपये दिये। बहन बहुत खुश हुई, बहन ने कहा—'थके-मादे अभी कहा जाओगे। रात-भर यही पर विश्राम करो।' चारो सो गये, ठडी-ठडी हवा चल रही थी। गहरी नीद आ गई। जल्दी उठकर, ज्योंही तीन बजे, जाने लगे। बहन ने सोचा—ये व्यक्ति बडे सज्जन हैं। इनको दही का मठा बनाकर पिला दू। दही मथा और मठा तैयार हो गया। चारो पीकर वहा से चल पडे। सूर्य उदय हुआ। बहन की दृष्टि मठे पर पडी। मठे का कुछ विकृत रूप देखकर उसने गहराई मे देखा तो मठे के बर्तन मे सर्प के कुछ अवयव मिले। वह चौकी। आज बडा अनर्थ हो गया। बिलौने मे साप को मथ लिया। पुन पछताने लगी। इधर चारो यात्री आगे बढते गये। उन पर सर्प के जहर का तनिक भी प्रभाव नही पडा। किसी बडे शहर मे कपडे का व्यापार किया। भाग्य ने भी सहारा दिया, चन्द ही समय मे अच्छी धनराशि एकत्रित कर ली। बारह वर्ष की यात्रा सपन्न कर वे चारो ही साथी देश जाने के लिए रवाना हुए। मार्ग मे वही गाव आया, जहा 'दही का मठा' पीकर चले थे। उसी बहन के घर पहुचे। चारो बोले—'बहन जी ! हमको पहचानती हो ?' वह बोली – 'यहा भोजनार्थी अनेको आते रहते हैं। किन-किसको पहचानू।' उन्होने कहा—'हम मठा पीकर गये थे, याद करो तुम।'

मठे की बात सुनते ही वह एकदम चौकी। आनन्द सरिता मे डूबने लगी। भगवान की कृपा से बहुत अच्छा हुआ। मैं तो चिन्तित थी। आज मैं चिन्ता मुक्त हुई। अच्छी कृपा की, आप लोग पुन यहा पधारे। चारो बोले—'चौंकने की क्या

वात है ? वहन !' उसने कहा—'नही-नही, कोई खास वात नही है ? मेरी अच्छी किस्मत थी, आप यहा सकुशल पहुच गये।' उनके हृदय मे जिज्ञासा फिर प्रबल हो उठी—'ऐसी क्या घटना घटी ? वताओ तो सही ?'

आखिर वह करुणामृत वाणी मे वोली—'सज्जनो, क्या वताऊ, वात वताने जैसी नही है। असावधानी के कारण वहुत वडा अनर्थ हो गया। दही का मठा पीकर आप लोग गये थे। मैंने पीछे मे उस वर्तन को निहारा तो ऐसा आभास हुआ कि दही के साथ-साथ सर्प भी विलोया गया। इस वात को वारह वर्ष हो गये। आप सवको सानन्द देखकर दिल फूल रहा है।' यह सुनते ही चारो के आश्चर्य का पार नही रहा और सारे शरीर मे जहर व्याप्त हो गया। स्मृति मात्र से चारो के प्राण पखेरु उड गये।

विस्मृति की स्मृति से मानव के मानस मे विकृति उत्पन्न हो जाती है। अत. भुक्त भोगो को भी याद नही करना चाहिए।

भुक्त भोग के स्मरण से होता है नुकसान।
केवल विष स्मृति से, चारो का अवसान॥

आपके पुत्र कितने ?

सेठ ज्ञानचदजी वहुत वडे व्यापारी थे। घर मे लाखो की सपदा थी। गहरे थे। समझदार थे। तत्त्वज्ञ थे। नस-नस मे धार्मिकता की पुट थी। उनके चार पुत्र थे। तीन लडको का विवाह हो गया था। तत्रस्थ अन्य एक सेठ सामचद अपनी पुत्री के सम्वन्ध के लिए व्याकुल था। वर की खोज करता-करता वह ज्ञानचद की दुकान पर चला गया। उसने पहला प्रश्न पूछा—'आपकी उम्र क्या है ?

वह वोला—'मेरी आयु तीस साल की है' यह सुनते ही सामचद के हृदय मे आश्चर्य का पार न रहा।

फिर उसने दूसरा प्रश्न पूछा—'आपके पास वैभव कितना है ?'

ज्ञानचद—'मेरे पास तीस हजार की सपत्ति है।' फिर वह सशय मे पड गया। दुकान मे लाखो का कपडा है। फिर भी यह उत्तर ! खैर तीसरा प्रश्न पूछा गया—'आपके पुत्र कितने हैं ?' उसने कहा—'मेरे डेढ पुत्र हैं।'

सामचद वोला—'आपके उत्तर से मुझे सतोष नही हो रहा है। आप वृद्ध दिखाई दे रहे है। आपने कहा तीस वर्ष का हू। कैसे जचे ?' ज्ञानचद ने कहा—'तीस वर्ष मेरे धर्म-ध्यान मे व्यतीत हुए है। इस दृष्टि से मैं तीस वर्ष का हू। अन्य सव वर्षो को मै वेकार समझता हू। अपने हाथो से मैंने जो सुपात्र दान दिया है। उसे मैं सच्ची सम्पत्ति मानता हू। सुपात्र दान मे तीस हजार की सम्पत्ति ही काम

आई है, इस दृष्टि से मैंने इतनी ही वतलाई है। डेढ पुत्र की वात भी यथार्थ है। आप मेरे वडे पुत्र के पास जाकर कह दीजिए पिताजी बुला रहे हैं। फिर इनका उत्तर दूगा।'

मामचद चला। पुत्र के पास पहुचा, वोला—'आपको आपके पिताजी बुला रहे हैं।' वह लडका क्रोधाकुल होकर वोला—'पिताजी क्यो बुला रहे हैं ? पिताजी जीवित है या मर गये ? यदि मर गये हो तो दाह-सस्कार आप ही कर लेते। मेरे रग मे भग क्यो किया ? कितना सुन्दर नृत्य चल रहा है ! मुझे टाइम नहीं है पिताजी के पास जाने का।'

मामचद वापस लौटा। ज्ञानचद को समग्र कहानी से अवगत किया। ज्ञानचद ने कहा—'वोलिए, इस लडके के सामने एक एका लगाऊ या शून्य।' मामचद ने कहा—'ऐसा पुत्र होना या न होना वरावर है। इसके आगे शून्य लगा दो। ज्ञानचद के कथनानुसार वह दूसरे, तीसरे और चौथे पुत्र के पास पहुचा, दूसरे पुत्र ने कहा—'पिताजी मुझे क्यो बुला रहे हैं ? पिताजी दीवार या छत के नीचे दव गये क्या ? यदि दव गये हो तो आप ही निकाल लेते, यहा आकर समय को व्यर्थ क्यो गवाया ?' तीसरे पुत्र का उत्तर था—'आप कह दीजिए पिताजी को, मैं कुछ ही समय पश्चात् आ रहा हू।' किन्तु खेल मे वह इतना लीन हो रहा था कि पिताजी के पास जाना भूल गया। चौथा पुत्र हजामत करा रहा था। पिता का आदेश सुनते ही बीच मे ही वह उठा और पिता के पास जाकर वोला—'हाजिर हू आपकी सेवा मे। फरमाइए मेरे लायक काम।'

पिता ने कहा—'वेटा ! ऐसे ही बुलाया था। कोई खास काम नहीं है। चले जाओ वगले पर।'

ज्ञानचद ने मामचद से कहा—'अव लगाइये जोड। पहले और दूसरे के शून्य। तीसरे के आधा और चौथे के एक। इस दृष्टि से मेरे डेढ पुत्र हैं।' मामचद के हृदय मे ज्ञान का प्रकाश हुआ और उसने अपनी पुत्री का विवाह उनके लघु पुत्र से कर दिया।'

शारीरिक बनावट की दृष्टि से मानव-मानव सव एक हैं। विवेक-बुद्धि-चिन्तन आदि क्रिया-प्रक्रिया के आधार पर वहुत वडा अन्तर पाया जाता है। किसी कवि ने कहा—

चरण नयन कर नासिका, सव जन के इक ठौर।
वटना सनना समझना, चत[illegible] ॥

महावीर प्रभु ने कहा—विनय धर्म का मूल।
'मुनि कन्हैया' विनय मे, बनते सब अनुकूल ॥

विनय से विजय

एक दिन सरित्पति समुद्र ने कहा—'हे वेत्रवती नदी ! मैं समस्त नदियो के मधुर व्यवहार मे बहुत सतुष्ट हू। सभी सरिताए उपहारस्वरूप कुछ न कुछ लाकर मुझे देती है। तू ऐसी अविनीत कजूस है कि अभी तक कुछ भी लाकर तूने नही दिया। त्रास है तेरी बुद्धि पर। पीडित हू तेरे रूक्ष व्यवहार से। मुझे कदापि ऐसा विश्वास नही था कि मेरे साथ तेरी ऐसी कठोरता रहेगी।'

वेत्रवती नदी ने मुस्कराहट की भाषा मे कहा—'हे मेरे प्राणनाथ ! कृपया आप बताइये तो सही कि मेरा अपराध क्या है ?'

समुद्र ने आक्रोश की भाषा मे उच्च स्वर से कहा—'वेत्रवती ! तेरे तीर पर बेंत के बहुत झाड है। परन्तु तूने आज तक एक भी बेत का टुकडा लाकर मुझे नही दिया। सभी नदिया मुझे सम्मान देती हैं, तू सब वस्तुए अपने पास रखती है जबकि सभी वस्तुओ पर मेरा अधिकार हैं।'

सागर की बाते सुनकर वेत्रवती नदी ने कहा—'हे स्वामिन्। इसमे मेरा कोई अपराध नही है। जब मैं वेगपूर्वक आती हू, तब सारे बेंत के झाड नीचे झुक-कर पृथ्वी के साथ लग जाते हैं। जब मेरा प्रवाह कम हो जाता है, तब वे फिर ज्यो-के-त्यो खडे हो जाते हैं। इससे मैं एक भी बेत तोड नही पाती, अब आप ही बताइए क्या करु ?'

पारावार ने कहा—हे सरिते ! तेरा कथन अक्षरश सत्य है। वास्तव मे विनय और नम्रता मे बहुत बडी शक्ति निहित है। जो झुकना जानता है, वह कभी पराजित नही हो सकता। पानी के प्रबल प्रवाह के सामने बेंत विनयावनत होकर अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने मे सफल होती है।'

ससार मे विनय और नम्रता, शक्तिशाली महान् गुण हैं। जिसमे यह सद्गुण होता है उसकी सर्वत्र विजय होती है।

झुककर सारे बेत तरु, बचा रहे निज प्राण।
'मुनि कन्हैया' फल सके, विनयवान इन्सान ॥

होनहार बलवान

एक सेठ था। व्यापारार्थ समुद्र की जहाज द्वारा चल पडा। जहाज समुद्र के किनारे पर ठहरी। वह सेठ नीचे उतरा और तट पर घूमने लगा। वहा पर एक खोपडी

पडी थी। उसे उठाकर देखा तो उसमे निम्नोक्त श्लोक लिखा हुआ मिला—

'जम्मो कलिग देशे, पाणि-गहण अग देश मज्झम्मि।
मरण समुद्दतीरे, अज्जो किं-कि भविस्सइ"॥

—अर्थात् कलिग देश मे जन्म हुआ। अग देश मे विवाह हुआ। समुद्र के तीर पर मरण हुआ। अब भी क्या-क्या होना और बाकी है, यह नही कहा जा सकता।

यह श्लोक पढकर वह सेठ विस्मय मे झूलने लगा, अब फिर क्या अवशिष्ट है। उसने खोपडी उठाकर अपने सूटकेश मे रख ली और जहाज मे चढ गया। लगभग बारह वर्ष तक विदेश मे व्यापार करके लाखो रुपये अर्जित कर देश के लिए रवाना हुआ। प्रतिदिन सूटकेश खोलकर खोपडी देख लेता है। वापस ताला लगा देता है। नगर मे पहुचा। परिजनो से मिला। सबके दिल मे आनन्द की तरगे तरगित होने लगी। स्वर्ण व हीरो के विभिन्न विभूषण सेठानी को देते हुए सेठ ने कहा—'यह बारह वर्षो की कमाई है, सुरक्षित रखना।' सूटकेश को गुप्त रखा। नही खोला, सेठानी ने सोचा—'इसको खोल नही रहे है। इसमे अमूल्य निधि है। अत मेरे से गुप्त रख रहे है।' सेठ भोजन करने से पहले प्रतिदिन उस खोपडी को देख लेता है। अभी तक जैसी वह थी, वह खोपडी उसी रूप मे है—तनिक भी परिवर्तन नही हुआ है।

एक दिन की बात है कि सेठजी सूटकेश मे ताला देना भूल गये। दुकान चले गये, सेठानी ऊपर पहुची, सूटकेश खोला। खोपडी देखी, सेठानी के दिल मे विविध प्रकार के विकल्प-सकल्प उत्पन्न हुए। ऐसा लगता है, सेठजी ने विदेश मे किसी नारी से प्रेम किया है। वह मर गयी है किन्तु प्रेम मे विह्वल बनकर उसकी खोपडी साथ लाये है। प्रतिदिन इसके दर्शन किये बिना भोजन भी नही करते। इस दृष्टि से मेरी सौत की खोपडी है। इस अनुचित कार्य की सजा भी अनुचित होनी चाहिए। उसके टुकडे-टुकडे कर आटे जैसी बनाकर उसकी कढी बनादी। सेठ जी खाना खाने आये। खाद्य सामग्री के साथ-साथ कढी भी परोसी गयी। सेठ ने कहा—'कढी बडी स्वादिष्ट है।'

सेठानी बोली—'आपके रहस्य का मुझे पता लग गया। इस कढी मे आपकी प्रेमिका है। उसकी खोपडी को पीसकर कढी मे मिला दी है।' यह बात सुनते ही सेठ दग रह गया। सोचा सूटकेश खुला रह गया। ऊपर गया, सम्हाला खोपडी नही थी। सेठ ने मन-ही-मन सोचा, 'अज्जो किं कि भविस्सइ' आज यह उक्ति सार्थक हो गयी। जो होनहार अवशिष्ट था वह भी हो गया।

ससार मे होनहार बडी बलवान् होती है जो लिखा है व होना है वह होकर ही रहता है। 'यद्भाव्य तद् भविष्यति—जो होना है वह होकर ही रहता है।'

होनहार के सामने, होती सबकी हार।
'मुनि कन्हैया' जो लिखा, नही टले लगार॥

✶ विवेकहीनता

मियाजी ने कहा—'वीवी ! चोरी के लिए जा रहा हू। क्या लाऊ ?' वीवी ने कहा—'भैस लानी है। दूध, दही, छाछ की वडी सुविधा हो जाएगी।' मियाजी वोले—'वैल लाऊगा, खेती मे काम आयेगा।' आखिर परस्पर झगडा हुआ। वह क्रुद्व होकर वोला—'अच्छा, जा रहा हू। जैमा अवमर होगा, वैमा ही कर लूगा। भैस और वैल दोनो का अपने-अपने स्थान मे अलग-अलग महत्त्व है।' मिया जी चल पडे। समय काफी हुआ। सूर्य समुद्र मे डूव गया। फिर भी मियाजी अपना कार्य पूर्ण कर घर नही पहुचे। वीवी उनकी प्रतीक्षा करती-करती थक गयी। वह जोर से वोल पडी—'उग्यो चाद हुयो उजालो, अवहु न आयो चोरी वालो।'

पुन -पुन इस गीत की पुनरावृत्ति हो ही रही थी, इतने मे मियाजी आ खटके। जोर से वोले –'आयो ऊमो फल सो खोल।' वह वोली—'भैम लाया के वेला वोल।'

'नही भैम, नही वैल, मुथण गयी गधै रे गेल।'

वोवी गुस्से मे लाल-पीली हो गयी। विवेकहीन होकर वोली—

'हाय निपुत्ता, वठै रह्या दो जूता।
हाय तनै रोऊ, लोटो ल्याय पग धोऊ।'

मियाजी ने अपनी कहानी सुनाते हुए कहा –'वीवी, क्या वताऊ, भैस और वैल तो मिले नही। काफी यत्न किया, किन्तु तकदीर मे लिखे विना एक दमडी भी नही मिल सकती। मैं आ रहा था, गाव के वाहर मुझे एक गधा मिला। उसे पकडकर सूथण से वाधकर ला रहा था। अचानक वह भाग गया। सूथण भी मेरी ले गया। उसके पीछे-पीछे दौडा। दृष्टि चूकने पर पैर अशुचि से भर गया। पानी का लोटा ला, पैरो को साफ करना है।'

जिस व्यक्ति के विवेक नही होता, वह हर दृष्टि से अपमानित और तिरस्कृत होता है। विवेकहीनता ही दु ख का हेतु है। स्वय मे वुद्धि नही, उपज नही, दूसरो का कहना माने नही, उसे मियाजी की भाति दु ख पाना ही पडता हे।

नही वुद्धि शालीनता, विलकुल नही विवेक।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, पाता दुख अतिरेक ॥

ज्ञान से विकास

एक वुद्धिमान राजा था। उसे विलक्षण मत्री की आवश्यकता थी, खोज करने लगा। राज-दरवार मे ज्ञानसिंह नाम का एक ठाकुर आया, उसकी परीक्षा लेने के

लिए नृप ने कहा— 'ठाकुर साहब ! यह स्वर्ण का डिब्बा ले जाइए, मेरे मित्र को दे आइए।'

ठाकुर रवाना हुआ। मित्र महीपति के पास पहुचा, बद्धाजलि नमस्कार किया। मखमली वस्त्र से ढका हुआ स्वर्ण का डिब्बा श्रीचरणो मे रखता हुआ बोला—'यह लीजिए, आपके अनन्य साथी भूपति का अनुपम अमूल्य उपहार।'

राजा ने डिब्बा खोला। राख देखकर राजा लाल-पीला हो गया, अधरावलि मे कम्पन बढा। जोर से बोला—'यह क्या उपहार ? राख लगाकर क्या बाबा बनना है ?'

ज्ञानसिह ने अपनी बुद्धि से उत्तर देते हुए कहा—'राजन् ! गुस्सा मत कीजिए। अभी वहा एक बहुत बडा यज्ञ कराया गया था, उसमे नव करोड की धनराशि खर्च हुई थी। उस यज्ञ की यह शुभ राख है, इसका प्रभाव है कि जिसके खजाने मे यह राख रहेगी, उसका खजाना कभी खाली नही होगा।'

यह बात सुनते ही राजा खुश हो गया। राख का थोडा-थोडा वितरण किया। राजा ने ज्ञानसिह को पुरस्कृत किया और मित्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

ज्ञानसिह चला, नगर मे पहुचा, सारा हाल सुनाया। उसकी बुद्धि-विलक्षणता पर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ। ज्ञानसिह को मत्री-पद से विभूषित किया गया। राज्य की सार-सभाल करने की सारी जिम्मेदारी दी गयी।

जो बुद्धि और चतुराई से उत्तर देता है, उसकी हर दृष्टि से उन्नति होती है। विकास होता है।

बुद्धिमान का हर कदम, होता अमित विकास।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान बिन होता नही प्रकाश॥

अविनीत शिष्य

एक चेला था। वह बडा अहकारी, आलसी एव लडाकू था। गुरु के सामने अट-सट अनर्गल बोलने मे तो वह तनिक भी नही सकुचाता था। गुरु-आज्ञा पर जरा भी ध्यान नही रखता था। अपनी मनमानी करता था। जिस बात को पकड लेता उसको कभी भी छोडता नही था। निजी दुराग्रह पर डटा रहता था। हर प्रश्न का उत्तर वचनापूर्वक देता था। गुरुजी ऐसे उद्दड एव अविनीत शिष्य से तग आ गये। गुरुजी बडे सरल एव शान्त स्वभावी थे। करे तो क्या करे ? जो जैसा होता है उसको ज्यो-त्यो करके निभाना ही पडता है।

एक दिन की बात है गुरु और शिष्य दोनो नगर मे भ्रमण कर रहे थे। अचानक वर्षा होने लगी। गुरु ने शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहा— 'वत्स ! [illegible]

जो दीपक जल रहा है, उसे वुझाना मै भूल गया। तुम उठो और दीपक वुझा दो।' चेला वडा आलसी था। वह जोर से कर्कश वाणी मे वोला—'पूज्यवर! आप अपने मुह को कपडे से ढाक ले, आपके खातिर तो दीपक वुझ ही गया।

गुरुजी वडे फक्कड थे। सोचा इस आलसी को एक वार उठाना जरूर है। उन्होने कहा—'शिष्य! देखकर आओ, वर्षा हो रही है क्या?' शिष्य ने कुवुद्धि चलायी और कुत्ते को तू-तू कर वुलाया। कुत्ते पर वूदे देखकर वोला—'गुरुवर! अभी वर्षा हो रही है।' गुरुजी उसकी वक्रवुद्धि पर चकित थे। उनके दिल मे थी, चेले को एक वार अवश्य उठाये। गुरुजी ने चेले को सवोधित करते हुए कहा—'शिष्य! उपाश्रय का दरवाजा खुला रह गया। उसे वन्द कर दो।' शिष्य ने सोचा—'गुरुजी तो मुझे ही काम सम्हलाते है। स्वय तो कुछ भी नही करते है। वैठे-वैठे हुकम देते रहते है।' वह रोपभरी वाणी मे वोल पडा—'गुरुजी! दो काम तो मैने कर दिये, यह छोटा-सा एक काम तो आप ही कर लीजिए।' यो कह-कर मुह ढाककर सो गया, किन्तु उठा नही। अविनीत शिष्य की उच्छृखलता पर गुरुजी हेरान रह गये। आखिर उन्होने उस अविनीत शिष्य को अपने सघ मे अलग कर दिया।

अविनीत एव उद्दड शिष्य का कभी भी विकास नही हो सकता, विनय धर्म का मूल माना जाता है। जीवन के हर पहलू मे विनय परम अपेक्षित हे। अविनीत को कभी भी ज्ञान नही देना चाहिए।

दुनिया मे अविनीत का, होता नही विकास।
'मुनि कन्हैया' विनय ही, सद्गुण का आवास॥

नयसार

जम्वूद्वीप के पश्चिम महाविदेह मे 'महावप्र' नाम की विजय। तत्रस्थ 'जयती नगरी' मे शत्रुमर्दन राजा राज्य करता था। उसी राज्य मे पृथ्वी-प्रतिष्ठान नाम का एक ग्राम था। वहा पर 'नयसार' नाम का श्रद्धाशील धार्मिक व्यक्ति रहता था। वह सरल स्वभावी एव मिष्टभाषी होने के साथ-साथ लोकप्रिय भी था। मद्य, मास, जुआ आदि दुर्व्यसनो से वह विलकुल मुक्त था। भवन-निर्माण हेतु वडे-वडे काष्ठ लेने के लिए वह कई गाडिया लेकर भयकर जगल मे गया। गर्मी वढने लगी। भूख और तृषा से वह व्याकुल हो गया। साथ मे आए हुए सभी व्यक्ति एक विशाल वृक्ष की छाया मे एकत्रित होकर भोजन करने की तैयारी करने लगे। नयसार ने सोचा—कोई अतिथि आ जाये तो आतिथ्य-सत्कार करने के पश्चात् ही भोजन करे।

अचानक वहा पर कुछ मुनि आ गये। वे पद-यात्रा, भूख, तृषा व गर्मी की थकान के कारण काफी क्षुब्ध थे। मुनियो के दर्शन पाकर नयसार रोमाचित हो उठा। अपने आपको धन्य समझने लगा। उसने मुनिजनो को नमस्कार करते हुए पूछा —मुनिप्रवर! इस भयावह अरण्य मे आपका आगमन कैसे हुआ? यहा तो वडे-वडे योद्धा-गण भी आते हुए कतराते है।

मुनि-अग्रज ने कहा—हम किसी अन्य सघ के साथ विहार कर रहे थे। किसी गाव मे भिक्षार्थ गए हुए थे। वापस आए तो देखा कि सघ वहा नही है। मन मे सोचा। हिम्मत रखना हमारा परम धर्म है। हमने प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग भूलकर चलते-चलते यहा पहुच गये।

नयसार बोला—महाराज! उस सघ के सभी लोग वडे निर्दयी थे। मुनिजनो के साथ ऐसा विश्वासघात करना काफी लज्जास्पद है। किन्तु मेरा अहो-भाग्य है कि ऐसे विकराल जगल मे भी आपके दर्शन हुए। कृपया वृक्ष की छाह मे विश्राम कीजिए और मुझे आहार-पानी के लाभ से लाभान्वित करे। भोजनादि कार्य से निवृत होने के पश्चात् मुनि-श्रेष्ठ ने नयसार को प्रतिवोध देते हुए मानव-जीवन के महत्त्व पर प्रकाश डाला। नयसार के साथ चलकर मुनियो को नगर का मार्ग वताया और पुन उद्वोधन की प्रार्थना की। मुनिप्रवर के प्रताप से उसे सम्यक्त्व का लाभ मिला।

नयसार के विचारो मे परिवर्तन आया। धार्मिक अनुष्ठान मे विशेष रुचि रखने लगा। तत्त्व की जानकारी करने के लिए अपने जीवन का अधिकतम समय लगाने लगा। अन्त मे महामन्त्र का स्मरण करता हुआ कालधर्म को प्राप्त कर वह प्रथम स्वर्ग मे एक पल्योपम की स्थिति वाला देव वन गया।

रखकर के सद्भावना, गया स्वर्ग नयसार।
प्राप्त किया मुनि सग मे सम्यक् वोध उदार॥

जाति का मद

इसी भरत क्षेत्र मे 'विनीता' नाम की नगरी मे आदीश्वरनाथ भगवान के सुपुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे। नयसार का जीव प्रथम देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर सम्राट भरत के अगज के रूप मे उत्पन्न हुआ। बालक के शरीर से मरीचि (किरणे) निकल रही थी। इसलिए परिवार वालो ने उसका नाम मरीचि रख दिया।

भगवान ऋषभनाथ का पदार्पण 'विनीता' नगरी मे हुआ। मरीचि भी अपने परिवारवालो के साथ समवसरण मे प्रभु को वन्दन करने के लिए आया। वन्दन

की वाणी सुनकर वह दीक्षित हो गया। वर्षों तक मयम का पालन किया। भयकर परीषह उत्पन्न होने के कारण मुनि मरीचि का मन माधुत्व मे विचलित हो गया। मुनि लिंग का त्याग करके त्रिदडी मन्यास धारण कर लिया। वेश की भिन्नता देखकर लोग पूछते—आपने यह परिवर्तन क्यो किया ?

मरीचि वोला—मैं श्रमण धर्म के नियमो का मम्यक् पालन नही कर सकता, अत मुझको परिवर्तन करना पड़ा।

मरीचि धर्म-दलाली करने मे सिद्धहस्त था। लोगो को तत्त्व वताकर भगवान ऋपभनाथ की शरण ले जाता और दीक्षा दिलवाता था। विहार मे भगवान के साथ-साथ ही वह रहने लगा।

वहुत समय वीत जाने के पश्चात् भरत चक्रवर्ती ने पूछा—भगवन ! क्या इम सभा मे कोई ऐसा व्यक्ति है जो भविष्य मे तीर्थंकर होगा ?

भगवान ने कहा—भरत ! तुम्हारा पुत्र मरीचि इम अवमर्पिणी काल मे 'महावीर' नाम का चौवीसवा तीर्थंकर होगा और पोतनपुर मे त्रिपृष्ठ नाम का प्रथम वासुदेव तथा महाविदेह की 'मोका' नगरी मे प्रिय-मित्र नामक चक्रवर्ती होगा।

भरत चक्रवर्ती मरीचि के पास पहुचे और वोले—भगवान ने तुम्हारा भविष्य शुभ वतलाया है। भरतेश्वर का सारा सवाद सुनते ही मरीचि के हृदय मे आनन्द की तरगे तरगित होने लगी। ताली पीट-पीटकर वह नाचने लगा और वाढ स्वर से अह की भाषा मे वोलने लगा—इस समार मे मेरे-जैसा भाग्यशाली कोई नही है। मेरे पिता इस युग के प्रथम चक्रवर्ती हैं। मेरे पितामह प्रथम तीर्थंकर हैं। मैं प्रथम वासुदेव वनूगा। चक्रवर्ती की सम्पदा भी मुझे मिलेगी। अन्त मे पितामह जैसा अन्तिम भगवान वनकर साध्य को प्राप्त करूगा। मेरा कुल कितना उत्तम है ? मेरे कुल जैसा उच्चकुल किसी का नही है। सव मेरे सामने तुच्छ है। हीन हैं। दीन है। मुझे अव किसी की भी परवाह नही हैं।

इस प्रकार वह अहकार के महासागर मे डुवकिया लेता हुआ भुजास्फोट करता हुआ जाति के मद मे अपने आपको भूल गया। अभिमान के शिखर पर चढे हुए 'मरीचि ने 'नीच-गोत्र' का वन्ध कर लिया।

मद मत करना जाति का, मद से अति नुकमान।
वाधा पुत्र मरीचि ने, नीच गोत्र का स्थान।

मरीचि द्वारा नया पथ

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋपभनाथ भगवान का निर्वाण होने के पश्चात् वह मरीचि साधुओ के माथ विहरण करने लगा। कुछ ही समय के पश्चात्

मरीचि व्याधि-ग्रस्त हुआ। उसके दिल मे विचार उत्पन्न हुआ कि व्याधिमुक्त होते ही मैं एक शिष्य बनाऊगा जिससे समय पर सेवा-सुश्रूषा हो सके। शिष्य की खोज मे वह इधर-उधर भटकने लगा। 'कपिल' नाम का एक कुल-पुत्र मिला। मरीचि ने कपिल को जैन-दर्शन के विषय मे विस्तार मे बताते हुए अपने धर्म की ओर आकर्षित किया। उसके हृदय मे दीक्षित होने की भावना जागृत हुई। उसने मरीचि से पूछा—अर्हत् धर्म उत्तम है, तो आप उसका पालन क्यो नही करते ?

मरीचि ने कहा—मैं उस धर्म का पालन नही कर सकता। कपिल ने पूछा—क्या आपके मन मे धर्म के लिए स्थान नही है ? स्वार्थ भावना से परिलिप्त मरीचि ने कहा—जिनेश्वरदेव के मार्ग मे धर्म है और मेरे मार्ग मे भी धर्म है।

कपिल मरीचि का शिष्य बन गया। मिथ्या उपदेश व असत्य प्ररूपणा के कारण मरीचि ने कोटि-कोटि सागरोपम परिमाण कर्म उपार्जन कर लिये। पाप की आलोचना किये बिना ही अनशनपूर्वक मरीचि आयु पूर्ण कर ब्रह्म देव लोक मे उत्पन्न हुआ। उसके शिष्य कपिल ने भी आसूर्य आदि कई शिष्य किये और अपने मत को 'साख्य' नाम से घोषित कर दिया। अपने मत का प्रचार करते हुए आगे बढे। तब से यह साख्य मत इस धरातल पर प्रचलित हो गया।

मरीचि का जीव ब्रह्म देवलोक से च्यवकर कोल्लाग ग्राम मे कौशिक नाम का ब्राह्मण हुआ। विषय, काम, हिंसा, असत्य, लोभ आदि पापकारी प्रवृत्ति मे प्रवृत्त रहता हुआ वह त्रिदडी हुआ। ससार-सागर मे भ्रमण करता-करता फिर वह 'स्थाणु' ग्राम मे 'पुष्पमित्र' नामक ब्राह्मण हुआ। वहा भी वह त्रिदडी हुआ। आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ। वहा च्यवकर चैत्य नामक स्थान मे 'अग्न्युधोत' नाम का द्विज हुआ। वहा की आयु पूर्ण कर ईशान देवलोक मे उत्पन्न हुआ। वहा से च्यवकर 'मन्दिर' नाम के सन्निवेश मे छप्पन लाख पूर्व की आयु वाला 'अग्नि-भूत' विप्र हुआ। वहा से सनत्कुमार देवलोक मे गया। वहा से श्वेताम्बिका नगरी मे 'भारद्वाज' नामक द्विज हुआ। वहा की आयु समाप्त कर 'माहेन्द्र-कल्प' मे उत्पन्न हुआ। वहा से राजगृह मे स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। वहा त्रिदडी प्रव्रज्या ग्रहण कर चौतीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर ब्रह्म देवलोक मे गया। वहा से च्यवकर अनेक भवो मे भटका और कई प्रकार के भव किये।

कर्मों के सयोग से, भटक रहा है व्यक्ति।
फिर भी मनुज न छोडता, विषय से अनुरक्ति॥

त्रिपृष्ठ वासुदेव

दक्षिण भारत मे पोतनपुर नाम का एक विशाल सुरम्य नगर था। वहा पर 'रिपु-प्रतिशत्रु' नाम का अधिपति था। उनकी पटरानी मृगावती की कुक्षि मे मरीचि का जीव भ्रमण करता-करता आ जाता है। मृगावती देवी ने सात महास्वप्न देखे—केसरी सिंह, लक्ष्मी देवी, सूर्य, कुभ, समुद्र, रत्नो का ढेर और निर्धूम अग्नि।

इन स्वप्नो का फल बतलाते हुए पाठको ने कहा—देवी के गर्भ मे ऐसा जीव आया है कि भविष्य मे 'वासुदेव' पद को प्राप्त कर तीन खण्ड का नायक बनेगा। यह समाचार वायु की भाति सारे शहर मे फैल गया। यथा-समय पुत्र का जन्म हुआ। जन्मोत्सव बडे ठाट-बाट से मनाया गया। द्वितीया के चन्द्रमा की भाति वह बढता ही गया। बालक की पीठ पर तीन बास का चिह्न देखकर 'त्रिपृष्ठ' नाम से सब पुकारने लगे। बाल्यावस्था समाप्त होने पर तरुणावस्था मे परिवर्तित हुआ। विवाह हुआ। राज्याभिषेक हुआ। त्रिपृष्ठ वासुदेव ३२००० रानियो के साथ भोग भोगता हुआ अपनी जिन्दगी का आस्वाद लेने लगा। महारानी स्वयप्रभा से 'श्री विजय' और 'विजय' नाम के दो पुत्र हुए। बहुत वर्ष बीत जाने के पश्चात् वासुदेव के पास कुछ गायक आये और करबद्ध होकर बडे विनम्र शब्दो मे बोले—महाराज! हम आपको कुछ सगीत सुनाना चाहते है।

वे गायन-कला मे बडे दक्ष थे। हर एक के मन को आकर्षित करने की उनमे अद्वितीय कला थी। वासुदेव की आज्ञानुसार उन्होने विभिन्न प्रकार के मधुर सगीत सुनाकर वासुदेव को मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया। उन सगीतज्ञो से प्रभावित होकर वासुदेव अपनी सगीत मण्डली मे उन सबको नियोजित कर समय-समय पर सगीत का रसास्वादन लेते रहते थे। एकदा वासुदेव उन गीत विशेषज्ञो के सुरीले, सरस व चित्ताकर्षक सगीतो मे मस्त होकर शय्या मे सो रहे थे। बडी तन्मयता से सुनते-सुनते मुग्ध बन रहे थे। उन्होने शय्या-पाल को आदेश देते हुए कहा कि 'मुझे नीद आये तब सगीत बन्द करवा देना।' इसी आदेश के साथ-साथ कुछ ही देर मे वासुदेव को नीद आ गई किन्तु शय्यापाल ने सगीत बन्द नही करवाया। अपितु वह सगीत के रस मे इतना बेसुध हो गया कि बन्द करवाना ही भूल गया। सगीत का कार्यक्रम रातभर उसी गति मे चलता रहा। पश्चिम रात्रि मे जब वासुदेव की आखे खुली तो आश्चर्य का पार नही रहा। अरे! यह क्या? अभी तक गायक मण्डली का कार्यक्रम ज्यो का त्यो चल रहा है। क्या बात है? शय्यापाल को बुला-कर पूछा—अरे मूर्ख! मुझे नीद आने के बाद सगीत मण्डली को बन्द क्यो नही किया? मेरी आज्ञा का पालन क्यो नही हुआ? सच बोलो। अन्यथा सजा मिलेगी।

शय्यापाल सकपकाता हुआ बोला—महाराज! क्या निवेदन करू, मैं स्वय

इनके सरस सगीतो व सुमधुर स्वर-लहरी मे इतना उलझ गया कि रात बीत जाने का भी भान नही रहा। ऐसी गायक मण्डली का योग भाग्य से ही मिलता है।

शय्यापाल की बाते सुनते ही वासुदेव के हृदय मे क्रोधानल की चिनगारिया उछलने लगी। आकृति बदल गई। अधरो मे कम्पन बढने लगा। सभा मे शय्यापाल को आमन्त्रित कर अनुचरो को आदेश दिया गया कि 'इस सगीतप्रिय शय्यापाल के कानो मे उबलता हुआ रागा भर दो। इसने आज्ञा का उल्लघन किया है। रागरागिनिया मे मुग्ध होकर इसने अपने कर्तव्य को भी विस्मृत कर दिया। धिक्कार है इसके जीवन को। सगीत मण्डली को रात भर नही छोडा और स्वय राग मे रजित हो गया।'

वासुदेव की आज्ञा का उल्लघन कौन कर सकता है? वे शय्यापाल को पकडकर एकान्त अटवी मे ले गये और उसके कानो मे उबलता हुआ रागा भर दिया। वह असह्य पीडा को भोगता हुआ त्राहि-त्राहि करता हुआ काल-धर्म को प्राप्त हुआ। क्रूरतम परिणामो के कारण वासुदेव ने गाढ व तीव्र कर्म उपार्जन कर लिये।

महा आरम्भ, महा परिग्रह, विषयासक्ति, राज्यमूर्च्छा आदि दुष्ट अध्यवसाय से नरक का आयु बाधकर चौरासी लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर सातवी नरक का प्रवासी बन गया है।

त्रिपृष्ठ वासुदेव (मरीचि का जीव) सातवी नरक का आयु पूर्ण कर केसरीसिंह हुआ। वह फिर मृत्यु पाकर चौथी नरक मे गया। ऐसे तिर्यंच और मनुष्य आदि गतियो मे भटकता हुआ जन्म-मरण करता रहा। कर्मों का उपार्जन सहज है। कर्मों का भोग कठिन होता है।

> कर्मोपार्जन सहज है, कठिन-कठिनतम भोग।
> वासुदेव भव मे भमे, कर्मों के सयोग॥

पुण्योदय का फल

मरीचि का जीव विभिन्न भवो मे भटकता हुआ शुभ कर्मों के योग से पूर्व महाविदेह की मूका नगरी मे उत्पन्न हुआ। नगरी के सम्राट का नाम था धनञ्जय और महारानी का नाम था धारिणी। उन्होंने चौदह स्वप्न देखे। शुभ वेला मे जन्म हुआ। बालक का नाम 'प्रियमित्र' रख दिया। सम्राट धनञ्जय के मानस मे वैराग्य अकुर प्रस्फुटित हुआ। अपने पुत्र को राज्य-भार सौंपकर दीक्षित हो गया। प्रियमित्र नरेश न्यायनिष्ठ और लोकप्रिय था। चौदह महारत्न उत्पन्न हुए। छह खण्ड साधकर वह प्रामाणिकता पूर्वक सुचारु रूप से शासन का सञ्चालन करने लगा।

राजकीय सुयोग्य व्यवस्था होने के कारण चक्रवर्ती प्रियमित्र की विजय-पताका समस्त धरातल पर लहराने लगी। पूर्व अर्जित पुण्य कर्म के उदय मे हर क्षेत्र मे चतुर्मुखी विकास होने लगा। वह जहा भी गया वहा उसे आशातीत सफलता मिली। जन-जन के दिल को जीतने वाला नरेश सबके लिए श्रद्धापात्र बन गया।

मूका नगरी के वाहर उद्यान मे पोट्टिल नाम के आचार्य पधारे। हजारो-हजारो लोग गुरुवर का उपदेश सुनने के लिए धर्म-सभा मे पहुचे। चक्रवर्ती प्रियमित्र भी अपने परिवारवालो को साथ लेकर वन्दन करने के लिए आये। आचार्यवर का पीयूष भरा सदेश सुनकर चक्रवर्ती के हृदय-पटल मे ससार मे विरक्ति की भावना जागृत हो गई। पुत्र को राज्याभिषेक करके वे दीक्षित हो गए। उन्होने कोटि वर्ष तक प्रचण्ड तप किया। चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर महाशुक्र नामक देवलोक के सेवार्थ विमान मे देव रूप मे उत्पन्न हुए।

विषय सुखो को त्यागकर, जो तजता ससार।
मुनि कन्हैया' हर जगह, उसकी जय-जयकार॥

तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध

प्रियमित्र चक्रवर्ती का जीव महाशुक्र देवलोक से च्यवकर भरत-क्षेत्र की छत्रा नगरी मे जितशत्रु राजा की भद्रा रानी के गर्भ से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'नन्दन' दिया गया। वह वडा हुआ। हर दृष्टि से योग्य बना। जितशत्रु राजा अपने प्रिय पुत्र नन्दन को राज्य सौंपकर प्रव्रजित हो गए। नन्दन नृप हर क्षेत्र मे निष्णात बुद्धि का धनी था। राज्य सचालन व्यवस्था मे भी कुशल था। प्रशासन के प्रत्येक विभाग मे न्याय-नीति को महत्त्व देता था। प्रजा पर अच्छा प्रभाव था। भूप की सुयश सौरभ से सारा देश सुरभित था। इन्द्र के समान राज्य-सपदा का उपभोग करता हुआ आगे बढने लगा। अत मे सासारिक ऐश्वर्य से विरक्त होकर पोट्टिलाचार्य के पास जाकर प्रवज्या के प्रशस्त पथ को स्वीकार कर लिया। महीने-महीने की घोर तपस्या करते हुए निर्दोष सयम व शुभ अध्यवसाय से अपनी आत्मा को उज्ज्वल करने लगे। ज्ञान, दर्शन व चरित्र की सम्यक् आराधना करते हुए शुद्ध परिणामो की उत्कृष्टता से मुनिश्रेष्ठ ने तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध किया।

आयु की स्वल्पता जानकर मुनिराज ने सयम की आलोचना-प्रत्यालोचना प्रारम्भ की। अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म की शरण ले आत्मा मे लीन हो गए। पूर्वकृत दुष्कर्मों की निन्दा सभी जीव-जन्तुओ से हार्दिक क्षमापना, नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करते हुए अनशन स्वीकार कर लिया। साठ

दिन तक अनशन व्रत का पालन कर पच्चीस लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर नदन मुनि 'प्राणत' नाम के दसवे देवलोक के पुष्पोहार विभाग की उपपात शय्या मे उत्पन्न हुए। अन्तर्मुहूर्त मे ही वे महान वैभव सम्पन्न देव हो गए।

देवलोक की आभा छटा देखकर वे आश्चर्य के सागर मे डूब गये। सोचा—अरे! मैं कहा आ गया? यह देव विमान ऋद्धि सम्पदा कैसे प्राप्त हुई? उन्होंने अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव और अपनी साधना देखी। यह सब तपस्या का सुफल है। जिन धर्म का अनुपम प्रभाव है। धर्म की आराधना से ही मुझे यह देव सम्पदा प्राप्त हुई है।

नन्दन देव सगीत सुनने मे लीन हो गए। वहा के यथायोग्य भोग भोगने लगे। उनकी स्थिति बीस सागरोपम प्रमाण थी। देव सम्बन्धी आयु पूर्ण होने के छह महीने पूर्व अन्य देवो की कान्ति म्लान हो जाती है। शक्ति क्षीण हो जाती है और खेद खिन्न बन जाते हैं। परन्तु नन्दन देव विशेष सुशोभित होने लगे। शारीरिक काति दुगुनी हो गई। क्योकि तीर्थंकर होने वाली आत्मा उत्कृष्ट पुण्यात्मा होती है। उन्हे तनिक भी क्लान्त नही होना पडता। यह सब तीर्थंकरो की असाधारण अविरल विशेषताए होती है।

तीर्थंकर वर गोत्र का, शुभ कर्मों से बन्ध।
नन्दन मुनि का मिट गया, भव-भव का भव द्वन्द्व॥

देवानन्दा की कुक्षि में

इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे का अधिकाश भाग सम्पन्न हो चुका था। केवल पिचहत्तर वर्ष, नौ मास और पन्द्रह दिन अवशेष रहे थे। इस जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत-क्षेत्र मे 'दक्षिण ब्राह्मण कुण्ड' नाम का ग्राम था। उसमे कोडालस गोत्रीय 'ऋषभदत्त' नाम का प्रतिष्ठित व नीतिवान ब्राह्मण निवास करता था। वेद-वेदाग, पुराण आदि अनेक शास्त्रो का वह विशिष्ट विज्ञाता था। श्रमणोपासक श्रावक था। जीव, अजीव आदि नव तत्त्वो का वेत्ता था। उसकी धर्मपत्नी जालन्धरायण गोत्रीय देवानन्दा सुन्दर सुलक्षणी एव लज्जावती थी। वह जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान थी। जिनेश्वर देव की उपासिका होने के साथ-साथ अच्छी तत्त्वज्ञा एव गम्भीर महिला थी।

नन्दन देव दसवे देवलोक से आषाढ शुक्ला षष्ठी को हस्तोत्तरा (उत्तराषाढा) नक्षत्र मे च्यवकर देव भव से तीन ज्ञान सहित देवानन्दा की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ। देवानन्दा ब्राह्मणी ने तीर्थंकर के योग्य चौदह महास्वप्न देखे। देवानन्दा [illegible] अपने पति के चरणो मे सविनय निवेदन करती हुई बोली—मुझे [illegible]

चौदह स्वप्न आये है। पडित ऋषभदत्त ने चिंतनपूर्वक कहा—प्रिये! तू वडी भाग्यवती नारी है। इन स्वप्नो मे ऐसा लगता है कि तुम्हारी कुक्षि मे एक त्रिलोक-पूज्य महान् विशिष्ट आत्मा का आगमन हुआ है। ऐसे अवतारी पुरुष के उत्पन्न होने से हम, हमारा कुल धन्य होगा। हम हर दृष्टि मे धन्य बन जाएगे। अव कदम-कदम पर जय-विजय की वासुरी वजती रहेगी।

पुण्यवान के जन्म मे, होता अति उल्लास।
'मुनि कन्हैया' पुन्य मे, होना परम विकास॥

संहरण और स्थापन

गर्भ की सुरक्षा करती हुई देवानन्दा आनन्द के मानसरोवर मे डुबकिया लगाती हुई समय को सार्थक वना रही थी। वयालीस रात-दिन पूर्ण होने के पश्चात् प्रथम देवलोक के इन्द्र का आसन कपित हुआ। उन्होने देखा इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे आये हैं। मन-ही-मन चिन्तन चला। भगवान का जन्म तो क्षत्रिय कुल मे ही होता है। याचक कुल मे नही होता। मरीचि के भव मे कुलमद से वधे हुए कर्म अव उदय मे आए हैं। उसी का परिणाम है कि भगवान को याचक कुल मे आना पडा। अव मेरा कर्तव्य है कि इस गर्भपिण्ड का सहरण करके किसी योग्य माता की कुक्षि मे स्थापित करू। अन्वेषण करते-करते पता चला कि क्षत्रियनगरकुंड नगर के अधिपति सिद्धार्थ नृप की महारानी त्रिशलादेवी हर दृष्टि मे योग्य महिला हैं। त्रिशला देवी भी इस समय गर्भवती हैं। शक्रेन्द्र ने अपने सेनापति हरिण-गमेषी देव को आदेश दिया कि देवानन्दा से गर्भ को वडी चतुराई से सहरण करके त्रिशलादेवी की कुक्षि मे स्थापित करो व उसके गर्भ को देवानन्दा की कुक्षि मे रख दो।

आश्विन कृष्णा त्रयोदशी को हस्तोत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्र मे हरिण-गमेषी देव उत्तर-वैक्रिय कर देवानन्दा और परिवार को अवस्वापिनी निद्रा मे लीन कर दिया। भगवान को अपने हाथो मे ग्रहण किया और क्षत्रियकुड के राजभवन मे आया। महारानी त्रिशलादेवी को निद्रालीन कर अशुभ पुद्‌गलो को हटाया। शुभ पुद्‌गलो का प्रवेश कराके भगवान को स्थापित कर दिया। इसके वाद त्रिशला जी के गर्भ को लेकर देवानन्दा की कुक्षि मे रख दिया। हरिण-गमेषी देव ने अपना कार्य पूर्ण कर स्वस्थान की ओर प्रस्थान कर दिया।

अवधि ज्ञान के माध्यम से भगवान सव कुछ जान ही रहे थे। देवानन्दा के गर्भ मे आने के पश्चात् भगवान जान गये कि मेरा देवलोक से च्यवन होकर मनुष्य गति मे आगमन हो गया है। च्यवमान समय भगवान नही जान सकते क्योकि वह

सूक्ष्म समय होता है, जो छद्मस्थ व्यक्तियो के लिए अज्ञेय है। गर्भ सहरण के पूर्व भी भगवान जानते थे कि मेरा यहा से सहरण होगा ।

पूर्व भवार्जित कर्म का, निश्चित है परिणाम।
कर्मो के मयोग से, पाते दुख तमाम ॥

नया आनन्द : नया फल

देवानन्दा को स्वप्न आया कि चौदह स्वप्नो का त्रिशलादेवी हरण कर रही है। वह घवराकर उठी। रुदन करने लगी। शोक मे विह्वल वन गयी। मेरी अलौकिक निधि मेरे से छीन ली गयी। क्या करू ? कोई उपाय नही। 'पूर्व-सचित कर्मों का भोग भोगना पडता है।' त्राहि-त्राहि करती हुई अपनी तकदीर को कोसने लगी।

त्रिशलादेवी ने ज्योही चौदह महास्वप्न देखे त्योही रोमाचित हो गई। प्रसन्नता का पार न रहा। उठी और सिद्धार्थ के शयन-भवन मे आकर मधुर व सूक्ष्म स्वर मे वोलने लगी—'महाराज ! मुझे चौदह स्वप्न आये हैं।' एक-एक स्वप्न की गरिमा व्यक्त करते हुए नृपति ने कहा—'देवानुप्रिये ! तुम्हारे ये स्वप्न वास्तव मे वहुत ही उच्च स्तर के स्वप्न कहलाते हैं। ये सारे के सारे स्वप्न श्रेयस्कर हैं, मगलकारी हैं।

'लगता है इन स्वप्नो के प्रताप से भाग्यशाली महान पुत्र की प्राप्ति तो होगी ही, इसके साथ-साथ अन्य लाभ भी होगा। हमारा पुत्र योग्यवय प्राप्त कर महान् राज्याधिपति होगा। कुल को चमकाने वाला होगा। सूर्य के समान तेजस्वी होगा।'

स्वप्नो का फल प्रशस्त श्रवण कर महारानी वहुत ही प्रसन्न हुई। हाथ जोडकर वडे विनम्र शब्दो मे वोली—'पतिदेव ! आपका कथन अक्षरश सत्य है।' यो कहकर शयनागार मे शय्यारूढ होकर चिन्तन करने लगी। अव निद्रा लेना उचित नही। ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय व धर्म-जागरण आदि सद्विचारो मे लीन होना ही श्रेयस्कर है।

सिद्धार्थ नरेश ने राज्यसभा मे पहुचते ही स्वप्नविदो को आमन्त्रित किया। महारानी के स्वप्नो को सुनाते हुए नृप ने कहा—इनका फल क्या है ? परस्पर विचार-विनिमय कर स्वप्न-वेत्ता वहुत ही प्रसन्न मुद्रा मे वोले—

'महाराज ! स्वप्नशास्त्र मे वहत्तर शुभ स्वप्नो का उल्लेख है, जिनमे से वयालीस स्वप्न तो सामान्य हैं और तीस महा-स्वप्न हैं। उन तीस महास्वप्नो मे से चौदह स्वप्न महारानी ने देखे हैं। आप वडे भाग्यशाली हैं। इन महास्वप्नो के योग से आपके राज्य मे समस्त दृष्टियो से अतीव लाभ होगा। सर्वत्र आपकी कीर्ति-ध्वजा लहरायेगी। गर्भकाल सम्पन्न होते ही अद्वितीय पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। वह

कुलाधार व कुल दीपक होगा। यौवन वय प्राप्त होने पर वह प्रबल पराक्रमी महावीर होगा। चक्रवर्ती सम्राट् अथवा धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर होकर जैन-धर्म की प्रभावना करेगा। महास्वप्नो का फल सुनकर सिद्धार्थ बासो उछलने लगे। अपने आपको कृतपुण्य समझते हुए स्वप्नवेत्ता को प्रीतिदान देकर सम्मानपूर्वक विदा किया।

स्वप्नो का फल श्रवण कर, हर्षित अति सिद्धार्थ।
पुत्ररत्न की प्राप्ति से, जीवन होगा सार्थ॥

माता का मोह

महारानी त्रिशला गर्भ का सम्यक् पालन-पोषण करती हुई अपने आपको धन्य समझने लगी। एक दिन गर्भस्थ महावीर ने सोचा—मेरे हलन-चलन से माता को कष्ट होता होगा, इस दृष्टि से वे निश्चल हो गए। उनकी निश्चलता ने माता के हृदय मे दु ख का ज्वार उभर आया—अरे! यह क्या? मेरा गर्भ निश्चल क्यो हुआ? क्या किसी ने हरण कर लिया अथवा गल गया? चिन्ता-चिन्ता मे वह उदास बन गयी। राग-रग, मगल वाद्य बन्द कर दिये गये। मन ही मन पश्चात्ताप करने लगी—हाय, मेरे जैसी हतभागिनी महिला कोई नही है। ऐसे पुरुषोत्तम पुत्र की माता बनने का स्वप्न निष्फल हो गया। मृत्यु से भी अधिक असह्य वेदना का अनुभव करने लगी। आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। सारे घर मे शोक का वातावरण छा गया।

गर्भस्थ भगवान ने अपने अवधिज्ञान से निश्चलता का परिणाम देखा। सोचा, मेरी निश्चलता के कारण माताजी तो शोक-विह्वल हो गयी हैं।

सर्वत्र उदासीनता के काले बादल मडरा गये हैं। तत्क्षण भगवान ने अपनी अगुली हिलाई। माता त्रिशला का हृदय प्रसन्नता के सागर मे डूबने लगा। आकृति पर मुस्कराहट की आभा बिखरने लगी। घर का वातावरण हर्ष मे परिणत होने लगा। पुन मगल वाद्य बजने लगे। चारो तरफ जय-जय की ध्वनि गूजने लगी।

गर्भस्थ भगवान ने सोचा—मेरे प्रति माता-पिता का प्रगाढ मोह है। मैं किसी भी स्थिति मे इनसे अलग नही रह सकता। अत मैं यह अभिग्रह करता हू कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, दीक्षा नही लूगा। माता के मोह ने भगवान महावीर जैसे अवतारी पुरुष को भी सकल्प करवा दिया। यह मोह कर्म का प्राबल्य ही जन-जन को भटकाने वाला होता है। जब तक जीव मे मोह कर्म रहेगा तब तक साध्य की सिद्धि साकार नही हो सकती।

मोह कर्म जजीर से, जकडित प्रभु गर्भस्थ।
कर्म काट कर अन्त मे, बने वीर आत्मस्थ॥

वीर जन्मोत्सव

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी का स्वर्णिम दिन जन-जन के लिए आनन्दकर सिद्ध हुआ। अर्धरात्रि का समय था। सभी ग्रह उच्च स्थान पर आते ही त्रिशला महारानी की कुक्षि से पुत्र रत्न की उपलब्धि हुई। चारो तरफ खुशियो का पार नही रहा। भयकर अधकार मे भी प्रकाश की आभा बिखरने लगी। असह्य वेदना से सपीडित नारकीय जीव क्षणिक सुख का अनुभव करने लगे। ६४ इन्द्रो व अन्य देवी-देवताओ द्वारा भगवान का जन्मोत्सव प्रारम्भ हुआ। मेरु पर्वत की 'अति पाडुकवला' नाम की शिला पर शकेन्द्र भगवान महावीर को अपनी गोद मे लेकर बैठ जाते है और देवो ने पाषाण-भेदक जलधारा के माध्यम से भगवान को स्नान कराना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र के दिल मे सन्देह उत्पन्न हुआ कि प्रभु का कोमलतम शरीर विस्फोटक सलिल धारा को कैसे सहन कर सकेगा? इन्द्र के मन का अवधिज्ञान द्वारा पता लगते ही प्रभु ने अपने बाए पाव के अगूठे से मेरु शिला को दबाया। मेरु पर्वत कापने लगा। पृथ्वी मे कम्पन का वेग बढा। समुद्र उछलने लगा। प्रभु के अनन्त बल से परिचित होते ही प्रभु से क्षमा-याचना करने लगा और बोला—भगवन्! मेरे हृदय मे आपके प्रति जो सशय हुआ वह दूर हो गया है क्योंकि आप तो अनन्त बली है। अवनत होकर प्रभु की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा। जन्मोत्सव सम्पन्न होते ही देवेन्द्र ने प्रभु को माता के पास लाकर सुला दिया और माता की अवस्वापिनी निद्रा को दूर कर सुरालय की ओर प्रस्थान कर दिया।

पुत्र-जन्मोत्सव पर सम्राट सिद्धार्थ द्वारा स्थान-स्थान पर गायन व वादन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। नाटक व खेल के साथ-साथ अन्य सुख-सुविधाओ का भी निर्देश दिया गया। चारो तरफ मगल ही मगल। सारे शहर का पवित्रतम वातावरण। विभिन्न प्रकार के भोजन बनाकर स्वजन-परिजनो को आमन्त्रित कर सबको सम्मानित किया गया।

जब बालक गर्भ मे आया तब से धन-धान्य, वैभव-सम्पदा, मान सम्मान एव राज्य मे हर दृष्टि से अभिवृद्धि हुई। इसलिए इनका नाम 'वर्धमान' रखना प्रियकर लगा। भयकर उपसर्गो व परीषहो को धैर्यपूर्वक सहन करने के कारण देवो ने उनका नाम रख दिया था 'महावीर'।

भगवान के ज्येष्ठ भ्राता का नाम था नन्दीवर्धन एव बहन का [illegible] सुदर्शना। उनकी पत्नी का नाम था यशोदा एव पुत्री का नाम था प्रियदर्शना। भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के [illegible] थे। धर्म के प्रति उनके मानस मे अच्छी श्रद्धा थी।

महावीर के जन्म से, सबके दिल मे हर्ष।
नृप घर मे हर दृष्टि से, वृद्धि हुई उत्कर्ष।

देव-परीक्षा में उत्तीर्ण

एकदा महावीर अपने समवयस्क मित्रो के साथ क्रीडा करते हुए उद्यान मे गये और 'सकुली' नामक खेल खेलने लगे। शक्रेन्द्र ने देव-सभा मे महावीर की प्रशसा करते हुए कहा—भरत क्षेत्र मे आठ वर्षीय शिशु वालक महावीर ऐसे धीर-वीर और साहसी है कि देव-दानव भी उन्हे परास्त नही कर सकते। वडे पराक्रमी अनत वली हैं। तत्रस्थ सभी देव इन्द्र का कथन सुनकर बहुत ही प्रभावित हुए, प्रसन्न हुए। किन्तु एक देव ने उपहास करते हुए कहा—मैं जाता हू और उसे विचलित कर आता हू। परीक्षा करने के लिए वह उद्यान मे पहुचा। उस समय वालको मे वृक्ष को स्पर्श करने की होड लगी हुई थी। वह मिथ्यात्वी देवता जहरीले सर्प का रूप वनाकर मृत्युलोक मे आया। वहा पहुच वृक्ष के तने पर लिपट गया। फुफकार करता हुआ फन फैलाना प्रारम्भ कर दिया। नन्हे-नन्हे वालक क्रीडा करने मे व्यस्त थे। अचानक उस भीषण विषधर को देखते ही शिशु मडली दौडने लगी। महावीर को अनतबली होने के कारण भय कहा सताने वाला था। अपने सहचरो को धैर्य वधाते हुए कहा—साथियो! घवराने की जरूरत नही है। हिम्मत रखो। सव अच्छा होगा। अव महावीर उस सर्प के पास पहुचे, और उसे रस्सी के समान पकडकर आकाश मे उछाल दिया। महावीर की अभयता और साहसिकता को देखकर सारे समवयस्क विस्मित हुए और मुक्त कठ से भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।

सभी साथियो मे वृक्ष पर चढने की स्पर्धा जागृत हुई। परस्पर एक शर्त हुई कि विजयी राजपुत्र पराजित की पीठ पर सवार होकर निर्धारित स्थान पर पहुचे। वह देवता राजपुत्र का रूप वनाकर उस खेल मे सम्मिलित हो गया। सवके देखते-देखते महावीर सवसे पहले वृक्ष के अग्र भाग पर पहुच गये और अन्य राजकुमार वीच मे ही रह गये। पराजित देव सवसे नीचे रहा। विजयी महावीर उन निरस्त कुमारो की पीठ पर सवार हो गये। अन्त मे देव की वारी आयी। वह देव हाथ-पाव पृथ्वी पर टिकाकर घोडे जैसा हो गया। महावीर उसकी पीठ पर चढकर वैठ गये। देवता ने वैक्रिय द्वारा अपना रूप वढाया। वह वढता ही गया। एक महान् पर्वत से भी ऊचा। उसके सारे अवयव विकराल एव भयप्रद दिखने लगे। मुह पाताल जैसा एक महान् गड्ढा, लपलपाती जिह्वा, मस्तक के वाल पीले और कीले जैसे खडे हो गये उसके दात करौत के दातो के समान तेज, आखे अगारो से भरी हुई सिगडी के समान जाज्वल्यमान। नासिका के छेद पर्वत की गुफा के तुल्य सवको दिखने लगे। उसकी भृकुटि सर्पिणी के समान टेढी-मेढी थी। ऐसा भीषणतम रूप निहार कर महावीर अपने अवधिज्ञान द्वारा समझ गए कि वास्तव मे यह मानव नही है, देवता है। मेरी परीक्षा हेतु यहा आया है। उन्होंने उसकी पीठ पर मुष्टि से प्रहार किया। देव का वढा हुआ रूप छोटा-सा वन

गया। देव ने सोचा—इन्द्र ने जो बात कही थी, वह बिल्कुल सत्य है। वास्तव मे महावीर अनतबली है। इनको कोई भी पराजित नही कर सकता। उसने भगवान महावीर से क्षमा-याचना करते हुए कहा—आज मेरा सारा सशय दूर हो गया है। चरणो मे शत-शत अभिवन्दना। अब मैं अपने स्थान पर जाता हू।

देव परीक्षा मे हुए, महावीर उत्तीर्ण।
हुआ मुष्टि के योग से, सुर का अहम् विदीर्ण॥

स्वयं बुद्ध

माता-पिता ने सोचा कि महावीर को अध्ययन हेतु किसी विद्यालय मे प्रेषित करना उचित रहेगा, क्योकि अब यह नव वर्ष का होने वाला है। किसी कलाचार्य के पास पढने हेतु भेजा गया। उस समय सौधर्म इन्द्र का आसन प्रकपित हुआ। इन्द्र ने सोचा—कुमार महावीर के माता-पिता अपने आत्मज के अमित ज्ञान से अपरिचित प्रतीत हो रहे है, अत इनको व्याकरणाचार्य के पास पढने हेतु भेजा गया है। तीन ज्ञान का धनी अवतारी पुरुष (परमेश्वर) इस अल्पज्ञ व तुच्छमति के स्वामी कलाचार्य के पास क्या अध्ययन करेगा। महावीर तो शिष्य नही, स्वय गुरु बनने योग्य महापुरुष है। जिनेश्वर भगवान का तो कोई गुरु होता ही नही है। मै वहा जाऊ और कलाचार्य को समझाऊ कि इस [illegible] पुरुष को तू क्या पढायेगा ?

इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण किया। विद्यालय मे आकर ज्योही वह बैठा, त्योही महावीर पढाई करने के लिए विद्यालय मे पहुचे। इन्द्र ने महावीर का स्वागत किया। अध्यापक के आसन पर उनको बैठाकर गुण-गाथा गाने लगा। तत्रस्थ अध्यापको के मानस मे आश्चर्य का पार नही रहा—यह महा-मानव कौन है ? अध्यापक की कुर्सी पर आकर कैसे बैठ गया ? इन्द्र ने महावीर के चरणो मे वन्दन करते हुए पूछा—भगवन्! व्याकरण सम्बन्धी मेरे कुछ संदिग्ध प्रश्न है, कृपया उत्तर फरमाने का कष्ट करे। महावीर ने [illegible] इन सभी प्रश्नो का उत्तर बहुत ही सरल भाषा मे दे दिया। उपाध्याय ने मन ही मन सोचा—[illegible]! यह महावीर तो कोई दिव्य आत्मा है। ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुष [illegible] विरले ही मिलते है। मुक्त-कठ से सब उनकी प्रशसा करने लगे।

देवेन्द्र ने उपाध्याय से कहा—हे विद्याचार्य! आप इनको [illegible] ध्यान न दे। ये ज्ञान के महासागर है। इसी जन्म मे [illegible] जाते है। इनकी सेवा व परिचर्या करना हम सब का कर्तव्य है।

विद्याचार्य अवनत शिरसा वदन करने लगा। प्रभु ने इन्द्र के प्रश्नो के

उत्तर दिये उमसे उन्होंने व्याकरण की रचना करके उमे 'ऐन्द्र व्याकरण' के नाम मे प्रचारित किया। कुछ ही ममय के पश्चात् इन्द्र ने देवलोक की ओर प्रस्थान किया। विद्याचार्य महावीर को साथ लेकर सम्राट् सिद्धार्थ की राज्य-मभा मे पहुचे। कर-वद्ध होकर निवेदन की भापा मे कहा — महाराज ! आपके पुत्र को मैं क्या पढाऊ ? इनकी वुद्धि, विलक्षणता व ज्ञान-परायणता के आगे मेरी वुद्धि तो बिल्कुल तुच्छ है। इन्हे किसी प्रकार की विद्या मिखाने की आवश्यकता नही है। ये स्वय वुद्ध हैं। उपाध्याय की वाते सुनकर राजा सिद्धार्थ वहुत ही प्रमन्न हुआ। मन ही मन मे चिन्तन करने लगा—मेरा बडा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे पुत्र रत्न व कुलदीपक की उपलब्धि हुई। आगे जाकर निश्चित ही यह मेरे कुल पर कलश चढाने वाला होगा।

पुरुप रत्न श्री वीर प्रभु, सिद्धार्थ कुल हस।
तेजस्वी दिनकर सदृश, विद्वद्गण-अवतस ॥

संसार से निर्लिप्त

राजकुमार महावीर तरुण अवस्था मे परिवर्तित हुए। उनकी रूप-सपदा से आकर्पित कौन नही होता था ? चारो तरफ हवा फैलते ही कई राजाओ के मन मे भावना जागृत हुई कि राजकुमार महावीर अपना दामाद वन जाये तो हर दृष्टि मे हमारी मनोकामना पूर्ण हो सकती है। यौवन वय मे मसारी लोगो की इन्द्रिया उन्मत्त हो ही जाती है। किन्तु भगवान महावीर ससार की दृष्टि से विल्कुल निर्लिप्त एव विपय-वासना की दृष्टि से विलकुल निर्विकार थे। विवाह करने की तनिक भी इच्छा नही थी। वे भौतिक सुखो व काम-भोगो को जहरीले विपधर की भाति प्राणविध्वसक समझते थे। आध्यात्मिक क्षेत्र मे उनकी वडी अभिरुचि थी।

एकदा राजा ममरवीर का मन्त्रिमडल राजकुमारी यशोदा का विवाह महावीर मे करने हेतु मम्राट् सिद्धार्थ की राज्य-सभा मे उपस्थित हुआ। अपनी कामना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा—महाराज, हम राजकुमारी यशोदा का महावीर से सवध करने के लिए आये हैं।

मम्राट मिद्धार्थ ने ममागत अतिथियो का सत्कार करते हुए कहा—आपका कथन अक्षरश सत्य है, उपयुक्त समय है, और मैं चाहता हू कि महावीर का विवाह जल्दी मे जल्दी हो जाये। किन्तु निर्विकार महावीर पाणिग्रहण हेतु स्वीकार नही हो रहा है। फिर भी प्रयास करूगा। नृप ने महावीर के मित्रो को वुलाकर उन्हे मारी स्थिति से अवगत किया। महावीर से आग्रह करते हुए मित्रो ने कहा—आपकी विपय-विरक्तता से हम मभी परिचित है, फिर भी लौकिक दृष्टि से कुछ चिन्तन करना परम अपेक्षित है। माता-पिता के इगित को समझना भी वहुत

आवश्यक है। विवाह करने की अनिच्छा होते हुए भी आपको स्वीकृत हो जाना चाहिए जिससे हम भी प्रसन्न होगे व आपके माता-पिता के मानस मे भी आनन्द का प्रवाह बहेगा।

महावीर ने कहा—मित्रो! ऐसे अनर्गल शब्दो का व्यवहार करना श्रेयस्कर नही है। सारा ससार वैषयिक सुखो मे लीन है। इनकी उपलब्धि के लिए सब भटकते रहते है। किन्तु विषयो के प्रति मेरी अभिरुचि नही है। मेरे सारे प्रयोग ससार-विरक्ति के है। माता-पिता के मोह के कारण ही दीक्षित नही हो रहा हू। अब आप लोग वृथा आलाप क्यो

अचानक माता त्रिशला का आगमन। महावीर द्वारा अभिवन्दना। मातेश्वरी को सिंहासन पर बैठाकर सहसा आने का प्रयोजन पूछा।

मातेश्वरी ने अपने मधुर शब्दो मे कहा— पुत्र! तुम्हारे जैसे परम विनीत, प्रतिभा-सम्पन्न, सुयोग्य पुत्र की सप्राप्ति से हम धन्य हैं! हमारा वश धन्य है! सारा ससार ही धन्य-धन्य का अनुभव कर रहा है। किन्तु तुम्हारी सात्त्विक उदासीनता देखकर हम सब व्यथित हैं। पीडित हैं। विवाह करने की स्वीकृति देकर हम सबको आह्लादित करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। प्रिय आत्मज! तुम जन्म से ही विरक्त हो। काम-भोगो का परित्याग कर निर्ग्रन्थ बनना चाहते हो, फिर भी कुछ अनुकम्पा करो। मेरा तो साग्रह एक ही कहना है कि तुम विवाह करके मेरी मनोकामना को साकार करो।

'महावीर' माता के आग्रह को कैसे टाल सकते थे? उन्होंने अवधिज्ञान से अपने भविष्य को जाना, देखा। अभी तक भोगावली कर्म मेरे अवशेष हैं। उनका भोग अनिवार्य है। विवाह की स्वीकृति मिलते ही माता-पिता के मानस-सागर मे आह्लाद का फव्वारा छूटने लगा। मगल-वेला, मगल घडी मे राजकुमारी यशोदा के साथ महावीर की शादी हो गयी। यथासमय एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम प्रियदर्शना रखा गया।

मोह कर्म के योग से, होता वीर विवाह।
पूर्ण हुई यो सहज ही, माता-पिता की चाह॥

नन्दीवर्धन आग्रह

गर्भकाल मे महावीर ने प्रतिज्ञा ग्रहण की थी कि जब तक माता-पिता [illegible] तब तक मैं दीक्षा नही लूगा। इसी कारण वे [illegible]। माता-पिता का स्वर्गवास होने पर वे धर्म-साधना [illegible] मन [illegible] जुट गये। भगवान ने अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्धन को निवेदन किया

मे कहा—बन्धुवर ! ससार असार है। जन्म-मरण की ज्वाला मे सब भस्म हो रहे है। जो जन्म लेता है, वह मरता भी है। अत माता-पिता के वियोग पर आर्त-ध्यान करना कर्म-बधन का हेतु है। अपने आपको स्वस्थ एव मस्त रखना हम सबका कर्तव्य है। महावीर की वाणी का असर नन्दीवर्धन पर पडा। वह शोक-विहीन होकर बोला—मत्रियो ! भाई वर्धमान को बुलाइए और मगल मुहूर्त देखकर उसका राज्याभिषेक कर दीजिए।

वर्धमान ने बडे विनम्र शब्दो मे कहा—हे ज्येष्ठ सहोदर ! ससार मे मुझे ग्लानि हो रही है। राज्य-सचालन व भोग-विलास मे रुचि नही है। ज्येष्ठ भ्राता पिता के तुल्य होता है। मैं तो दीक्षित होना चाहता हू। कृपया आप मुझे अनुमति दीजिए।

नन्दीवर्धन ने बडे ही सतुलित शब्दो मे कहा—बन्धुवर ! अभी तो माता-पिता का स्वर्गवास हुआ है और तुम प्रव्रजित होने की सोच रहे हो, एक दु ख को तो भूल ही नही सका, दूसरे दु ख से पीडित बन जाऊगा। अभी मैं सयम ग्रहण की आज्ञा नही दूगा। मैं जानता हू कि तुम ससार से पराड्मुख हो। मोह-ममता से मुक्त तुम्हारी आत्मा वास्तव मे परम पवित्र है। किन्तु हम सब निर्मोही नही हैं। अत अभी दीक्षा नही लेने देंगे।

ज्येष्ठ बन्धु की गद्गद वाणी सुनकर वर्धमान ने आत्मीय भाषा मे कहा—भ्रातृवर ! आप स्वय विवेकशील व विज्ञ है। मोह बढाना दु ख का निदान है। मोह घटाना हर दृष्टि से लाभप्रद है। जीवन का अमूल्य समय जो व्यतीत हो रहा है, उसे सफल बनाना बुद्धिमत्ता है। जैन शास्त्रो मे अनत अनुपम सुखो की प्राप्ति मे मानव भव की विशेष उपयोगिता मानी गई है। मनुष्य गति के अतिरिक्त अन्य गति से मोक्ष की उपलब्धि नही हो सकती। अत आप मुझे सयम की स्वीकृति प्रदान करें।

नन्दीवर्धन ने बडे मार्मिक शब्दो मे कहा—भाई वर्धमान ! अभी मैं आज्ञा नही दूगा। कम-से-कम दो वर्ष और प्रतीक्षा करो। दो वर्ष के बाद निर्ग्रन्थ बनकर, आत्म-साधना कर, कर्मो को क्षय करके साध्य को प्राप्त करना यही मेरी माग है। माता-पिता के लिए इतने लम्बे समय तक गृहवास मे प्रवास किया। क्या बडे भाई के लिए दो वर्ष भी नही दोगे ? इस आग्रह को मानकर अवश्य ही तुम मेरी भावना को साकार करोगे।

वर्धमान ने सोचा—ज्येष्ठ बन्धु के आग्रह को टालना मेरे लिए उचित नही, और दो वर्ष का समय गृहवास मे बिताना पडेगा, क्योकि अभी तक कर्मो का भोग अवशेष है। उन्होने अवधिज्ञान से ऐसा समझकर भ्राता का कहना मानते हुए कुछ अभिग्रह किया कि मैं गृहवास मे रहता हुआ भी ब्रह्मचर्य का पालन करूगा।

सचित जल का सेवन नही करूगा। पापकारी प्रवृत्तियो से बचता रहूगा। रात्रि-भोजन नही करूगा। ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग करता हुआ आत्मा मे रमण करूगा।

नन्दीवर्धन कथन पर, दिया वीर ने ध्यान।
घर मे रहकर भी रहे, आत्म-मुखी अम्लान ॥

वीर-निष्क्रमण

गृहवास मे रहते-रहते कुछ समय बीता। वर्षीदान की परम्परा प्रत्येक तीर्थंकर को निभानी पडती है। भगवान महावीर ने भी वर्षीदान देना प्रारम्भ कर दिया। प्रति-दिन प्रात काल एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राओ का दान करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष मे तीन अरब, अठासी करोड, अस्सी लाख सोने के सिक्को का दान किया। यह सारा धन देवो द्वारा भण्डार मे रखा जाता है। ज्योही दो वर्ष की अवधि पूर्ण हो रही थी त्योही लोकान्तिक देवो ने नमस्कार करते हुए श्री वर्धमान को निवेदन की भाषा मे कहा—हे तीर्थंकर देव ! धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन कर जन-जन का कल्याण करे और मोक्ष के मार्ग का पथ प्रशस्त करने की कृपा करावे।

दो वर्ष का काल सम्पन्न होते ही नन्दीवर्धन की आकृति पर विषाद की रेखा अकित हो जाती है। अब वर्धमान घर मे रहने वाला नही है। ज्येष्ठ बन्धु के आदेशानुसार महाभिनिष्क्रमण महोत्सव प्रारम्भ हुआ। चारो प्रकार के देव भी अपनी वैभव-सम्पदा लेकर वहा पहुचे। शक्रेन्द्र ने अपने वैक्रिय बल से एक विशाल स्वर्ण-मणि एव रत्न-जडित देव छन्दक (मण्डप के बीच) सिंहासन बनाया। उस पर भगवान को बैठाकर शतपाक एव सहस्रपाक तेल से मर्दन आदि का कार्य प्रारम्भ किया। स्नान आदि का कार्य सम्पन्न होते ही मूल्यवान वस्त्र व कटि-सूत्र आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनाए। चन्द्रप्रभा नामक शिविका का निर्माण किया। शिविका के मध्य मे रत्न-जडित सिंहासन पर भगवान को बैठाया। प्रभुवर के पास दोनो तरफ शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र खडे रहकर चामर डुलाने लगे। विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे। अभिनिष्क्रमण यात्रा आगे बढी। जय-जय के उद्घोषो से आकाश-धरा एक होने लगे। जनता, देव, देवेन्द्रो ने भगवान की मंगल कामना करते हुए कहा—हे भगवान ! आपकी जय हो। आपका कल्याण हो। आपकी साधना सफल हो। केवलज्ञान-रूपी आलोक से समस्त जीवन विश्व को आलोकित करे। क्षत्रिय-कुड नगर मे बडे ठाट-बाट से निष्क्रमण यात्रा चलने लगी। उस समय नगर की चहल-पहल जन-जन के लिए दर्शनीय बन रही थी। हजारो-हजारो लोगो का अभिनंदन स्वीकृत करते हुए भगवान महावीर [illegible] [illegible] मे

पहुचे।

प्रभुवर का अभिनिष्क्रमण, हुआ बडे उत्साह।
मोक्ष प्राप्त कर जय वरो, सबकी मगल चाह॥

भीषण उपसर्ग

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी का मगल दिवस। विजय मुहूर्त्त। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। शिविका से उतरकर अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर सस्थित हुए। चारो तरफ मगल वाद्य बज ही रहे थे। लुचनादि क्रिया से निवृत्त होकर बेले के तप मे सिद्ध भगवान को नमस्कार कर बाढ स्वर मे प्रतिज्ञा करते हुए महावीर ने कहा —'सव्व मे अकरणिज्ज पाव'—मेरे लिए सभी पाप अकरणीय हैं। सामायिक चरित्र अगीकार करते ही मन' पर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया।

दीक्षा ग्रहण करते ही भगवान ने अभिग्रह करते हुए कहा—आज से बारह वर्ष पर्यन्त मैं मेरे शरीर की सार-सम्भाल नही करता हुआ विहरण करूगा। देव, मनुष्य व तिर्यच द्वारा जो भी उपसर्ग आयेगे, उन्हे सहर्ष सहन करूगा। ऐसा अभिग्रह करके भगवान ने वहा से विहार किया। पारिवारिक तथा अन्य लोगो ने विदाई दी। जब तक आखो से ओझल नही हुए, तब तक सब लोग निहार ही रहे थे। आखिर सबने अपने-अपने घर की ओर प्रस्थान किया। भगवान आगे बढे। विहरण करते-करते 'कुर्मार' ग्राम पधारे। ध्यानावस्था मे आरूढ होकर वे आत्मा मे रमण करने लगे।

इसी ग्राम के बाहर सूखे हुए ठूठ के समान निश्चल होकर ध्यान मे लीन हो गये। उस समय एक किसान अपने बैलो को चरने के लिए जगल मे छोडकर गो-दोहन हेतु गाव मे चला गया। बैल चरते-चरते जगल मे भटक गये। किसान लौट-कर वापस वहा आया। बैलो को वहा नही देखने पर उसने भगवान से पूछा—'मेरे बैल यहा पर चर रहे थे, अब कहा है?' भगवान ध्यानस्थ थे। अपने आप मे लीन थे। उस किसान ने बैलो की खोज की। नहीं मिले। मन मे दु ख का पार नही रहा। सुबह होते ही जब वह पुन भगवान के पास आया तो बैल वहा पर देखे। किसान ने सोचा—मेरे बैल इसी ठग ने छिपा दिए है। यह वास्तव मे बहुत बडा लुटाक है। क्रोधाकुल होकर भगवान को मारने के लिए उद्यत हुआ।

शक्रेन्द्र का आसन प्रकपित हुआ। भगवान के चरणो मे उपस्थित हो वन्दन किया। ग्वाले की धृष्टता देखकर शक्रेन्द्र ने कहा—'अरे पापी! यह क्या कर रहा है? राज्य सम्पदा को छोडकर ये सयमी बने है। ऐसे उत्तम महापुरुष, एक अव-तारी, क्या तेरे बैल चुरायेगे? धिक्कार है तेरे जीवन को, महामूर्ख! किसी पर

असत्य आरोप देना घोर पाप है। ऐसे महापुरुषो का गुणोत्कीर्तन करना मेरा कर्तव्य है। भविष्य मे ऐसा अपराध मत करना।'

देवेन्द्र ने प्रभु चरणो मे निवेदन करते हुए कहा—भगवन्, आपने बारह वर्षीय अभिग्रह किया है। लगता है समय-समय पर विभिन्न प्रकार के उपसर्ग उत्पन्न होगे, इसलिए अब मैं आपकी सेवा मे ही रहना चाहता हू।

भगवान महावीर ने कहा—हे देवराज! ऐसा कभी नही हो सकता। अरिहन्त किसी दूसरे का सहयोग लेने की कामना नही रखते। वे अपने पुरुषार्थ से ही कर्मो का अवसान कर लक्ष्य को प्राप्त करते है।

दूसरे दिन भगवान का विहार हुआ, 'कोल्लाक' गाव मे पधारे। वहा पर 'बहुल' ब्राह्मण के घर पर बेले के तप का पारण हुआ। देवो ने 'अहोदानम्-अहोदानम्' का उद्घोष कर पारणे की मुक्त कठ से प्रशसा की और पाच-दिव्यो की वर्षा करते हुए पात्र-दान का गुण कीर्तन किया।

भगवान की आकर्षक आकृति एव यौवनवय के विशिष्ट रूप-सौदर्य से मोहित होकर युवतिया अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग देती हुई बोली—इस तरुणावस्था मे सयम ग्रहण करना बुद्धिमत्ता नही है। सन्यास के लिए वृद्धावस्था ही श्रेयस्कर कहलाती है। आप स्वय विज्ञाता है, अधिक क्या कहे?

दीक्षित होते ही अमित, भीषणतम उपसर्ग।
सकल परीषह सहन कर, पायेंगे अपवर्ग।।

कठोर तप के धनी महावीर

महावीर शीत उष्ण, डंस-मच्छर, लाभ-अलाभ, निन्दा-स्तुति आदि अनेको परीषहो को सहन करते हुए ग्रामोग्राम विहरण करने लगे। मार्ग मे [illegible] कभी बालक मिल जाते, तो वे भी अज्ञानवश गालिया देते और कभी-कभी पत्थर व लकडी आदि से भी मारने को तैयार हो जाते। फिर भी भगवान अपनी समता का परित्याग नही करते। गृहस्थो से न सम्पर्क, न ही वार्तालाप। वे तो अपनी ध्यान-क्रिया मे ही निमग्न रहते थे। निर्जन झोपडियो मे, पानी पिलाने के प्याऊ मे, सूने घर मे, हाट के बरामदे मे, लोहार व कुम्भकार की शाला मे, उद्यान मे, वृक्ष की छाया आदि मे एकाग्र होकर ध्यान करने लग जाते।

प्रव्रजित होने के पश्चात् भगवान सदैव जागृत रहे। [illegible] रहते तो सर्प, बिच्छू, पशुओ और गिद्धादि पक्षियो द्वारा विभिन्न [illegible] होने पर भी वे मेरु की भाति निश्चल, निष्कम्प [illegible] करने लग जाते फिर भी शान्त [illegible] भगवान [illegible] करने मे निर्लज्ज बन जाते।

मनुष्य व तिर्यंच सम्बन्धी भयकर व असह्य उपसर्ग भी उत्पन्न होते। फिर भी सब कष्टो को सहनशील बनकर सह लेते, यह भगवान की अविरल विशेषता कहलाती है। उन्होंने अपने ज्ञान से देखा कि मेरे भोगावली कर्म अभी तक बहुत अवशिष्ट है। उनका यहा निर्जरण असम्भव प्रतीत हो रहा है। कर्म निर्जरण हेतु लाट देश की 'वज्र भूमि' और 'शुभ्र भूमि' के क्षेत्र अनुकूल है। चिंतन को साकार रूप देते हुए भगवान उधर ही पधारे। वहा के अनार्य लोग अजीब पुरुष देखकर क्रोध मे भभक उठते। मारते-पीटते और शिकारी कुत्तो को छोडकर कटवाते। उस क्षेत्र मे विचरने वाले शाक्यादि साधु भी उन हिंसक क्रूर कुत्तो से बचने के लिए लाठिया रखते थे। किन्तु साम्ययोगी भगवान महावीर शरीर की तनिक भी सार-सम्भाल नही करते थे। उनके पास न ही लाठी थी, न ही कोई अस्त्र-शस्त्र थे।

भगवान को कोई लकडी से मारता, कोई मुष्टि-प्रहार करता, तो कोई भाले की नोक को शरीर मे घोपकर छेद कर देता। विभिन्न प्रकार के प्रहार होने पर शरीर मे असह्य वेदना होती थी। फिर भी उनके उपचार के लिए कोई भी प्रयास नही करते थे। शीतकाल व उष्णकाल के दारुण परीषहो को सहन करने मे महाबली थे। तपस्या के पारणो मे आठ महीने तक भगवान ने रुक्ष अन्न तथा उडद के बाकले ठडे ही ग्रहण किये। महीने-महीने, दो-दो महीने, छह-छह महीने की घोर तपस्याए करते अपने लक्ष्य की ओर निर्भयतापूर्वक द्रुतगति से बढ रहे थे। जैसा-तैसा भी नीरस आहार मिलता, उसे शात भाव से ग्रहण कर लेते और कषाय, विषय, आसक्ति आदि दुष्प्रवृत्तियो से निवृत्त होकर शुभध्यान मे ही लीन हो जाते थे।

घोर तपस्या के धनी, महावीर भगवान।
निर्भयतापूर्वक बढे, सह-सह कष्ट महान्॥

शूलपाणि यक्ष

भगवान महावीर किसी यक्षायतन के मन्दिर मे ध्यान कर रहे थे। एक दिन इन्द्र-शर्मा पुजारी ने भगवान से कहा—'महात्मन्! अब आपको यहा पर नही रहना चाहिए। यह देव बडा क्रूर है, हिंसक है। जो व्यक्ति रात भर रहता है उसे जीवन से हाथ धोना पडता है।' प्रभुवर ध्यानस्थ थे। पुजारी अपने घर की ओर चला गया। यक्ष आया। उसने सोचा—यह व्यक्ति जो ध्यानस्थ खडा है वास्तव मे बडा अहकारी प्रतीत हो रहा है। इसका गर्व दूर करना मेरा कर्तव्य है।

व्यन्तर ने अपना विकराल रूप बनाकर अट्टहास करना प्रारम्भ कर दिया। चारो दिशाओ मे भयकर व प्रचड हास्य ध्वनि होने लगी, मानो आकाश टूटने की तैयारी कर रहा हो। ग्रह, नक्षत्र आदि टूटकर नीचे आने के लिए प्रयास कर

रहे हो। कल्पान्त-काल की भयावह घोष से ग्रामीण जनता काप उठी। लोगो ने सोचा—यह यक्ष ही किसी व्यक्ति पर क्रोधाकुल हो रहा है। यक्ष के उपसर्ग से भगवान कब विचलित होने वाले थे? ज्यो के त्यो आत्मस्थ बने हुए थे।

प्रथम प्रयोग खाली जाने के कारण यक्ष ने एक विशाल हाथी का रूप बनाकर भगवान को रौंदना प्रारम्भ कर दिया। अपने लबे दातो द्वारा अत्यन्त वेदना देने मे उन्मत्त बन गया। फिर एक जहरीले सर्प का रूप धारण कर कष्ट देने लग गया। भगवान के शरीर को लपेटकर कसा और मस्तक, नेत्र, नासिका आदि अवयवो को डसना प्रारम्भ कर दिया। तथापि महावीर अडिग रहे। विचलित कर ही कौन सकता था? यक्ष थक गया। उसने सोचा—यह कोई महान् पवित्र आत्मा है।

भगवद् सेवा मे लगे शक्रेन्द्र ने शूलपाणि यक्ष को ललकारते हुए कहा—हे अधमात्मन्! इसी अवसर्पिणी काल के ये अन्तिम (चौबीसवे) तीर्थंकर होने वाले है। इनकी सेवा करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। इनके अपरिमित अविनय से तूने भारी पाप का अर्जन किया है। भगवान तो अपने आप मे लीन है। शान्त है। किसी के भी प्रति द्वेष भावना नही है। सभी जीवो के प्रति मैत्री भाव रखते है। तू अगर अपना कल्याण चाहता है तो प्रभु से क्षमा मागकर भक्ति कर, सेवा कर, जिससे तुझे सम्यक्त्वबोध की उपलब्धि होगी।

शूलपाणि यक्ष ने भगवान की शरण मे जाकर बडी विनम्रता की भाषा मे कहा—हे पुरुषोत्तम! हे अनाथो के नाथ! मैं आपकी शरण मे हूँ। कृपया मुझे ऐसा दिशा-दर्शन दे कि मैं भी आत्मोत्थान कर सकूँ। भगवद्-उद्बोधन से तथा पूर्व-कृत पापो के पश्चाताप से शूलपाणि यक्ष सम्यक्त्वी बन गया।

यक्ष शूलपाणि बना, सम्यक्त्वी सुखकार।
प्रभु उद्बोधन से हुआ, पापी का उद्धार॥

पाखंडी अच्छन्दक

भगवद्-दीक्षाकाल का एक वर्ष परिपूर्ण होने वाला था। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए प्रभु 'मोराक' ग्राम के बाहर एक दिव्य उद्यान मे ठहरे। स्थिर व निश्चल होकर ध्यान के उच्च शिखर पर आरूढ हो गये। इसी ग्राम मे 'अच्छन्दक' नाम का एक द्वेषी पाखंडी रहता था। वह मन्त्र-तन्त्र द्वारा लोगो को आकर्षित कर लेता था। हजारो व्यक्ति उसके अनुयायी बन गये थे। उसकी आजीविका का आधार था पाखड और दम्भपूर्ण व्यवहार। उसके पाखंड की पोल खोलने के लिए सिद्धार्थ नाम के व्यन्तर ने कुछ प्रयोग किये।

एक ग्वाला कहीं से आ रहा था। सिद्धार्थ ने उसे बुलाया। प्रच्छन्न रहकर बोला—तू बैल चराने घर से निकला। मार्ग में तूने साप देखा। गत-रात्रि तू स्वप्न में रह-रहकर खूब रोया था। बोल, ये बातें सत्य हैं? ग्वाले के दिल में आश्चर्य का पार नहीं रहा—सभी बातें सत्य हैं, इसको पता कैसे लगा? उसने गाव में प्रचार किया कि बगीचे में बहुत बडे महात्मा ध्यान कर रहे हैं। वे भूत-भविष्य के ज्ञाता हैं। मेरी सभी गुप्त बातें उन्होंने यथार्थ बता दी। अनेक लोग वहा गये और अपनी-अपनी गुप्त बातें पूछने लगे। एक व्यक्ति ने पूछा—महात्मन्! यहा पर 'अच्छन्दक' नाम का एक ज्योतिषी है। वह निष्णात है। सिद्धार्थ ने कहा—वह धूर्त है। सबको ठगता है।

'अच्छन्दक' को इस बात का पता लगते ही वह क्रोधित होकर बोला—वह ढोंगी है। मैं उसकी पोल खोल दूगा। अनेक व्यक्तियों के साथ वह बगीचे की ओर चला। 'अच्छन्दक' ने घास का तिनका अपने दोनों हाथों की अगुलियों में इस प्रकार पकडा कि जिससे तिनके का एक सिरा एक हाथ की अगुली में दबा और दूसरा सिरा दूसरे हाथ की अगुली में। तेज स्वर में सबसे पूछा—यह तिनका मैं तोड़ूगा या नहीं?

देव ने प्रच्छन्न होकर कहा—तू इस तृण को नहीं तोड सकेगा। अच्छन्दक ने उसे तोडने के लिए अगुलियों में दबाया। देव-शक्ति से तिनके के दोनों सिरे शूल की तरह उसकी अगुलियों में घुस गये। रक्त झरने लगा। सब लोग हसने लगे। उसका सारा प्रभाव नष्ट हो गया।

सिद्धार्थ व्यन्तर ने कहा—यह चोर है। तत्क्षण कई उदाहरण प्रस्तुत किए गए, सब सही निकले—उसने फिर कहा—यह व्यभिचारी है। इसकी पत्नी सब कुछ बता देगी। लोग वहा पहुचे। पति-पत्नी में कुछ ही दिनों पूर्व लडाई हुई थी। दोनों में परस्पर गाली-गलौज होने लगा। वह अर्धांगिनी रुक-रुककर रो रही थी। लोगों ने सहृदयता से रुदन का कारण पूछा, तो उसने गद्‌गद् स्वर में कहा—यह दुष्ट अपनी बहन के साथ कुकर्म करता है। मनोभेद के कारण परस्पर में मार-पीट की नौबत आ गई।

अच्छन्दक की पोल खुलते ही लोग उससे घृणा करने लगे। सबसे तिरस्कृत व धिक्कृत अच्छन्दक ने भगवान को नमस्कार करते हुए कहा—'भगवन्! आपके योग से ही मैं तिरस्कृत हुआ हू। जब तक आप यहा पर रहेंगे, तब तक मैं पद-दलित व तिरस्कृत ही रहूगा। आप अन्यत्र कहीं पर पधार जायेंगे तब ही मेरी दूकान चल पायेगी।' भगवान को अपने अभिग्रह का स्मरण हुआ। अप्रीतिकर स्थान को छोड़ने के लिए भगवान ने वहा से विहार कर दिया।

अच्छन्दक का खुल गया, सहसा जब पाखण्ड।
लगे घृणा करने सभी हुआ विरोध प्रचड॥

चण्डकौशिक पूर्वभव

भगवान् महावीर श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहरण कर रहे थे। कुछ शुभ-चिन्तकों ने कहा—भगवन्! आपको इस मार्ग से नही जाना है क्योकि आगे कनखल नाम का आश्रम है, वहा पर एक भयकर विषधर रहता है। उसके विष का इतना भय है कि पशु-पक्षी भी वहा नही जाते। अत आप किसी अन्य मार्ग से पधार जाइए। भगवान ने अपने ज्ञान से सर्प का भूत, भविष्य और वर्तमान देखा। यह चण्डकौशिक सर्प पूर्वभव मे एक तपस्वी गुरु थे। पचमी समिति से वापस आते समय मार्ग मे गुरुजी के पैरो तले अनजान मे एक मेढकी दब गयी। कुछ ही समय के बाद वह मर गई। साथ चलते हुए शिष्य ने बडे विनय भाव से कहा—महाराज! प्रायश्चित कर लीजिए। सध्या मे प्रतिक्रमण करते समय शिष्य ने दो-तीन बार टोका, कहा—आर्यदेव! मेढकी मारने का प्रायश्चित कर लीजिए। गुरुजी क्रोध से व्याकुल हो उठे। शिष्य को मारने के लिए दौडे। उपाश्रय मे अंधेरा होने के कारण वे एक खम्भे से टकराये। उनका मस्तक फट गया। कोप की उग्रता से वे विराधक बन गये। ज्योतिषी देवता बने। वहा का आयुष्य पूर्ण कर कनखल के आश्रम मे पाच सौ तपस्वियो के कुलपति की पत्नी के गर्भ से 'कौशिक' नाम का पुत्र हुआ। अधिक गुस्सैल होने के कारण आगे चलकर वह 'चण्डकौशिक' नाम से प्रसिद्ध हो गया।

पिता का देहान्त हुआ। चण्डकौशिक कुलपति बना। अपने आश्रम पर तथा वनखण्ड पर अति मूर्च्छा भाव होने से वह किसी को आने नही देता। पत्र, पुष्प, फल को तोडकर अगर कोई ले जाने की कोशिश करता तो उसे मारने हेतु वह चण्डकौशिक उनके पीछे दौडता। वह दिन-रात आश्रम की सुरक्षा मे मग्न रहता था। उसके कठोरतम व्यवहार से सभी तपस्वी आश्रम छोडकर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रह गया।

श्वेताम्बिका के कई राजकुमार क्रीडा करने हेतु चल पडे। क्रमश घूमते-घूमते इसी उद्यान मे पहुच गये। सुरभित पुष्पो को तोडने लगे। चण्डकौशिक को पता लगा। वह आगबबूला हो गया। हाथ मे तलवार उठाकर उन्हे मारने दौडा। सभी राजकुमार दौडकर कही छिप गये। असावधान भागता हुआ वह कौशिक गर्त मे गिर पडा। उसका वह तीक्ष्ण धार वाला फरसा उसी के मस्तक को फाड बैठा। वही मृत्यु पाकर उसी आश्रम मे दृष्टि विषधर सर्प हुआ। विषैली बनी हुई दृष्टि से वह जिसे देखता, वह मरघट पर पहुच जाता। उसके भय से वह आश्रम व वन जनशून्य और पशु-पक्षियो से रहित हो गया। उस मार्ग से आना-जाना ठप्प हो गया।

चण्डकौशिक सर्प को प्रतिवोध देने के लिए भगवान उसी मार्ग से चले। उसी आश्रम मे पहुचकर ध्यानस्थ हो गये। कुछ समय व्यतीत होने पर वह सर्प इधर-उधर भटकता हुआ वहा पहुचा। अचानक उसकी दृष्टि महावीर पर पडी। विप फुफकारता हुआ क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगा। उल्कापात के समान दृष्टि ज्वाला का प्रभाव भगवान पर कव पडने वाला था? उसका यह अमोघ आक्रमण व्यर्थ हो जाने ने अपनी रक्त-वर्णी जिह्वा लपलपाता हुआ आया और पैरो को पुन-पुन. डसने लगा। भगवान के शरीर पर विप का किंचित् भी प्रभाव नही हुआ। डक के स्थान से गो-क्षीरधारा निकलने लगी। सर्प निस्तेज वन गया। विचारो मे मोड आया। प्रभु की सौम्य आकृति पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। क्रोध शात हुआ। भगवान ने उद्वोध देते हुए कहा—'चण्डकौशिक! 'वुज्झ-वुज्झ'(समझ-समझ)।' भगवद् वाणी पर चिन्तन करते-करते उसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपना पूर्वभव देखा। अनशन करने का सकल्प किया। 'मेरी विपैली नजर से किसी जीव का अनिष्ट न हो'—ऐसा चिन्तन कर वह अपना मुह वावी मे और सारा शरीर वाहर रखकर समता से रहने लगा।

कुछ ग्वाले वृक्ष की ओट मे खडे-खडे देख ही रहे थे कि सर्पराज के कोप से महात्मा कैसे वचते हैं? जव उन्होंने भगवान को सुरक्षित व सर्प को सुस्थिर देखा तो वे निकट आकर सर्प को लकडी मे हिलाने लगे। देखा सर्प का उपद्रव समाप्त हो गया है। गाव मे जाकर सवको सूचित किया गया। लोग आने लगे। मार्ग चालू हो गया। स्त्रिया झुण्डो मे आने लगी। सर्प के शरीर पर घृत चढाने लगी। घृत की सौरभ से चीटिया आकर नागराज के तन को छेदने लगी। सभी कष्टो को समता पूर्वक सहन करता हुआ चण्डकौशिक पन्द्रह दिन का अनशन कर सहस्रार कल्प मे देवता हुआ।

मुनि जीवन की साधना, सारी हुई विनष्ट।
देव चण्डकौशिक हुआ, समता रखकर स्पष्ट ॥

प्रभु-प्रताप

भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उत्तर वाचाल ग्राम मे पधारे। अर्ध-मासिक तप के पारणे के लिए भगवान ने नागसेन के घर को पावन किया। उसने वन्दना की। भक्ति व श्रद्धापूर्वक क्षीर-दान देकर पारणा करवाया। देवो ने पच दिव्यो की वृष्टि कर नागसेन के दान की प्रशसा की। वहा से सुरभिपुर की ओर विहार हुआ। मार्ग मे गगा महानदी आ गयी। (यहा ग्रन्थकार नाव मे वैठकर नदी पार करने का उल्लेख करते है, किंतु आगमो मे इसका उल्लेख नही है।) वे

(भगवान) शुद्ध दत नामक नाविक की नौका मे विराजे। नौका आगे बढी। किनारे पर स्थित वृक्ष पर एक उल्लू बैठा था। वह जोर-जोर से कुछ बोल रहा था। उसकी बोली सुनकर क्षेमिल नाम के शकुन शास्त्री ने बडी गम्भीरता से कहा—'सब सावधान हो जाइए। भयकर विपदा आने वाली है। सुख से नदी को पार करना कठिन है। तभी बच सकते हैं यदि किसी आध्यात्मिक योगी का सहारा मिल जाये। अथवा हम पर उनकी कृपा हो।'

शकुनवेत्ता की बात सुनकर नौका मे बैठे हुए सभी लोग भयभीत हो गये। सबके मन मे व्याकुलता छा गयी। नौका अत्यधिक जल मे चल ही रही थी। उस समय 'सुदृष्ट' नामक नागकुमार जाति के देव ने अपने ज्ञान से निहारा कि मेरा पूर्वभव का शत्रु महावीर नदी पार करने हेतु नौका मे बैठा है। वैर-भावना जागृत हुई। उसने भयकर उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। ऐसा प्रलयकर अधड चलाया कि बडे-बडे वृक्ष जड से उखडकर गिरने लगे। पर्वत की श्रेणिया प्रकपित होने लगी। गगा नदी की लहरे उछलने लगी। नौका डगमगाने लगी। पाल फट गया। नाविक दिशाभ्रात होकर अपना मार्ग भूल गया।

सभी यात्री मृत्यु के भय से आकुल-व्याकुल हो उठे। उस भयानक सकट से बचने के लिए सब अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। भगवान आत्मस्थ होकर नौका के एक कोने मे विराज रहे थे। उस विघ्नकारक उपद्रव से वे तनिक भी भयभीत नही हुए। भगवान के पावन प्रभाव से कबल और सम्बल नाम के दो देव वहा उपस्थित हुए। एक देव ने 'सुदृष्ट' को ललकार कर परास्त कर दिया। दूसरे देव ने नौका को तट पर ले जाकर रख दिया। वन्दना व सत्कार करते हुए दोनो ही देव मुक्तकठ से भगवान की स्तवना करने लगे। नौका के यात्रियो ने भी प्रभु-प्रशसा करते हुए कहा—'हे महापुरुष! आपके प्रताप से ही हमे जीवनदान मिला है। भगवान महावीर नौका से उतरकर आगे बढे।

भगवद्-पुण्य प्रताप से, सकट टला समस्त।
'मुनि कन्हैया' हो गया, दुश्मन देव निरस्त॥

भ्रम-दूर

एकदा भगवान का विहार हो रहा था। सूक्ष्म धूलि पर भगवान के चरण अंकित हो गए। पुष्य नामक एक विद्वान सामुद्रिक शास्त्र का प्रज्ञाता वहाँ आ रहा था। उसने भगवान के चरणचिह्न को देखकर सोचा—ये कोई महापुरुष हैं। इनकी चरण रेखा से ऐसा प्रतीत होता है कि ये चक्रवर्ती सम्राट होने वाले हैं। परन्तु ये अकेले हैं। इधर से गये हैं। मैं इनसे मिलूँ। अकेले क्यों? सकट की वेला मे सह-

योग करना मेरा परम कर्तव्य है। उनकी सेवा का सुयोग्य मिल जाये तो मै अपने-आपको धन्य समझूगा। ऐसा सोचकर चरण-चिह्नो को देख-देखकर वह आगे बढने लगा। भगवान स्थूणाक ग्राम के बाहर एक उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न हो रहे थे। उस पुरुष ने भगवान को वन्दना की। भगवान के वक्ष स्थल पर श्री वत्स अकित था, मस्तक पर मुकुट का चिह्न, दोनो भुजाओ पर चक्र, भुजाए घुटनो तक लम्बी नागिन के समान आदि अनेक चिह्न भगवान के शरीर पर देख-कर उसे बडा विस्मय हुआ। ऐसे लोकोत्तम लक्षण होते हुए भी यह तो भिक्षुक ।। भिखारी के रूप मे भ्रमण कर रहा है। मेरा विद्याशास्त्र मिथ्या हो गया। शास्त्र के निर्माता भी प्रवचक जैसे प्रतीत हो रहे हैं। वह चिन्ता ही चिन्ता मे निमग्न हो रहा था। अचानक शक्रेन्द्र का आसन प्रकपित हुआ। भगवान की सेवा मे स्थित पुरुष को भी अपने अवधि-ज्ञान से निहारा और झट वहा आया। भगवद्-स्तुति के साथ-साथ बडे विनय से वन्दना करने लगा। शक्रेन्द्र ने भविष्य वेत्ता को उपालम्भ की भाषा मे कहा—

'हे मूढात्मन्! तूने अध्ययन किया है किन्तु तेरा अध्ययन अधूरा है। उत्तम लक्षण क्या केवल सासारिक सम्राटो व चक्रवर्ती के ही होते है? धर्म-तीर्थंकर व धर्म-चक्रवर्ती के नही होते क्या? ये भगवान महावीर हैं। बडे-बडे भूपालो व देवेन्द्रो के भी ये पूजनीय कहलाते है। ये राज्य सपदा को छोडकर परिव्रजित हुए हैं। इनके त्याग, तप, जप व ध्यान के सामने सारा ससार नतमस्तक है। शास्त्रीय ज्ञान सारा सत्य है। लेकिन तूने गहराई से चिन्तन नही किया।' उसको इच्छित दान देकर शक्रेन्द्र भगवान को वन्दन-नमस्कार कर स्व-स्थान पर चला गया।

शास्त्रवेत्ता का हुआ, सारा ही भ्रम दूर।
विज्ञ पुष्प को इन्द्र ने, दिया दान भरपूर॥

संगम का रोष

विहरण करते-करते भगवान 'पेढाल' ग्राम मे पधारे। वहा म्लेच्छ लोग बहुत रहते थे। गाव के बाहर उद्यान मे तेले का तप ग्रहण कर एक रात्रि को महाभिक्षु प्रतिमा अगीकार कर भगवान ध्यानस्थ हो गये। सुधर्मा सभा मे शक्रेन्द्र अपने परिवार सहित बैठा था। उस समय देवेन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान को पोलाश उद्यान मे ध्यानस्थ देखा। अवनत शिरसा बद्धाजलि भगवद्-स्तुति करते हुए देवेन्द्र ने कहा—देव-देवियो! इस समय मानव लोक के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के पोढाल गाव के पोलाश उद्यान मे भगवान ठहरे हुए है। वे मेरु पर्वत की भाति निश्चल एव अडिग होकर ध्यान-मग्न खडे हैं। वे इतने सुदृढ है कि कोई भी यक्ष, राक्षस,

देव, दानव, मानव आदि उन्हे विचलित नही कर सकता। ऐसे महापुरुष की जितनी भी गौरव-गाथा गायी जाये, कम है।

इन्द्र का कथन सुनकर देवसभा के सभी सदस्य बहुत ही प्रमुदित हुए। सब की आकृति पर मुस्कराहट की रेखा। देवो ने एक ही स्वर मे कहा—हे स्वामिन्! आप जो फरमा रहे है वह बिलकुल सत्य है। तथ्य है। वास्तव मे महापुरुष कहलाने का अधिकार उन्ही को है, जो अनुकूल और प्रतिकूल परिषहो को देखकर विचलित नही होते।

एक मिथ्यात्वी देवता उस सभा मे बैठा था। उसका नाम था संगम। उससे रहा नही गया। वह जोर से बोला पडा—हे स्वामिन्! सुनिये मेरे उद्गार। आपने जो बात कही उस पर मेरा विश्वास नही है। आप तो कभी-कभी अति प्रशंसा करने लग जाते है। औचित्य की, मर्यादा का भी ध्यान नही रखते। क्या औदारिक शरीर वाले मनुष्य इतना साहस व धैर्य रख सकते है? कदापि नही रख सकते। देवाभिमान के सामने कोई भी मानव अडिग नही रह सकता। आप सुरेन्द्र होकर भी [illegible]-मास के घृणित पुतले की अनुपम प्रशंसा कर रहे है, बडा आश्चर्य है!

इन्द्र ने प्रत्युत्तर की भाषा मे बाद स्वर मे कहा—'हे संगम! [illegible] आलोचना करना वृथा है। मैने जो कहा है उसमे लेशमात्र भी अन्तर नही है। वे अनंत बली है। उनकी शक्ति के सामने देवता की शक्ति नगण्य है। [illegible] भी वे अपने अगूठे से हिला सकते है। ऐसे देवाधिदेव पुरुषोत्तम की [illegible] करना श्रेयस्कर नही है।' संगम ने आक्रोश भरे शब्दो मे कहा—हे देवेन्द्र! आपके कथन मे सचाई कितनी है, इस साधु मे कितना बल है, मै मनुष्य लोक मे जाकर उसकी परीक्षा करूंगा।

क्रोधावेश मे आकर वह देवसभा को छोडकर वहा से चल दिया। इन्द्र ने देखा। सोचा। अब इस अधम पापी को पता लग जायेगा कि भगवान की शक्ति कितनी है? इसे कहने मे व रोकने मे तनिक भी लाभ नही है।

वीर प्रशंसा श्रवण कर, संगम दिल मे रोष।
तीर्थंकर बल सामने मिट जायेगा जोश॥

संगम के उपसर्ग

क्रोधान्ध संगम ने कुछ भी नही सोचा। [illegible] करने हेतु वह वहा पर आ पहुचा। भगवान को [illegible] गया और उनको उपसर्ग देने के लिए [illegible]। [illegible] भी। भगवान के सारे [illegible]

चारो तरफ वज्र-मुखी चीटिया फैला दी। उन्होंने वज्रमुख से भगवान के शरीर में छेद प्रारम्भ कर दिया। उस देव ने अपने वैक्रिय शरीर द्वारा बिच्छू और सर्प ही सर्प कर दिए, जो भगवान के शरीर को डसने-काटने लगे। लेकिन भगवान कहा विचलित होने वाले थे। इसी प्रकार भयकर पिशाच का रूप धारण किया। हाथी-हथिनी एव उन्मत्त सिंहनी को उपस्थित कर उन्हे विचलित करने का प्रयास किया। हाथी ने अपनी सूड से भगवान को आकाश मे उछाल दिया। फिर भी वे ध्यान से विचलित नही हुए।

अब सगम भगवान के पिताश्री सिद्धार्थ का रूप बनाकर आया और मधुर स्वर मे बोला—'हे पुत्र! यह कष्टप्रद साधना कैसे कर रहे हो? तेरा शरीर पुष्प की भाति सुकोमल है। ऐसे तनु रत्न से ऐसी घोर साधना करना क्या बुद्धिमत्ता है? मैं वृद्ध हू। क्या मेरी सेवा करना तेरा कर्तव्य नही है? कुछ ही समय के पश्चात माता आक्रदन करती हुई भगवान से प्रार्थना करने लगी—'हे आत्मज! मैं तुझे दीक्षा नही दूगी। विचारो को मोड देना तेरा कर्तव्य है। ससार मे रहकर मेरी सेवा करो। जीवन को सफल बनाओ। इसी मे भला है।' किन्तु भगवान पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नही पडा। सगम की आशा पर निराशा का पानी फिर गया। विभिन्न प्रकार के भीषणतम उपसर्गों के आगे वह पवित्र आत्मा कब डिगने वाली थी।

सगम हताश हो गया। मन-ही-मन चिन्तन करने लगा—इन्द्र ने जो प्रशसा की थी वह वास्तव मे सत्य है। तथ्य है। मैंने एक रात्रि मे इनको अनुकूल-प्रतिकूल बीस उपसर्ग दिये। फिर भी ये ज्यो-के-त्यो ध्यानस्थ रहे। वास्तव मे ये अनत बली है। अब मैं इन्द्र की सभा मे कैसे जाऊ। कैसे इन्द्र को अपना मुह दिखाऊ? मैं हसी का पात्र बन गया। सभी देवता मेरी ओर अगुली उठायेंगे। अब एक बार परीक्षा और कर लू।

भगवान तोसली ग्राम मे पधारे। उद्यान मे ध्यानस्थ होकर खडे हुए ही थे। सगम ने साधु का रूप बनाया। सेध लगाकर चोरिया करनी प्रारम्भ कर दी। लोगो ने तो पकडकर मारना प्रारम्भ कर दिया। वह साधु बोला—मुझे क्यो मारते हो? मैं बिल्कुल निर्दोष हू। मैं तो अपने गुरुदेव के आदेशानुसार ही चोरी करता हू। लोगो ने कहा—कहा है तेरा गुरु? उसने कहा—उद्यान मे ध्यान कर रहे है।

लोग उद्यान मे पहुचे और भगवान को पकडकर रस्सियो से बाधा। गाव मे ले जाने लगे। उस समय महाभूतल नामक ऐन्द्रजालिक ने भगवान को पहचान लिया। उसके द्वारा लोगो को भगवान का परिचय मिलते ही बन्धनमुक्त कर दिया गया। क्षमा-याचना की। नकली साधु की खोज की गई, किन्तु वह अन्तर्धान हो गया। इस तरह उपसर्ग देते-देते छह महीने पूरे हो गये। फिर भी वह निष्फल

रहा। आखिर हार कर सगम भगवान के श्रीचरणो मे वन्दन-नमस्कार कर बोला—भगवन् ! धन्य है आपकी निश्चलता। मैने आपको छह मास पर्यन्त भयकर असह्य उपसर्ग दिया। फिर भी आप मेरु पर्वत की भाति निष्कम्प रहे। अब मै आपसे पुन -पुन क्षमा-याचना करता हू।

सगम ने सकट दिये, एक रात्रि मे बीस।
सहे शान्ति मे वीर ने, विजय हुई इक्कीस ॥

संगम को धिक्कार

सगम के उपसर्गो को देखकर इन्द्र और सभा के अन्य सदस्य बैठे-बैठे चिन्ता करने लगे। इन्द्र ने अपने मन मे सोचा—इन सब उपसर्गो का कारण मै हू। यदि मै सभा मे भगवान की प्रशसा नही करता तो सगम विकराल निर्दयी क्यो बनता ? [illegible] प्रभु को इन भयकर कष्टो से सपीडित होना पडता ?

सगम अपनी पराजय स्वीकार कर अपमानित-सा होकर देवलोक पहुचा। सभा मे उपस्थित देखकर इन्द्र ने मार्मिक शब्दो मे कहा—देवगण ! यह सगम महा-पापी है। इसके अपराध को हम भूल नही सकते। यह देवजाति के [illegible] है। होने वाले तीर्थंकर देव को इसने असह्य उपसर्ग दिए है। [illegible] कोटि मे गिने बगर नही रह सकते। ऐसे अधम को किसी भी प्रकार का प्रश्रय देना मेरी दृष्टि से उचित नही है, इसलिए इसे सभा से [illegible] चाहिए।

देव सभा के सभी सदस्यो ने एक स्वर से कहा—हे देवराज ! [illegible] अक्षरश सत्य है। सबका समर्थन सप्राप्त होते ही इन्द्र ने [illegible] पर प्रहार किया और देव सैनिको ने उसे धक्का देकर बाहर [illegible] दिया। देवी-देवताओ ने सगम को ललकारते हुए कहा हे [illegible] ! [illegible] जीवन को ! भगवान महावीर जैसे अवतारी पुरुष को [illegible] सुखी बनेगा ? कदापि नही।' अपशब्दो व गालियो द्वारा [illegible] हुआ। देवलोक से निष्कासित सगम अपने विमान मे बैठ [illegible] पर गया। उसी को अपना प्रवास-स्थल [illegible]।

सुरपति द्वारा [illegible] मिला [illegible]।
देवो से हो [illegible] ॥

जीर्ण की भावना

विशाला नाम की नगरी हरेक के लिए बडी सुहावनी थी। लाखो का वहा व्यापार चलता था। अनेको श्रावक वहा निवास करते थे। वहा पर जिनदत्त नामक एक विशिष्ट श्रावक रहता था। जिन धर्म के प्रति बडा श्रद्धावान था। साधु सन्तो का सच्चा दास था। अशुभ कर्मो के उदय से धन सम्पत्ति का नाश होने पर वह जीर्ण (जर्जर) सेठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। किसी कार्यवश वह उद्यान मे गया। वहा पर ध्यानस्थ भगवान को देखा। वन्दन-अभिवन्दन करते हुए उसने स्तवना प्रारम्भ की। मन ही मन मे चिन्तन जागृत हुआ कि आज भगवान का उपवास है, कल ये मेरे घर पधारें और सुपात्र दान देने का योग मिल जाये तो मैं अपने आपको धन्य समझूगा। ऐसे स्वर्णिम-सूर्य का उदय कब होगा ?

अब वह भगवान को वन्दन करने के लिए जाता है और प्रतिदिन भिक्षार्थ निवेदन करता है। प्रतीक्षा करते-करते (भावना भाते-भाते) बहुत समय बीत गया, किन्तु भगवान का पदार्पण नही हुआ क्योकि चातुर्मासीय तप कर रहे थे। आखिर चातुर्मास सम्पन्न हुआ। भगवान पारणा लेने के लिए गतिमान बने।

उसी नगर मे नवीन नाम का एक सेठ रहता था। ऐश्वर्य व वैभव सम्पन्न होने के साथ-साथ वह जैन धर्म का विरोधी था। मिथ्यात्वी था। भगवान भ्रमण करते-करते उस नवीन सेठ के घर पर भिक्षा-हेतु पधारे। सेठ ने अपनी दासी को सूचित करते हुए कहा—इस भिक्षुक को दान देना पडेगा। दान देना। दान लेते ही वह रवाना हो जाये, ऐसा प्रयास करना। एक काष्ठपात्र मे उबले हुए कुरमाष लेकर दासी आयी और भगवान को बहिराये। पारणा होते ही देवो ने पचदिव्यो की वृष्टि की। सर्वत्र दान की प्रशसा होने लगी। राजा नवीन सेठ के घर पहुचे। नवीन सेठ के भाग्य की प्रशसा करते हुए उसे पुन -पुन. धन्यवाद देने लगे।

जीर्ण सेठ भगवान की भावना लिये-लिये (भाता-भाता) अपने आपमे रमण करने लगा। जब उसके कानो मे दुदुभि का घोष टकराया तो वह मन ही मन सोचने लगा—पारणा हो गया। मेरे जैसे हतभागी को ऐसा सुअवसर कब मिलने वाला था ? भगवान मेरे घर पर पधारेंगे, हाथ से दान दूगा—मन की मन मे ही रह गई। आशा पर निराशा का पानी फिर आया। धिक्कार है मेरे जीवन को !

जीर्ण सेठ की भावना, हुई न पूरी लेश।
दान न किंचित् दे सका, करत दुःख विशेष ॥

भावना का महत्त्व

भगवान का तो वहा से विहार हो गया। उसी उद्यान मे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के एक केवली पधारे। हजारो-हजारो लोग उनको वन्दन करने के लिए उद्यान मे पहुचे। उपदेश हुआ। सबने अपने कानो को पवित्र किया। नगरी के सम्राट् ने बडे विनय भाव से पूछा—भगवन्! इस नगरी मे विशेष पुण्योपार्जन करने वाला कौन है?

भगवान ने उत्तर की भाषा मे कहा—जीर्ण श्रेष्ठी महान् पुण्यशाली है, भाग्यशाली है। ऐसे शुभकर्मी जीव ससार मे विरले ही होगे।

नगर-नरेश ने कहा—हे भगवन्! जीर्ण श्रेष्ठी ने तो भगवान को दान भी नही दिया और न ही कोई पुण्योपार्जन का कार्य किया। तो फिर वह पुण्यशाली कैसे हो गया? नवीन सेठ ने भगवान को दान देकर महान् कार्य किया। देवो ने उसके घर पर पाच प्रकार की दिव्य वस्तुओ की वर्षा की। आकाश मे दुदुभि बजने लगी। सुर, नर, इन्द्र, नरेन्द्र सबके द्वारा उस सेठ की प्रशसा की गई। चारो तरफ जय-जयकार की ध्वनि से धरा गूजने लगी। नवीन सेठ से जीर्ण सेठ अधिक पुण्यशाली कैसे हो गया? बात समझ मे नही आ रही है। हम सबके सशय को दूर करने की कृपा करे।

केवली भगवान् ने सबका सदेह दूर करते हुए कहा—नवीन सेठ के घर पर भगवान ने भिक्षा दान ग्रहण किया। भगवान् की दीर्घ तपस्या का पारणा हुआ। इसलिए देवो ने वर्षा की। सर्वत्र नवीन सेठ की प्रशसा हुई। लेकिन सेठ का दान केवल द्रव्यदान था। दान देने मे उपेक्षा भाव होने के कारण जितना लाभ मिलना चाहिए, वह नही मिला। पारणा कराने मे सेठ निमित्त अवश्य बना, किन्तु जीर्ण सेठ की भावना बहुत ही उत्तम थी। आहारदान की उच्च भावना से पुण्योपार्जन कर उसने बारहवे देवलोक का आयुष्य बाध लिया है। [illegible] इस दृष्टि से उसे लाभ मिला। यदि देव दुदुभि कुछ समय और नही बजती तो उसकी भावना बढती ही रहती। विक्षेप नही होता तो उसकी भावना [illegible] जाती। केवली भगवान का उत्तर सुनकर सभी लोगो के हृदय मे [illegible] नही रहा।

जीर्ण सेठ ने भाव से, [illegible]।
मुनि 'कन्हैया' भाव बिन, [illegible]।।

गोशालक

पिता मखली ने पुत्र का जन्म गोशाला मे होने के कारण उसका नाम 'गोशालक' रखा। भगवान राजगृह पधारे। विजय-गाथा पति के घर पर मासखमण का पारणा हुआ। देवो द्वारा रत्न आदि की वर्षा हुई। यह सब देखकर गोशालक ने कहा—भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य है। मैं आपका शिष्य हू। किन्तु भगवान नही बोले और तन्तुवाय शाला मे पधारकर मासखमण प्रारम्भ कर दिया। आनद गाथापति के घर पर पारणा हुआ। गोशालक चित्रपट दिखाकर अपना धन्धा करता था।

एक दिन भगवान के ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उसने भगवान से पूछा—भगवन! आज सर्वत्र कार्तिक महोत्सव हो रहा है। इसलिए सब घरो मे मिष्टान्न बनेगा। बताइये, मुझे भिक्षा मे क्या मिलेगा?

भगवान की ओर से सिद्धार्थ व्यन्तर ने उत्तर देते हुए कहा — आज तुझे खट्टा कोद्रव और कुर मिलेगा, दक्षिणा मे एक खोटा रुप्यक प्राप्त होगा।

गोशालक प्रात काल से ही भिक्षा के लिए भटकने लगा। भिक्षा का योग नही मिला। अन्त मे एक सेवक द्वारा खट्टे कोद्रव व कुर मिले। क्षुधा-सपीडित गोशालक ने खाये। एक खोटा रुप्यक दक्षिणा मे प्राप्त हुआ। इस घटना के आधार पर गोशालक ने यह निर्णय किया कि पुरुषार्थ से कुछ नही होता। जो होना है वह होकर ही रहता है। मिष्टान्न-प्राप्ति के लिए इतना प्रयत्न किया, फिर भी मुझे मिष्टान्न नही मिला क्योकि मेरे भाग्य मे लिखा हुआ नही था। गुरु-देव ने जो फरमाया है, वही सत्य है। अब मुझे गुरु के अनुरूप बन जाना चाहिए। उसने झट अपने मस्तक के बालो को कटवाया। भगवान के पास पहुचा। हाथ जोडकर निवेदन की भाषा मे कहा—भगवन्! मै आपका शिष्य बनने के लिए आया हू। आप मुझे शिष्यत्व की स्वीकृति प्रदान करें।

गोशालक श्रमण तो बना लेकिन उसकी कुपात्रता कब मिटने वाली थी। भगवान तो मौन थे। भूख-तृषा से सपीडित गोशालक भिक्षा के लिए गाव मे पहुचा। भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यो ने उसे विचित्र वस्त्रो के सधारक साधु को देखा। आश्चर्य का पार नही रहा। परस्पर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। भगवान विहरण करते हुए सिद्धार्थ ग्राम मे पधारे। गोशालक ने भगवान से पूछा—क्या यह तिल का पौधा फलेगा? भगवान ने उत्तर मे कहा—हे गोशालक! यह तिल का पौधा फलेगा। सात फलो के जीव मरकर इसकी एक फली मे तिल के सात दाने होंगे।

वह गोशालक भगवान् की वाणी को सत्य नही मानता था। वह भगवान के पीछे-पीछे चलता हुआ रुक गया। इस पौधे को मिट्टी सहित मूल से उखाडकर फेंक दिया। फिर भगवान के साथ हो गया। उस समय वृष्टि होने के कारण

पौधा गाय के खुर से दब गया। मिट्टी और पानी का योग मिलने से पौधे का पोषण व सरक्षण हो गया। उसकी एक फली मे सात दाने के रूप मे हुए। क्योकि भगवद्वाणी असत्य कब होने वाली थी।

भगवान कूर्म ग्राम पधारे। सन्यासी वोशिकायन की यूकाए उठाकर मस्तक पर रखते हुए देखकर व्यग्य कसते हुए गोशालक ने कहा—तुम साधु हो या जूओ के शय्यातर? पुन-पुन उसे कुरेदने लगा। आखिर वह शान्त रह नही सका। क्रोधित होकर उसने गोशालक को भस्म करने के लिए तेजोलेश्या छोडी। भगवान छद्मस्थ थे। मोहानुकम्पी बनकर उन्होने शीतल तेजोलेश्या का प्रयोग किया। गोशालक मरता-मरता बच गया। लेकिन दुष्ट अपनी दुष्टता का परित्याग नही करते। आगे जाकर वह अविनीत गोशालक भगवान से पृथक् होकर भगवान के विरुद्ध प्रचार करने लगा।

> नही छोडता दुष्टता, गोशालक अविनीत।
> वीर-धर्म द्रोही बना, तजकर मार्ग पुनीत॥

कानों में कीलें

ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए भगवान महावीर षणमानी ग्राम पधारे और ग्राम के बाहर उद्यान मे ध्यान करने लगे। वासुदेव के भव मे भगवान ने जिस शय्यापाल के कानो मे उबलता हुआ शीशा डलवाया था, उस भव के जो कर्म सचित थे वे उदय मे आये। उस शय्यापाल का जीव भ्रमण करता-करता मनुष्य भव मे उत्पन्न होता है। उसी गाव मे वह गोपालक के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। एक दिन का किस्सा कि वही गोपालक अपने बैलो को भगवान के पास चरते हुए छोडकर गायो को दुहने के लिए चला गया। वापस आया। बैलो को नही देखकर वह तडककर भगवान से पूछने लगा—मेरे बैल कहा पर है? मै यहा छोडकर गया था।

भगवान तो ध्यान मे लीन थे। आत्म-साधना ही उनका लक्ष्य था। मौन मे उत्तर कैसे दे सकते थे? ग्वाले के हृदय मे क्रोध का पार नही रहा। आखो मे शोणित की धारा प्रवाहित होने लगी। अनर्गल शब्दो मे जोर से बोलने लगा—अरे पापी! अरे अधम! बोलता क्यो नही? क्या तू बधिर है। सुना-अनसुना कर रहा है। बोल! अरे बोल! मेरे बैल कहा छिपाये है? भगवान अपनी साधना मे इतने लीन थे कि उन्हे कुछ भी सुनाई नही दे रहा था। उन्हे निरुत्तर देखकर उसने आगबबूला होकर तीक्ष्ण सलाई भगवान के दोनो कानो मे ठोक दी। भगवान को असह्य वेदना सहन करनी पडी। फिर भी वे अपने ध्यान मे मेरु पर्वत की भाति अकम्पित थे।

वहा से विहार कर भगवान अपापा नगरी मे पधारे। पारणा लेने के लिए भ्रमण करते-करते सिद्धार्थ व्यापारी के घर जा पहुचे। वहा पर उनका मित्र खरक नाम का वैद्य वैठा था। उसकी दृष्टि भगवान के आनन पर पडी। उसने अपने मित्र सिद्धार्थ से कहा—मित्र, लगता है इन महापुरुष के शरीर मे कही न कही असाता के आसार दिखाई दे रहे है। सिद्धार्थ ने कहा—तुम अच्छी तरह से अवलोकन करो कि शल्य कहा पर लगा हुआ है। वैद्य खरक ने वडी सूक्ष्मता से निरीक्षण कर गम्भीर मुद्रा मे कहा—किसी दुष्ट पापी ने भगवान के कानो मे कीलें ठोक दी है।

भगवान तो वहा से विहार कर आगे वढने लगे। सिद्धार्थ ने कहा—मित्र खरक! नीच वहुत देखे किन्तु ऐसे नीच देखने मे नही आये। हाय! वह मनुष्य था या कोई राक्षस। नीचता की हद होती है। ऐसे अकृत्य कार्य मे नि शकित होकर गतिशील होना वहुत वडी नृशसता है। मित्र! अव अन्य वाते छोडकर कीलें निकालकर भगवान की पीडा मिटे ऐसा प्रयास होना चाहिए।

सिद्धार्थ और वैद्य तेल पात्र कुछ औषधि लेकर घर मे चले। भगवान की खोज करते-करते वे दोनो उद्यान मे पहुचे। भगवान ध्यानस्थ होकर आत्मा मे लीन वन रहे थे। खरक वैद्य ने भगवान के शरीर पर तेल का खूव मर्दन किया, जिससे शरीर के साधे ढीले हो गए। सडासे से कीलो के सिरे पकडकर एक साथ खींचे, रक्त के साथ दोनो कीले निकल गईं। भगवान को शान्ति मिली, उस अधम ग्वाले ने सातवें नरक का आयुष्य वाध लिया।

महावीर के कर्ण मे, कील ठोक दी उग्र।
उसने[1] सप्तम नरक का, वाधा आयु तीव्र॥

तपस्या

भगवान महावीर ने छद्मस्थ अवस्था मे निम्न तपस्या कर ससार के सम्मुख एक नया उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया।

छ मासिक तप १, चातुर्मासिक तप २, मासिक तप ६, मासखमण १२, अर्धमासिक ७२, त्रिमासिक २, डेढ मासिक २, ढाई-मासिक २, भद्र-महाभद्र और सर्वतो भद्र प्रतिमा पाच दिन कम छ मासिक तप अभिग्रह युक्त १, तेले १२, वेले २२८, अन्तिम रात्रि मे कायोत्सर्ग युक्त भिक्षु प्रतिमा कुल पारणे २४८ हुए। भगवान की यह सारी तपस्या जल रहित अर्थात् चौविहार कहलाती है।

---

१ ग्वाले ने।

केवलज्ञान : केवलदर्शन

नगरी से विहार कर जृंभक गाव पधारे। उसी गाव के पास ऋजुवालिका नदी थी। नदी के उत्तर तट पर शामाक नामक गृहस्थ का सुन्दर खेत था। तटस्थ शालवृक्ष के नीचे वेले की तपस्या मे उत्कृष्ट आसन मे आतापना लेने लगे। वैसाख शुक्ला दशमी का स्वर्णिम दिवस। चतुर्थ प्रहर। हस्तोत्तर नक्षत्र। विजय मुहूर्त। शुक्ल ध्यान मे प्रभु का प्रवेश। क्षपक श्रेणी मे आरूढ। चारो घाती कर्मो का अवसान। केवलज्ञान व केवलदर्शन उपलब्धि। केवल मोच्छव के लिए इन्द्र आदि का आगमन। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने सक्षेप मे धर्म देशना द्वारा उद्‌बोधन दिया।

प्रथम देशना के अवसर पर कोई भी मनुष्य नही था। इसलिए भगवान की वह देशना खाली हो गई। यह आश्चर्य भरी अभूतपूर्व घटना थी। क्योकि तीर्थंकर भगवान की प्रथम देशना कभी भी व्यर्थ नही जाती। किन्तु भगवान महावीर की देशना खाली गई।

ग्यारह गणधर

सोमिल ब्राह्मण द्वारा 'अपाया' पुरी मे महायज्ञ का विराट आयोजन हुआ। उस यज्ञ को सफल बनाने हेतु वेदो के विशेष विज्ञाता ग्यारह प्रकाण्ड विद्वानो को आमन्त्रित किया गया। वे सभी धुरधर मेधावी थे। अपने-अपने सैकडो शिष्यो को साथ लेकर उस यज्ञ मे उपस्थित हुए। बडे उल्लासपूर्ण वातावरण मे महायज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की महिमा चारो तरफ फैलने लगी।

भगवान महावीर का उसी ग्राम मे पदार्पण हुआ। देवो द्वारा समवशरण की रचना हुई। भगवान की पीयूष भरी देशना सुनने के लिए देवताओ का आगमन प्रारम्भ हुआ। देवो को आते देखकर सर्व ज्येष्ठ उपाध्याय इन्द्रभूति ने अपने साथी पडितो से कहा—प्रबुद्धो! हमारे यज्ञ की कीर्ति अद्वितीय है। इसके प्रभाव से देवगण भी आकर्षित होकर आ रहे है। बहुत ही प्रसन्नता का विषय है।

किन्तु जब यज्ञ-मडप को लाघकर देवो के विमान बडी द्रुत गति से आगे जाने लगे तो इन्द्रभूति के हृदय मे क्रोधानल प्रज्वलित होने लगा। वही गर्व की भाषा मे बोलने लगा—इस ससार मे मनुष्य तो अज्ञ होते है, किन्तु देवगण ज्ञानी होते हुए भी अज्ञता का परिचय दे रहे है। वे कहा जा रहे है? इतने मे लोगो की आवाज उनके कानो मे टकराने लगी कि महासेन उद्यान मे भगवान महावीर सर्वज्ञ देव पधारे हुए है। ये देव उन्हे वन्दन-नमस्कार करने के लिए जा

रहे हैं'। क्या इस ससार मे मेरे से बढकर कोई ज्ञानी सर्वज्ञ है। ये देवता उस मायावी के मायाजाल मे कैसे फस रहे हैं। लगता है वह पाखडी है। उसके पाखड को अब दूर करने के लिए शीघ्र ही मेरे लिए वहा जाना अत्यावश्यक है।

इन्द्रभूति

अभिमान के हाथी पर आरूढ होकर इन्द्रभूति अपने पाच सौ शिष्यो के परिवार के साथ महासेन उपवन मे पहुचा। भगवान महावीर ने उसे सबोधित करते हुए कहा—इन्द्रभूति गौतम! तुम आये!

इन्द्रभूति ने सोचा—मेरा नाम, मेरा गोत्र इसने कैसे जाना? पुन चिन्तन चला। ओह! मुझे कौन नही जानता, मैं सारे ससार मे प्रसिद्ध हू। मुझे प्रसन्न करने के लिए मेरा नाम लेकर सबोधित कर रहा है। यदि मेरे मन के गुप्त सदेह को जान ले तो मैं समझूगा कि ये निश्चित ही सर्वज्ञ है। भगवान ने फिर कहा—हे गौतम! तुम्हारे मन मे जीव के अस्तित्व के विषय मे सशय है कि जीव है या नही?

इन्द्रभूति—हा, यही सशय है। इसको दूर कर सकते हैं?

भगवान—तुम्हे जो यह सशय है यह सशय करने वाला आत्मा ही है। आत्मा के विना शरीर को सशय नही होता इसलिए आत्मा तुम्हारे ही स्वसवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है, वह सशय ज्ञान है और ज्ञान जीव है। जव आत्मा प्रत्यक्ष से सिद्ध है तो दूसरे अनुमान आदि प्रमाणो से सिद्ध करने की जरूरत नही है।

इन्द्रभूति—क्या और किसी तरह आत्मा प्रत्यक्ष नही होती?

भगवान—क्यो नही? अवश्य होती है। 'मैं कहता हू, मैंने किया था, मैं करूगा' इत्यादि तीन काल सम्बन्धी 'मैं' प्रत्यय होता है। यह मैं कौन है? वही है आत्मा। यदि आत्मा के विना 'मैं' प्रत्यय होता तो मेज, कुर्सी, कलम, दवात—इन सवके भी होता। लेकिन उन्हे ऐसा ज्ञान नही होता। इससे सिद्ध होता है कि 'मैं' शब्द से आत्मा का ही वोध होता है और वह प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि आत्मा नही हो तो 'मैं हू या नही' इस प्रकार का सशय कैसे उत्पन्न हो? क्योकि सशय उसी का होता है जिसका अस्तित्व हो।

इन्द्रभूति—भगवन्! आपने जो कहा वह ठीक नही है। 'मैं' हू, यह अनुभव तो शरीर मे होता है। इसलिए शरीर से अलग आत्मा नही मानना चाहिए।

भगवान—शरीर तो जड है। यदि शरीर के अन्दर ही 'मैं' का अनुभव होता हो तो शव मे भी 'मैं हू' ऐसा ज्ञान होना चाहिए। मगर शव को 'मैं हू' ऐसा ज्ञान नही होता, इसलिए यही मानना पडेगा कि शरीर से भिन्न किसी दूसरे को ही 'मैं हू' यह अनुभव होता है। वस, वही शरीर से भिन्न ज्ञाता आत्मा है।

इन्द्रभूति—घट-पटादि की भाति जीव प्रत्यक्ष दिखाई नही देता। इसलिए

आकाशकुसुम की भाति जीव का अभाव है।

भगवान—यह तुम्हारी विचारधारा न्यायसगत नही है। यदि जीव है ही नही तो यज्ञादि अभियान करने की क्या जरूरत है? इसके स्वर्ग, सुख रूप फल जीव विना कौन भोगेगा? अत जीव के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पडेगा।

दूसरी वात यह है कि जीव शब्द से जीव की सिद्धि हो जाती है, वाच्य के विना वाचक नही होता, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भगवद्-वाणी का अचूक प्रभाव पडा। इन्द्रभूति गौतम के विचारो मे परिवर्तन आया। भगवान की सर्वज्ञता पर अटूट विश्वास हुआ। हृदयस्थ सन्देह का निवारण होते ही वद्धाजलि वदन करता हुआ वडी विनम्रता से वोला—भगवन्! मैं अहकार के उपवन मे विहरण कर रहा था। मेरे घट मे अधकार का गहरा आवरण छाया हुआ था। अपने आपको वडा शक्तिशाली मानता था। मुझे मेरी विद्वता पर वडा अह था। लेकिन आपके अलौकिक व्यक्तित्व के आगे मेरा नशा चूर हो गया। हे अतिशय सम्पन्न दिव्य मूर्ते! धन्य है आज का दिन। धन्य है आज का स्वर्णिम सुनहला सुन्दर अवसर। आपके शुभ दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मेरी शका का समाधान हुआ। मुझे दीक्षित कर मेरी भावना को साकार वनाए। अवश्य ही मेरा कल्याण होगा।

इन्द्रभूति अपने पाच सौ छात्रो के साथ प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ श्रमण वन गये। आगे जाकर ये ही इन्द्रभूति भगवान के प्रथम गणधर हुए।

अग्निभूति

इन्द्रभूति के सहोदर भाई अग्निभूति ने सुना कि इन्द्रभूति तो भगवान महावीर के पास दीक्षित हो गया। उसे वडा खेद हुआ। मानसतल मे क्रोधा-नल की चिनगारिया उछलने लगी—उस मायावी ने मेरे बन्धव को अपने जाल मे कैसे फसा लिया? वडा आश्चर्य है। मेरा भाई तीनो लोक मे किसी से भी पराजित होने वाला नही था। उस तुच्छ श्रमण ने मेरे भाई को हरा दिया। लगता है उसने छलनापूर्वक उसे भुलावे मे डाल दिया है, जिससे उसके चिन्तन मे परिवर्तन हुआ है। कौन जाने क्या घटना घटी है?

खैर! वहा पर जाऊ और वापस लेकर आऊ। उस अहकारी श्रमण की पोल खोलकर सारे ससार के सामने रखू। सभव है, इन्द्रभूति को श्रमण ने किसी प्रकार जीत लिया हो, किन्तु मुझे परास्त करने मे वे कभी भी सफलता प्राप्त नही कर सकते।

ऐसे अनेक सकल्पो-विकल्पो के उन्मुक्त आकाश मे विहरण करता हुआ अग्निभूति अपने पाच सौ शिष्यो के साथ भगवान महावीर के समवसरण मे उपस्थित हुआ। भगवान ने उसके नाम व गोत्र का उल्लेख करते हुए कहा—है

अग्निभूत गौतम ! तुम आ गये ?

अपना नाम व गोत्र सुनते ही अग्निभूति के दिल मे आश्चर्य का पार न रहा। मेरे नाम व गोत्र को इन्होंने कैसे जाना ? वह अपनी अहकार की भाषा मे सोचने लगा—अरे अग्निभूति ! तू सारे ससार मे प्रसिद्ध है। तुम्हे कौन नही जानता ? मैं इन्हे सर्वज्ञ तो तभी समझू जब ये मेरे सन्देह को स्पष्ट बतला दे। यो सोच ही रहा था, इतने मे भगवान ने कहा—हे अग्निभूति गौतम ! तुम्हारे मन मे सन्देह है कि कर्म है या नही ?

हे आयुष्मान् ! तुम ऐसा सन्देह मत करो। क्योकि मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से कर्मो को जानता हू और तुम भी अनुमान से जान सकते हो—जैसे ससार मे कोई प्राणी सुख भोगता है, कोई दु ख। इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। क्योकि वे सुख-दु ख कार्य हैं। जो-जो कार्य होते है उनका कारण अवश्य होता है। जैसे—अकुर कार्य का कारण बीज है।

अग्निभूति—यदि आप कर्मो को प्रत्यक्ष जानते है तो मैं क्यो नही जान सकता ?

भगवान—हे अग्निभूते ! यह तुम्हारा कथन प्रशस्त नही है। जो वस्तु एक के लिए प्रत्यक्ष हैं, वह दूसरे के लिए प्रत्यक्ष हो, यह कोई नियम नही है। जैसे—सिंह, हस आदि जीव सब लोगो के लिए प्रत्यक्ष नही है, फिर यह नही कहा जा सकता कि उनका अस्तित्व नही है। उनके अस्तित्व को हर व्यक्ति मानते है। जैसे तुम्हारा सशय मेरे लिए प्रत्यक्ष है, दूसरो के लिए प्रत्यक्ष नही है। इसी प्रकार कर्म भी मेरे लिए प्रत्यक्ष है, तुम्हारे लिए नही।

दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ के लिए कर्म चक्षु-ग्राह्य नही है, इससे कर्म का अभाव सिद्ध नही होता, क्योकि चतु स्पर्शी कर्म पुद्गल इन्द्रियो के विषय नही हो सकते। छद्मस्थ व्यक्ति भी जीव की विचित्रता व विभिन्नता देखकर अनुमान से कर्म के अस्तित्व को जान सकते है। कोई जीव सुखी है, कोई जीव दु खी है। कोई मनुष्य है, कोई पशु-पक्षी है। यह सब विविधता किसी कारण बिना नही हो सकती है, और वह कारण है कर्म।

अग्निभूति—अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्म का सबध कैसे होता है ?

भगवान—यह भी चिन्तनीय नही है, क्योकि ससारी आत्मा कर्म की अपेक्षा कथचित मूर्त ही है। मूर्त आत्मा के साथ मे मूर्त कर्मो का सम्बन्ध होना असगत नही है।

अग्निभूति—रूपी कर्म का अरूपी आत्मा पर उपघात और अनुग्रह कैसे हो सकता है। जैसे अरूपी आकाश को रूपी चदनादि से अथवा अग्नि की ज्वाला से सुख-दु ख नही हो सकता, इसी प्रकार रूपी कर्म अरूपी आत्मा के लिए सुख-दु ख

का कारण नही बन सकता।

भगवान—जैसे ज्ञान, जिज्ञासा, धारणा, स्मृति आदि अरूपी जीव के गुणो का रूपी मदिरापान, विष आदि से उपघात होता है तथा दूध, घृत आदि औषधि से अनुग्रह होता है, इसी प्रकार यहा भी समझ लेना चाहिए।

अग्निभूति का हृदयस्थ सन्देह दूर होते ही वे भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गये। उनके साथ उनके पाच सौ शिष्य भी प्रव्रजित हुए। जय-जय के उद्घोषो से गगन धरातल गूजने लगे। आगे जाकर अग्निभूति भगवान के दूसरे गणधर हुए।

वायुभूति

इन्द्रभूति और अग्निभूति दोनो ही निर्ग्रन्थ श्रमण बन गए, वायुभूति ने यह समाचार सुनकर सोचा—दोनो ही बन्धुओ को दीक्षा देने वाला अवश्य ही कोई महान तेजस्वी शक्तिशाली सर्वज्ञ होना चाहिए। मैं भी वहा जाऊ। मेरे हृदय मे जो शका है, उसे दूर करू।

वायुभूति भगवान के समवशरण मे पहुचा। साथ मे पाच सौ शिष्य थे। वहा का अपूर्व शान्तिमय वातावरण देखकर वह बहुत ही प्रभावित हुआ।

भगवान ने कहा—हे आयुष्मान वायुभूति! तुम्हारे मन मे कुछ सशय है। तुम और शरीर को एक ही मानते हो, दोनो का अलग-अलग अस्तित्व स्वीकार नही करते हो। तुम्हारी मान्यता है कि जैसे जल मे बुलबुला प्रकट होकर पुन उसी मे विलय हो जाता है, वैसे शरीर से चेतना प्रकट होती है और उसी मे पुन विलीन हो जाती है। शरीर से भिन्न जीव का अस्तित्व तुम स्वीकार नही करते हो। किन्तु तुम्हारी यह विचारधारा न्याय पूर्ण नही है। एक दृष्टि से जीव का प्रत्यक्ष भी मान सकते है क्योकि इच्छा, आकाक्षा आदि गुण प्रत्यक्ष है। इच्छा आदि जीव मे ही होती है, जड शरीर मे नही। जीव मे सवेदना होती है, अनुभव होता है, यह अनुभव शरीर नही कर सकता। जीव शरीर और इन्द्रियो से भिन्न है। किसी इन्द्रिय को कष्ट होने पर भी उनके द्वारा अनुभूत विषय की स्मृति होती है। इन्द्रियो के सिवाय आत्मा अगर अलग नही हो तो इन्द्रियो के द्वारा अनुभूत विषय की स्मृति कौन करेगा? इन्द्रियो का विषय वर्तमान ही है भूत की स्मृति करने की क्षमता उनमे नही है।

भगवान महावीर की न्यायपूर्वक उत्तर व रहस्यमयी सन्देशात्मक वाणी सुनकर वायुभूति भगवान के प्रति अवनत हो गया और बोला—प्रभो, मैं आपके चरणो मे सर्वदा समर्पित हू। मेरे मन मे सन्देह था दूर हो गया आपके उपकार ही है।' आखिर वायुभूति अपने पाच सौ शिष्यो सहित दीक्षित हो जाते है। आगे जाकर ये वायुभूति तीसरे गणधर बन जाते है।

व्यक्त

व्यक्त ने मन ही मन सोचा—वास्तव मे ये महावीर सर्वज्ञ व सर्वदर्शी है क्योकि विना शक्ति व विना विद्वता के वे तीनो बन्धव कभी भी उनके पास मे दीक्षित नही होते। इस स्वर्णिम समय का मुझे भी लाभ लेना चाहिए। मैं भी वहा जाऊ और सशय को दूर करु। वे भी अपने पाच सौ शिष्यो के साथ भगवान के समवशरण मे पहुचे।

भगवान ने कहा—हे व्यक्त! तुम तो सर्वत्र शून्य ही देखते हो। तुम्हे तो पृथिव्यादि पाच भूत भी मान्य नही है। मेरी दृष्टि से तुम्हारी यह विचारधारा उचित नही है, क्योकि जिनका अभाव ही है, अस्तित्व ही नही है—सब शून्य ही है तो फिर सशय किस बात का? ससार मे किसी का सद्भाव है ही नही तो सशय होगा ही नही। सशय होगा तो सत् वस्तु के विषय मे ही होगा। जैसे दूर से खभे को देखकर यह सशय होता है कि यह खभा है या मनुष्य है? क्योकि इन दोनो का अस्तित्व है, इसलिए सशय होता है।

आकाश-कुसुम व शश-शृग का अभाव होने पर भी जो सशय होता है, वह तो समवाय निषेध है। आकाश के कुसुम भले न हो किन्तु आकाश व कुसुम, इन दोनो का अस्तित्व तो है ही, इसलिए इन दोनो के विषय मे सशय होता है।

भगवान की विचारधारा से 'व्यक्त' बहुत ही प्रभावित हुआ। सशय दूर होते ही उसने निवेदन की भाषा मे कहा—भगवान्! मैं आपकी सर्वज्ञता के सामने नत-मस्तक हू। भाग्योदय! आप जैसे महापुरुषो का योग भी किस्मत के अभाव मे मिल नही सकता। कृपया अब विलम्ब नही करे। मुझे भी सयम-दान प्रदान कर कृतार्थ करें। आखिर व्यक्त अपने पाच सौ शिष्यो के साथ दीक्षित हो गये। ये आगे जाकर भगवान् के चौथे गणधर के रूप मे नियोजित हुए।

सुधर्मा

सुधर्मा भी अपने सन्देह को दूर करने हेतु पाच सौ शिष्यो की सम्पदा साथ लेकर भगवान् महावीर के समवशरण मे पहुचे। भगवान ने कहा हे सुधर्मा! तुम्हारी मान्यता है कि जीव की अवस्था परभव मे भी एक-सी रहती है, जो इस भव मे पुरुष है, वह आगे के भव मे भी पुरुष ही होगा, क्योकि कारण के अनुरूप ही कार्य होगा। चने के बीज मे चना ही उत्पन्न होता है, गेहू आदि नही। तुम्हारा यह सिद्धात मेरी दृष्टि मे उचित नही है। मानव क्षमा, सत्य, सतोष आदि सद्गुणो मे मनुष्य आयु का उपार्जन करता है किन्तु जो नर, माया, असत्य, स्तेय आदि पापो का आचरण करता है, वह भी मनुष्य ही हो, ऐसा नही हो सकता। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसकी गति होती है।

भगवान महावीर की वाणी सुनते ही सुधर्मा का सशय दूर हुआ। प्रभु के चरणो मे अवनत होकर दीक्षार्थ प्रार्थना की। आखिर अपने पाच सौ शिष्यो के साथ वे दीक्षित हो जाते है। आगे जाकर पाचवें गणधर सुधर्मा स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मडितपुत्र

मडितपुत्र साढे तीन सौ छात्रो सहित भगवान महावीर के पास पहुचे। भगवान ने कहा—हे मडितपुत्र! बन्धन और मुक्ति के विषय मे तुम सशकित हो? यह शका श्रेयस्कर नही है। बन्धन और मुक्ति आत्मा की होती है। मिथ्यात्व, प्रमाद, कषाय आदि दुष्प्रवृत्ति से कर्मो का बन्धन होता है। उन्ही बधनो के कारण जीव नरकादि गतियो मे जाता है। ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप आदि सद्‌गुणो से उन्ही बधनो को हटाकर जीव मुक्त बन जाता है। यद्यपि जीव और कर्म का सबध प्रवाह रूप मे अनादि है, फिर भी अनादि सबधित धातु और मिट्टी अग्नि के द्वारा पृथक् हो जाती है। वैसे ही जीव और कर्म का सबध रत्नत्रय से अलग हो जाता है।

मडितपुत्र की शका का समाधान सप्राप्त होते ही अपने शिष्यो सहित भगवान महावीर के पास दीक्षित हो जाते हैं। और वे ही छठे गणधर के रूप मे प्रसिद्ध हुए।

मौर्यपुत्र

मौर्यपुत्र भी अपने साढे तीन सौ छात्रो के साथ भगवान महावीर के समवसरण मे उपस्थित हुए।

भगवान ने कहा—हे मौर्यपुत्र! तुम्हे देवो के अस्तित्व मे सदेह है किन्तु यह सन्देह अधिक नही टिक सकता। देव इस सभा मे उपस्थित हैं। साक्षात आखो से देख सकते हो। पहले तुमने देवो को कभी नही देखा। इसका एक कारण यह है कि मनुष्य लोक की दुर्गन्ध बाधक है, दूसरा कारण यह है देवता पाचो इन्द्रियो की विलासिता मे इतने मुग्ध रहते हैं कि वे प्राय देवलोक से यहा आते ही नही हैं। इससे अभाव मानना न्यायसगत नही है। अरिहन्त आदि के प्रभाव व तेज से मनुष्यलोक मे भी देवो का आगमन होता है।

मौर्यपुत्र समझ गये और अपने साढे तीन सौ छात्रो के साथ सयम ग्रहण कर सातवे गणधर बने।

अकपित

अकपित भी अपनी शिष्य सपदा लेकर वहा पर पहुचा। भगवान ने कहा—हे अकपित! तुम नरक गति नही मानते हो। किन्तु नरक गति भी है। सर्वज्ञ केवल-ज्ञानी उसे अपने ज्ञान के माध्यम से देखते हैं। नरक के जीव तो यहा पर आ नही सकते क्योकि वे पराधीन है। मनुष्य नरकालय तक पहुच नहा सकते। इस नरक

के विषय में शंकाशील रहना उचित नहीं है।

अकंपित भी अपने तीन सौ शिष्यों के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर आठवें गणधर बने।

अचलभ्राता

अचलभ्राता पंडित भी अपनी शिष्य मंडली को साथ लेकर समवशरण में आ पहुंचे। भगवान ने कहा—हे अचलभ्राता! तुम्हारे दिल में पुण्य-पाप के विषय में संशय है। पुण्य-पाप का फल तो संसारी जीव भोगते रहते हैं। दीर्घ आयुष्य, उत्तम वंश, वैभव, रूप, मानव जन्म—भौतिक सुख-सुविधा आदि ये सब पुण्य के फल साक्षात दिखाई दे रहे हैं। इन सबके विपरीत जो फल मिलता है वह सब पाप का ही फल मानना चाहिए। इसलिए पुण्य-पाप के विषय में संदेह करना निरी भूल है।

संदेह दूर होते ही अचलभ्राता अपने तीन सौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए। नवें गणधर बने।

मेतार्य

मेतार्य भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ। भगवान ने कहा—हे मेतार्य! परलोक को नहीं मानते हो तुम, देह विलय के साथ ही जीव को भी नष्ट होना मानते हो, यह मान्यता उचित नहीं है क्योंकि आत्मा एक सद्द्रव्य है। सद्द्रव्य का कभी नाश नहीं होता इसलिए मरने के बाद भी आतमा का अस्तित्व विद्यमान रहता है। और वह आत्मा कृत कर्मों को भोगने के लिए नया शरीर धारण करती है। जाति-स्मरण आदि ज्ञान से पूर्व भव की स्मृति होती है।

मेतार्य का संशय दूर हुआ। अपने तीन सौ छात्रों के साथ वे दीक्षित हुए। आगे जाकर मेतार्य दसवें गणधर बने।

प्रभास

प्रभासजी भी अपनी शिष्य-मंडली लेकर भगवान के पास आये। भगवान ने कहा—हे प्रभास! तुम्हें मोक्ष में संदेह है। यह संदेह भी उचित नहीं है। केवल-ज्ञानी के लिए मोक्ष प्रत्यक्ष है। समस्त कर्मों को क्षय कर जीव लोक के अग्रभाग में पहुंच जाता है, वही मोक्ष है। मुक्ति है।

प्रभास जी का संशय दूर हुआ। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ वे दीक्षित हुए। ग्यारहवें गणधर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ग्यारह महान विद्वान पंडितों की विचारधारा परिवर्तित होते ही प्रतिबोध पाकर अपने छात्र-समूह के साथ दीक्षित बने और भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य व तेजस्वी गणधर हुए।

चार तीर्थ की स्थापना हुई। भगवान ने चन्दना की प्रमुखता मे अनेक महिलाओ को दीक्षित किया। 'उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य' रूप त्रिपदी सुनकर भगवान के ग्यारह प्रमुख शिष्य श्रुत के ज्ञाता हो गए। भगवद्‌वाणी का आश्रय लेकर आचारागादि द्वादशाग श्रुत की रचना की।

भगवान के प्रमुख गणधर तो इन्द्रभूति थे। भगवद्-निर्वाण के पश्चात वे केवलज्ञानी होने वाले थे और अन्य गणधर भगवान के निर्वाण से पहले ही मुक्त बनने वाले थे। इस दृष्टि से धर्म शासन-सचालन का उत्तरदायित्व पचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी को सौंपा गया। इसी दृष्टि से भगवान ने गण की अनुज्ञा उन्ही को दी। साध्वियो की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रवर्तिनी पद पर आर्या चन्दनबाला को स्थापित किया।

नौ गणधर मुक्त

(१) अग्निभूति, (२) वायुभूति, (३) व्यक्त, (४) मण्डितपुत्र (५) मौर्यपुत्र, (६) अकम्पित, (७) अचलभ्राता, (८) मेतार्य (९) प्रभास। भगवान महावीर [illegible] ये नव गणधर मुक्ति प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रभूति और सुधर्मा स्वामी, ये दो गणधर शेष रहे थे।

केवलज्ञान लुप्त

सुधर्मा स्वामी ने बडी विनम्र भाषा मे भगवान महावीर से प्रश्न करते हुए पूछा—भगवन्! केवलज्ञान उपलब्धि कब तक होती रहेगी? किसके पश्चात [illegible] ज्योति बुझ जायेगी?

भगवान ने प्रत्युत्तर की भाषा मे कहा—हे सुधर्मा! तुम्हारा शिष्य जम्बू अन्तिम केवली होगा। उसके पश्चात इस अवसर्पिणी काल मे इस भरत क्षेत्र मे किसी को भी केवलज्ञान की उपलब्धि नही होगी। उसी समय से परम अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारक शरीर, क्षपक श्रेणी, उपशम श्रेणी, जिन कल्प, परिहार विशुद्ध चारित्र, सूक्ष्म सम्पराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र और मोक्ष-प्राप्ति ये दस बोल विच्छेद हो जायेंगे।

स्वप्न और फल

भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास अपापापुरी मे था। हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा (लेखनशाला) मे भगवान विराजमान थे। [illegible]

वातावरण था। राजा हस्तिपाल को एक रात्रि मे आठ स्वप्न आये। वह भगवान के चरणो मे उपस्थित हुआ। हाथ जोडकर उसने बडे विनय भाव से निवेदन करते हुए कहा—प्रभो! (१) हाथी, (२) बन्दर, (३) क्षीर वृक्ष, (४) काक पक्षी, (५) सिह (६) कमल, (७) बीज, (८) कुभ—इन आठ स्वप्नो का फल जानना चाहता हू। कृपया आप फरमाये।

भगवान ने इन आठ स्वप्नो का फल बतलाते हुए कहा—प्रथम स्वप्न मे तुमने हाथी देखा। इसका फल यह है कि भविष्य मे आने वाले 'दुषम' नामक पाचवे आरे मे श्रावक समाज अपनी स्वल्प सपदा मे लुब्ध बन जायेगा। आत्महित का विवेक भूलकर वह हाथी के समान गृहस्थ जीवन मे ही रचा रहेगा। यदि दु:खी जीवन से ऊबकर कोई दीक्षा ग्रहण करेगा तो कुसगति के कारण सयम छोड देगा। निष्ठापूर्वक सयम का पालन करने वाले तो विरले ही होगे।

बन्दर के स्वप्न का फल यह है कि सघ के नायक आचार्य भी चचल प्रकृति के होगे। स्वय शिथिल होते हुए भी दूसरो को शिक्षा देगे। चरित्र का लगनपूर्वक निर्दोष रीति से पालन करेगे और धर्म का यथार्थ प्रतिपादन करेगे। धर्म-साधना मे तत्पर तो कोई विरले ही होगे। हे राजन्! भविष्य मे निर्ग्रन्थ प्रवचन से अनजान और उत्थापक लोग विशेष होगे।

क्षीर वृक्ष के स्वप्न का फल—समृद्ध एव दान करने की रुचि वाले श्रावको को श्रमण-लिंगी ठग अपने चगुल मे पकडे रखेगे। उत्तम सुविहित मुनियो के विहार आदि मे वे वेशधारी कुशीलिये बाधक होकर उपद्रव करेगे। क्षीर वृक्ष के समान श्रावको को सुसाधुओ की सगति करने मे वे शिथिलाचारी रोकेंगे।

कौवा देखा—इस स्वप्न का फल यह है कि सयम धर्म एव सघ की मर्यादा का उल्लघन करने वाले धृष्ट-स्वभावी बहुत होगे। वे अन्य स्वच्छन्दियो का सहयोग लेकर धार्मिको मे विपरीत आचरण करते हुए धर्म का लोप और अधर्म का प्रचार करेंगे।

शरीर मे उत्पन्न कीडो से दुर्बल एव दु:खी बने हुए सिह के स्वप्न का फल—सिह वन का राजा है। अन्य पशु उससे भयभीत रहते हैं। परन्तु वह कि से नही डरता। किन्तु अपने शरीर मे उत्पन्न कीडे से ही वह जर्जर एव दु:खी रहा है। इसी प्रकार जिन-धर्म सर्वोपरि है। इसके सिद्धान्त अन्य से बाधित हो सकते। किन्तु इसी मे उत्पन्न दुराचारी द्रव्य लिंगी कीडे ही इस पवि को क्षत-विक्षत करेंगे।

कमल के स्वप्न का फल—कमल का उचित स्थान सरोवर है। क मे उत्पन्न सुन्दर पुष्प विद्रूप हो, उससे दुर्गन्ध निकले तो वह घृणित होता प्रकार उत्तम कुल मे उत्पन्न मनुष्य धार्मिक होना चाहिए। परन्तु भविष

ऐसा नही होगा। बहुत से कुसगति मे पडकर धर्म-शून्य होगे। कुछ धर्मी होगे तो उनका स्थिर रहना कठिन होगा। किन्तु उकरडी पर कमल खिलने के समान कोई हीन कुलोत्पन्न मनुष्य भी धर्मी होगा परन्तु वह कुल-हीनता के कारण उपेक्षणीय होगा।

बीज स्वप्न का फल—उत्तम बीज को ऊसर भूमि मे और सडे हुए बीज को उपजाऊ भूमि मे बोने वाला किसान विवेक-हीन होता है। इसी प्रकार विवेक-विकल श्रावक कुपात्र को रुचिपूर्वक दान देगे और सुपात्र की अवहेलना करेगे।

कुभ-स्वप्न का फल—जल सभृत और कमल पुष्पो से आच्छादित कुभ एक ओर उपेक्षित पडे रहने के समान क्षमादि उत्तम गुणो से परिपूर्ण महात्मा विरले एव बहुजन उपेक्षित से रहेगे और मलपूरित कुभ के समान दुराचारी वेशधारी सर्वत्र दिखाई देगे। वे कुशीलिये शुद्धाचारी मुनियो की निन्दा करेगे और उन्हे समय-समय पर कष्ट भी पहुचाते रहेगे। वेश से दुराचारी और सदाचारी समान दिखाई देने के कारण जन-साधारण दोनो को समान मानेगे।

सब पागल, हम भी पागल

पृथ्वीपुर नाम का विशाल नगर था। वहा पर पूर्ण नाम का राजा राज्य करता था। उसका मन्त्री था 'सुबुद्धि'। वह हर दृष्टि से योग्य। बुद्धि निधान। हर क्षेत्र मे दक्ष। भविष्यवेत्ता विद्वान का राज्यसभा मे आगमन। उसने [illegible] विनम्रता से मन्त्री को सबोधित करते हुए कहा—मन्त्रीवर! एक [illegible]। एक मास पश्चात् वर्षा होगी। उसका पानी जो व्यक्ति पीयेगा, वह पागल (विक्षिप्त-मति) बन जायेगा। कुछ समय निकल जाने के पश्चात् जब दूसरी बार वर्षा होगी उसका जल पीकर पुन वे मूल अवस्था मे परिणत हो जायेगे।

मन्त्री ने राजा को निवेदन की भाषा मे सारी जानकारी दी। नृप ने सारे नगर मे घोषणा करवा दी कि एक मास के पश्चात् वर्षा होगी उसका जल पीने वाले व्यक्ति बावले बन जायेगे। इसलिए सभी लोग अपने घरो मे जल का सग्रह कर ले और उस वर्षा के पानी को कोई न पिए।

लोगो ने काफी पानी भरा। राजा और मन्त्री ने भी पर्याप्त पानी का सग्रह कर लिया। वर्षा हुई। लोगो ने सोचा—यह पानी पीने योग्य नही है। कुछ समय बाद जब सचित पानी समाप्त हो गया तो विवश होकर लोगो को वर्षा का पानी पीना पडा। पानी पीने वाले सभी विक्षिप्त हो गये। अट-सट बोलने लगे। नाच-कूद—विभिन्न कुचेष्टाए करने लगे। राजा और मन्त्री के पास सग्रहित पानी था इस कारण वे इस पागलपन के रोग से दूर ही रहे किन्तु [illegible] और सैनिक आदि सभी बावले होकर नृत्य करने लगे। [illegible]

ने सोचा यह राजा और मन्त्री हमारी क्रिया-प्रक्रिया-प्रवृत्ति आदि मे बिलकुल भिन्न है। विपरीत है। इसलिए ये दोनो बुद्धिहीन, विक्षिप्त, अयोग्य हो गये हैं। अब ये राज्य-सचालन-व्यवस्था मे कभी भी सफल नही हो सकते। इसलिए इन दोनों को हटाकर अपने मे से किसी योग्य व्यक्ति को राज्य का भार सभला देना चाहिए। किसी एक को राजा। किसी एक को मन्त्री। मन्त्री को यह सब पता लगते ही उसने राजा से कहा—महाराज ! अब हमे भी इनके जैसा पागल बनना पड़ेगा अन्यथा इन लोगो से बच नही सकेंगे, ये हमे दु खी कर देंगे।

राजा ने सोचा—मन्त्री का कथन अक्षरश सत्य है। राजा और मन्त्री बावलेपन का ढोंग करते हुए उनके साथ नाच-कूद करने लगे। अट-सट अनर्गल शब्दावली का प्रयोग करने लगे। उनका राज्य और मन्त्री पद बच गया। कालान्तर मे शुभ समय। मगल घड़ी। शुभ मुहूर्त। अनहद वर्षा हुई। सभी उस जल को पीकर स्वस्थ बने और पूर्ववत् सारा व्यवहार प्रारम्भ हो गया।

हे हस्तिपाल ! पचम काल मे कोई गीतार्थ होंगे। वे भी धर्म के सत्य स्वरूप को जानते हुए भविष्य मे अनुकूलता की आशा रखते हुए भी, लिंगधारी दुराचारियो से दबते हुए मिलकर रहेंगे।

पचम काल का स्वरूप सुनते ही राजा हस्तिपाल के हृदय मे वैराग्य का अकुर प्रस्फुटित हुआ। सयम स्वीकार कर कर्मों को काटकर वह नृप मुक्त हो गया।

दुखद पचम आरा का, सुनकर सही स्वरूप।
हस्तिपाल दीक्षित हुआ, पाने को निज रूप॥

जन्म राशि पर भस्म ग्रह

भगवान महावीर का निर्वाण समय बहुत ही नजदीक। प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र ने बड़े विनयपूर्वक निवेदन करते हुए कहा—भगवन् ! आपकी जन्म राशि पर दो हजार वर्षों का जो भस्म ग्रह बैठा है उसका फल क्या है ?

महावीर ने कहा—शक्रेन्द्र ! भस्म ग्रह बैठने के पश्चात दो हजार वर्ष तक श्रमण निर्ग्रन्थो की समय-समय पूजा नहीं होगी। शक्रेन्द्र ने कहा—प्रभो ! एक घड़ी आयुष्य इधर-उधर कर दीजिए। यह क्रूर ग्रह जब तक नही हटे, उतना आयुष्य बढ़ा दे। ग्रहों के कुप्रभाव से सारा समाज बच जायेगा। जन-जन मे प्रसन्नता की लहर दौड़ जायेगी।

भगवान महावीर ने कहा—शक्रेन्द्र ! आयु को घटाने और बढ़ाने मे असमर्थ हू। धर्म शासन की सुरक्षा की दृष्टि से तुम्हारा चिन्तन प्रशस्त है। तुम्हारे हृदय मे धर्मसघ के प्रति जो सद्भावना है वह वास्तव मे प्रशसनीय है। आयु बढाने की

शक्ति किसी मे नही है। धर्म-तीर्थ की क्षति अवश्यभावी है। दो हजार वर्ष निकलने के पश्चात् समय-समय पर पूजा होगी।

कहा इन्द्र ने वीर से, करो भस्म ग्रह दूर।
कष्ट कटे, सुख-शान्ति का बहे स्रोत भरपूर॥

भगवद् निर्वाण

भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास। पावापुरी का अनुपम सौभाग्य। चातुर्मास का चौथा मास। सातवा पक्ष निकट। मोह कर्म के कारण गणधर गौतम स्वामी का भगवान के प्रति अत्यधिक स्नेह। प्रगाढ राग। भगवान ने सोचा—गौतम को अधिक पीडा न हो। शोक-विह्वल न बने। स्नेह-बन्धन टूटने मे निमित्त हो सके। इसे यहा रखना उचित नही है। आखिर भगवद्-आज्ञा अनुसार इन्द्रभूति गौतम निकट के गाव मे 'देव शर्मा ब्राह्मण' को प्रतिबोध देने के लिए चले जाते है।

गौतम स्वामी ने उसको विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा समझाते हुए भगवान महावीर के सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला। देव शर्मा श्रावक बना। गौतम स्वामी को पुन-पुन भक्ति करने लगा। गौतम ने रात्रि का प्रवास वही पर किया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का पावन दिन। काशी देश के नव [illegible] गण के नौ राजा और कौशल देश के लिच्छवि वश के नव राजाओ ने वहाँ पर पौषध किये। भगवान ने अपनी अन्तिम देशना पुण्यफल विपाक के पचपन अध्ययनो का और पापफल-विपाक के पचपन अध्ययनो का तथा उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनो का उद्बोधन दिया। शिक्षा [illegible]। अमृतमय वाणी से सबके चेहरे पुलकित हो उठे।

भगवान पर्यंकासन मे विराजे। तीनो योगो का निरोध हुआ। पाच ह्रस्व अक्षर (अ इ उ ऋ लृ) का उच्चारण हो उतने समय तक शैलेशी अवस्था मे रह कर शेष चार अघाती कर्मों का क्षय कर स्वाति नक्षत्र के योग मे [illegible] तपस्या मे मुक्त हो गये। केवलज्ञान रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त हो गया। काशी-कौशल देश के अठारह गणराजाओ ने सोचा कि ससार मे भाव उद्योत तो समाप्त। अब द्रव्य दीप जलाकर द्रव्य उद्योत करना हमारा कर्तव्य है।

भगवान का निर्वाण महोत्सव करने हेतु चारो ही प्रकार के देव [illegible] हुए। शक्रेन्द्र ने भगवान के पार्थिव शरीर [illegible]। [illegible] क्रिया कराई। देवो द्वारा [illegible] आदि [illegible]।

[illegible]
[illegible]॥

गौतम शोक

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान निर्वाण के समाचार सुने। हृदय में दुःख का पार न रहा। वे शोक-मनप्न होकर उपालम्भ की भाषा में बोले—हे भगवन्! निर्वाण के समय मुझे दूर क्यों भेजा? मैं इतने वर्षों तक आपकी सेवा में रहा और आखिरी समय में आपने यह क्या किया? क्या मैं आपको रोकता था? आपको मोक्ष पधारना था, अवश्य ही पधारते। मैं आपको कभी भी हाथ पकड़कर नहीं रखता था। मेरे जैसा हतभागी कोई नहीं है। वे धन्य हैं जो अन्त समय तक आपकी परिचर्या में रहे। मोह कर्म के प्राबल्य में इन्द्रभूति गौतम भगवान को कोसने लगे। उलाहना सुनाते-सुनाते अपने रूप को भूल गये।

कुछ ही समय के पश्चात् विचारों ने मोड़ लिया। मन ही मन में सोचने लगे—अरे इन्द्रभूति! किस पर मोह कर रहा है? वीतरात प्रभु के साथ ममत्व रखना श्रेयस्कर नहीं है। राग-द्वेष संसार का हेतु है। किसी के भी प्रति जब तक राग-मोह रहेगा तब तक हमारी साधना फलवान नहीं बन सकती। मोह भंग करने के लिए ही भगवान ने मुझे दूर भेजा। वास्तव में मेरा हित सोचा। नहीं भूल सकता प्रभु के उपकार को। वीतराग प्रभु पर ममत्व रखना, मेरी निरीह भूल है।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में प्रवेश किया। मोहावरण टूटा। शुभ परिणामों की श्रेणी पर चढ़े। घाती कर्मों को क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो गये। आखिर समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष में पधार गये। पाँचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी भगवान के उत्तराधिकारी आचार्य हुए।

चातुर्मास व शिष्य-सम्पदा

भगवान का प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में। चम्पा और पृष्ठ चम्पा में तीन चातुर्मास। वैशाली और वाणिज्य ग्राम में बारह। राजगृह और नालन्दा में चौदह। मिथिला में छह। भद्रिका में दो। आलभिका में एक। श्रावस्ती में एक। वज्रभूमि में एक। पावापुरी में एक चातुर्मास अन्तिम।

गणधर ११, केवलज्ञानी ६००, मनःपर्यवज्ञानी ५००, अवधिज्ञानी १३००, चौदह पूर्वधर ३००, वादी ४००, वैक्रियलब्धिधारी ७००, अनुत्तरोपपातिक ८००, साधु १४०००, साध्वियाँ ३६०००, श्रावक १५६०००, श्राविकाएँ ३१८०००, भगवान के धर्म शासन में ७०० साधुओं और १४०० साध्वियों ने मुक्ति प्राप्त की।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ३० वर्ष तक गृहवासी, बारह वर्ष से अधिक छद्मस्थ साधु अवस्था में और कुछ कम तीस वर्ष केवलज्ञानी तीर्थंकर रहे। इस

प्रकार श्रमण पर्याय कुल ४२ वर्ष पालकर, कुल आयु बहत्तर वर्ष की पूर्ण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

उत्तरवर्ती संघ-परम्परा

भगवान के निर्वाण के पश्चात् सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी—ये दो आचार्य केवली हुए। प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय, भद्रवाहु और स्थूल-भद्र—ये छह 'श्रुतकेवली' हुए।

(१) महागिरि (२) सुहस्ती (३) गुण सुन्दर (४) कालकाचार्य (५) स्कन्दि-लाचार्य (६) रेवतिमित्र (७) मगु (८) धर्म (९) चन्द्र गुप्त (१०) आर्य व्रज—ये दस पूर्वधर हुए।

जेसलमेर के भण्डार मे से मिली लूको मुहतो की पुस्तक के आधार पर—(१) सुधर्मा स्वामी (२) जम्बू स्वामी (३) प्रभव स्वामी (४) सिज्जाभव स्वामी (५) यशोभद्र स्वामी (६) सम्भूत विजय स्वामी (७) भद्रवाहु स्वामी (८) स्थूल भद्र स्वामी (९) महागीरी स्वामी (१०) विमल स्वामी (११) सुपरि वुध स्वामी (१२) इन्द्र दीन स्वामी (१३) आर्यदीनू स्वामी (१४) आर्य भद्र स्वामी (१५) वसुदेव स्वामी (१६) आर्यरोह स्वामी (१७) भद्रगुप्त स्वामी (१८) आर्यवर स्वामी (१९) धणगीरी स्वामी (२०) वसुभूत स्वामी (२१) आर्य भद्र स्वामी (२२) आर्य लक्षण स्वामी (२३) आर्य नक्षत्र स्वामी (२४) नाग श्रीनाग स्वामी (२५) जेहिलदि स्वामी (२६) सठी अणगार स्वामी (२७) देवर्द्धी खमा समण। इन २७ पाटो का नाम सूत्रो मे उल्लिखित है।

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन्! आपके पश्चात् कितने वर्षों तक धर्म-मार्ग चलेगा?

भगवान ने कहा—गौतम! पाचवे आरे के २१ हजार वर्षों तक मेरा तीर्थ चलेगा। 'अमर कोष' के तृतीय काड मे तीर्थ का अर्थ सूत्र है। भगवती सम-वायाग, रायप्रसेणी, उत्तराध्ययन की टीका मे भी तीर्थ शब्द का अर्थ प्रवचन है। इस दृष्टि से सूत्र रूप तीर्थ २१ हजार वर्षों तक चलेगा। किसी समय चतुर्विध सघ के आधार तथा किसी समय शिथिलाचारी के आधार पर रहेगा।

पाचवे आरे के अन्तिम समय तक चार तीर्थ रहेंगे—(१) दुप्पसह नाम का साधु, (२) फाल्गुनी साध्वी, (३) नागल श्रावक (४) सत्य श्री श्राविका। श्रावण वदी १ के दिन पाचवा आरा लगा। आषाढ शुक्ला पूर्णिमा के दिन [illegible], सूत्र मे ऐसा मिलता है। निर्वाण के पश्चात् प्रात समय गौतम स्वामी को केवल-ज्ञान हुआ।

दिगम्बर मत

भगवान महावीर के ६०९ वर्ष के पश्चात् दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ, ऐसी मान्यता है। एक बुटकना नाम का साधु था। वह गुरु से बढकर भी अपने आप को विशेष ज्ञानी समझता था। अहम् के उच्च शिखर पर चढा हुआ वह सबको निम्न समझता था। उसके पास बहुत ही मूल्यवान एक पछेवडी थी, उस पर ममत्व होने के कारण उसे वह अन्दर ही अन्दर रखता था, कभी भी काम में नही लेता था। कई वर्ष व्यतीत हो गये। ममत्व की भावना दिनो-दिन बढती ही गई।

एक दिन वह गोचरी गया हुआ था। गुरु ने सोचा—क्या करना चाहिए? यह चेला पछेवडी को काम मे नही लेता है। ममत्व रखता है। आखिर गहराई मे चिन्तन कर गुरु ने उस पछेवडी के टुकडे-टुकडे कर सतो को दे दिए। वह गोचरी से वापस आया। पता लगते ही उसके हृदय मे क्रोध की चिनगारियां उछलने लगी। गुरु के प्रति द्वेष उबलने लगा। सोचा—कपडा रखने वाले मुनि अपनी साधना मे कभी भी सफल नही हो सकते। क्योकि वस्त्रो पर ममत्व (मूर्च्छा भाव) आये बगैर नही रहता। अत इस सघ मे रहना उचित नही है। अलग होकर वस्त्रो का परिहार कर साधना करना श्रेयस्कर है।

चिन्तन क्रियान्वित हुआ। कपडो का परित्याग कर नग्न हुआ। सघ से अलग होकर साधना करने लगा। उस मुनि ने अपनी बहन 'पालका' को भी नग्न होने के लिए प्रेरित किया। बन्धव मुनि के सकेत को वह कैसे टाल सकती थी? उसने कपडो का परित्याग किया, वह नग्न बनी। लोगो मे अपवाद होने लगा। मुख-मुख पर निन्दा। जैन समाज की निन्दा। घृणा।

अपरिमित अपवाद सुनकर मुनिवर ने चिन्तन कर अपनी बहन को लाल कपडे पहना दिए। बाईजी के नाम से उसे प्रसिद्ध कर दिया। स्त्री कपडे पहने बिना रह नही सकती, इस दृष्टि से 'स्त्री को मोक्ष नही', यह बात वायु की भाति सर्वत्र फैल गई। शास्त्रो का नया निर्माण हुआ। वस्त्र रखने वाले को मोक्ष नही मिल सकता, ऐसे सिद्धान्तो का प्रचार होने लगा। लोग उन साधुओ को दिगम्बर कहकर पुकारने लगे। आगे जाकर धीरे-धीरे वहा से दिगम्बर मत के नाम से प्रचारित हो गया।

एक बुटकने साधु ने, किया वस्त्र-परिहार।
चला दिगम्बर मत तदा, उस दिन से साकार॥

कई गच्छ

बारह वर्ष तक काल पडा। कई प्रकार के मत निकले। भिखारियो को दूर करने की दृष्टि से कई साधु हाथ मे डडा रखना प्रारम्भ कर देते है। कई पैसे रखने लग जाते है। कई चेला-चेली खरीदने मे दक्ष बन जाते है। कई जाति के नाम से प्रसिद्ध हो जाते है। दिगम्बर और श्वेताम्बर के नाम से कई गच्छ प्रचलित हो जाते हैं।

चैत्यवासी

भगवान महावीर के ८८२ वर्ष के पश्चात् चैत्यवासी मत चला। प्रतिमा-पूजा की स्थापना हुई। कई सतो ने सोचा—लोग अपने पास नही आते है। भगवान की प्रतिमा पर अवश्य ही श्रद्धा जागृत होगी। धर्म-शासन की अच्छी प्रभावना होगी। जगह-जगह पर मदिर व उपाश्रय बनने लगे। अलग-अलग विचारधारा होने से अलग-अलग गच्छ व सम्प्रदायो की बाढ आने लगी। हिंसा मे धर्म की पुट देने लगे। धर्म के नाम पर अनेक कार्य होने लगे।

शास्त्रो मे हिंसा को हर दृष्टि से हेय माना गया है। हिंसा मे कभी भी धर्म नही हो सकता। जहा हिंसा है, वहा पाप है, अधर्म है।

शास्त्र लिपिबद्ध

भगवान महावीर के ९८० वर्ष के पश्चात शास्त्रो को लिपिबद्ध [illegible] कैसे जागृत हुई, इसका भी बहुत बडा रहस्य है।

एकदा देवद्धीगणी सूठ के खण्ड को कान [illegible]। [illegible] के पश्चात् सध्या समय मे उन्हे याद आया—[illegible]। [illegible] ही मन चिन्तन चला। अब तो कुछ नयी [illegible]। [illegible] ने कहा—पहले जैसी अब स्मरण शक्ति नही है। [illegible] अब भविष्य मे कठस्थ रहना कठिन प्रतीत होता है। [illegible] को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। [illegible] किसी दृष्टि से लिख नही सके। [illegible]। [illegible] लिपिबद्ध होने से कई वर्षो तक [illegible]। [illegible] भडार मे रख दिया। अपनी-अपनी [illegible]। [illegible] का नया निर्माण कर विभिन्न प्रकार [illegible] प्रतिमा पूजा, [illegible] [illegible] और परोसा [illegible] आदि-आदि। [illegible]

पुनमिया गच्छ

भगवान महावीर के १६१६ वर्ष के पश्चात् पुनमिया गच्छ का प्रारम्भ होने मे एक विशेष घटना घटित हुई थी। एकदा एक मुनिवर किमी के घर पर गोचरी गये। बहन ने निवेदन भाव से पूछा—महाराज, आज क्या तिथि है ?

महाराज ने 'न आव देखा, न ताव,' बिना चिन्तन किए वे जोर से बोल पडे—आज पूर्णिमा है।

बहन ने हाथ जोडकर विनयपूर्वक कहा—महाराज ! अभी तो कृष्ण पक्ष चल रहा है। पूर्णिमा कैमे होगी ?

मुनिवर स्थान पर पहुचे। गुरुदेव के चरणो मे नमस्कार करते हुए उमने पूछा—गुरुदेव ! आज क्या तिथि है ?

गुरु ने कहा—शिष्य ! आज अमावस्या है। शिष्य बोला—गुरुदेव ! मैं तो उम बहन को पूनम कहकर आया हू। अब अगर वापम जाकर कहूगा तो मेरा कितना बडा अपमान होगा। साथ-साथ आपका भी। हे गुरुवर ! अब आप ही मेरा सम्मान रखेंगे, ऐसा विश्वास है।

गुरु ने गभीरता से कहा—शिष्य ! चिन्ता की क्या जरूरत है ? बहन को जाकर कह दो कि आज पूनम है। रात्रि मे चन्द्रमा देख लेना।

गुरु बडे शक्तिशाली थे। उन्होने अपने विद्या-बल से सोने के थाल को आकाश मे चढा दिया, जिसमे चन्द्रमा का आभास होने लगा। चन्द्रमा को देखकर बहन के हृदय मे विश्वास हो गया कि वस्तुत आज पूर्णिमा है। तब से यह पुनमिया गच्छ चल पडा। इमी प्रकार खरतरगच्छ आदि अनेक गच्छ प्रचलित हुए।

लूको मुंहतो

अनेक वर्षों के पश्चात् 'लूको मुहतो' नामक एक विशिष्ट श्रावक हुआ। वह जिन प्ररूपित धर्म के प्रति गहरा श्रद्धावान था। तत्त्व का ज्ञाता था। गभीर चितन-शील था। एकदा वह उपाश्रय मे सतो के पास पहुचा। उन्होने कहा—श्रावकजी ! पुस्तकें भडार मे पडी-पडी सड रही है। उदई खाने लग गई है। शास्त्रो के पन्ने फट रहे हैं। ये सब शास्त्र काम आने वाले है। इनकी सुरक्षा करना श्रावको का कर्त्तव्य है। इन पन्नो की यदि प्रतिलिपि करा ली जाये तो जिन शासन का बहुत बडा उपकार होगा, लाभ होगा।

लूकोजी ने सोचा—यह सुझाव बहुत ही सुन्दर है, उचित है। ऐसे उत्तम कार्य मे विलम्ब नही होना चाहिए। लूकोजी वहा गये और बोले—इस कार्य के लिए मैं हरदम तैयार हू। तब उन तथाकथित सतो ने केवल दसवैकालिक सूत्र की

प्रति लिखने के लिए दी। लूकोजी ने दसवैकालिक सूत्र का आद्योपान्त अध्ययन किया। साधुओ को आचार की जानकारी मिली। ५२ अणाचार और ४२ दोष टालकर आहार लेने की विधि बताई गई। यदि किसी भी दोष का सेवन किया जाये तो उसे साधु न माना जाये। साधुओ के जो लक्षण बताये गये हैं उन सबको पढकर वे बहुत ही हर्षित हुए। वर्तमान मे जो साधु है, वे इन नियमो का खडन कर रहे हैं। हिंसा मे धर्म की पुट लगाकर जन-साधारण को भ्रमित बना रहे हैं। वास्तव मे वे जिन-शासन की अवहेलना कर रहे है।

लूकोजी ने गहराई से चिन्तन किया। यदि मैं इन साधुओ से कुछ कहूगा अथवा शिथिलाचार के विषय मे चर्चा करूगा तो शास्त्रो की प्रतिया मिलनी मुश्किल हो जायेगी। अत अभी मौन मे ही लाभ है। शास्त्रो की प्रतिलिपि बन जाने से भविष्य मे बडा उपकार होगा। जैन धर्म की प्रभावना होगी। साधुओ के नियमो व उपनियमो की जानकारी मिलेगी। भगवान के प्ररूपित मार्ग का प्रचार होगा। इस दृष्टि को नजर रखते हुए उन्होने शास्त्रो की दो-दो प्रति लिखने का आदेश दिया—एक प्रति उन सन्तो के पास चली जाती और एक प्रति स्वय अपने पास रख लेते।

लूकोजी अपने घर पर सूत्रो का प्रवचन करने लगे। धीरे-धीरे प्रवचन सुनने-हेतु काफी लोगो का आवागमन प्रारम्भ हो गया। सूत्रो की सूक्ष्म-सूक्ष्म बातो का प्रचार होने लगा। शास्त्र-श्रवण से जन-जन के विचारो मे परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। कई व्यक्तियो के हृदय मे वैराग्य-अकुर प्रस्फुटित हुए। दसवैकालिक सूत्र के विशेष विश्लेषण से लोगो को साध्वाचार की अवगति मिलने लगी।

लूंका सम्प्रदाय

वि० सवत् १५३१ मे लूका सम्प्रदाय का प्रारम्भ। सूत्रो के आधार पर सही-सही प्ररूपणा का प्रचार। लूकोजी द्वारा उद्बोधित ४५ व्यक्तियो ने सयम ग्रहण किया। जैन शासन की अच्छी प्रभावना होने लगी। एक दिन लूकोजी ने उन सब मुनिवरो से पूछा—लोग पूछेगे कि आप कौन से सम्प्रदाय के हैं ? क्या उत्तर दोगे ?

वे सभी सत गण बोले—मुहतोजी ! हम लोगो पर आपकी बहुत मेहरबानी। हमे जो शुद्ध धर्म मिला है। प्रशस्त पथ मिला है—यह सब आपकी कृपा का ही फलित है। हम आपका ही नाम बतायेंगे।

वहा से ये साधु 'लूका' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जो [illegible] के विशेष श्रावक थे, वे लोग भी धीरे-धीरे उनके अनुयायी बनने लगे। [illegible] श्रावक (पारणा) ने सयम ग्रहण किया। लूको महता का यह [illegible]

हो गया। क्रमश और भी कई मुनि बने। विभिन्न प्रकार के दोषों का सेवन करने लगे। मर्यादाओं का खंडन भी होने लगा।

१७०६ में लवजी ऋषि

वि० सम्वत् १७०६ में लवजी साह ने लूका सम्प्रदाय में वज्रजगजी के पास में दीक्षा ली। शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया। दो वर्षों तक गुरु से चर्चा चलती रही। दसवैकालिक सूत्र छठे अध्ययन के विषय में वार्तालाप चला—गुरुदेव! सूत्रों में साधु का जो आचार बताया गया है, उसके अनुसार हमारी गति नहीं है।

गुरु ने कहा—शिष्य! तुम्हारा कथन अक्षरश सत्य है, किन्तु यह पाचवा आरा है। इस समय में इतने कठोर नियमों का पालन असम्भव है।

लवजी ऋषि—गुरुवर! भगवान का मार्ग २१ हजार वर्षों तक चलेगा, इस बारे में संशय का काम नहीं है। इसलिए शास्त्रोक्त विधि के अनुसार संयम का पालन कीजिए, हम आपके साथ हैं।

फिर भी गुरु ने स्वीकार नहीं किया।

लवजी, थोबजी, सेवाजी—इन तीनों ने सम्प्रदाय को छोड़कर नयी दीक्षा ग्रहण की। कुछ जगह गिरे हुए मकानों (ढढो) में ठहरने लगे। इस दृष्टि से लोगों ने उनका नाम 'ढढिया' रख दिया। अनेक लोगों को सही दिशा-दर्शन देने लगे। लोग अनुयायी बने। कई लवजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। साधु-साध्वियों का परिवार बढ़ने लगा। हरदासजी, कालूजी, गिरधरजी आदि कई प्रमुख साधु हुए। वज्रजगजी से जो अलग हुए, उनके नाम हैं—(१) लवजी, (२) अगरपालजी, (३) धर्मदासजी, (४) धनोजी, (५) बुधुरजी। बुधुरजी के पाट रघनाथजी, रघनाथजी के शिष्य भीखणजी स्वामी हुए।

द्रव्य-दीक्षा व भाव-दीक्षा

मरुधर देश में कटालिया नगर। ओसवाल वश। जाति सकलेचा। पिता बल्लूजी, माता दीपाजी। माता ने सिंह का स्वप्न देखा, जिससे वि० सम्वत् १७८३ में होनहार बालक भिक्षु का जन्म हुआ। वे क्रमश बड़े हुए। शादी हुई। मन में वैराग्य भावना प्रबल होने से शीलव्रत स्वीकार कर लिया। दोनों ने अभिग्रह किया कि जब तक अपने को चारित्र नहीं आता है तब तक एकान्तर तप करना है। कुछ ही समय के पश्चात् पत्नी का स्वर्गवास हो गया। विवाह के लिए अनेक रिश्ते आये, फिर भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। भोगों को छोड़कर माताजी को

१००० रुपये नगद सौपकर १८०८ मे २५ वर्षो की अवस्था मे रुघनाथजी के पास दीक्षा ली। शास्त्रो का गहरा अध्ययन किया। साधुओ के आचार पर विशेष ध्यान रखते थे। बडे नीतिवान थे। गुरु के पास बडे विनय से रहते थे। राजनगर (मेवाड) के लोग सिद्धान्त के जानकार थे। उनको सशय हुआ कि आजकल ये साधु आधाकर्मी आहार लेते है। नितपिड भी नही छोडते है। स्थानक मे उतरते है। आचार मे शिथिलता आ गई है। इस दृष्टि से उन्होने साधुओ को वन्दना करनी छोड दी। आचार्य रुघनाथजी को यह पता लगते ही उन्हे समझाने के लिए 'भीखणजी' को भेजा गया। परम्परागत उन्होने वही उत्तर दिया तब वहा के श्रावको ने कहा—महाराज! आपको वैरागी समझकर वन्दना करते है। किन्तु हमारी शका अभी तक नही मिटी है। रात्रि मे भिक्षु स्वामी भयकर ज्वर से पीडित हो गये। उन्होने सोचा - अभी अगर मृत्यु आ जाये तो गुरु क्या काम आयेगे? ज्वर यदि उतर जाये तो सुबह होते ही कह दूगा कि श्रावको! तुम सच्चे, हम झूठे। शास्त्रानुसार सयम का पालन करुगा। लोगो को उपरोक्त निजी भाव बताते हुए सयमपथ पर अग्रसर हुए। सभी सूत्रो का दो-दो बार मन्थन किया। चातुर्मास सम्पन्न हुआ। गुरु के पास पहुचे। परस्पर काफी चिन्तन चला। गुरु से निवेदन करते हुए कहा—गुरुवर! मै आपसे अलग होकर कोई भी मत निकालना नही चाहता। आप मेरे गुरु है, मैं आपका शिष्य हू। किन्तु साधुओ के नियमो का अक्षरश पालन करना होगा, अन्यथा मै तो अपनी आत्मा का कल्याण करूगा। इस प्रकार गुरु को बहुत कहा गया, समझाया गया किन्तु गुरु ने एक भी स्वीकार नही की। आखिर भिक्षु स्वामी १३ सन्तो से अलग हुए।

(१) थिरपालजी, (२) फतेचन्दजी, (३) भीखणजी स्वामी, (४) टोकरजी, (५) हरनाथजी, (६) भारमलजी आदि बगडी (मारवाड) मे चैत्र सुदी ९ को ये तेरह सन्त अलग होकर जैतसिहजी की छत्रियो मे ठहरे। वि० सम्वत् १८१६ आषाढ सुदी १५ केलवे मे भाव-दीक्षा ग्रहण की।

•